आधुनिक

हिन्दी नेत्ररोग विज्ञान

किताब २ री

नेत्रप्रकृतिविज्ञान

लेखक

डॉ. दिनकर धोंडो साठये एफ्. आर्. एफ्. पी. एस्. (ग्लासगो)

भूतपूर्व संस्थापक और दृष्टिविशारद खान बहादूर हाजी बचु अलि धर्मादा

नेत्ररुग्णालय परल बम्बई, भूमय्या पोशटी अशनाल म्युनिसिपल

धर्मादा नेत्ररुग्णालय कामाठी पूरा बम्बई,

न्याशनल मेडिकल कॉलेज बम्बई और पीपल्स फ्री हॉस्पिटल

और कॉंग्रेस फ्री हॉस्पिटल बम्बई

अध्यक्ष आयुर्वेदिक धर्मार्थ दवाखाना मंडल बम्बई

आदि आदि

अर्पणपत्रिका

यह हिन्दी नेत्ररोगविज्ञानकी दूसरी किताब हमारे पूज्य नेताओं कै. महर्षि दादाभाई नौरोजी, जस्टिस महादेव गोविन्द रानडे, लोकमान्य बाळ गंगाधर टिळक, लाला लजपत राय, बाबू बिपिनचंद्र पाल रा. पंडित मदन मोहन मालवीयजी, श्रीमान दादासाहेब खापर्डे, जोसेफ बापटिस्टा, विठ्ठलभाई पटेल और पंडित मोतिलालजी नेहरू और वासुदेव गणेश या वासुकाका जोशी, जिनसे हमको राष्ट्रसेवा की प्रेरणा मिली और खानबहादूर हाजी बचुअलि साहब जिन्होने दातृत्वसे हमारे परलके नेत्ररुग्णालयकी सहायता की और हमारे मित्र डा. आनन्दराव नायर जिन्होंने हमारा नॅशनल मेडिकल कालेज चलाया और महात्मा जोतीबा फुले जिन्होने समाजसेवा शुरू कीयी और आखिरमे हमारे नागपूरके नीलसिटी स्कूलके आद्य प्राथमिक गुरुवर्य बळवंतराव आवळे और केशवरावजी जोशी जिन्होंसे हमको स्वदेशी की प्रेरणा मिली इन सब महाशयोंको आदरपूर्वक अर्पण करता हूं !

५०२ नारायण पेठ पूना शहर
मिति कार्तिक शु. ११ सवत् २००४
आक्टोबर १९४७

डाक्तर दिनकर धोंडो साठये
ग्रंथकार

ग्रंथकारका खुलासा

हिन्दी नेत्ररोग विज्ञानकी पहली किताबका प्रकाशन हुआ, बहुत दिन हो गये। नेत्ररोगविज्ञानकी इस दूसरी किताबका प्रकाशन करके जनताकी और राष्ट्रभाषाकी सेवा करनेका मुझे मौका मिला, इसीका मुझे आनन्द होता है।

इस किताबमे नेत्रसंबंधी दृक्शास्त्रीय बातें, तथा नेत्रप्रकृतिविज्ञान संबंधीकी कुल बातोंका विवेचन किया है। इस किताबके संकलनमें हमने **ड्यूक एल्डर, बाल, पारसन स्वान्झी और वरवर, मे और वर्थ, हार्टरिज** आदि शास्त्रज्ञोके ग्रंथोके विवेचन और चित्रोंका जगह जगह काफी इस्तेमाल किया है। हम उक्त ग्रंथकारोंके अति कृतज्ञ है। आशा है कि जनता राष्ट्रभाषाकी इस अल्पसी ही सेवाको अति सहानुभूति दिखला कर मुझे उपकृत करेगी, और मुझे आगे बढनेको उत्साह मिलेगा।

खेद है कि इस किताबका प्रकाशन होनेमें देर हो गई है। कारण यह है कि शास्त्रीय ग्रंथ प्रकाशन का कोई खास स्वतंत्र छापखाना इस भागमे नहीं है; और जो छापखाने है उनमें सिर्फ शालेय पुस्तके छापी जाती है। हमारे पुराने मित्र **कै. रा. वासुकाका जोशी** की कृपासे उनके चित्रशाला छापखानाके विश्वस्त हमारे मित्र **रा. हरिभाऊ तुळपुळे** जीने उक्त छापखानेमें काम की भीड होते ही, इस किताबकी छापनेकी स्वीकृति दे दी। इस लिये मैं रा. हरिभाऊ तुळपुळे और व्यवस्थापक मंडलमे के श्रीयुत **दामोदर त्रिंबक जोशी** और श्रीयुत **वसंत गणेश देवकुळे** और अन्य लोगोका आभारी हूं। हमारे किताबके जिन पूर्व-ग्राहक सज्जनोंको इस विलंबके कारणसे कष्ट हुआ है, आशा है मेरी कठनाइयोंको ध्यानमें रखकर वे मुझे क्षमा करेंगे।

आखिरमे हमारे बहुत पुराने दोस्त और सल्लाहागार **सर कृष्णाजी विष्णु कुकडे कर्नेल बम्बई प्रान्तके माजी सर्जन जनरल सेवानिवृत्त** आय्.एम्.एस्. साहबानको इस किताबकी प्रस्तावना लिखकर आशीर्वाद देनेको मैंने विनन्ती कीयी और उन्होंने बडी खुशीसे इस किताबकी प्रस्तावना लिखकर मुझे उपकृत किया है। मैं उनको हार्दिक धन्यवाद देता हूं। मैं उन्हे विश्वास दिलाता हूं कि उन्होने जो इच्छा प्रकट की है उसपर अवश्य विचार करूंगा।

कार्तिक शु. ११......संवत् २००४
५०२ नारायण पेठ पूना शहर.
२५ आक्टोबर १९४७

जनताका नम्र सेवक
डॉ. दिनकर धोंडो साठये
ग्रंथकार

प्रस्तावना

डा. डी. डी. साठये एफ्. आर्. एफ्. पी. एस्. मेरे मित्र है। मुझसे अपनी लिखी नेत्ररोगविज्ञान किताब २ री की प्रस्तावना लिखनेका आग्रह कर रहे हैं। मेरी योग्यता इस विषयमें नहीं है। फिर भी मैं इनके आग्रहको नहीं टाल रहा हूं. इसलिये कि डॉ. साठये ने, देशकी अधिकांश जनताद्वारा बोली जानेवाली एक भारतीय भाषामे, यह वैज्ञानिक ग्रंथ लिखकर प्रकाशित करनेका एक महत्वपूर्ण और समाजसेवा का काम किया है। अपनी उम्रके ४० वर्ष डॉ. साठयेने नेत्ररोग चिकित्सककी हैसियतसे बितायें है। छपे हुअे पहले किताबको देखनेसे उनकी योग्यताका पूरा पता चल जाता है। इनका विषय निर्वाहका कौशल इस ढंगका है कि जिससे पाठकके मनपर बोझा पडे विना विषय वस्तु सरलता और सुगमता पूर्वक समझमें आ जाती है। जैसा कि अनुमान है ५ किताबोंमे यह ग्रंथ पूरा होगा। नेत्ररोग विज्ञानके विश्वकोष (Encyclopedia) के समान यह ग्रंथ है। नेत्ररोगचिकित्सकोंके नित्य उपयोगका यह ग्रंथ है। डा. साठये जी को यह सुनानेके लिये मैं उत्सुक हूं कि वे इस ग्रंथके प्रकाशनके साथ ही साथ या बादमें मेडिकल कालेज और डिगरी परीक्षाके विद्यार्थियोंके हितार्थ इस विषयकी एक संक्षिप्त पाठ्य पुस्तक तैयार करे। मेरी धारणा है ऐसी विद्यार्थियोपयोगी पुस्तककी मांग सारे देशमें बहुतही होगी। मैं डा. साठये को उनके इस कठिन परिश्रमके लिये धन्यवाद देता हूं। और आशा करता हूं अपने प्रयत्नोंमें उनको सफलता मिले।

नागपूर—मध्यप्रान्त
ता. १० मे १९४७

लेखकके पुराने मित्र और चाहता
के. व्ही. कुकडे, कर्नल
आय. एम्. एस्. (रिटायर्ड)

विषयसूची

खंड ४ था

अध्याय १२-(प. ३७३ से ४०६)

खंड ५

अध्याय १३ (प. ४०७ से ४३६)

खंड ६ वा

अध्याय १४ (प. ४३७ से ४४१)

स्फटिकमणिजनित प्रभामंडल (२) तारकापिधानजनित प्रभामंडल (३) कनीनिकाकी किनार की वक्ररेषा । (ब) विकृत प्रभामंडल । रुधिराभिसरण संबंधकी नेत्राभ्यन्तरीय प्राकृतिक घटना : (१) दृष्टिपटल की रक्तवाहिनीयोंकी नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमा (४३९); (२) दृष्टिस्थान केन्द्रके इर्दगिर्द की केशिनीयोंकी नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमा, (३) रक्तकणोंकी नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमा । दृष्टिपटलकी शरीररचना संबंधीकी प्राकृतिक घटना--(१) दृष्टिस्थान (२) नेत्रबिम्ब, (३) दृष्टिपटलके मज्जातन्तु ब्ल्यु आर्कस (४४०)। दृष्टिपटलका अन्तर्विहित (इनट्रिन्झिक) प्रकाश--इसकी कारणमीमांसा (४४१)।

अध्याय १५ (प ४४२ ते ४५१)

जीवन दृक्शास्त्र (बायालाजिकल आपटिक्स)

नेत्रगोलक के घटकोंसे किरण विसर्जन शक्तिका (दीप्तिमान शक्तिका) शोषण (१) नेत्रगोलक के अन्दर जानेवाली और शोषण होनेवाली किरण विसर्जन शक्तिका प्रमाण प्रकार(तरह),ल्युकोशका वर्णपटकी किरणोंके संबंधका मत, विषयसंशोधनकी तीन तरह(१) पराकासनी किरणोंकी अदृश्यताका कारणका संशोधन (४४२); (२) प्रतिदीप्तिका संशोधन; (३) वर्णपट मापन यंत्रकी तरह; नेत्राश्रु, तारकापिधानमेंका प्रेषण तथा शोषण (प ४४३) | चाक्षुषजलसे शोषण; स्फटिकमणिसे शोषण प्रमाण (प ४४४);स्फटिकद्रवपिंडसे तापाकिरणोंका शोषण प्रमाण ६० प्र. सै. । नेत्रमें किरण विसर्जन शक्तिका समाहरण ल्युकोशका शोध दो बाते;(प४४५) । (२) शक्ति क्षय का और समाहरणीय असर(४४६); नेत्रगोलकके घटकोंपर किरण विसर्जन शक्तिकी जीवन दृक्शास्त्रीय क्रिया तीन परिणामः-(१) तापजनित दुष्परिणाम, (२) प्रकाश रासायनिक या जीवनकी कमीका परिणाम, (३) पुनर्प्रकाशजानित परिणाम-प्रति दीप्ति (फ्लुरेसेन्स) (प४४७)। नेत्रगोलकके माध्यमोंपर किरण-विसर्जन शक्तिका कार्यः (अ)उष्णताजन्य दुष्परिणाम-विकृत स्वरूपका तारकापिधान-अपारदर्शकता, तारका रक्तश्राव, स्तंभिक विस्तार और बेरंगता, स्फटिकमाणि-मोतीबिन्दु, दृष्टिपटल-उसके रंजित घटक, राड और कोन घटक; (ब) प्रकाश रासायनिक या जीवनकी कमीका कार्य (अबायाट्राफिक ऐक्शन) । ड्यूक एल्डरका संशोधनका सार (प ४४८) : रंजित कण का नाश(क्रोम्पाटो लायसिस) पेशरिसकी सूजा अन्तर्गत पिंड (इनक्लुजन बाडीज) इओसिनोफिलिया तारकापिधानका दाह; तारका-कनीनिका संकुचन-हिस्टामाईन की पैदाईश, स्फटिकमणि-उसका आवरण, कलातह, गूदा (प. ४४९) । दृष्टिपटलः-तीन तरहके फर्क (१) उष्णताजन्य, (२) प्रकाश रासायनिक जीवनकी कमी के दुष्परिणाम, (३) दृष्टिकी संज्ञाकी उत्पत्ति । (क) प्रतिदीप्ति (प. ४५०) इसकी पैदाईश; जहरीली जैसा कार्य, इस क्रियाका संरक्षक कार्य, स्कान्झ का मत (प ४५१)

अध्याय १६ (प. ४५२ से ४६०)

प्रकाशकी दृष्टिपटलपर होनेवाली भौतिक रासायनिक क्रिया

रचनात्मक फर्कः—(१) सूक्ष्म शरीर रचनात्मक फर्क : (२) प्रकाश यांत्रिक चलन : पेशियोंके रंजित कणोका स्थानान्तर; (ब) कोन घटकोंका संकुचन (प. ४५२); क राडघटकोंका प्रकाशकार्यसे फूलना, फोटापिक व्यूह, स्कोटापिक व्यूह । रासायनिक परिवर्तनके फर्क : (अ) दृष्टिपटलकी आम रासायनिक रचनाके फर्क, (ब) चाक्षुष नीललोहित पिंग (बैंगनी, कासनी. व्हिज्युअल-परपल-र्‍होडापसिन), इसकी पैदाईश (प. ४५३); इसका शोध टापिटम; मनुष्यमे इसके अस्तित्वका शोध, इसका उड जाना (४५४);इसकी

वक्ररेषाअें, अर्ग (प. ४५५); इसका स्थान, एल्डरीज ग्रीनका मत–राड और कोन घटक उनका प्रकाशतीव्रताके प्रमाणके अनुसार स्कोटापिक फोटापिक कार्य । नीललोहित. पिंग का आलोक चेतन कार्य ।— विद्युत परिवर्तन; प्रकाशकार्यसे दृष्टिपटलकी विद्युत अवस्थाका दिखाई देनेवाला परिवर्तन (प. ४५६), ऋणविद्युत संचारित–घनविद्युत-संचारित–पदार्थ; इलेकट्रान्स, स्थिर विद्युत प्रवाह विद्युत (स्टेटिक–करन्ट इलेकट्रिसिटी), प्रत्याघात विद्युत प्रवाह (रिएकशन करन्ट) (प. ४५७) । नेत्रके स्थिर विद्युत प्रवाहके कारण (प. ४५८); दृष्टिपटलको प्रकाशसे उद्दीपन होनेका प्रमाण उसके घातांक गणनका प्रमाण, दृष्टिरज्जुके विद्युत प्रवाह–काल मर्यादा–संवादि क्रिया (प ४१९); संवादि क्रियाकी कालमर्यादाका प्रमाण (४६०) ।

खंड ७

अध्याय १७ (प. ४६१ से ४९२)

दृष्टिकार्यका मध्यमस्तिष्कीय मज्जायंत्र (१) चाक्षुष संज्ञावाहक मज्जापथ, दूसरी मस्तिष्क रज्जु–दृष्टिरज्जुके मस्तिष्कीय संबंध (प ४६१); अधो चाक्षुषसंज्ञापथ, अन्तिम इन्द्रिय; (राड कोनघटककलातह; पहला टप्पा–द्विध्रुव पेशिया, दूसरा टप्पा उसका पथ और अन्त; अधो चाक्षुष संज्ञापथ (प ४६२)। नेत्रके अधो चाक्षुष संज्ञापथके मज्जातन्तुओंका पृथक्करण: तीन किस्मके मज्जातन्तु (१) मस्तिष्कगामी चाक्षुष अक्षरेषाअें (प ४६३); (२) रक्तवाहिनीया और दृष्टिपटलके घटकोका नियमन करनेवाले मस्तिष्क त्यागी तन्तु, (३) कनीनिका नियमन करनेवाले मज्जातन्तु; दृष्टिरज्जु संधि, चाक्षुषपथ या दृष्टिपथके मज्जा-तन्तुओंकी रचना (प४६४) । उसके दो भाग बाहरीका और भीतरीका;सहायक तन्तुओंके-बंडल (३); **अधो चाक्षुषकेन्द्र:**—बाह्य जेनिक्युलेट पिंड, सामनेके द्वियुग्मी पिंड; (प. ४६५); केन्द्रत्यागी मज्जातन्तु (प ४६६) । जेनिक्युलो कैलकरियन पथ जेनिक्युलोथालामिक पथ चाक्षुष मुकुल; ऊर्ध्व या ऊपरका चाक्षुष संज्ञापथ (४६७) । चाक्षुषकार्यके मस्तिष्कीय बाह्य क्षेत्रमेंके केन्द्र–पाश्चात्य खंड (प ४६८); कोनीय चक्रांग (प ४६९) । चाक्षुष स्मरणशक्तिका केन्द्र, तन्तुदार या रेषांकित क्षेत्र (एरीया स्ट्रायेटा) मस्तिष्कीय चाक्षुष संवेदना क्षेत्र (प ४७०)। रेषांकित क्षेत्रकी रचना चारतह; (प. ४७१) । रेषांकित क्षेत्रका कार्य इसकी इजा–व्यस्तस्थ नेत्रार्धभागीय अंधत्व (क्रास्ड होमानिमस हेमि अनापिया); **चाक्षुषीय मस्तिष्क**–चाक्षुष मस्तिष्कीय स्थानोंका पृथक्करण (१) परिधि ओरकी दृक्शक्तिका द्विनत्राय दृक्क्षेत्र (४७२); (२) दृष्टि-स्थानका दृक्क्षेत्र; (३) एकनेत्रीय दृक्क्षेत्र (प. ४७५) । दाहिने और बांये दृक्क्षेत्रका मस्तिष्कमेका स्थाननिर्णय;(४७६); चाक्षुषपथ का चित्रलेखन (चि.नं. २८२ प४७७) । चाक्षुषपथको रक्तकी भरती (प. ४७९) । (२) चालक प्रणाली:-(अ) चाक्षुष चालक स्नायु प्रणाली ३ री, ४ थी, ६ ठी मस्तिष्कमज्जारज्जुअें (प४८०)। इनके मस्तिष्कीय संयोजन पांच; मस्तिष्कीय चाक्षुष चालक केन्द्र, दो ललाट और पाश्चात्य खंड-मेका केन्द्र (प.४८१) । दरमियानके मदतगार केन्द्र, (प. ४८२) चलनके अन्यकेन्द्र, (१) एककेन्द्राभिमुखता तथा च्यवनके केन्द्र (२) अनुबद्ध पार्श्वीय चलन केन्द्र, (३) नेत्रके खडीरेषामेके चलनका केन्द्र (ब) सातवी (मौखिकी) मस्तिष्क मज्जारज्जु, (प ४८३) (क) अष्टक स्नायुचालक संस्थान (आक्टेव्हस मोटार सिस्टीम) आठवी मस्तिष्क मज्जारज्जु (४८४); प्राथमिक स्नायुचालक अष्टक संस्थान (प ४८५) (३) संवेदना संस्थान ५ वी (त्रिमुखी–ट्रायजेमिनल)मस्तिष्क मज्जारज्जु; (प.४८६) उसके तीन मूल;एक बारीक

खंड ८ वा

अध्याय १८ (उत्तेजक स्टिम्युलस) (प ४९३ से ५१७)

वर्णपट की किरणोंकी दीप्तिमें दृष्टिपटल के भिन्न भिन्न भागोमेंके फर्क (प ५०८); परकंजी की घटना,दृष्टिपटल के परिधिके भागकी दीप्ति की वक्ररेषा। रंगछटा, संपृक्तता और दीप्तिके पारस्परिक संबंध (प ५०९) रंगमिश्रण, (५१०); रंग या वर्णमिति, (प ५११); रंगमिश्रण की नियमावली (५१२); अनुपूरक रंग ग्रासमनके नियमोंका इस्तिसार,(प,५१३); रंगोके समीकरण, (५,१४); रंग के ईकाइ के समीकरण (५१५) । त्रिरंगी प्रमाण के इकाई (५,१६)।

अध्याय १९ (५१८ से ५४५)

चाक्षुष संज्ञा-चाक्षुष इन्द्रियज्ञान (व्हिज्युअल सेनसेशन्स) । (प ५१८) दृष्टिपटलके उत्तेजनसे पैदा होनेवाली संवादि प्रतिक्रियाऐं : (१) प्रकाशसंज्ञा या ज्ञान, (२) आकारसंज्ञा या ज्ञान, रंगसंज्ञा या ज्ञान । चाक्षुष संज्ञाओंका विकास, आनुमानिक तजरबा, अनुभव के सिद्धान्त । प्रकाशसंज्ञा प्रारंभिक है;पावलोव्ह के प्रयोग, (प ५१८);आकारसंज्ञा-प्रारंभिक विकास,पावलोव्हका प्रयोग । रंगसंज्ञाका देरसे विकास-निर्पृष्ठवंशी प्राणियोमें पृष्ठवंशी प्राणियोंका विकास । मछली मेंढक पक्षिवर्ग आदि (प ५१९) । सस्तन प्राणि, मानवी जातकी संज्ञाऐं । उत्तेजक और संज्ञाओंका पारस्परिक संबंध : (१) साधारण प्राथमिक उत्तेजक प्रमाण (२) भेदकारी प्राथमिक प्रमाण, (३) खास प्राथमिक प्रमाण; वेबरका नियम (प ५२०); फेनर पंडितका संज्ञाके इकाईका प्रमाणका नियम, वेबरका नियम । प्रकाशसंज्ञा मापनकी रीति (अ) प्रकाशकी कमसे कम तीव्रताका बोध, (प ५२१); (ब) उत्तेजक प्रमाणमेंके फर्कोंके प्रकाशतीव्रताके प्रारंभिक अन्तरमेंका कमसे कम बोध, इसके मापनेका रीति : फास्टरका फोटामिटर, नागेल अडापटामिटर, प्रोजेकशन लानेटन, घुमती चकरी (प ५२२); प्रकाशतीव्रताका प्रारंभिक प्रमाण,अत्यल्प प्रकाश प्रमाण, फर्कोंके कारण :(१) दृष्टिपटलकी बातें,उत्तेजक होनेवाला भाग,केवल चाक्षुष क्षेत्र, सापेक्ष दृक्क्षत्र,दृक्क्षेत्रका मापन, काम्पीमिटर (प ५२३); प्रकाश ग्राहकताके परिमाणका मापन; रोन पंडितका निरीक्षण, (प ५२४); चाक्षुष क्षेत्रके समलक्षका नकशा आयसापटर चि. नं. ३०२ (प ५२५) । अंधतिलक (प ५२६); उत्तेजकोंके परिवर्तन वर्णपटक फर्क—कालवाचक परिवर्तन; (प ५२७); आकारक्षेत्रके परिवर्तन (प ५२८) । दृश्यक्षेत्रका कमसे कम प्रमाण—बिन्दु सदृश पदार्थ-रेषासदृश पदार्थोंका कमसे कम प्रमाण (प ५२९) । भेदकारी प्राथमिक प्रकाशका प्रमाण:- प्रकाशका भेद, भेदपर असर करनेवाली बातें (१) अंधेरेसे मिलती होनेवाली अवस्था, (प ५३०); दृष्टिपटलके खास भागके फर्क, दृष्टिपटल क्षेत्र । रंगसंज्ञा (अ) रंगसंज्ञाका विशेष प्रारंभिक प्रमाण (१) दृष्टिपटलकी बाते (प ५३१); दृष्टिपटल का उत्तेजित होनेवाला भाग, (प ५३२); उसको प्रकाशसे मिली हुई अवस्था, महत्तम रंगक्षेत्रकी समविसर्जन शक्तिके नाव परकी तुलना, (प ५३३); प्रकाशनकी समबलकी शक्तिकी तीव्रतामें वर्णपटके रंगोके क्षेत्र (प ५३४); प्रकाशनकी भिन्न भिन्न अन्ततीव्रतासे वर्णपटके भिन्न भिन्न रंगोके दृक्क्षेत्र की बाह्य मर्यादा (प ५३५) । उत्तेजकके परिवर्तन (अ) प्रकाशका वर्णपटीय धर्म, (प ५३६) (ब) प्रकाशवर्णघटित क्रियाका काल अंधियारेसे मिले हुए नेत्रमे होनेवाली नीली सज्ञा (प ५३७)। (क) उत्तेजकका विस्तार (ड) प्रकाश उत्तेजककी क्रियाकी कालमर्यादा,(प ५३८); (इ) पार्श्वभूमि और इर्दगिर्द क्षेत्रकी प्रकाशकी अवस्था । (ब) रंगज्ञानका भेदकारी प्रारंभिक प्रमाणः-(१) रंगछटाके भेदका ज्ञान, (२) संपृक्तता के भेदका ज्ञान (प ५३९)। दीप्तिके भेद । आकारसंज्ञा, संज्ञाकी मिश्र या संयुक्त स्वरूपकी बाते (१) पृथक् पृथक प्रकाश उत्तेजकोंकी

दृक्कोण, (प ५४१);दृक्शक्ति तीव्रतामें नाप करनेमें कनीनिकाका महत्व, (प ५४२); (१) पदार्थोंके कमसे कम अन्तरका प्रमाण (२) पदार्थोंके आकार रेखा जाननेका कमसे कम प्रमाण । आकार संज्ञापर परिणाम करनेवाली बातें (१) दृष्टिपटलके खास उत्तेजित भागके अनुसार दिखाई देनेवाले परिवर्तन, (प ५४३); (२) प्रकाशतीव्रताके परिवर्तन, (३) वर्णपटकी किरणोंके परिवर्तन, (४) प्रकाशप्रसरण के परिणाम (प ५४४) । चकाचौंध-आच्छादन चकाचौंध,संधि चका चौंध; अंधत्वजन्य चकाचौंध । (५) क्षेत्रके आस पासके प्रकाशके परिणामके भेद (५४५) ।

अध्याय २० (५४६ से ५६७)

उत्तेजकोंके प्राकृतिक परिणामः-(१) संवेदनात्मक संवादि प्रतिक्रियाः— (अ) एक उत्तेजकके परिणाम, (प ५४६) । अप्रकटित कालमर्यादा, प्राथमिक प्रतिमा (५४७); संवेदनकी वक्ररेपामेंका उतार चढाव, (प ५४८); संवेदनाकी कालमर्यादा; (प ५४९) (ब) आवर्त उत्तेजकोंके परिणाम (१) आवर्त प्रकाश उत्तेजकोंकी एकत्रीभूत संवेदना,तिलमिलाना, तिलमिलानेवाले क्षणिक प्रकाश की संधि आवृत्ति-तीन तरह;उत्तेजक प्रकाशके गुणधर्म, दृष्टिपटलका उत्तेजित भाग, इर्दगिर्द क्षेत्रका प्रकाशन (प ५५०) । उत्तेजक प्रकाशके गुणधर्मोंका परिणामः-(अ) संधिआवृत्तिसे मालूम होना,(ब) प्रकाशलहरियोंकी लम्बाईका असर। (२)दृष्टिपटल संबंधी बातोंका असर;(प५५१);(३)इर्दगिर्द भागके प्रकाशका परिणाम आवर्त उत्तेजकोंके हर उत्तेजकका स्वतंत्र बोध । (प ५५२); (२) उपपादनः-(अ)कालमर्यादित उपपादन (ब)स्थलवाचक उपपादन के अप्रत्यक्ष परिणाम, कालमर्यादित उपपादनके अप्रत्यक्ष परिणाम-मिलती अवस्था, उत्तरोत्तर उपपादन (१) मिलती अवस्था (प. ५५३); फोटापिक स्कोटापिक अवस्था-मिलती अवस्था संयोजन अवस्था और प्रकाश संज्ञा.-सुपेद प्रकाशकी अंधियारेसे मिलती हुई संयोजन (स्कोटापिक)अवस्था,(१, दृष्टिपटल की परिधिभागकी अंधियारेसे मिली हुई संयोजन अवस्था; प्रकाश से मिली हुई संयोजन फोटापिक अवस्था,(प५५४); (२) दृष्टिस्थान की संयोजन अवस्था । संयोजन अवस्था:और रंगसंज्ञा-अंधेरीकी संयोजनतामे रंगसंज्ञाके फर्क । परकंजीके दृश्य (प ५५५) । लाल रंगकी संज्ञा की कमी दृष्टिपटलके परिधिकी ओरको रंगीन प्रकाश संज्ञाग्राहकता । संयोजन अवस्था और आकारसंज्ञा । संयोजन अवस्थाकी परिणामकारक बातें, (५५६)((२) उत्तरोत्तर आनुक्रमिक उपपादन के अप्रत्यक्ष प्रतिक्रियाओंके परिणाम; पश्चात प्रतिमा; व्यक्त अनुलो समधर्मी घनात्मक पश्चात प्रतिमा, अव्यक्त असमधर्मी प्रतिलोम ऋणात्मक पश्चात प्रतिमा, समरंगी पश्चात प्रतिमा, पूरक रंगी पश्चात प्रतिमा, (प ५५७); घनात्मक पश्चात प्रतिमा,ऋणात्मक पश्चात प्रतिमा । (अ) मध्यम बलके क्षणिक उत्तेजकके उपपादनके परिणाम(१)मूल पश्चात प्रतिमा;परकंजी की पश्चात प्रतिमा(प५५८);(२)उपपादित-अप्रत्यक्ष पश्चात प्रतिमा; (प ५५९) इस की आवश्यक बातें:-मिलाने वाला उत्तेजक और प्रतिक्रिया कारक उत्तेजक (प ५६०); द्विनेत्रीय पश्चात प्रतिमा । (ब) तीव्र उत्तेजकोंके उपपादित-अप्रत्यक्ष परिणाम (प ५६१); (क) ज्यादा समयतक के उत्तेजको के उपपादित परिणाम, (प ५६२); पश्चात प्रतिमाओं के धर्म और उनका महत्व; कालवाचक उपपादन बतलानेवाला बिडबेलका प्रयोग (प. ५६३) । पश्चात प्रतिमाओंका प्राकृतिक महत्व । स्थानवाचक उपपादन (प ५६४); स्थानवाचक उपपादन का महत्व और धर्म(प५६५).

खंड १०

अध्याय २४ (६३५ से ६४८)

नेत्रगोलकमेंका रुधिराभिसरण नेत्राभ्यन्तरके रुधिराभिसरण या यंत्र; रोहिणीका स्पंदन (प ६३५) । नीलाओंका स्पन्द (६३६) । रक्तवाहिनीयों के दबाव (१) रोहिणीयोंका दबाव (१) नेत्रकी बाहरकी रोहिणीया (अ) चाक्षुषरोहिणीमें का दबाव (प ६३७) । नेत्राभ्यन्तर दबाव बढाने की तरतीबे दो; मैनामिट्रिक तरतीब (प ६३८) । (२) दूसरी बाहरसे दबाव की तरतीब(ब)तारकातीत पिंडकी पुरो रोहिणीयां। (२)नेत्राभ्यन्तर की रोहिणीयोंमे का दबाव (प ६३९) ।नीलाओंमेका दबाव (१) नेत्राभ्यन्तर की नीलाओंमेंका दबाव (२) शुक्लपटलमें की नीलाओंमेंका स्क्लेमकी नालीमेका दबाव, (३) शुक्लपटलकी बाहरी की नीलाओंमेंका दबाव (प ६४०) । नेत्राभ्यन्तर दबाव और नीलाओंमे की तबदिली और स्क्लेम की नालीका संरक्षक अभिद्वार जैसा कार्य (प ६४१) । केशिनीयोंमें का दबाव (प ६४२)। रुधिराभिसरण का नियमन. (प ६४३) रुधिराभिसरण का नियमन करनेवाला मज्जामंडल (प ६४४) । नेत्रमेंके छोर जाले, रक्तवाहिनियों की परावृत्त-प्रतिबिंम्बित क्रिया (प ६४५) । एक्झान प्रतिक्रियायें । रुधिराभिसरण का रासायनिक तौरका नियमन (प ६४६) । बेसंवादि और दुर्गलनीय अवस्था; नेत्राभ्यन्तर की रक्तवाहिनियोंपर कुछ दवाओंका असर (प ६४७)। केशिनियोंकी क्षिरपनशीलता (६४८)

अध्याय २५ (६४९ से ६७८)

नेत्रमेंकी चयापचय क्रिया, (दी मेटाबालिझम आफ दी आय) (कुलविसर्जन शक्तिका नेत्रमेका पारस्परिक आदान प्रदान नेत्रमें आक्सीजन कारबोहायड्रेट का इस्तेमाल का प्रमाण (६४९) । सारिणी २१, (प ६५०) । नेत्राभ्यन्तरजल, नेत्राभ्यन्तर जल की रासायनिक रचना, प्रतिस्फटिक द्रव्य (प ६५१) । नत्रप्रचुर पदार्थ, संरक्षक पदार्थ, फेनिकार पदार्थ, पारप्रसरण होनेवाले पदार्थ (अ) सहयोग करनेवाले पदार्थ-लैक्टिक अम्ल (प ६५२) । ब असहयोग करनेवाले पार प्रसरणदार पदार्थ : नेत्राभ्यन्तर जलके भौतिक गुणधर्मः-विशिष्ठगुरुत्व, वक्रीभवन गुणक, पृष्ठीव खींचाव, वाहकता, नेत्राभ्यन्तर जलका अभिसारक दबाव तीन पद्धतियां (१) भौतिक हिमांक पद्धति । (प ६५३) । (२) जीवनशास्त्रीय पद्धति-कोषाभिसरण पद्धति, (३) प्रत्यक्ष पद्धति, (प ६५४)। नेत्राभ्यन्तर जलकी प्रतिक्रिया, अप्राकृतिक नेत्राभ्यन्तर जल (अ) केशिनियोंकी दीवालोंकी प्रवेशक्षमताके फर्क । (अ) प्रतिस्फटिक पदार्थोंका प्रमाण, (ब) पारप्रसरण होनेवाले पदार्थ (प ६५५) । (क) क्लोराईड जैसे ऋण आयनवाले पदार्थ; सारिणी २२, (ब) रक्तके रासायनिक रचनाके फर्क; नेत्राभ्यन्तर जलका स्वरूप (प ६५६) । (१) पारपृथक्करणकी कल्पना (प ६५७) । (१) रासायनिक संतुलन (प ६५८) । शर्करा यूरीया जैसे पदार्थ सारिणी २३ (प ६५९) । (२) अभिसारक जलस्थित्यात्मक संतुलन, (३) स्थिरविद्युत संबंधोंका संतुलन (प ६६०) । लेहमन और मीसमनके विद्युत यंत्र । (प ६६१) । (२) लेबर-पारसन, हेन्डरसन, स्टारलिंग की क्षिरपनकी कल्पना । (३) आन्तरोत्सर्ग की कल्पना-इसके पुरावे (प ६६२) । नेत्राभ्यन्तर जलकी पैदाईश और उसका प्रसरण (अ) नेत्राभ्यन्तर जलके पैदाईशका स्थान; (प ६६३)। (ब) नेत्राभ्यन्तर जलका बाहर जानेका मार्ग; (क) नेत्राभ्यन्तर जलका प्रसरण : प्रसरणपर होनेवाले तीन तरहके असर : (१) प्राथमिक चयापचय क्रियामेंका अदल बदल अन्य प्रसरण । (२)

दबाव जन्य प्रसरण(प ६६४)। तापज प्रसरण; स्फटिकद्रवपिंड-स्फटिकद्रवपिंडकी रासायनिक रचना; (प ६६५) । श्लेष्मल नेत्रप्रचुर (म्यूकोप्रोतीन) घटक, अवशिष्ट प्रोतीन घटक (रेसिडयुअल प्रोतीन्स, **स्फटिक द्रवपिंडके भौतिक गुणधर्म** . विशिष्टगुरुत्व,वक्रीभवन गुणक गाढापन, बाहकता, (प ६६६) । अभिसारक दबाव; स्फटिकद्रवपिंडकी प्रतिक्रिया, स्फटिकद्रवपिंडकी अनियमित घटना, स्फटिक द्रवपिंडका स्वरूप; (प ६६७) । स्फटिकद्रवपिंडकी उत्पत्ति, स्फटिकद्रव पिंडका भौतिक स्वरूप-फुलना और फिका होना, (प ६६८) । स्फटिकद्रवपिंडमेंके प्रोतीन घटक. स्फटिक-द्रव पिंडकी अस्थिरता (प ६६९) । असम स्थितिस्थापकता; स्फटिकद्रव पिंडमेंका प्रसरण और प्रक्षेपण । **नेत्रके रक्तवाहिनीयोंदार घटकोंमेंकी चयापचय क्रिया :** शुक्लपटल शुक्लपटलकी रासायनिक रचना-शुक्लपटलकी स्प्रीति (टरजिसेन्स) (प ६७०) । कृष्णमंडल; दृष्टिपटलकी मास्तिष्कीय तह । **नेत्रके रक्तवाहिनीयांरहित घटकोंमेंकी चयापचय क्रिया**:-आन्तर प्राणिलीकरणकी प्रणाली; **तारकापिधान** तारकापिधानकी रासायनिक घटना; (प ६७१) । तारकापिधानका पोषण; (प ६७२) । तारकापिधानमेंकी श्वासोश्वासकी क्रिया, तारकापिधानकी स्प्रीति, (प ६७३) **स्फटिकमणि** : स्फटिकमणिकी रासायनिक रचना; (प ६७४) । स्फटिकमणिके समविद्युत्प्राही बिन्दु । स्फटिकमणिका पोषणकार्य, (प ६७५) । स्फटिकमणिमेंकी श्वासोश्वास क्रिया (प ६७६) स्फटिकमणिका स्वयंप्राणिलीकरण व्यूह । दृष्टिपटलकी बाह्यकला घटककी तह (प६७७) ।

अध्याय २६ (६७९ से ७०१)

नेत्राभ्यन्तर स्नायुतंत्र और कनीनिकाकी प्रतिक्रिया-नेत्राभ्यन्तर स्नायुओंका ऐन्द्रिय-विज्ञान; नेत्राभ्यन्तर स्नायुओंके नियमन के मज्जामय संस्थान; (अ) तारकातीत पिंडीय स्नायुका नियमनका मज्जामय संस्थान, (ब) कनीनिकाका संकुचन केन्द्र और मज्जापथ (प ६७९) । एडिंजर वेस्टफालका केन्द्र; कनीनिकाका संकुचनका केन्द्रत्यागी मज्जापथ (क) कनीनिकाका प्रसरण केन्द्र और मार्ग, (प६८०)। (२)नेत्राभ्यन्तर स्नायुओंका नेत्राभ्यन्तर जलसे नियमन (प६८१) । **तारकातीत पिंडीय स्नायुका ऐन्द्रिय कार्य** (प६८२)। **कनीनिकाका ऐन्द्रिय कार्य** कनीनिकाकी प्रतिक्रियाअें; (प ६८३) । कनीनिकाके कार्यका निर्धारण करनेवाली असल बातें:—(१) प्रकाशकी प्रतिक्रियाअें; (२) सहचरित प्रतिक्रियाअें, (३) चाक्षुष संवेदन प्रतिक्रिया; (४) मानसिक संवेदन प्रतिक्रिया, (५) वक्षसोदर तनावकी (व्हेगोटानिक) प्रतिक्रिया; (६) कर्णसंबंधी प्रतिक्रिया; (७) दबाओंकी प्रतिक्रियाअें (प ६८४) । असम कनीनिका : प्रकाशकी संवादि प्रतिक्रिया-प्रकाशकी प्रत्यक्ष संवादि प्रतिक्रिया । (प ६८५) । (१) उत्तेजकोंके प्रमाणमें बदल करनेसे होनेवाले परिवर्तन : प्रारंभिक प्रमाण उत्तेजक,भेदकारक प्रारंभिक प्रमाण,संकुचनका क्रम (प६८६)।(२) मिलती जुलती या संयोजन अवस्थामें दिखाई देनेवाले परिवर्तन, अंधियारी संयोजनता, कनीनिकाका चलन, परकंजी दृक् प्रत्यक्ष; अप्रत्यक्ष प्रकाश प्रतिक्रिया साधर्म्य संवेदना (प ६८७) । चाक्षुष मस्तिष्कीय प्रतिक्रिया-प्रकाश प्रत्यावर्तनके मज्जापथ । (६८८)। नजदीकका समगत्यात्मक प्रत्यावर्तन (६८९) । नेत्रच्छदोंकी प्रतिक्रिया चाक्षुष सांवेदानिक प्रतिक्रिया त्रिमुखी प्रतिक्रिया (प६९०)। गैसेरियन मज्जाकंद : मानसिक संवेदन प्रतिक्रिया, (१) व्हेगोटानिक कनीनिका प्रतिक्रिया । (प ६९१)। (२) कानके शंख-मार्गकी प्रतिक्रिया (काक्लियर प्युपिलरी रिफ्लेक्स) (३) कानके व्हेस्टिब्यूलर कोटरकी कनीनिका प्रतिक्रिया(४)कानकी सांवेदनिक कनीनिका प्रतिक्रिया। **कनीनिकाकी अनैसर्गिक**

प्रतिक्रियाऐं (१) स्नायु विकृतिज अवस्था (अ) अंशज कनीनिका प्रसरण,(ब)संकोचमूलक कनीनिका संकुचन; (क) अचल कनीनिकाकी अवस्था; (२) केन्द्रत्यागी पथकी इजाः (अ) संयोगजनक तंत्र कनीनिकाका केवल स्तंभ (प ६९२) । आंतरिज नेत्रस्नायु-अंश : संकोचमूलक कनीनिका संकुचन (ब) प्रसरणकारक तंत्र (I) अंशज कनीनिका संकुचन : (ii) संकोचमूलक प्रसरण; कनीनिकाकी विरोधाभासात्मक प्रतिक्रिया; इस संबंधकी अनेक कल्पनाऐं । (प६९३) । (३) परावर्तन पथकी इजा (१) प्रकाशप्रतिक्रियाको अडथळा (i) अंधत्वजन्य कनीनिका अंश (अ) दृष्टिपटल और दृष्टिरज्जुकी इजा (ब) दृष्टिरज्जुसंधिकी इजा; (क) चाक्षुषपथमें की इजा (II) प्रत्यावर्तित कनीनिका अंश (प६९४)। नजदीक के प्रत्यावर्तन का अंश,(३) प्रकाशप्रतिक्रिया,(४) मानसिक सांवेदनिक प्रत्यावर्तन का बिघाड; (४) **विपर्यस्त कनीनिका प्रतिक्रिया** ।(५)सहचरित विकृत स्नायुचलन । (प६९५)। (६)**कनीनिकाका अनैसर्गिक कार्यः**-हिपस,अनैच्छिक नेत्रविभ्रमके साथका कनीनिका कंप, चक्री चाक्षुष स्नायुचलन अंश, उडती कनीनिका,स्नायुतनावजनित कनी-निका प्रतिक्रिया; (६९६)। मज्जातन्तु तनाव जनित कनीनिका प्रतिक्रिया । **नेत्राभ्यन्तर स्नायुओंपर दवाओंका कार्यः**-(६९७) । मस्तिष्कपर असर करनेवाली दवाऐं,इसके नीचेके केन्द्रोंपर असर करनेवाली,दवाऐं अनैच्छिक मज्जाकंद पर असर करनेवाली, और प्रान्तस्थ मज्जातन्तुओंपर असर करनेवाली दवाऐं । कनीनिका प्रसरण; (प. ६९८)। प्रसरणकारक स्नायुसे होनेवाला कनीनिका प्रसरण; (प ६९९) ।कनीनिका संकुचन; (प ७००) । संकुचन स्नायुसे होनेवाला संकुचन । (७०१)

अध्याय २७ (७०२ से ७२८)

नेत्रका बाह्य स्नायुतंत्र और नेत्रके चलनः—नेत्रके बाह्य स्नयुओंका ऐन्द्रिय कार्य मज्जातन्तुओंका पारस्परिक स्नायविक विभाजन, स्नायुओंका तनाव (प ७०२) । नेत्रोंके चलन, नेत्रचलन के संशोधन की पद्धतीयां (अ) आत्मगत पद्धति : (१) पश्चात प्रतिमाकी पद्धति (प ७०४) । (२) अंधतिलक की पद्धति (३) दोनों नेत्रों की सहचलित प्रतिमा की तुलना की पद्धति; (क) वस्तुगत पद्धति (ब) फोटो उतारने की पद्धतिः-(प७०५)। नेत्रों की विश्राम की अवस्था और नेत्रोंके चलन स्थिरीकरण की अवस्थामें का स्थान, नेत्रोंका स्थिरीकरण (७०६) । नेत्रके चलन का व्यूह स्थानान्तरित चलन, चक्रगति या परिभ्रमणात्मक चलन-नियमाकाक्ष प्रणाली; (प७०७) । नेत्रोंके प्राथमिक स्थानकी अवस्थासे चलन (प७०८)। (२) नेत्रके प्राथमिक स्थान के सिवा अन्य स्थानोमें का नेत्रोंका समानान्तर चलन (३) स्थैर्यरेषा जब समानान्तर नही होती इस अवस्थामें के नेत्रों का चलन (७०९) । (४) सिरके चलन के साथ नेत्रोंका प्रतिकारक चलन । **नेत्रके बाह्य स्नायुओंकी क्रिया** नेत्रके हर स्नायुकी क्रिया (प ७१०) । उपवर्तन (एडक्शन), प्रत्यावर्तन (एबडक्शन), ऊर्ध्व वाहन, अवगहन सारिणी २५, (प ७११) । सारिणी २६, (२) नेत्रके बाह्य स्नायुओंका सहचलन (प ७१२) । सहकारी और विरोधी स्नायुओंका कार्य सारिणी २७ (प ७१३)। द्विनेत्रीय चलन : (अ) स्वेच्छिक चलन, (१) स्वेच्छिक चलनोंका नियंत्रण (अ) सहचरित चलन (प ७१४) । विभिन्न चलन, (प७१५)।(२)स्नायुओंके स्वेच्छिक चलन की मर्यादाः-(अ) सहचरित-चलन-नापन पद्धति (१) वस्तुगत-आत्मगत पद्धति (ब) विभिन्न चलन (३) नेत्रस्नायुओंके स्वेच्छिक चल-नोंका विश्लेषणः (अ)स्वेच्छिक स्थैर्यक क्रियामेंके शीघ्र चलन (प७१६)। (ब)मंद चलन,(क)

पढनेका मिश्रचलन (७१७) । (४) ऐच्छिक चलन का वेग (ब) प्रत्यावर्तित चलन;(१) **मानस-मनो-चाक्षुष प्रत्यावर्तन**(अ) नेत्रके स्थिरीकरण के प्रत्यावर्तन, (प७१८)।(ब) चाक्षुष प्रतिमाओंका एकत्रीकरण के सुधारके चलन (१) नेत्रोंका अप्रकटित कैंचापन(विषम चलन); नेत्रान्तर्गमन, नेत्रका बहिर्गमन, नेत्रोर्ध्वगमन, दोनो नेत्रोंका ऊर्ध्वगमन नेत्राधोगमन, दोनो नेत्रोंका अधोगमन, वर्तुलिक गमन (७१९)। कृत्रिमतासे किये हुओ एकत्रिकरण के चलन : (२) **अंगस्थितिदर्शक प्रत्यावर्तन** (प ७२०) । (अ) अंगस्थित्यात्मक प्रत्यावर्तन (१) श्रवणान्तर्पुटके बलवर्धक प्रत्यावर्तन (२) ग्रैवेयक बलवर्धक प्रत्यावर्तन । (प ७२१) । (ब) स्थितिगत्यात्मक प्रत्यावर्तन (७२२) अन्तःकर्णकोटरजनित अनैच्छिक नेत्रविभ्रम । (प७२३)। (अ) श्रवणान्तर्पुटोंके उत्तेजनसे पैदा होनेवाले नेत्रविभ्रम के प्रकार : (१) विवर्तक नेत्रविभ्रम (प ७२४) । (२) तापजनक नेत्रविभ्रम (३) दबावजन्य नेत्रविभ्रम (ब) (४)विद्युतप्रवाहजन्य नेत्रविभ्रम : (क) श्रवणान्तर्पुटकी विकृति या उसके नाशमें होनेवाले नेत्रविभ्रम (प ७२५) । **नेत्रविभ्रम** (१) सहचरित नेत्रविभ्रम (अ) लम्बकके तरंगरूप आन्दोलनशील नेत्रविभ्रम (ब) झटकेदार नेत्रविभ्रम-स्थूल और कोमल नेत्रविभ्रम (२) विभिन्न नेत्रविभ्रम (३) विघटित नेत्रविभ्रम । (४) एकनेत्रीय नेत्रविभ्रम (७२६) चाक्षुषनेत्रविभ्रम : (अ) मिथ्या नेत्रविभ्रम, (ब) केन्द्रच्युत स्थैर्यक नेत्रविभ्रम; (क) चाक्षुषगत्यात्मक नेत्रविभ्रम (ड) प्रकाश अभावजन्य नेत्रविभ्रम । (प ७२७) (ट) अंधत्वजन्य नेत्रविभ्रम । (त) दृष्टिदौर्बल्यजन्य नेत्रविभ्रम (प) अप्रकटित नेत्रविभ्रम (२) आन्तर कर्णकोटरजन्य नेत्रविभ्रम (३) व्यवसायजनित नेत्रविभ्रम, (४) कर्णसंवेदना उत्तेजकजन्य नेत्रविभ्रम, (६) मस्तिष्कीय नेत्रविभ्रम, (७). अपतंत्रक गुल्मवायुजन्य तथा इच्छा शक्तिज नेत्रविभ्रम; (८) स्वयंसिद्ध तथा जन्मजात नेत्रविभ्रम (७२८) ।

अध्याय २८(७२९ से ७३६)

नेत्रका संरक्षक तंत्र

तारकापिधानकी संज्ञाग्राहकता सचेतनता, तारकापिधानपर स्पर्शशून्य करनेवाले दवाओंकी क्रिया । (प ७२९)। नेत्रच्छदोंका चलन (१) अनैच्छिक चलन : (अ) नेत्र मिचमिचाना (ब) तिलमिलाना या फटफटाना ।(२) स्वेच्छिक चलन । नैसर्गिक आवर्त मिचमिचाना (प ७३०) । नैसर्गिक नेत्रमिचाना-मिचमिचानेकी चलनकी क्रिया, मिचमिचानेके कारण; (प ७३१) । परिवर्तित मिचमिचानाः—संवेदनात्मक परिवर्तित मिचमिचाना, चाक्षुषपरिवर्तित मिचमिचाना, श्रावणीय परिवर्तित मिचमिचाना । **नेत्रका रोंगण** (प ७३२) । अश्रुके भौतिक रासायनिक गुणधर्म (७३३)। अश्रूत्पादन या रुदनका ऐन्द्रिय कार्य; परिवर्तित अश्रुवहन-रुदनः—(अ) संज्ञावाहक मज्जातन्तु, (ब) आनुकंपिक या स्नेहिक मज्जातन्तु, मात्रिका जाला स्फिनो पैलेटाईन-मीकल्स मज्जाकंद; (क) उपअनुकंपिक (पारा सिंफथेटिक) मज्जातन्तु । (प ७३४) त्रिमुखी मज्जारज्जु प्रत्यावर्तन मंडल; मानसिक अश्रुवहन । अश्रूका वहन (१) अश्रुवहनकी कल्पना-साइफन-द्रवपरिवर्तक नालीकी कल्पना, (२) नासिकाकी शोषण क्रियाकी कल्पना (प ७३५) (३) रक्तवहा केशिनियोंका आकर्षणकी कल्पना; (४) नेत्रच्छदोंका बंद होनेकी कल्पना; (५) नेत्राश्रु कोषको दबानेकी कल्पना, (६) बाष्पकोषके प्रसरणकी कल्पना; (७) बाष्पनालीकी कल्पना (७३६) ।

अध्याय २९

नेत्राभ्यन्तरका दबाव (७३७ से ७५४)

नेत्राभ्यन्तर दबाव की व्याख्या (प७३७) नेत्राभ्यन्तर दबाव नापन (१) मैनोमेटरी (अ) सूक्ष्म मैनोमिटरका प्रचार; (प७३८)(ब) समतोलकारक मैनोमिटर(क)दृक्शास्त्रीय मैनोमिटर; (प७३९) टोनामेटरी (प७४०) । (अ) असमतल मापक टोनामिटर्स, (ब) छापा या संस्करण कारक टोनामिटर्स; उंगलीयासे दबावका नापन करनेकी तरह; (प ७४१) । नेत्राभ्यन्तरका दबाव नापनेके यंत्रः—स्किओट्झका यंत्र (चि. ३५४), प्रैडलका सुधार (चि. ३५४) म्याकलीनका यंत्र (चित्र३५५),इस यंत्र का इस्तेमाल करनेके पहले ख्यालमें रखनेकी बातें; **म्याकलीन** का प्रत्यक्ष पढनेका टोनोमिटर, उसके फायदे; **मार्टिन कोहनका** पारद टोनोमिटर (प. ७४३) । **बालिस्टिक** टोनोमेटरी; नैसर्गिक नेत्राभ्यन्तर दबावकी मर्यादा का संशोधन (प ७४४) । **क्रिडलेन्डने** पूर्वके पाश्चात्य संशोधनों के दबाव का औसद प्रमाण की बनाई सारिणी (७४५) । नेत्राभ्यन्तर दबाव हमेशा कायम रखनेके व्यूहका व्यापार । नेत्राभ्यन्तर के दबाव परः नेत्रके ऐच्छिक चालक स्नायुओंके कार्य का असर, पंचमी मार्स्तिष्क मज्जारज्जु या उसके गैसेरियन मज्जामंडल के उद्दीपन का असर, आवर्त नीलाओंके दबाव का असर नेत्रगोलकमेंकी रक्तवाहिनीयोंमेंका रक्तसंचय, नेत्राभ्यन्तर दबाव पर रोहिणीयोंमें के दबाव का परिणाम, (७४६); व्हेगस मज्जारज्जु के या उसके प्रान्तस्थ सीरों के उत्तेजनसे रक्त का और नेत्राभ्यन्तर दबाव का कम होना, सुषुम्नाकंद की रक्तवाहिनीयों का असर; लसिका वाहिनीयोंमेसे लसिका बाहेर जानेका असर । **झिरपन** कोनका बंद हो जानेके कारण, (अ) नेत्रगोलक के पिछले भागमें दबाव बढ जाना । पिछले खंडमें के स्फटिकद्रवपिंडमें का दबाव बढ जानेके कारण (प ७४७) । (ब) झिरपन कोनके रचनामें फर्क होना; (क) चाक्षुष जलमें ओजस द्रव्योंका प्रमाण बढनेसे झिरपन कोन परका असर; आयतन के दबाव के फर्क (७४८) । नेत्राभ्यन्तर जलके आयतन के फर्कोंका असर, **जटिल क्रियाऐं**:-केशिनीयोंके प्रसरण की संवादि प्रतिक्रिया, दबाओंकी क्रिया, (प ७४९) । प्रकाशकी क्रिया । एकज्ञान-जीवघटक तन्तु की क्रियाः दृक्संधान व्यापार और तारका के चलन का नेत्राभ्यन्तर दबावपर असर। नेत्राभ्यन्तर दबाव और मस्तिष्क में के दबाव का संबंध; नेत्राभ्यन्तर दबाव बढानेवाली और नेत्राभ्यन्तर दबाव कम करनेवाली नेत्रकी विकृति (प ७५०) । **नेत्राभ्यन्तर का दबाव और रक्तदबाव का संबंधः**—रक्तदबाव का औसद प्रमाण : वयमान के अनुसार ज्यादहसे ज्यादह रक्तदबावका प्रमाण कमसे कम रक्तदबाव का प्रमाणसारिणी पुरुषवर्गकी अपेक्षा स्त्रीवर्गमें रक्तदबाव बढने के साथ नेत्राभ्यन्तर दबाव बढना (प ७५१) ।

चित्रोंकी फिहरिश्त

चि. न. पन्हां

चि. नं. पन्हा

खंड ४

दृक्शास्त्र

खंड चतुर्थ

अध्याय १२

भूमितीय दृक्शास्त्र

तेजमान पदार्थोंका प्रकाश, समस्थितिगत या समजातीय मार्गोंमेंसे सीधी रेषामें सब दिशाओंको फैलता जाता है। प्रकाशकी तीव्रता वह दूर दूर जानेसे कम होती जाती है। प्रकाशके उगमस्थान की तीव्रताके प्रमाणमें उससे दूरीके बिन्दुकी प्रकाश तीव्रता उसके उगमस्थानसे अन्तरके वर्गके व्युत्क्रम प्रमाणमे होती है। एक फूट अन्तरकी मोमबत्तीके प्रकाशकी तीव्रताका प्रमाण एक लेवे तो दो फुट पर उसकी तीव्रता दो के वर्ग चार के व्युत्क्रममें यानी एकबटे चार प्रमाणकी होगी।

प्रतिमाका बनना

सूर्य या अन्य प्रकाशमान या तेजदार पदार्थोंकी किरणें सब दिशाको सरल रेषामें फैलती जाती है। प्रकाशित पदार्थके हरएक बिंदुसे निकलनेवाली किरणें उस बिन्दुकी प्रतिमाएँ होती है। ऐसा समझो की काले परदे के सामने मोमबत्तीकी ज्योतिको पकडनेसे परदा प्रकाशित होता है। फिर परदा और मोमबत्तीके बीचमें जाडे कागज को, जिसमें सूईसे बारीक छेद गिराया है, पकडें तो ज्योतिकी सब किरणें कागजकी वजहसे पार न होनेसे परदे पर नहीं जा सकतीं! सिर्फ कागजके छेदमेंसे कुछ किरणे जानेसे
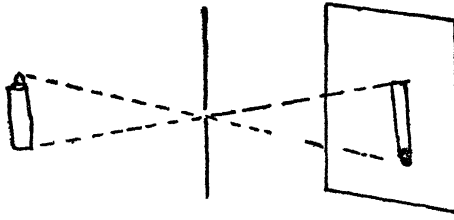
चित्र नं. २१४

ज्योतिकी प्रतिमा परदेपर तैयार होती है। लेकिन यह प्रतिमा उलटी होती है। यानी ज्योतिका सिर परदेके नीचेकी ओर और ज्योतिका नीचेका भाग परदे के ऊपर की ओरको दिखाई देगा (चित्र नं. २१४ देखिये)। इस छिद्र के इर्दगिर्द और कई छिद्र गिराये जाय तो उन छिद्रोमे से किरणें पार जानेसे छिद्रोंकी संख्या जितनी होगी उतनी ज्योतिकी प्रतिमायें परदे पर गिरेंगी। ये प्रतिमाये एक दूसरीको व्यापित करेंगी।

छाया गिरना–(चि. नं. २१५)

परदा और मोमबत्तीके बीचमें ज्योतिके आकारसे बडे जैसे अपारदर्शक पदार्थ पकडनेसे परदेपर घन छाया गिरेगी। किन्तु परदेके सामने मोमबत्तीके अलावा उससे बडे आकारके प्रकाशित गोलेको (**अ ब**) रखकर उसके और परदेके बीजमें छोटे अपारदर्शक पदार्थ (**ड**) को रखनेसे परदेपर तेजस्वी गोलके हरएक बिंदुकी छाया गिरनेसे परदेपर अनेक छायायें दिखाई पडेंगी "**अ**" बिन्दुकी छाया परदेपर "**म ग**" जैसी गिरेगी और "**ब**" बिन्दुकी छाया "**प न**" जैसी गिरेंगी। यानी "**म न**" भागपर कुछ प्रकाश नहीं

गिरेगा। इस अप्रकाशित भाग को **घनच्छाया** (पृच्छाया—अम्ब्रा) कहते है इसके बाजूके भागपर कुछ थोडा प्रकाश गिरता है इसको **अंधुकछाया** (उपछाया-पिनंब्रा) कहते हैं।

चित्र नं. २१५
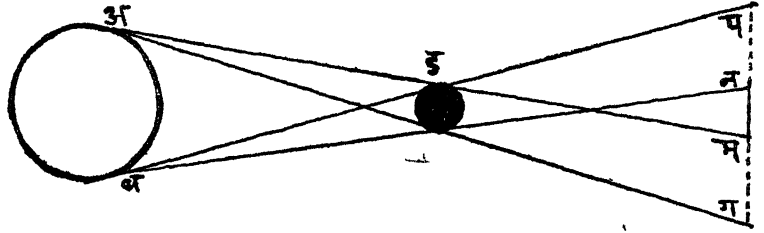
पारदर्शक पदार्थः—जब प्रकाशकी कुल किरणें किसी भी पदार्थके पार जाती हैं तब वह पदार्थ प्रकाश किरणोंको **पारदर्शक** जैसा समझना चाहिये। जब किरणे पदार्थके पार नहीं जा सकतीं, किरणें पदार्थमें ही शोषित रहती हैं तब उस पदार्थको **अपारदर्शक** समझना। कांच, पानी, और तारकापिधान आदि ये पारदर्शक पदार्थोंकी मिसाले हैं। किताब, अस्पष्ट कांच, शुक्लपटल आदि अपारदर्शक पदार्थोंकी मिसालें हैं। कांच, पानी तथा तारकापिधान आदि प्रकाशको **समजातीय मार्ग** या पदार्थ (होमाजिनस—आयसोट्रापिक) होते हैं। इसके विपरीत अस्पष्ट कांच आदि को असमजातीय मार्ग या पदार्थ (हिटरोजिनस—अनआयसोट्रापिक) कहते है। क्योंकि इनमे ही पार जानेवाली किरणें बाजेवक्त परावर्तित होती हैं.अन्दर जाती हैं और आखिर वे फैल जाती हैं। इनमेंसे कुछ प्रकाश पार जाता है। दर्पण जैसे मुलायम पदार्थपर गिरी हुई सब किरणें परावृत्त होती हैं।

प्रकाश किरणे एक मार्गमेंसे (माध्यममेंसे) दूसरे मार्ग पर गिरती हैं तब अन्दर घुसनेके समय या परावर्तित होनेके समय वे अपनी मूल सरल दिशासे घूम जाती हैं। इन घूमी हुई प्रत्यक्ष किरणोंको या उनके किरणगुच्छोंको, या घूमे हुए किरणोंको बढाकार उनको एक बिन्दुपर मिल जाये ऐसा कर सकते हैं—किरणोंको केन्द्राभिमुख कर सकते है। इस बिन्दुको केन्द्र कहते हैं। सिर्फ एकही पदार्थ के भिन्न भिन्न किरणगुच्छोके केन्द्रसमूहोंको प्रतिमा कहते हैं। जब प्रत्यक्ष किरणें या किरणगुच्छ इस केन्द्र पर मिलते हैं तब उस प्रतिमाको **खरी—सची प्रतिमा** (रियल इमेज) कहते है। लेकिन प्रत्यक्ष किरणोंके अलावा उनकी बढाई हुई रेषाएँ **काल्पनिक बिंदु** पर मिली हुई हैं ऐसी कल्पना की जाती है तब उस प्रतिमाको **प्रतिमाभास**—मिथ्या या **भ्रामक प्रतिमा**—प्रतिबिम्ब (फाल्स इमेज) कहते हैं।

सची—खरी प्रतिमाको परदेपर ले सकते है, भ्रामक प्रतिमाको परदेपर नहीं ले सकते। सची प्रतिमा परावर्तित किरणोंकी या वक्रीभूत किरणोंकी बनी हो, वह हमेशा उलटी होती है। इस प्रतिमाको प्रतीप, या अनुलोप प्रतिमा (इनव्हर्टेट इमेज) कहते है। भ्रामक प्रतिमा हमेशा सीधी होती हैं; उसको अप्रतीप-प्रतिलोम प्रतिमा कहते हैं। भ्रामक प्रतिमाको परदेपर नहीं ले सकते तो भी उसकी प्रतिमा दृष्टिपटलपर गिरती है और उसका फोटो भी ले सकते हैं।

प्रकाश लहरीयोंके बिन्दुओंकी फैलनेकी सरल दिशा (रेषा) को प्रकाशकिरण कहते हैं। किरणोंके समूहोंको प्रकाशकिरणगुच्छ (पेनसिल आफ लाईट कहते है।

प्रकाशकिरणकी दिशा लहरियोंके पृष्ठको लंब रेपामे होती है। प्रकाशका इस सिधी रेषामें फैलजाना उसकी गतिको रुकावट होनेपर या न होनेपर अवलम्बित रहाता है। जब प्रकाशकिरणें एक मार्गमेंसे जाकर दूसरे मार्गके पृष्ठ परके पदार्थोंपर गिरती है तब उसमें कुछ खास फरक होते है। वह पदार्थ अपार दर्शक हो तो प्रकाशका कुछ भाग विखुरा हुआ होता है; कुछ भाग पदार्थके अन्दर घुस जाता है और कुछ नियमित पद्धतीसे परावर्तित होता है और शेषभाग का **एकरूप** या **ध्रुवन** (पोलरायझेशन) होता है। ये फरक किसी भी प्रकारके अपारदर्शक पदार्थोंमें कम या ज्यादह प्रमाणमे पायें जाते हैं। पदार्थ काले रंगका हो तो कुल प्रकाश अन्दर घुस जाता है; कुछ भी भाग परावर्तित नही होता। लेकिन यदि पदार्थका रंग लाल हो तो प्रकाशके लाल घटकोंके सिवाय अन्य सब घटक पदार्थमें घुस जाते है सिर्फ लाल घटक परावर्तित होते है।

जब प्रकाशका ध्रुवन होता है (एक रूप होता है) तब उसकी सब लहरियां एक पृष्ठमे होती है। परावर्तित प्रकाशका कुछ प्रमाणमे ध्रवन जैसा होता है।

प्रकाशकिरणें जब पारदर्शक पदार्थ पर गिरती हैं तब कुछ उस पदार्थके पार जाती है और कुछ परावृत्त हो जाती है। पारदर्शक काचके सामने कोई मनुष्य खडा रहेगा तो उसको अपना प्रतिबिंब काचमें दिखाई देगा और कांचके पीछेके मनुष्यको यह मनुष्य दिखाई पडेगा। बाजेवक्त पार गयी हुई प्रकाश किरणोका ही ध्रुवन होता है।

प्रकाश परावर्तन (रिफ्लेकशन ऑफ लाईट)

समजातीय माध्यमेंसे मार्गमेंसे फैल जानेवाले प्रकाशको अपारदर्शक पदार्थोंसे प्रतिबंध होनेसे वह उसी मार्गमे परावृत्त होता है। तब उसकी दिशामे सिर्फ फरक होता है उसके वेगमें कुछ फरक नहीं होता। पदार्थ यदि पूर्णतः मुलायम हो तो सब ही प्रकाश का परावर्तन होता है। इसी **दृक्प्रत्यक्षको** (फिनामिना) **प्रकाश परावर्तन कहते हैं।** यह परावर्तन कुछ सादे नियमानुसार होता है। यदि प्रतिबंध करनेवाला पदार्थ खरखरा हो तो परावर्तन अनियामित होता है। जमीनपर जितने जोरसे गेदको मारनेसे उतरनेही जोरसे वह जैसी ऊपर उड़ती है उसी तोरसे अपारदर्शक पृष्ठपर जिस जगहपर प्रकाश किरण गिरती है वहासे उसी वेगसे वह परावर्तित होती है। उस जगहपर उस पृष्ठको लंब रेषा निकाली जाय तो गिरनेवाली किरण **आघात किरण**—आपाती किरण (इनसिडेन्ट रे) लंब रेषासे कोण बनायगी। इस कोणको **आघात कोण** कहते है, **परावर्तित किरण** इस लंब रेषासे जो कोण बनायगी उसको **परावर्तित कोण** कहते हैं। प्रकाश परावर्तनका नियमन करनेवाले नियम निम्नलिखित है:—

(१) पृष्ठके आघात बिन्दुपर निकाली हुई लम्बरेषा, आघात किरण और परावर्तित किरण ये तीनो एकही समतलमें होते है।

(२) आघात कोण तथा परावर्तन कोण दोनों एक दूसरे के बराबर होते हैं।

१ समतलसे प्रकाशका परिवर्तन

समझो कि तल पृष्ठपर क ब किरण ब बिन्दुपर गिरकर बड दिशामें परावृत्त होती है। क ब यह आघात किरण और ड ब परावर्तित किरण माने जाते हैं। तल पृष्ठपरके ब

चित्र नं. २१६
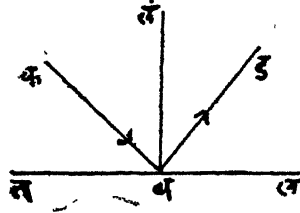
चित्र न. २१७
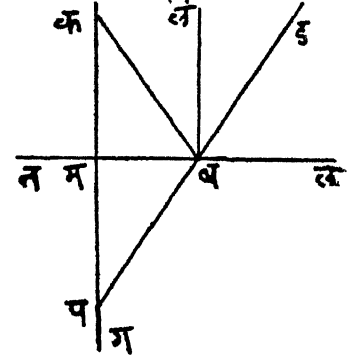
बिन्दुपर लंब यह लंब रेषा निकाली जाय तो ∟कबलं यह आघात कोण ∟डबलं इस परावर्तन कोण के बराबर होता है; और कब, लंब और डब तीनों एकही समतलमें होंगे। इन नियमोंका स्पष्टकिरणः—रचना : कब किरण रेषाके क बिन्दुसे तल पृष्ठपर कम लंब रेषा निकालें, फिर कम को मग तक इतना बढ़ावें कि कम और पम परस्परसे बराबर होवें, फिर प बिन्दुको 'ब' बिन्दुसे जोडकर आगे 'ड' तक बढ़ाना। कमब △ त्रिकोण प म ब △ त्रिकोणसे पूर्णतः बराबर होता हैं (यु. १·२६)। क्योंकि ∟कमब कोण ∟पमब कोणके बराबर है और ∟डबल कोण ∟मबप कोणके बराबर है (यु. १·१५) अर्थात ∟डबल कोण ∟कबम के बराबर होता है। ∟लंबम और ∟लंबल ये दो समकोणके ∟डबल और ∟कबम भाग परस्पर बराबर होते है। इससे उनके शेष भाग ∟डबलं और ∟कबलं कोण बराबर होते हैं यानें ∟कबल आघात कोण ∟डबलं परावृत्त कोणके बराबर होता है और पबड यह परावर्तित कोणकी दिशा होती है।

दर्पण—आइना—आरसा

अति मुलायम पदार्थ जिसपर गिरी हुई प्रकाश किरणें पूर्णतः परावर्तित हो जाती हैं उस पदार्थको दर्पण कहते है। दर्पण कांच या स्पेक्युलम धातु के बनाते हैं। सादे कांचके एक पृष्ठ को पारद लगानेसे कांचका दर्पण या आइना तैयार होता है। दर्पणसे प्रकाश किरणों के सब घटक परावृत्त होते हैं। आघात किरण यदि सफेत हो तो परावर्तित किरण भी सफेद होते हैं।

दर्पण के प्रकारः—दर्पण के समतल (प्लेन) और गोल—बाकदार—वृत्ताकार ऐसे दो प्रकार होते हैं। बांकदार दर्पण के भी अन्तवृत्त दपण—तथा बीहर्वृत्त दर्पण या नतोदर और उन्नतोदर (कांकेव्ह और कानवेक्स) दर्पण ऐसे दो प्रकार होते हैं।

१ समतल दर्पणसे परावर्तनः—समतल दर्पण के सामने मोमबत्तीको पकडनेसे उसकी ज्योतिकी किरणें दर्पणपर गिर के वहासे परावर्तित होती हैं। ये किरणें दर्पण के पीछे दिखाई देनेवाली मोमबत्तीकी ज्योतसे निकलती है ऐसा भास होता है। दर्पण के पिछे दिखाई देनेवाली मोमबत्तीकी भ्रामक प्रतिमा सीधी और दर्पण के सामने मोमबत्ती जितनी दूर होती है उतनी दूर दर्पण के पीछे भ्रामक प्रतिमा मालूम होती है। इस प्रतिमाका आकार पदार्थ के आकार जैसा होता है, सिर्फ दर्पणमें पदार्थकी बायीं बाजू दाहिनी ओरको और दाहिनी बाजू बायीं ओरको भासमान होती है।

समतल दर्पणको आघात कोणके पृष्ठमे विविक्षित कोणमेंसे घुमानेमे परावर्तित किरण उस कोणसे दुगना कोण करके घुमती है।

२ समगोल वृत्ताकार दर्पणसे (नतोदर, अन्तर्गोल अन्तर्वृत्त तथा उन्नतोदर बहिर्गोल, बहिर्वृत्त दर्पणसे) प्रकाश का परावर्तन

वृत्ताकार दर्पण—अन्तर्वृत्त तथा बहिवृत्त दर्पण—खोखले वृत्तके भाग होते हैं। वृत्ताकार कांच के उन्नत भाग को पारद लगाके अन्तर्वृत्त नतोदर दर्पण बनाते हैं और नतोदर भागको पारद लगाके बहिर्वृत्त उन्नतोदर दर्पण बनाते हैं। वृत्तका या वर्तुलका जो केन्द्र होता है वही **दर्पणके बांक का केंद्र** होता है। दर्पण के मध्यको उसका ध्रुव या **शीर्ष** कहते हैं। बांकके केन्द्रको और ध्रुव या शीर्ष को जोडनेवाली रेषाको **दर्पणाक्षरेषा** कहते हैं। दर्पणपर जिस दिशासे किरणें गिरती है उसकी उलटी दिशाको किया हुआ नापन धन नाप और उसी दिशा में किया हुआ नापन ऋणनाप समझना।

(अ) प्रतिमाओंका स्थान (चि. नं. २१८–२१९)

तबल अन्तर्वृत्ताकार दर्पण है, **ब** दर्पणका ध्रुव या शीर्ष और के दर्पण के बांकका केन्द्र है। **ब के** इन दोनो बिन्दुओंको **बकेअ** रेषासे जोड दो। ऐसा समझिये कि दर्पणके सामनेके **अ**

चित्र नं. २१८
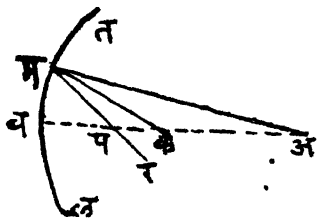
अन्तर्वृत्त दर्पण

चित्र नं. २१९
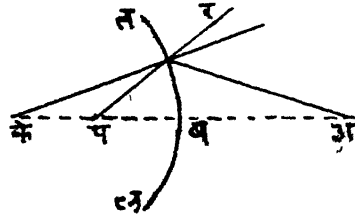
बहिर्वृत्त दर्पण

बिन्दुसे किरणें दर्पणपर गिरती हैं। ब के अ यह दर्पण की अक्ष रेषा है। **ब के अ** रेषामेंसे ब बिन्दुपर गिरनेवाली अ बिन्दुकी किरणे घूमे विना सीधी उसी रेषामेंसे परावृत्त होंगी। क्योंकि **ब के अ** यह दर्पणकी अक्ष रेषा **ब** बिन्दुको लंब रेषा जैसी होती है। ऐसा समझो कि "अ" **बिन्दुसे** दर्पण के अन्य भाग पर गिरनेवाली किरणोंमें **अ म** किरण दर्पण के **म** बिन्दु पर गिरी **है।** ऐसा समझो कि "म" यह बिन्दु बिलकुल छोटा होनेसे सपाट दर्पण जैसा ही है। **अर्थात** "**मके**" त्रिज्या **म** बिन्दुको लम्ब रेषा जैसी होगी। यानी **अम** किरण परावर्तनके

नियमानुसार **अ म** के इस आघात कोणके बराबर **के म प** जितना परावृत्त कोण करके **म प र** की दिशामें घूमके दर्पण की अक्षरेषाको **प** बिन्दुपर मिलकर आगे जायगी। **प** बिन्दुके स्थानमे अ की प्रतिमा बनेगी। यानी प्रकाशबिन्दु "अ" स्थानमें हो तो उसकी प्रतिमा **प** स्थानपर होगी। इसके विपरीत प्रकाशबिंन्दु "प" स्थानमें हो तो उसकी प्रतिमा "अ" स्थानपर बनेगी। इसका अर्थ यह होता है कि इस दर्पणमें "अ" और "प" ये सहचरित या अनुबद्ध बिन्दु (कान्ज्यूगेट पॉइन्टस) होते हैं। इन बिन्दुओको जोडनेवाली रेषा दर्पणके घ्रुव या शीर्षमेसे ही जायगीं। ∟**अ म के** ∟**के म प** कोण बराबर है इसलिये

$\frac{\text{के अ}}{\text{के प}}$ का प्रमाण पद $\frac{\text{अ म}}{\text{प म}}$ के प्रमाण पद बराबर होता है (यु. ६·३)। यदि त अ ल कोण (यानी दर्पणका छिद्र) बिलकुल छोटा हो तो अ म रेषा अ ब रेषा के बरोबर होगी तथा **प म** और **प ब** परस्पर बराबर होगी ऐसा मानना संभाव्य है। यानी **अम** के बदले अ ब और **पम**के बदले पब लिखे तो $\frac{\text{के अ}}{\text{के प}}$ प्रमाणपद $\frac{\text{अ ब}}{\text{प ब}}$ के प्रमाण पदके बराबर है।

चित्र नं. २१८ यह मालूम होगा कि **केअ=अब** − **केब**, और **केप** = **केब** − **पब**। दर्पणसे प्रकाशित पदार्थ (बिन्दु) का अन्तर जो **अब** है उसका मूल्य "यू", और दर्पणसे प्रतिमाका अन्तर जो **पब** है उसका मूल्य "**वी**", और दर्पणकी त्रिज्ज्या केब का मूल्य "**रे**" समझकर उनके बदले लिखें तो **केअ**=यू−रे, और **कब**= रे− वी; यानी

$$\frac{\text{यू}-\text{रे}}{\text{रे}-\text{वी}}=\frac{\text{यू}}{\text{वी}}$$, या यूवी−वीरे = यूरे−यूवी; यानी यूवी + यूवी = यूरे + वीरे या २ यूवी = यूरे + वीरे; इस समीकरणको यू वी रे सख्यासे भाग देनेसे यह निम्न जैसे रूपका होगा—

$$\frac{\text{२ यू वी}}{\text{यू वी रे}}=\frac{\text{यू रे}}{\text{यू वी रे}}+\frac{\text{वी रे}}{\text{यूवीरे}} \text{ यानी } \frac{२}{\text{रे}}=\frac{१}{\text{वी}}+\frac{१}{\text{यू}}\ldots\ldots(१)$$

यानी इस समीकरणसे पदार्थ तथा उसकी प्रतिमाका अन्तर्वृत्तदर्पणसे अन्तरका पारस्परीक संबंध अन्तर्वृत्तदर्पणकी त्रिज्ज्याके प्रमाणमे लिख सकते है।
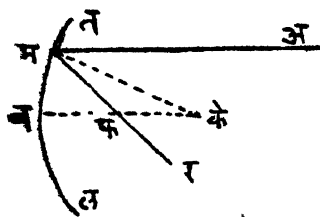
चि. नं. २२० चि. नं. २२१
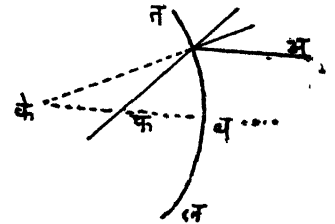
बहिर्वृत्तदर्पण में(चि.नं.२१९) भी यही समीकरण पाया जाता है। इसमें परावृत्त किरण **र म फ** दर्पणकी अक्षरेषाको नहीं मिलती तो भी उसको पींछेकी ओरको बढानेसे अक्षरेषाको "**प**"

बिन्दुपर मिलती है ऐसा भासमान होगा। यानी बहिर्वृत्तदर्पणकी प्रतिमा भ्रामक होती है। इस उदाहरणमें रे और वी ऋणचिन्हांकित होते हैं क्योंकि उनका मापन किरणके फैलनेकी दिशामें किया जाता है। इससे अके की लम्बाई–रे + यू के बराबर और केप की लम्बाई रे + (–वी) के बराबर होगी (चि. नं. २१९)।

यानी $\frac{यू-रे}{वी-रे} \frac{यू}{वी}$: यानी, यू वी + वीरे = यूवी – यूरे : या यू वी + यू वी = वीरे + यूरे;

यानी २ यूवी = वीरे + यूर। इनको यूवीरे से भाग देनेसे $\frac{२}{रे} = \frac{१}{यू} + \frac{१}{वी}$ यानी यह समीकरण अन्तर्वृत्तदर्पणके समीकरण जैसा ही है।

यदि प्रकाशित पदार्थ आनन्त्य स्थानपर (इनाफीनिटी) हो और उस अन्तरके लिये ∞ यह चिन्ह रखें तो $\frac{१}{यू} = \infty$: यानी $\frac{१}{यू} = ०$ होगा (क्योंकि किसी भी संख्याको आन्तन्त्यके मूल्यसे भाग देनेसे उत्तर शून्यके बराबर होता है) इससे $\frac{२}{रे} = \frac{१}{वी} + ०$, या $\frac{२}{रे} = \frac{१}{वी}$ या

२ वी = रे, या वी = $\frac{रे}{२}$.........(२)

यानी आनन्त्य स्थानकी पदार्थके किरणें समानान्तर होनेसे उसकी प्रतिमा दर्पणकी अक्ष-रेषापर, दर्पण और उसके बांकके केन्द्रके बीचमे आधे अन्तरके " फ " बिन्दुपर गिरती है। या दर्पणाक्षरेषाको अम जैसी समानान्तर किरणें "फ" बिन्दुपर ही केन्द्रीभूत हो जायेंगी इस बिन्दुको मुख्य केन्द्र या नाभी (फोकस) कहते हैं। इस मुख्य केन्द्रसे दर्पणके अन्तरको **ब फ** को **दर्पणकी मुख्य केन्द्रीय लम्बाई** (फोकल डिसटन्स–लेग्थ) कहते हैं। यह मुख्य लम्बाई दर्पण बाककी त्रिज्याकी (केब) आधी लम्बाईके बराबर होती है (२ फ = रे)।

इससे यह समझना चाहिये कि जब पदार्थ अनन्त्य स्थानपर होता है तब **मुख्य केन्द्रीय लम्बाई दर्पण बांक की त्रिज्याके आधे प्रमाण जितनी होती है।** (चि. नं. २२० ते २२१) " रे " के मूल्यके बदले उसका नया प्रमाण " २ फ " लिखें तो मुख्य केन्द्रीय लम्बाईके प्रमाणमें पहिला समीकरण $\frac{२}{रे} = \frac{१}{यू} + \frac{१}{वी}$

$\frac{२}{२ फ} = \frac{१}{यू} + \frac{१}{वी}$ अर्थात $\frac{१}{फ} = \frac{१}{यू} + \frac{१}{वी}$ ऐसा लिख सकते हैं। ....(३)

मुख्य केन्द्र या नाभीके प्रमाणमें प्रतिमाका अन्तर निकालना

मुख्य केन्द्रसे (फ) पदार्थाका अन्तर (अफ–बफ) अफ तथा मुख्य केन्द्रसे प्रतिमाका अन्तर बफ (केब–केफ) इनके लिये अनुक्रमसे 'ड' और 'डा' लेवें तो दोनो किस्मके दर्पणोंमें

ड = यू – फ और डा = वी – फ

ऊपरका तीसरा समीकरण $\frac{१}{फ} = \frac{१}{यू} + \frac{१}{वी}$, या $\frac{१}{फ} = \frac{वी + यू}{यू वी}$

या यूवी = फ (यु+वी) ऐसा लिखकर दोनो बाजुओंमें फ का वर्ग फफ मिलानेसे यह समीकरण निम्नलिखित होगा ।

यूवी + फ फ=यूफ + वी फ + फ फ; युफ + वी फ को दूसरे बाजूको ले जानेसे

यू वी – यूफ – वी फ + फ फ = फ फ ऐसा हो सकता है ।

∴ यु (वी–फ) – फ (वी – फ) = फफ; या (यू–फ) (वी – फ) = फ फ

यानी मुख्य केन्द्रसे पदार्थका अन्तर ड और प्रतिमाका अन्तर डा इन दोनोका गुणाकार "फ" के वर्गके बराबर होता है : ड डा = फ फ (४);

$$\text{इससे प्रतिमाका अन्तर डा} = \frac{\text{फफ (मुख्य केन्द्रीय लम्बाईका वर्ग)}}{\text{ड मुख्य केन्द्रसे पदार्थका अन्तर}}$$

किसीभी संख्याका वर्ग घन चिन्हांकित होता हैं इससे यह स्पष्ट है कि ड डा भी घन चिन्हांकित है यानी पदार्थ और उसकी प्रतिमा (यानी दो सहचरित या अनुबद्ध बिन्दु) हमेशा मुख्य केन्द्रके एक बाजूको स्थित होते है और वे ऐसें अन्तरपर स्थित होते है कि दोनोके गुणाकारका मूल्य मुख्य केन्द्रीय अन्तरके वर्गके बराबर होता है । इससे यह स्पष्ट होगा कि मुख्य केन्द्रसे पदार्थका अन्तर (ड) मालूम हुआ हो तो उसपरसे प्रतिमाका अन्तर (डा) और उसका आवर्तनाक भी निकाल सकते है । $\text{डा} = \frac{\text{फफ}}{\text{ड}}$ ।

अन्तर्वृत्त दर्पणको ये समीकरण लगानेसे निम्न सिद्धात होते है ।

(१) यदि पदार्थ आनन्त्यपर हो, $\text{ड} = \infty$, तो $\text{डा} = \frac{\text{फफ}}{\infty} = \text{०}$ इससे प्रतिमा मुख्य केन्द्रपर ही गिरेगी।

(२) यदि ड का मूल्य आनन्त्यसे कम हो तो डा का मूल्य बढ़ जाता है और प्रतिमा मुख्य केन्द्र और दर्पणके बांक केन्द्रके बीचमें गिरेगी, तथा पदार्थ बांक केन्द्रपर हो तो ड=फ जिससे डा = फ और फिर पदार्थ और प्रतिमा एक ही जगह होगे ।

(३) यदि पदार्थ बांक केन्द्र और मुख्य केन्द्र इन दोनोंके बीच स्थित हो तो प्रतिमा बांक केन्द्र और आनन्त्यमे कहीं भी होगी; जब पदार्थ मुख्य केंन्द्रपर स्थित होता है, तब (ड = ०. ∴ डा–∞) और प्रतिमा आनन्त्यपर होगी ।

(४) पदार्थ मुख्य केन्द्र और दर्पणके बीचमें हो तो डा ऋण चिन्हांकित होगा और प्रतिमा भ्रामक होगी और वह दर्पण और आनन्त्य —∞ के बीचमें होगी ।

बहिर्वृत्त दर्पणमें पदार्थ यदि आनन्त्य स्थान पर हो तो ड =∞ और डा =० फिर भ्रामक प्रतिमा मुख्य केन्द्रके स्थानपर गिरेगी। यदि पदार्थ आनन्त्य और दर्पण इन दानोके बीचके किसी भी स्थानपर हो ड का प्रमाण कम होगा और डा का प्रमाण बढ जायगा यानी भ्रामक प्रतिमा दर्पण और मुख्य केन्द्रके बीचमें भासमान होगी । पदार्थ दर्पणपर स्थित हो तो प्रतिमा भी दर्पणपर गिरेगी और वह सीधी और पदार्थके आकार की होगी ।

(ब) प्रतिमाका आकार (चित्र नं. २२२) ।

पदार्थकी प्रतिमाके आकार का ज्ञान चार प्रकारसे हो सकता है जैसे कि (१) पदार्थ तथा प्रतिमाके दर्पणसे अन्तरसे (२) या दर्पणके बांक केन्द्रके अन्तरसे (३) या मुख्य केन्द्रके अन्तरसे होता है (४) तथा प्रतिमाके आकार का ज्ञान किरणोंके च्यवन होनेके प्रमाणसे भी हो सकता है ।

नतोदर अन्तर्वृत दर्पण की प्रतिमा साची(खरी)उलटी और पदार्थसे छोटी होती है । पदार्थ तथा प्रतिमा इनके दर्पणसे अन्तरके प्रमाण परसे पदार्थकी प्रतिमाका आकार निकालने की तरह.

ऐसा समझो कि **त ब ल** दर्पणसे सामने **अ आ** पदार्थ यू अन्तरपर रखा है; **अ के ब** यह दर्पण रेषा है : के दर्पण बांक का केन्द्र है । पदार्थके **आ** बिन्दुसे एक किरण **के** इस केन्द्रमेंसे पार होकर **तबल** दर्पण पर **न** बिन्दु पर गिरती है । किरण **आ के न के** केन्द्रमेंसे पार होनेसे **न** बिन्दुको लम्बरेषा जैसा होनेसे उसी दिशामें परावृत्त होगी यानी **आ** की प्रतिमा **आ के न** रेषावर ही होगी । **आ** बिन्दुसे दूसरी **आ म** किरण दर्पणाक्षरेषासे समानान्तर होनेसे **म** बिन्दुसे परावृत्त होकर **फ** मुख्य केन्द्रसे पार होकर पहिले किरण को **प** बिंदुमें काटती है ।'प बिंदुमें दोनो किरणे मिलनेसे **प** बिंदु **आ** बिंदुकी प्रतिमा होती है । **अ आ** पदार्थके सब बिंदुओंकी प्रतिमायें इसी तौरसे **प पा** स्थानमे बन जायगी । यह प्रतिमा उलटी और छोटी दिखाई पडेगी (चित्र नं. २२२)
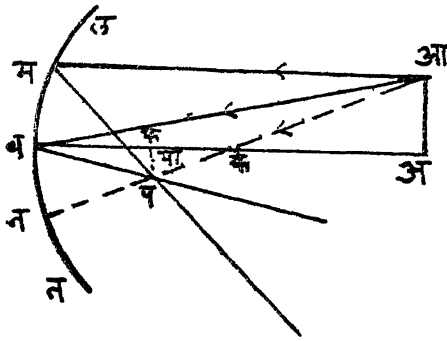
आकृति नं. २२२ .

इस चित्रमें आ ब अ तथा प ब पा त्रिकोण सम होते हैं इसके लिये $\frac{\text{अ आ}}{\text{प पा}}=\frac{\text{ब आ}}{\text{ब प}}$

पदार्थके आकार के लिये प अक्षर लिखें और प्रतिमा के लिये प्र अक्षर लिखें तो

$$\frac{\text{प}}{\text{प्र}}=\frac{\text{यू (पदार्थ का दर्पणसे अन्तर)}}{\text{वी (प्रतिमाका दर्पण से अन्तर)}} \quad ......(५)$$

यानी अन्तर्वृत्त दर्पणमें पदार्थ और उसकी प्रतिमा इनके आकारोंका प्रमाणपद उनके दर्पणसे पारस्परिक अन्तर के प्रमाणपदके बराबर होता है । इससे सिर्फ रेषामय वर्धनका बोध होता है ।

यदि दृक्शास्त्रीय नित्य नियमानुसार + और − **चिन्होंसे** अक्षरेषाके ऊपर या नीचे की नाप का बोध होता है तो ५ वा समीकरण $\frac{\text{प}}{\text{प्र}}=-\frac{\text{यू}}{\text{वी}}$ ... − (५ अ)

दर्पणके बांक केन्द्रसे पदार्थ और प्रतिमाके अन्तरके प्रमाणसे प्रतिमाका आकार निकालने की तरह् :

चित्र नं. २२२ मे **आ के अ** और **प के पा** ये दो दोनों त्रिकोण समगुण होनेसे

$\frac{\text{आअ}}{\text{पपा}} = \frac{\text{अके}}{\text{पाके}} = \text{या}\ \frac{\text{आअ}}{\text{अके}} = \frac{\text{पपा}}{\text{पाके}}$;अके पाके ये पदार्थ और प्रतिमाके बांक केन्द्रसे अन्तर हैं और अके=(अब—बके), या (यू—रे), पाके=बके—पाब, या (रे—वी): **अ आ** पदार्थकी जगह अक्षर **प**, और पपा प्रतिमाकी जगह **प्र** अक्षर लिखें तो, और अके तथा पाके की कीमत लिखे तो

$\frac{\text{आअ}}{\text{पपा}} = \frac{\text{अके}}{\text{पाके}}\ \text{या}\ \frac{\text{प}}{\text{प्र}} = \frac{\text{यू—र पदार्थका बाक केन्द्रसे अन्तर}}{\text{र—वी प्रतिमाका बाक केंद्रसे अतर}}$ (६) ।

इस लिये, पदार्थ और प्रतिमा इनके आकारमेंका प्रमाणपद उनके दर्पण बांकके केंद्र और पारस्परीक अंतरके प्रमाणपद के जैसा होता है ।

पदार्थके प्रतिमाका आकार दर्पणके मुख्य केंद्रके उनके अंतरके प्रमाणपदसे निकालने की तरह:

तीसरे समीकरण $\frac{१}{\text{फ}} = \frac{१}{\text{यू}} + \frac{१}{\text{वी}},\ \text{या}\ \frac{१}{\text{वी}} = \frac{१}{\text{फ}} - \frac{१}{\text{यू}},\ \text{या}\ \frac{१}{\text{वी}} = \frac{\text{यू-फ}}{\text{यूफ}}$; इसको

यू से गुणनेसे यह समकिरण $\frac{\text{यू}}{\text{वी}} = \frac{\text{यु—फ}}{\text{फ}},\ \text{या}\ \frac{\text{यू}}{\text{वी}} = \frac{\text{ड(पदार्थका मुख्य केन्द्रसे अंतर)}}{\text{फ (मुख्य केन्द्रिय अंतर)}}$

पांचवा(अ)समीकरण $\frac{\text{प}}{\text{प्र}} = \frac{\text{यू}}{\text{वी}},\ \text{या}\ \frac{\text{प}}{\text{प्र}} = \frac{\text{फ-यू}}{\text{क}} = \frac{\text{ड}}{\text{फ}}\ \text{यानी}\ \frac{\text{प}}{\text{प्र}} = \frac{\text{ड}}{\text{फ}},\ \text{या} = \frac{\text{ड}}{\frac{\text{रे}}{२}}\ \text{या} = \frac{२\text{ड}}{\text{रे}}$ (७)

क्योंकि फ का मूल्य हमेशाह रे के (त्रिज्ज्याके) आधे मूल्यके बराबर होता है ।

इसी तौरसे $\frac{\text{प}}{\text{प्र}} = \frac{\text{फ}}{\text{फ वी}}\ \text{यानी}\ \frac{\text{प}}{\text{प्र}} = \frac{\text{फ}}{\text{डा}} = \frac{\text{रे}}{२\ \text{डा}}$ (८)

(क) प्रतिमाका स्वरूप

ऊपरके (५. अ) समीकरणसे एक बात स्पष्ट होती है कि जब पदार्थ (प)और उसका दर्पणसे अन्तर "यू" हमेशा घन चिन्हांकित (+) होता है, प्रतिमाका दर्पणसे अन्तर "वी" घन चिन्हाकित होगा यदि प्रतिमा ऋण चिन्हांकित होगी; और यदि प्रतिमा घन चिन्हाकित हो तो प्रतिमाका दर्पणसे अन्तर ऋृण चिन्हांकित होगा । इससे सब उलटी प्रतिमायें साची होती हैं और सब सरल प्रतिमायें भ्रामक होती हैं । अन्तरवृत्त दर्पणमें मुख्यकेन्द्र (फ) घन चिन्हांकित होनेसे यह स्पष्ट होता है कि (७:८ समीकरणसे, जब "यू" (पदार्थका दर्पणसे अन्तर) फ से (मुख्य केन्द्रिय अन्तर) बडा होता है तब प्रतिमा उलटी और पदार्थसे बडी होती होती है, और जब यू, फ से कम होता है तब प्रतिमा सरल और पदार्थसे (छोटी) है । बहिर्वृत्त दर्पणमें "फ" ऋण चिन्हांकित होता है और इस कारणसे प्रतिमा हमेशा सरल और छोटी होती है ।

बाहिर्वृत्त दर्पणमे फ ऋण (—) होनेसे प्रतिमा पदार्थसे सीदी और छोटी होती है।

भूमितीय पद्धतसि इन प्रतिमाओंका चित्र लेखन करें तो वह सबमें एक सरीखा ही मालूम होगा। किसी भी पदार्थके "प" बिन्दुके दो किरण परावृत्त होकर परस्परसे जिस बिंदु पर मिलते है वही बिन्दु उसकी प्रतिमा होती है। कोई किरण "के" बिन्दुमेंसे (बांक केन्द्रमेंसे) जाकर दर्पणको लम्ब रेषा जैसा मिलता है और तब वह सरल उसी दिशामें परावर्तित होकर वापस पलटता है। दर्पणाक्षरेषाको समानान्तर जैसा किरण दर्पणसे परावर्तित होकर "फ" से यानी मुख्य केन्द्रिय बिन्दुमेंसे पार होता है। और तिसरा किरण जो मुख्य केन्द्रसे पार होकर दर्पणको मिलता है वह दर्पणाक्षरेषाको समानान्तर जैसा परावृत्त होगा। इन किरणोंसे कोई भी दो किरण (या उनके दीर्घीकरण या विस्तार) जिस बिन्दुमें मिलते है वह बिन्दु "प" की प्रतिमा होगी।

इनके सिद्धातो का सार नीचे के खुलासा से ध्यान में आजायेगा।

अन्तर्वृत्त–नतोदर दर्पण

पदार्थका स्थान	प्रतिमाका स्थान	प्रतिमाका स्वरूप
आनंत्य स्थानपर ∞	मुख्य केन्द्र	साची
आनंत्य और बाक केन्द्रके बीचमें	मुख्यकेन्द्र और बाक केन्द्रके बीचमे	साची, उलटी और छोटी
बाक केन्द्रपर	बांक केन्द्रपर	साची उलटी, पदार्थकी आकारकी
बाक केन्द्र और मुख्य केन्द्रके बचिमें	बाक केन्द्र और आनन्त्यके बचिमें	साची उलटी, और वर्धमानसी
मुख्यकेंद्र पर	आनन्त्य स्थानपर	
मुख्यकेन्द्र और दर्पण के बीचमें	दर्पण और–आनन्त्यमें	भ्रामक सिधी और वर्धमानसी
दर्पणपर	दर्पणपर	सिधी और पदार्थके आकारकी

बाहिर्वृत्त—उन्नतोदर दर्पण

आनन्त्य स्थानपर	मुख्य केन्द्रपर	भ्रामक
आनन्त्य और दर्पण के बीच	मुख्यकेंद्र और दर्पणके बीच	भ्रामक सरल छोटी
दर्पणपर	दर्पणपर	सिधी और पदार्थके आकारकी

प्रकाशकिरणोंका वक्रीभवन

जब प्रकाशकिरणें एक माध्यममेंसे दूसरे भिन्नताकी घनताके माध्यममें घुसती हैं, तब उनके गमनकी दिशामें जो फरक होता है उस फरक को किरणोका वक्रीभवन कहते हैं। यदि किसी लकडीको पानीके प्रवाह या हौदमें तिरछी पकडें तो पानीमे डूबा हुआ लकडीका भाग पानीके पृष्ठसे टेढा और ऊपर उठा हुआ जैसा दिखाई पडता है।

उद्दाहरण प्रयोग

तबल पृष्ठ हवा और कांच इन दोनोंके बीचमे है जिसपर कब प्रकाशकिरण ब बिंदुमेंसे काच माध्यममें घूसकर बर इस दिशामें बाहर जाता है ऐसा दिखाई पडेगा। ब

चित्र नं. २२३
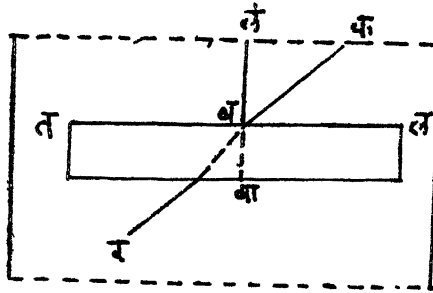
बिंदुपर लंब लबरेषाको निकालें फिर उसको बा तक आगे बढावें। कब किरण रेषा लंब रेषासे ∟ कबलं कोण करेगी जिसको आघात कोण (ऍंगल आफ इनसिडन्स) कहते हैं और ∟ रबबा कोण वक्रीभूत कोण (ऍंगल आफ रिफ्रैकशन) हो जायगा। यह कोण लंब रेषाके नजदीक गया है जैसा मालूम होगा। लेकिन जब किरण कांच के बाहर की हवामे जाता है तब वह फिरसे लंब रेषासे दूर हट जाता है यानी उन्मग्न किरण (ईमरजन्ट रे) आघात किरणसे समानान्तर जैसा बाहर जायगा।

वक्रीभवन का कारणः—जब हवा जैसे पतले माध्यममेंसे मार्गमेसे काच जैसे घनताके प्रमाणके मार्गमें कोई किरण जाता है तब उसका वेग मार्ग की घनता के वजहसे रुक जाता है और उसकी दिशा तिरछी होती है;यदि किरण सीधा लंब रेषामें घुसे तो वह टेढा नहीं होता। किरण जितना तिरछा घुसेगा उतना ज्यादह वह तिरछा हो जायगा। यानी माध्यमकी घनता और आघात कोणके अंश प्रमाण इनसे किरणोंका वक्रीभवन होता है।

प्रकाशकिरण पतले माध्यमसे घनमाध्यमसे या घनमाध्यममें पतले माध्यम जब घुस जाता है तब उसमें दो फरक होते हैः—एक तो उसकी दिशा बदल जाती है और दूसरा उसके वेग में फरक होता है। जब किरण माध्यममे घुसता है तब वह लंब रेषाके नजदीक जाता है और जब पतले माध्यममें जाता है तब लंब रेषासे दूर जाता है। जब एक पारदर्शक माध्यममें गया हुआ किरण दूसरे ज्यादह घनताके पार दर्शक माध्यममें घुसता है तब उस प्रकाशकिरण का कुछ भाग पहलेके माध्यममे परावर्तित होता है, (जब उसके आघात कोण और परावृत्त कोण बराबर होते हैं) और शेष भाग नये माध्यममे घुस जाता है। प्रकाशकिरण के आघात कोणका मूल्य शून्यसे ज्यादा हो तो घनमाध्यममे घूसनेवाले किरणकी मार्ग की दिशा बदल जाती है। वक्रीभूत किरणोंकी दिशा निम्न नियमोंसे मुकर्रर कर सकते हैं।

प्रकाशकिरणोंके वक्रीभवनके नियम

(१) आघात किरण, आघात बिंदुपरकी लंब रेषा, और वक्रीभूत किरण ये सब एक समतलमें होते हैं।

(२) आघात कोणकी ज्या का प्रमाणपद और वक्रीभूत कोणकी ज्या का प्रमाणपद इनका पारस्परीक संबंध हमेशाह कायम रहता है। और इस प्रमाणपदका मूल्य दोनों माध्यमोंकी घनताके प्रमाणपर और किरणोंके स्वरूपपर अवलम्बित रहता है।

$$\frac{(\text{आघात कोण})\angle \text{ आ कोण ज्या}}{(\text{वक्रीभूत कोण})\angle \text{ व कोण ज्या}} = \mu \ (\text{कायम प्रमाणपद})$$

इन नियमोंका शोध सबसे पहले डच ज्योतिर्विद **स्नेल** ने सन १६२१ में लगाया था। लेकिन उनकी प्रसिद्धि **डेसकार्टेने** की।

वक्रीभवन (गुणक) दर्शकांक आवर्तनांक (इनडेक्स आफ रिफ्रैकशन):—किसी भी दो माध्यमोंकी घनताओंके कायम प्रमाणपदके मूल्यको वक्रीभवन दर्शकांक कहते हैं। दो माध्यमोंसे एक माध्यम निर्वात प्रदेश जैसा हो तो उसके आवर्तनांक(गुणक)को **केवल वक्रीभवन आवर्तनांक-गुणक** (ॲबसोल्यूट रिफ्रैकशन कहते हैं।' और अन्य माध्यमोंके आवर्तनांकको **सापेक्षवक्री-भवन आवर्तनांक**—(गुणकरिलेटिव्ह रिफ्रैकटिव्ह) कहते हैं।

* साधारणतया प्रकाशगमन हवामेंसेही होता है। प्रकाशके अन्य माध्यमोंकी घनताओंके प्रमाणकी तुलना हवा की घनताके प्रमाणसे करते हैं। यानी हवाका वक्रीभवन आवर्तनांक यदि एक लेवे तो पानीका १.३ और काचका १.५ आदि लिया जाता है।

माध्यमोंकी घनतासे प्रकाशके वेगको प्रतिबंध होनेसे उसमें फरक होता है यह बात पहलेही कही है। ऊपर लिखी हुई बातोंसे यह स्पष्ट होगा कि आघात और वक्रीभूत कोणों की **ज्या** के प्रमाण का संबंध किसी भी दो मार्गोंके आघात और वक्रीभूत किरणोंके वेगके प्रमाणपदके बराबर प्रत्यक्ष (डायरेक्ट) होता है। यानी दो मार्गोंके सापेक्ष वक्रीभवन दर्शकांक दो मार्गोंके किरणोंके वेगका तुलनात्मक प्रमाण समझे जाते हैं (यानी सापेक्ष वक्रीभवन दर्शकांक एक मार्गमेंके प्रकाश वेगका प्रमाण दूसरे मार्गके प्रकाश वेगके प्रमाणका तुलनात्मक प्रमाण होता है) । किसीही माध्यमका **केवल वक्रीभवन दर्शकांक** उस मार्गमेंके प्रकाश वेग का व्युत्क्रम प्रमाण—उलटा प्रमाण (रिसिप्रोकल) होता है।

वक्रीभवनके दूसरे नियम का प्रकाश लहरीकी कल्पनासे अनुमान कर सकते हैं।

प्रकाश लहरिका अग्रभागः—प्रकाश (या वर्तिका **गुच्छ**) के गमनकी दिशाको निकाली हुई लंब रेषाके पृष्ठको लहरिका अग्रभाग कहते हैं।

हवामेंके प्रकाश लहरियोंके वेग के बदले "वे" चिन्ह और घनमाध्यममेंका वेगके लिये "वै" चिन्ह लेवें और इन दोनों मार्गोंके वेग ३:२ के प्रमाण में है ऐसा समझों तो **वे: वै:** : ३ : २ ; $\frac{\text{वे}}{\text{वै}} = \frac{३}{२}$; ३ वै=२ वे; वै= $\frac{२}{३}$ वे यानी घनमाध्यममेंका वेग हवाके $\frac{२}{३}$ वेग जितना होगा।

ऐसा समझो कि हवासे ज्यादा घनमार्गके तल पृष्ठपर एक **प म** प्रकाश **गुच्छ** गिरा है। औ **अ ब** यह उसका अग्रभाग है। यदि प्रकाश गुच्छको प्रतिबंध न होता तो जितने समयमें लहरीका "ब" बिंदु "बा" स्थानको जाता है उतने ही समय में उतनेही अन्तर पर अ बिंदु "आ" स्थानपर जायेगा। लेकिन अ बिंदुकी गतिको घनमार्गमें प्रतिबंध होनेसे उसकी गतिका वेग कम होकर अआ जितना दूर नहीं जाता बल्कि उसके $\frac{२}{३}$ प्रमाण यानी **अर** इतना ही दूर जायगा (चित्र नं. २२४)।

दूसरे मार्गके "अ" स्थानपर किरणका आघात होनेसे "अ" स्थानमें क्षोभ होकर वह "अ" केन्द्रके चारों ओर वृत्ताकार फैल जायगा। "अ" बिन्दुपर "अर" त्रिज्याका वृत्तका चित्र लेखन करनेसे (चित्रमें सिर्फ उसका कंस बताया है) "अ" बिंदूपर का क्षोभ वृत्तकी सीमातक पहुंच जानेतकके समय मे "ब" बिन्दुका पहले माध्यमका क्षोभ दूसरे माध्यमके "बा" स्थानको पहुचेगा। इसी रीतिसे गुच्छके अन्य बिन्दु प्रमाणसे आगे बढ जायेंगे। इन सबके प्रसरण वृत्तको "कबा" स्पर्शज्ज्या (ट्यान्जन्ट) निकाले तो वह रेषा लहरियोंका घन-माध्यमेंका अग्रभाग होगा। "अ" और "बा" से "क बा" यह नये पृष्ठपर समान्तर लंब

चित्र नं. २२४
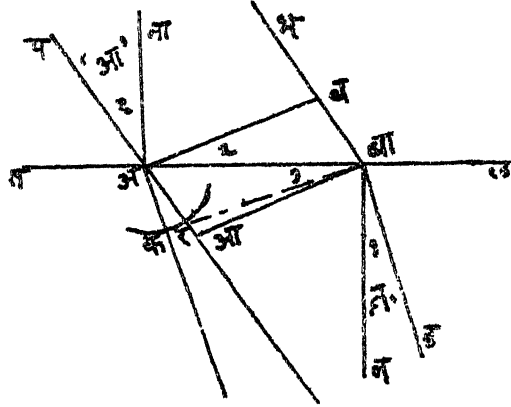
रषोए "अक" और "बाड" निकाले तो ये रेषाएँ किरण गुच्छकी नये घनमाध्यममेंकी दिशाको सूचित करेगी। "बा" बिन्दुपर "तल" पृष्ठको "बान" लम्ब रेषा निकाले तो ∟नवाड यह वक्रीभूत कोण जैसा होगा। ∟नबाड कोण ∟कबाअ कोणके बराबर है यह बात सिद्ध है। क्योंकि ∟कबाड कोण और ∟अबान कोण दोनों समकोण है और ∟कबान कोण इन दोनों कोणोंको सामाइक है। उसको दोनों काटकोणमेंसे निकाल लेवे तो दोनोंके अवशेष कोण ∟कबाअ और ∟नबाड परस्परसें बराबर होंगे। फिर तल पृष्ठके "अ" बिन्दुपर अना लम्बरेषा निकालें तो ∟पअना आघात कोण होगा और वह ∟बअबा कोणके बराबर है यह ऊपरी तोरसे सिद्ध होगा। क्योंकि ∟पअब कोण तथा ∟नाअबा समकोण होनेसे परस्पर बराबर है। इन दोनों कोणमें ∟नाअब कोण सामाइक है। उस कोणको दोनों समकोणमेंसे निकाल लेनेसे शेषभाग यानी ∟पअना कोण ∟बअबा कोणके बराबर यानी आघात कोण होता है। आघात कोणके वास्ते "आ" और वक्रीभूत कोणके लिये "व" यह चिन्ह लिखें तो :

$$\angle\text{आ की ज्ज्या} = \frac{\text{बबा}}{\text{अबा}} \text{ और } \angle\text{व की ज्ज्या} = \frac{\text{अक}}{\text{अबा}}$$

$$\text{या } \frac{\text{ज्ज्या}\angle\text{आ}}{\text{ज्ज्या}\angle\text{व}} = \frac{\;\frac{\text{बबा}}{\text{अबा}}\;}{\frac{\text{अक}}{\text{अबा}}} \text{ अर्थात्} = \frac{\text{बबा}}{\text{अबा}} \times \frac{\text{अबा}}{\text{अक}} \text{ या} = \frac{\text{बबा}}{\text{अक}} = \omega \text{ नित्यपद–}$$

जो माध्यमोंके वेगोंके प्रमाणपर अवलम्बित रहता है इस लिये

$\frac{\text{ज्या}\angle \text{आ}}{\text{ज्या}\angle \text{व}} = \mu$ प्रपद यानी ज्या$\angle$आ$= \mu$ ज्या $\angle$व या ज्याव $= \frac{\text{ज्या}\angle \text{आ}}{\mu}$

यदि प्रकाश किरणें घनमाध्यमसे हवा जैसे विरल माध्यमें जावे तो $\angle$नबाड कोण(अ) आघात कोण होगा और $\angle$ पबना कोण (वा) वक्रीभूत कोण होगा।

$\therefore \frac{\angle \text{अज्या}}{\angle \text{बाज्या}} = \mu$ या $\frac{\angle \text{वाज्या}}{\angle \text{अज्या}} = \frac{1}{\mu}$

इससे यह स्पष्ट होगा कि पहले माध्यमसे दूसरे माध्यमेंका वक्रीभवन दर्शनाक दूसरे मार्गसे पहले मार्गमेंका वक्रीभवन दर्शनांक व्युत्क्रम (रिसिप्रोकल) होता है।

आघात किरण यदि लम्ब रेषामें हो तो आघात कोण शून्य (०) होता है यानी ज्या$\angle$आ भी शून्य होगा और ज्या $\angle$व वक्रीभूत कोण भी शून्य होगा। इसका अर्थ यह होता है कि आघात किरण पृष्ठपर लम्ब रेषामे गिरनेसे उसका वक्रीभवन नहीं होता।

जब प्रकाश किरण विरलमाध्यमसे घनमाध्यममे जाता है तब उसके स्थिर प्रमाणपद (μ) का मूल्य एकसे अधिक होता है ($\mu > 1$); लेकिन ऊपर कहा है कि ज्या $\angle$व= ज्या$\frac{\angle \text{आ}}{\mu}$ यानी वक्रीभूत किरण आघात कोणसे छोटा होता है; या वक्रीभूत किरण घनमाध्यममे लम्ब रेषाके नजदीक जाता है।

यदि स्थिर प्रमाणपद एकसे अधिक हो ($\mu > 1$) और ज्या$\angle$आ एकसे अधिक होना संभव नहीं है इसलिये ज्या$\angle$आ का मूल्य हमेशा एकसे कम होना चाहिये। इसलिये आ कोणके किसी भी अंशोके मूल्यसे मिलता हुआ $\angle$व कोण होता है। यानी यदि आघात कोण हुआ हो तो उसका जोडीदार वक्रीभूत किरण अवश्य होना चाहिये।

यदि प्रकाशकिरण घनमाध्यमसे विरल माध्यममें जाता हो तो स्थिर प्रमाणपद का मूल्य एकसे कम होता है ($\mu < 1$)। इससे वक्रीभूत किरण आघात कोणसे बडा होता है। यानी वक्रीभूत किरण लम्बरेषासे दूर हट जाता है।आघात कोणके ज्या का मूल्य स्थिर प्रमाण-पद से कम होता है। ज्या$\angle$आ $<$ प्रपद अर्थात् $\frac{\text{ज्या}\angle \text{आ}}{\mu} < 1$। यानी ज्या व $\angle$व < 1 एकसे कम होगा इससे वक्रीभूत किरण बडा होता है।

जब ज्या$\angle$आ$= \mu$ तब$\frac{\text{ज्या}\angle \text{आ}}{\mu} = 1$ यानी ज्या$\angle$व=१ अर्थात् वक्रीभूत कोणका मूल्य ९०° अंश होगा। यानी आघात कोणका वक्रीभूत किरण बाहर जाते समय दोनों माध्यमोंसे जाते वक्त दोनों पृष्ठ को समानातर जैसा जायगा। यानी जिस आघात कोणके ज्या का मूल्य पदार्थके वक्रीभवन वावर्तनाकके बराबर होता है या **जिसका वक्रीभूत किरण माध्यामके पृष्ठको समानान्तर होता है उस आघात कोणको चरम संधिकोण या अवधिकोण** (क्रिटिकल ऍंगल) कहते हैं। इस कोणके लिये $\angle$ 8 यह चिन्ह लिखा है।

यदि ज्या ⎣आ > μ यानी आघात कोणकी (आ) ज्याका मूल्य स्थिर प्रमाणपद (μ) से ज्यादह होगा—$\frac{\text{ज्या}\lfloor\text{आ} > 1}{\text{व}}$ और ज्या ⎣व एकसे अधिक कभी नहीं होगा और वक्रीभूत किरणका मूल्य बराबर नहीं हो सकता और इससे आघात कोण यदि चरमकोणसे बडा हो तो इस घनमाध्यममेंसे किरण बाहर नहीं जाता बल्कि परावर्तनके विषयाँनुसार पूरी तौरसे उस माध्यमके पृष्ठके भीतरी ओरको परावृत्त होता है (चि. नं. २२५)।

इस घनमार्गमेंके किरणोंके सपूर्ण आन्तर परावर्तनसे किसी भी पदार्थका वक्रीभवन-आवर्तनांक जानना संभव होता है। प्रपद $\mu = \frac{1}{\text{ज्या}}$ ४

उदाहरणार्थ अब किरण पानीके कड पृष्ठपर 'ब' स्थानपर ६०° अंशका कोणसे गिरा है और उसका बलं लम्ब रेषासे ⎣अवलं आघात कोण ६०° अंशका हुआ है। इस आघात कोणसे मिलता वक्रीभूत कोण ज्या ⎣आ=प्रपद ज्या ⎣व इस सूत्रसे निकालें तो उसका मूल्य ४०.३७° होगा। यानी अब किरण की दिशा "बला" लम्बसे इस मूल्यका कोण करके "बआ" जैसी होगी। यदि आघात कोण ९०° का हो तो अब किरण कड पृष्ठको स्पर्श करके समानांतर जायगा और इस आघात कोणके मिलते वक्रीभूत कोण का मूल्य ४८.४५° इतना होगा और किरणकी दिशा "बम" जैसी होगी इसके विपरीत पानी-मेंसे बप किरण ४८.४५° अंशोका कोण करके बाहर जायगा तो वह पानीके पृष्ठको समानातर जैसा जायगा। यानी ⎣पवलं कोण संधिकोण होगा।
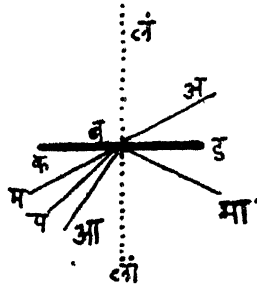
चित्र नं. २२५

किसी ही पारदर्शक पदार्थका संधिकोण ४ .˙., ज्या ⎣आ= μ ज्या ⎣व या $\frac{\text{ज्या}\lfloor\text{आ}}{\mu}$ =ज्या⎣व, इस सूत्रसे जान सकते है। सधिकोणका मूल्य जिनके लिये आघात कोण ९०° का होना चाहिये, ९०° कोण की ज्या १ होती है यानी ऊपरका सूत्र $\mu = \frac{1}{\text{ज्या}}$⎣४।

जिस कांचका वक्रीभवन दर्शनांक १.५ होता है उसके संधिकोणका मूल्य ४१.४८° अंश इतना होता है।

आंतर परावर्त्तन

जब प्रकाशकिरण 'आब' दिशामें घनमाध्यमसे विरल भाग में जाने को निकलता है तब वह किरण बाहर निकलने के बदले घनमाध्यमके ही भीतर बमा दिशामें पूर्णतया परावर्तित होगा। और ⎣आवंला कोण आघात और ⎣मावलं कोण परावृत्त होंगे और दोनों बराबर होंगे। यानी उस घनमार्गमें यदि आघात कोण का प्रमाण ४८.४५° अंशोसे ज्यादा हो तो उस किरण का वक्रीभवन होता नही बल्कि वह भीतरीको परावर्तित होता है। इस आन्तर परावर्त्तनसे किसी ही पदार्थका वक्रीभवन दर्शांकांक जानना सहल होता है। इस लिये $\frac{1}{\mu} = \frac{1}{\text{ज्या}}$ ४ इस सूत्रका उपयोग करते हैं।

किसी भी कोणका नापन दो तरहसे करते है—एक **षष्ट्यांशकी** तरह और **दुसरी वर्तुल नापन की तरह** ।

षष्ट्यांशके नापन की तरहमें कोणका मूल्य कोणकी अंशकी संख्यासे ठैराया जाता है । कागजपर अ ब आखणीको रखकर "अ" इस खूटीके चारो ओरको आस पर पूर्णतया

चित्र नं. २२६
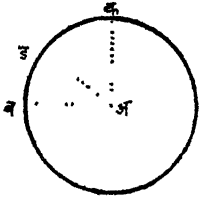
घुमाकर वर्तुळ को खींचा (निकाल) जाय तो उस आखणीसे ३६० अंशोंका कोण किया ऐसा कह सकते है । यदि आखणीको वर्तुलके चौथे यानी वर्तुलके एक पाद इतनी घुमाई जाय तो आखणीसे ∟९०° का कोण किया जायगा । यदि आखणी एक पादके नब्बे अंश जितनी घुमाई जाय तो आखणीसे एक अंशका कोण किया ऐसा समझना चाहिये । एक अंशका कोण इस नापनकी तरहका एकं मानते हैं, हरएक अंशके साठ भाग किये है, जिनको मिनीट कहते हैं, और एक मिनीट के साठ भाग किये हैं जिनको सेकंद कहते है ।

वर्तुल नापनकी तरह—

वर्तुल की त्रिज्याकी लम्बाई जितनी लम्बाई के कंसने वर्तुलके केन्द्रसे किये हुए कोणके मूल्य को **रेडियन** कहते है और यही वर्तुळ नापनकी तरहका एकं होता है । इस कोणका मूल्य ५७·२९५ अंश होते है । रेडियनके एक शतांश(एक बटे सौ) भागको सेन्ट्राडीन कहते हैं । यानी एक सेन्ट्राडीन में ·६° अंश होते है ।

जिस वर्तुल की त्रिज्या रे इतनी है उसके परिधिका नाप $\underline{२रे \times \pi}$ (पाय $= \frac{२२}{७}$) इतना होता है । और इस परिधि से केन्द्रके पास २ π इतना रेडियनो का समावेश होता है ।

रे : १ (युनिट) : : २ रे π : क्ष; या रे क्ष = २ रे π अर्थात् $क्ष = \frac{२रेπ}{रे}$ या क्ष=२π

षष्ठयाश तरहके अनुसार केंद्रसे पास ३६०" होते हैं । या २ π = ३६०° । π (पाय) का मूल्य $\frac{२२}{७}$ इतना माना गया है।

$$\therefore २ \times \frac{२२}{७} = ३६०;\ या\ \frac{७ \times ३६०}{२२ \times २} = \frac{७ \times ९०}{११} = ५७·२७२$$

कोणफळ (फक्शन आफ ऍंगल)

अ ब क इस समकोण त्रिकोण में ∟ब कोणको समकोण समझके ∟अ कोणके कुछ फलोंका वर्णन नीचे दिया है । यानी ∟अ कोण की सामनेकी रेषा ब क, और ∟ब समकोण का कर्ण यानी समकोण के सामनेकी रेषा अ क इन दोनों में का प्रमाणपद $\frac{बक}{अक}$ को ∟**अ** कोण की **ज्ज्या** समझते है (साइन आफ ऍंगल ∟अ) । ∟अ कोण की बाजूकी रेषा

अ ब और ∟ब समकोण का कर्ण अ क इन दोनों रेषाओंके प्रमाणपद को $\frac{\text{अ ब}}{\text{अ क}}$ को ∟अ कोण की कोटि ज्ज्या (कोसाईन आफ ॲंगल ∟अ) कहते हैं चि. नं. २२७।

चित्र नं. २२७ चित्र नं. २२८
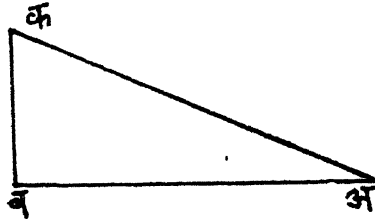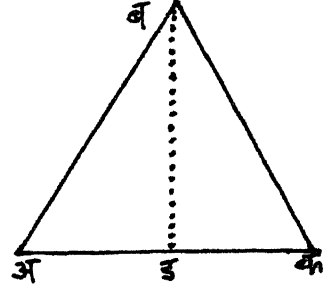
समकोणके दोनों रेषाओंके प्रमाणपदको $\frac{\text{ब क}}{\text{अ क}}$, ∟अ कोण की स्पर्शज्ज्या कहते हैं (टयान्जन्ट आफ ऍंगल ∟ अ)।

इन तीन फलों के सिवाय ∟अ कोणके और तीन फल प्रचारमे हैं।

∟ अ कोणकी व्युत्क्रमज्ज्या (सीक्यान्ट) ∟ अ = $\frac{\text{अ क (कर्ण)}}{\text{अ ब(अकोणकी सामनेकी रेषा)}}$

∟ अ कोण की व्युत्क्रम कोटिज्ज्या $\frac{\text{अ क}}{\text{अ ब}}$ (कोसिक्यान्ट आफ∟अ)= $\frac{\text{कर्ण}}{\text{बाजूकी रेषा}}$

∟अ कोण की कोस्पर्श ज्ज्या $\frac{\text{अ ब}}{\text{ब क}}\left(\frac{\text{कोटिज्ज्या}}{\text{ज्ज्या}}\right)$ (कोटयान्जन्ट आफ ∟अ)

लेकिन∟अ कोणकी ज्ज्या, कोटिज्ज्या,और स्पर्शज्ज्या इन फलोंका इस्तेमाल प्रचारमें ज्यादह होता है।

ज्ज्या, कोटिज्ज्या और स्पर्शज्ज्या इनका संख्यात्मक मूल्य मापनः—

उपरके चित्रके अ ब क समकोण त्रिकोणका अ. क. बाजूका मि. मि. में नापन लेके उसकी ब क बाजूके मि. मि. के नापनको भाग देनेसे जो अपूर्णांक पाया जाता है वह ∟अ कोणके ज्ज्याका संख्यात्मक मूल्य होगा।इसी तौरसे कोटिज्ज्या और स्पर्शज्ज्याका संख्यात्मक मूल्य जान सकते हैं चि. २८८।

अ ब क एक समभुज त्रिकोण है। इसके हरएक कोणका मूल्य ६०° है। इसके ∟ब कोणके बड इस सरल रेषासे दो सम भाग किये जाय तो अ क बाजूके अ ड और क ड भाग एक दूसरेसे मिलते हो जावेंगे। ∟अ ब क कोण का मूल्य ६०° होनेसे

∟ अ ब ड कोण का मूल्य ∟ अ ब क कोणका आधा भाग यानी ३०° अंश इतना होगा

और अ ड रेषा अ क रेषाके आधे मूल्य इतनी होगी। यानी अक, अब और बक ये सब बाजुएँ अ ड से दुगनी होती हैं। यानी अडः अब : : १:२।

$(बड)^2=(अब)^2-(अड)^2$(थू÷४७) $\therefore (बड)^2=४-१$ या बड$=\sqrt{३}$, यानी $\angle ६०^\circ$ ज्या$=\frac{\sqrt{३}}{२}$

कोटिज्या (६०°) $=\frac{१}{२}$ और स्पर्शज्या (६०°) $=\frac{\sqrt{३}}{१}$

समतलसे प्रकाशकिरणोंका वक्रीभवन आवर्तन

यदि आघात कोणका (संस्पर्शकोण) मूल्य और माध्यमका (मार्ग) आवर्तनांक-(वक्रीभवन गुणक) मालूम हो तो भूमितीय रचनासे समतलसे वक्रीभूत हुए किरणोंकी दिशा जान सकते हैं। ऐसा समझिये कि ऊपरका विरल माध्यमका आवर्तनाक १ है और नीचेका घनमाध्यम का दर्शकांक μ है, और इन दोनोंके बीचके अब समतलके ओ बिन्दुपर आओ आघात किरण है। ऐसा समझो आओ किरण का ओक भाग १ के बराबर है और आओ भाग μ के बराबर है। ओ बिन्दुको केन्द्र समझकर आओ त्रिज्यासे वर्तुलाकार कंस आई निकालो। फिर क बिन्दुसे नओना लंब रेषाको समानान्तर जैसी कई रेषा निकालो जो कंस को ई बिन्दुपर मिलती है। ई बिन्दुको ओ बिन्दुसे ईओ रेषासे जोडकर ईओको ग तब बढाओ। ओग वक्रीभूत किरण और $\angle$ गओना वक्रीभूत कोण होगा जो ईओन कोणके बराबर होता है। नओना लंब रेषापर ईम, आफ, कप लंब रेषा निकालो।
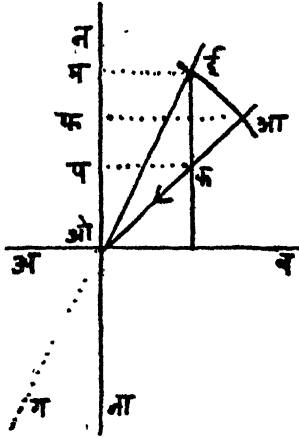
चित्र नं. २२९

ज्या $\angle$आ (यानी आघात कोण $\angle$आ ओन), या ज्या $\angle$ओ=आफ / आओ, और ज्या $\angle$ब (यानी वक्रीभूत कोण $\angle$ग ओ ना) या ज्या $\angle$ब = ई म / ओ ई। क्योंकि $\angle$ गओना = $\angle$ईओन; आओ ईओ के बराबर है तथा त्रिकोण आओफ और त्रिकोण इओम पारस्परीकसे सम जैसे होनेसे

$$\frac{\text{ज्या}\angle\text{ओ}}{\text{ज्या}\angle\text{ब}}=\frac{\text{आफ}}{\text{ईम}}=\frac{\text{आफ}}{\text{कप}}=\frac{\text{ओआ}}{\text{ओक}}=\mu$$

इसी वजहसे $\angle$गओना वक्रीभूत कोण है और ओग आओका वक्रीभूत किरण है।

समतल पार्श्वोंसे मर्यादित माध्यमोंसे प्रकाशका वक्रीभवनः—

जब समानान्तर पार्श्वोंके समतलमेंसे प्रकाश विरल माध्यमसे घन माध्यममेंसे तिरछी पार जाती है तब उसका वक्रीभवन होता है, और पार जानेमें उसकी दिशा पहले की दिशाको समानान्तर रहती है। लेकिन त्रिपार्श्व जैसे माध्यममेसे उसकी दिशा तिरछी होती है।

केवल और सापेक्ष वक्रीभवनः—

जब कोई भी प्रकाशकिरण, जिनकी घनता भिन्न भिन्न है ऐसे दो या अधिक माध्यमोंपर तिरछी गिरती है तब सब माध्यमोंके पृष्ठोंपर उस किरण का वक्रीभवन होता है। जब

वह आखरी माध्यममेंसे बाहर जाती है तब उस किरण की दिशा मूल दिशाको समानान्तर जैसी होगी। यानी किरणका सिर्फ स्थान बदलता है; उसका च्यवन नहीं होता।

ऐसा समझो कि त.प.य(चित्र नं.३२०)ये तीन माध्यम एक के नीचे दूसरा और दूसरे के नीचे तीसरा इस तरहसे समानान्तर रचे है कि य माध्यमका आर्वतनांक प माध्यमसे ज्यादह है और प

चित्र नं. २३०
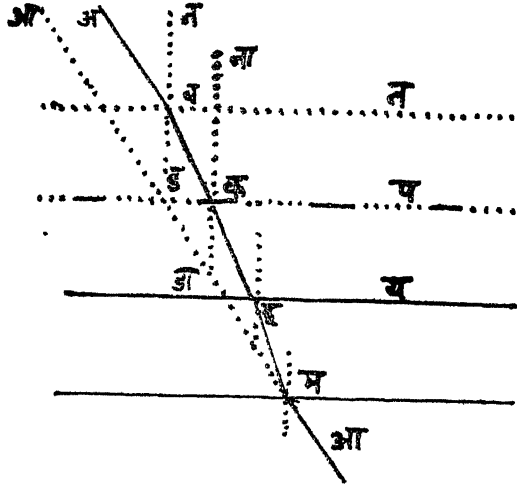
माध्यमका वक्रीभवन अवर्तनांक त माध्यम के वक्रीभवन आवर्तनांक से ज्यादह है। और अब किरण ऊपरके त माध्यम के पृष्ठपर''ब'' बिन्दुपर तिरछी जैसा गिरी है। त पृष्ठ को ⌊ अबन आघात कोण होता है इसका मिलता वक्रीभूत कोण ⌊डबक होगा। ⌊डबक कोण ⌊बकना कोण के बराबर है। ⌊बकना कोण दूसरे माध्यम के प पृष्ठ को आघात कोण होगा इसका मिलता वक्रीभूत कोण ⌊डाकई है। इसी रीतिसे एक का वक्रीभूत कोण दूसरीका आघात कोण होगा। आखिरका वक्रीभूत कोण यानी उन्मग्न कोण हवा में बाहर आनेसे पहले आघात कोण के बराबर होता है यह सिद्ध कर सकते हैं! यानी मआ उन्मग्न किरण ओ विन्दुसे निकला है ऐसा मालूम होगा। वक्रीभवन आवर्तनांक का नापन **सूक्ष्म दर्शक यंत्रकी** सहायतासे या **आन्तर परावर्तनके कोणसे** और **त्रिकोणाकार कांचकी** सहायतासे जान सकते हैं।

हवाका वक्रीभवन आवर्तनांक एक है ऐसा समझकर कुछ पारदर्शक पदार्थोंके वक्रीभवन आवर्तनांक नीचे दिये हैं।

पारदर्शक पदार्थ	वक्रीभवन आवर्तनांक
हीरा	२.४३
कांच जिसमें शीशा होता है	१.८
कांच सादा	१.५७—१.६
क्राऊन ग्लास कांच	१.५२
पानी (जल)	१.३३६
चाक्षुष जल	१.३३७
स्फटिकद्रव पिंड	१.३३९
स्फटिक मणि	१.३३७
कानडा बालसम	१.५४

त्रिपार्श्व–क्रकचायतं–त्रिकोणाकार कांच–प्रिझमसे होनेवाला वक्रीभवन

समानान्तर पार्श्वसे मर्यादित कांचमेंसे कोई आघातकिरण पार जाती है तब उसकी उन्मग्न किरण समानान्तर होती है यानी उसकी दिशा बदलती नहीं ऊपर कहा है। यदि ये पार्श्व समानान्तर न हों तो किरणकी दिशामें फरक होता है।

तीन सरल पार्श्वसे मर्यादित कांचको त्रिपार्श्व–त्रिकोणाकार काच–क्रकचायतं कहते हैं। **अबक** यह एक ऐसे कांचका टुकडा है। **अब** और **अक** उसकी दो पार्श्व है और उन दोनों पार्श्वसे बने हुए ⌊ब **अक** कोणको उसका शीर्षकोण "क्ष" या वक्रीभवन करनेवाला कोण कहते है। शीर्षकोणके सामनेकी **बक** पार्श्वको त्रिपार्श्वका तल या नींव कहते है। इस कांचमें **अब** पार्श्वके **घ** बिन्दुपर **ङघ** किरण आघात करके इसमे घुसती है तब उसका वक्रीभवन होकर वह **नघम** लंब रेषाके नजदीक जाकर "**घफ**" दिशामें आगे जाती है। फिर **अक** पार्श्वके **फ** बिन्दुसे विरल पार्श्वमें बाहर जाती है तब फिरसे वक्रीभूत हो जाती है। यह मार्ग विरल होनेसे **नाफम** लंब रेषासे ⌊**नाफग** उन्मग्न कोण बनाकर **फग** दिशामे बाहर आती है। इससे यह साफ होता है कि **ङघ** किरण की दिशा त्रिपार्श्व मे घुसते ही तथा त्रिपार्श्वसे बाहर जाते ही त्रिपार्श्वके तल की ओरको जाती है यानी किरणपथ **ङ घ फ ग** जैसा होता है। यानी **ङघय** किरण ⌊ **हयफ** कोणमेंसे घूम गयी है। इस ⌊**हयफ** कोणको **च्यवन कोण** कहते है। इस कोण से **ङघ** किरण त्रिपार्श्वमेसे बाहर जानेके समय कितनी घुमती है इसका नाप हो सकता है।
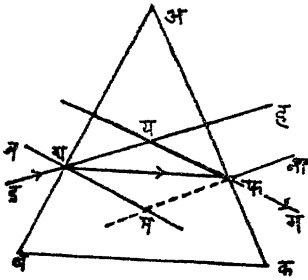
चित्र नं. २३१

यदि कोई मनुष्य ङ स्थान परसे **ग** पदार्थको **अबक** त्रिपार्श्वमेसे जिसका शीर्ष **कोण** ऊपरकी ओरको और तल नीचेकी ओरको पकडकर देखे तो उसको **ग** पदार्थ **ह** स्थानपर है ऐसा मालूम होगा। यानी किरण त्रिपार्श्वके तलकी ओरको घूम गयी जैसा होगा लेकिन पदार्थकी प्रतिमा शीर्षकोणके तरफ गयी है ऐसा भासमान होगा।

त्रिपार्श्वसे होनेवाला च्यवन–विचलन

प्रकाशसंबंधीकी सम घनताके भिन्न भिन्न त्रिपार्श्वोंके, उसके शीर्ष कोणके आकार के अनुसार प्रकाशके च्यवन मे फरक होता जाता है। त्रिपार्श्वका शीर्षकोण जितना बडा होगा उतना च्यवन ज्यादह बडा होगा।

⌊ ङघन(आघात कोण) = ⌊मयय कोण; तथा ⌊ गफना(उन्मग्न)कोण = ⌊मफय कोण;

⌊ हयफ च्यवन कोण = ⌊यघफ कोण + ⌊ यफघ कोण;

लेकिन ⌊यघफ कोण = ⌊यघम − ⌊मघफ कोण। और ⌊ यफघ = ⌊यफम − ⌊मफघ;

∴ ⌊ हयफ कोण = (⌊ यघम − ⌊मघफ कोण) + (⌊यफम − ⌊मफघ)

प्रकाशके कुल च्यवन का नापन निम्न लिखित जैसा हो सकता है।

यदि चित्र न. २३१ में **डघफग** किरण **अबक** त्रिकोणमें जिसका शीर्षकोण "क्ष" है, घुसता है। उसके दोनो समतल परके (अव, अक) आघात कोण ∟डघन, ∟घफम है और वक्रीभवनकोण ∟फघम, ∟गफना है। ∟डघन के लिये **आ**, ∟घफम के लिये **अ**, ∟फघम के लिये **व** और ∟गफना के लिये **वा** और ∟हयफ के लिये **च्य** इन अक्षरोंका इस्तेमाल किया है।

$\frac{\text{ज्या}\ \llcorner \text{आ}}{\text{ज्या}\ \llcorner \text{व}}$ = ω, या ज्या ∟आ= ω ज्या ∟ व; इस **स्नेलनके** सूत्रके नियमसे इस त्रिपार्श्वमे

ज्या ∟आ = ω ज्या ∟ व = ω ज्या ∟ अ

लेकिन ∟अघफ = ९०° – ∟व (फघम) और ∟अफघ = ९०° – ∟अ ∟घफम

यानी क्ष शीर्षकोण + (९०°–व) + (९०°–अ) = १८०°,

या क्ष=१८०°–९०° घ + व –९०°

इसी वजहसे क्ष = अ + व (दुय्यम आघात कोण और वक्रीभूत कोण)

अब समतलपर होनेवाले च्यवन का नापन (आ–व) सूत्रसे और अक परका नापन (वा –अ) सूत्रसे कर सकते है।

यानी कुल च्यवन **च्य** = (आ–व) + (वा – अ)

= आ + वा – (व + अ)

यानी **च्य** = आ + वा – क्ष

इससे साफ ध्यानमें आ जायेगाकि कुलच्यवन आघात और उन्मग्न कोण इन दोनोंके जोडमेंसे त्रिपार्श्वके क्ष कोण बाद करकै बाकीके बराबर होतो है।

समगोलीय पार्श्वसे मर्यादित माध्यममेंसे वक्रीभवन

यहां तक सरल माध्यमोंके वक्रीभवन का विचार किया। सरल माध्यमोंके वक्रीभवनमे आघातकोणकी ज्या और वक्रीभूत कोणकी ज्या इन दोनोमें का प्रमाणपद कायम रूपका होता है ये ऊपर दिया है। अब समगोलीय मध्यमोंके होनेवाले वक्रीभवनका विचार करेंगे।

हरएक वृत्ताकार पृष्ठ बिलकुल छोटे छोटे सरल पृष्ठका बना हुआ होता है। मसलन छोटे तलावके पृष्ठभागको देखनेंसे वह बिलकुल सरल भासमान होता है। लेकिन यह बात वस्तुस्थिति के अनुरूप नहीं है। क्योंकि तलाव यह पृथ्वीके पृष्ठभागका छोटासा भाग है। पृथ्वी गोल होनेंसे उसका पृष्ठभाग **गोलाकार** (वृत्ताकार) होता है। इससे तलावके पृष्ठभागमें वक्रता होना स्वाभाविक है। लेकिन तलावके पृष्ठभागकी पृथ्वीके पृष्ठभागसे तुलना करनेसे वह बिलकुल ही सूक्ष्म जैसा मालुम होगा। इस वजहसे तलावके पृष्ठभागको सरल माननेमें कुछ हरज नहीं। और इसी कारणंसे गोल (वर्तुल–वृत्त) के बिलकुल छोटे भागके बिन्दुको सरल माननेमें कुछ हरज नहीं।

बहिर्वृत्त गोल शीशेसे होनेवाला वक्रीभवन

ऐसा समझो कि तबल वक्रीभवन करनेवाले गोलीय शीशे का एक छोटासा भाग है। ब उस भागका मध्य और "ड" उसकी वक्रता का केन्द्र है और अ ब ड उसकी अक्षरेषा है। त ब ल पृष्ठपर प न किरण हवामेंसे उसके "न" बिन्दुपर उसके अक्षको समानान्तर जैसी आघात करती है।

चित्र नं. २३२
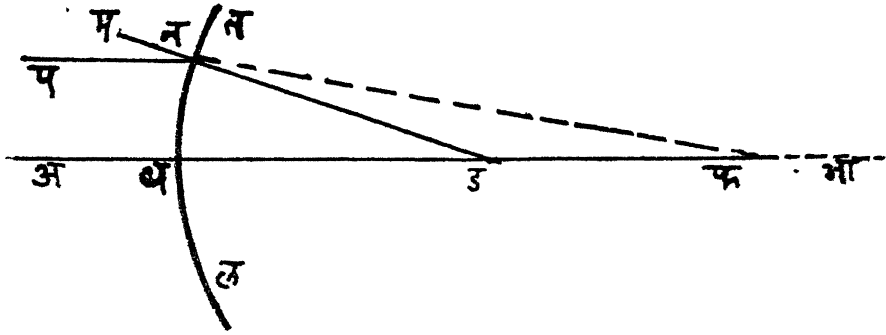
न बिन्दु बिलकुल सूक्ष्म जैसा समझनेमे कुछ हरज नहीं। न बिन्दुसे गोलके ड केन्द्र तक सरल रेषा निकालनेसे वह रेषा न बिन्दुको लम्ब रेषा जैसी होगी। उस रेषाको ड न म ऐसी बढानेसे ⌊प न म कोण आघात कोण होगा। कांचकी घनता हवासे ज्यादह होती है। जिस वजहसे प न किरण कांचके पार जानेसे वक्रीभूत होगी। और वह मनड लंबरेषाके नजदीक जायगी और फिर अबड इस अक्षरेषाको 'फ' बिन्दुपर मिल जायगी। यानी ⌊फनड वक्रीभूत कोण होगा। यानी कोण सूत्रके अनुसार ज्ज्या ⌊प न म = μ ज्ज्या ⌊फ न ड (μ कांचका वक्रीभवन आवर्तनांक है।)

यानी आघात कोण और उसकी ज्ज्या इन दोनोंका गुणाकार वकीभूत कोण, उसकी ज्ज्या और वक्रीभवन आवृर्तनांक इन तीनोंके गुणाकार के बराबर होता है।

ये आघात और वक्रीभूत कोण लघुत्तम यानी कमसे कम १०° से भी छोटे हों तो कोणका षष्ठ्यांशनापन या वर्तुल नापनका मूल्य उसकी ज्ज्याके बदले लिख सकते हैं।

आघात कोणके वास्ते "आ" हरूफ और वक्रीभूत कोणके वास्ते "व" हरूफ लिखें तो ज्ज्या ⌊प न म (आघात कोण) = μ ज्या ⌊फ न ड (वक्री-कोण) यह सूत्र निम्न जैसा यानी

ज्ज्या ⌊आ = μ ज्ज्या ⌊व लिख सकते है।

इस समीकरणकी इन दोनो बाजुओंको ज्ज्यासे भाग देवें तो आ = μ व ऐसा होता है। **यानी आघात कोणका मूल्य वक्रीभूत कोण और वक्रीभवन आवर्तनांक इन दोनोंके गुणाकारके बराबर होता है।**

आघात कोण $\angle$ प. न. म. = $\angle$ न. ड. ब.; क्योंकि **पन** और **अ ड आ** इन दो समनान्तर रेषाओंको **म न ड** रेषा मिलनेसे उनके अमने सामनेके $\angle$ **प न म** और $\angle$ **न ड ब** परस्पर बराबर है। और **न ब ड** त्रिकोणकी **ब ड** बाजूको **ड फ आ त क** बढानेसे

न ड ब कोण = $\angle$ **न फ ड** + $\angle$ **ड न फ** (वक्रीभूत कोण); या यही सूत्र $\angle$ न ड ब − $\angle$ ड न फ = न फ ड ऐसा या $\angle$ नफड = $\angle$ नडब − $\angle$ डनफ लिख सकते हैं।

$\angle$ **न ड ब** कोण आघात कोण के बराबर और $\angle$ **ड न फ** कोण वक्रीभूत कोणके बराबर है। उनके बदले आघात और वक्रीभूत कोण के मूल्य **आ** और **व** अनुक्रमसे लिखनेसे $\angle$ न फ ड = आ − व

ड न फ इस त्रिकोणमें $\dfrac{\text{ज्या} \angle \text{ड न फ}}{\text{ज्या} \angle \text{न फ ड}} = \dfrac{\text{ज्या. व}}{\text{ज्या(आ-व)}}$ या $\dfrac{\text{ड. फ}}{\text{न. ड}} = \dfrac{\text{ड, फ}}{\text{रे}}$

(क्योंकि नड (रे) बांक की त्रिज्या है।)

इस समय लघुत्तम कोण का विचार करते है और ऊपर लिखे हुए प्रमाणमे $\dfrac{\text{ज्या व}}{\text{ज्या(आ–व)}}$ के बदले सिर्फ $\dfrac{\text{व}}{\text{आ-व}}$ लिखे तो $\dfrac{\text{डफ}}{\text{रे}} = \dfrac{\text{व}}{\text{आ-व}}$ ऐसा लिख सकते है। और आ= μ व

ऊपरकी आ-व संख्यामें आ-के बदले μ व लिखे तो $\dfrac{\text{ड फ}}{\text{रे}} = \dfrac{\text{व}}{\mu\,\text{व-व}}$ या = $\dfrac{\text{व}}{\text{व}(\mu - 1)} =$

$\dfrac{1}{\mu - 1}$; $\dfrac{\text{डफ}}{\text{रे}} = \dfrac{1}{\mu - 1}$ या = ड फ = $\dfrac{\text{रे}}{\mu - 1}$।

चित्र. नं. २३२ से ख्यालमें आ जायगा कि डफ=बफ−बड; और बड त्रिज्याके बदल रे अक्षर लिया है तो डफ=बफ−रे. $\therefore$ बफ−रे= $\dfrac{\text{रे}}{\mu - 1}$: या बफ= $\dfrac{\text{रे}}{\mu - 1}$ + रे, या बफ=

$\dfrac{\text{रे} + \mu\,\text{रे} - \text{रे}}{\mu - 1}$ या= $\dfrac{\mu\,\text{रे}}{\mu - 1}$

लेकिन **पन** किरण **अ ब ड आ** अक्षरेषाको समानान्तर जैसी है और वह **त ब ल** इस पृष्टसे वक्रीभूत होकर **फ** बिन्दुमें मिलती है। इसलिये तबल इस बहिर्वृत शीशेकी **ब फ** यह पश्चात मुख्य केन्द्रिय लम्बाई होती है। $\therefore$ पश्चात मुख्य केन्द्रिय लम्बाई = $\dfrac{\mu\,\text{रे}}{\mu - 1}$

यानी गोलीय शीशेके वक्रीभवन आवर्तनांक और त्रिज्या इनके गुणाकारको वक्रीभवन-आवर्तनांकमेंसें एक बाद करके शेष संख्यासे भाग देनेसे इस शीशेकी पश्चात मुख्यकेन्द्रिय लम्बाई पाई जाती है।

समझो की कांचका वक्रीभवनदर्शकांक १.५ है और गोलीय शीशेकी त्रिज्या २० मि. मि. है तो उसकी पश्चात मुख्य केन्द्रिय लम्बाई इस सूत्रसे मिल जायगी : बफ= $\dfrac{\mu\,\text{रे}}{\mu - 1}$ या

$\dfrac{\frac{3}{2} \times 20}{\frac{3}{2} - 1} = \dfrac{30}{\frac{1}{2}} = 60$ मि. मि.

अन्तर्वृत्त गोल शीशे से वक्रीभवनः—

चित्र नं. २३३ में **तवल** यह वक्रीभवन करनेवाले अन्तर्वृत्त गोल शीषेका भाग है। **ब** उसका ध्रुव या मध्य और **ड** उसकी **बांक** केन्द्र है; और **अबडआ** उसका अक्ष है। **पन** किरण **न** बिन्दुपर **अबडआ** अक्षका हवामेंसे समानान्तर गिरी है। इस समय **पन** किरण वक्रीभूत होकर **डनम** लम्ब रेषासे दूर हट जाकर **नफा** दिशामें **अबडआ** इस अक्षरेषाको **फा** बिन्दुपर मिलती है। ∠ **पनड** यह. आघात कोण और ∠ **मनफा**

चित्र नं. २३३
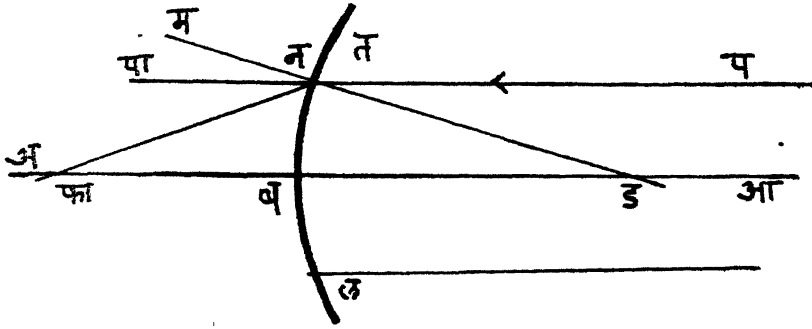
वक्रीभूत कोण होते हैं। **फा** यह पूर्व मुख्य केन्द्र और **बफा** मुख्य केन्द्रिय लम्बाई **होगी। डन** और **डब** वक्रताकी त्रिज्ज्या होती है। आघातकोण ∠ **पनड**के वास्ते **आ** और वक्रीभूत ∠ **मनफा** कोणके वास्ते **व** हरूफ लिये हैं। **पन** रेषाको **पा** तक बढावे तो ∠ **पनड** आघात कोण=∠ **नडफा** ।क्योंकि **पन** और **अबडआ** इन समानान्तर रेषाओंको **मनड** रेषा मिलती **है।** इसालिये ∠ **पनड** और ∠ **नडफा** ये पर्याय कोण परस्परसे बराबर होते हैं। **यानी** अक्षरेषासे समानान्तर जैसे किरणका आघात कोण और आघात बिन्दुमेंसे जानेवाली त्रिज्ज्यासे अक्षरेषासे बना हुआ कोण परस्पर बराबर होते हैं। ∠ **नडफा** के बदले **आ** हरूफ लेनेमें **कुछ** हरज नहीं । और ∠ **मनपा** = ∠ **पनड** और ∠ **नफाड** = ∠ **पानफा** । लेकिन ∠ **पानफा** = ∠ **फानम—मनफा**=व—आ यानी ∠ **नफाड**=व—आ ।

यानी फानड त्रिकोणमें. ∠ नडफा (आघात कोणके बराबर है)=आ

और ∠ नफाड=व—आ; और नड रेषा त्रिज्ज्या है $\therefore \frac{\text{फान}}{\text{नड}} = \frac{\text{फान}}{\text{रे}}$

$$\therefore \frac{\text{फान}}{\text{रे}} = \frac{\text{ज्ज्या आ}}{\text{ज्ज्या(व-आ)}} = \frac{\text{आ}}{\text{व-आ}} = \frac{\text{आ}}{\mu\,\text{आ-आ}} \text{ या } \frac{\text{आ}}{\text{आ}\,(\mu-1)} \therefore = \frac{1}{\mu-1}$$

$$\text{यानी } \frac{\text{फान}}{\text{रे}} = \frac{1}{\mu-1}; \text{ या फान} = \frac{\text{रे}}{\mu-1} ।$$

यदि ∠ बफान कोण लघुत्तम होवे तो फान की लम्बाई साधारणतया बफा जितनी होगी। लेकिन **पन** किरण वक्रीभवन होनेके पहले अबडआ अक्षको समानान्तर थी।

इसलिये फा बिन्दु तबल भागके पुरो भागका मुख्य केन्द्र होगा और "बफा" पुरो मुख्य केन्द्रकी लम्बाई होगी ! फान के बदल बफा लेवें तो बफा $= \frac{रे}{\mu - १}$।

यानी आन्तर्वृत्त गोलीय शीशेकी त्रिज्याको वक्रीभवन आवर्तनांकमेंसे एक घटा करके बाकी से भाग देवें तो पूरो-पूर्व मुख्यकेन्द्रीय लम्बाईका मूल्य पाया जाता है। रे (त्रिज्या) का नाप २० मि. मि. हो और वक्रीभवन आवर्तनांक १·५ हो तो उपरका समीकरण

बफा $= \frac{२०}{\frac{३}{२}-१} = \frac{२०}{\frac{१}{२}} = ४०$ मि. मि. उत्तर होगा।

पश्चात् मुख्य केन्द्रीय लम्बाई और पूर्व मुख्य केन्द्रकी लम्बाई से वक्रताकी त्रिज्याका मूल्य जाननेके लिये नीचेके सूत्रका उपयोग होता है। चित्र नं. २३३ यह ख्यालमें आ जायगा कि बड (त्रिज्या) = डफा-बफा, पश्चात मुख्य केन्द्रीय लम्बाई बड के बदले "फो" और पूर्व मुख्य केन्द्रकी लंबाई "बफा" के बदले फौ अक्षर लिखें तो

फो$=\frac{\mu\ रे}{\mu - १}$: और फौ$=\frac{रे}{\mu - १}$: यानी फो-फौ$= \frac{\mu\ रे}{\mu - १} - \frac{रे}{\mu - १} = \frac{\mu\ रे - रे}{\mu - १} = \frac{रे(\mu - १)}{\mu - १} = रे$

या ६० − ४० = २० (त्रिज्या)

यानी पश्चात मुख्य केन्द्रीय लम्बाईमें से पूर्व मुख्य केन्द्रकी लम्बाई को बाद करनेसे उसके त्रिज्याका मूल्य जाना जाता है।

पश्चात मुख्य केन्द्रीय लम्बाईको पूर्व मुख्य केन्द्रकी लम्बाईसे भाग देवें तो वक्रीभवन आवर्तनांक μ का मूल्य मालूम होता है।

$$\frac{फो}{फौ} = \frac{\frac{\mu\ रे}{\mu - १}}{\frac{रे}{\mu - १}} \text{ या } \frac{\mu\ रे}{\mu - १} \times \frac{\mu - १}{रे} \therefore \frac{फो}{फौ} = \mu$$

$\frac{६०}{४०} = \frac{३}{२} = १·५$ काचका वक्रीभवन आवर्तनाक।

एक बात ख्यालमें रखना कि **आघात बिन्दु अक्षरेषासे जितना ज्याहद दूर होगा उसी प्रमाणमें वक्रीभूत किरण वक्रीभवन माध्यमकी अक्षरेषाको नजदीक** मिलेगी। जो किरण अक्षके बिलकुल नजदीक होती है वही मुख्य केन्द्रको मिलती हैं। दूसरी यह बात ख्यालमें रखें कि ये सब किरणे वक्रीभवनके पश्चात परस्परको क्ष, क्षा जैसे बिन्दुओंमेंसे काटके जाती है। इन बिन्दुओंको जोडनेवाली रेषा वृत्तके भाग जैसी टेढी होती है। इस टेढी रेषाको **परावृत्त प्रभावक्र** (कॉस्टीक कर्व्ह चि. नं. २५८ देखिये) कहते हैं। इसीको गोलीय किरण विचलन या गोलापायन (स्फेरिकल अबेरेशन) कहते है।

गोलीय पृष्ठभाग परके किरण गुच्छ या समूह (पेनसिल ऑफ रे) **की प्रातिमायें**

समानान्तर किरणोंके गुच्छ बहिर्वृत्त गोलीय पृष्ठ भागमे से वक्रीभूत होते हैं तब वे सब अंदाजसे मुख्य केन्द्रमे केन्द्रीभूत हो जाते हैं यह पहले ही कहा है। चित्र नं. २३४ में

ऐसा समझो कि त ब ल इस बहिर्वृत्त गोलीय कांच पर ग ड पदार्थसे ग म, ड ब समानान्तर किरणें म और ब बिन्दुओंपरसे वक्रीभूत होकर फा मुख्य केन्द्रीय स्थान पर मिलती हैं ऐसा दिखाई पडेगा। और विपरीत बाजूसे आयी हुई समानान्तर किरण फ मुख्य केन्दिय स्थान पर केन्द्रिभूत होती है ऐसा मालूम होगा। दोनों समय किरण विरल माध्यममेंसे घनमाध्यममें जाती है ऐसा माना गया है। इन सिद्ध हुई बातों परसे ग ड जैसे पदार्थ की प्रतिमा भूमितिय सिद्धान्तसे नीचेकी रचनापरसे निकाल सकते हैं।

चित्र नं. २३४
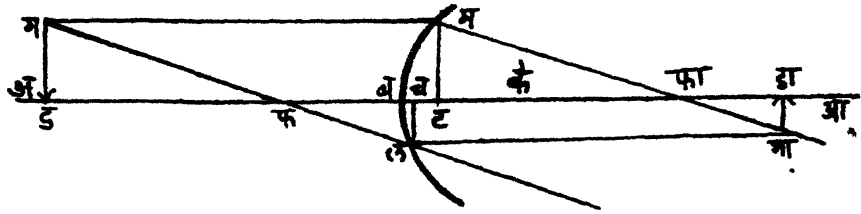
ऐसा समझो कि गड पदार्थ के ग बिन्दुसे चारो ओर को किरणे बाहर फैल जाती हैं। उनमेंकी गम एक किरण गोलीय पृष्ठ भागके अक्षको (अ ड ब डा आ) को सामानान्तर जाती है। यह किरण वक्रीभवन होने के पहले समानान्तर होनेसे वक्रीभूत होनेके बाद फा पश्चात् मुख्य केन्द्रमेंसे मगा दिशासे आगे जायगी। दूसरी ग ल किरण फ पूर्व मुख्य केन्द्रमेंसे जाकर ल बिन्दुपर आधात करके वक्रीभूत होकर ड ब डा अक्षको समानान्तर होकर आगे जायगी। जिस जगह मे ये दोनो किरणे परस्परसे मिलेगी उस जगह यानी गा बिन्दुपर ग की प्रतिमा बन जायगी। इसी तरहसे गड पदार्थ के सब बिन्दुओंकी प्रतिमाये गाडा जगह पर बनेंगी लेकिन यह प्रतिमा उलटी होगी। यदि पदार्थ गाडा जगह पर होता तो उसकी प्रतिमा गड के स्थान पर बनेगी यानी गड और डागा जगह के बिन्दु अनुबद्ध बिन्दु जैसे होते है। गड की किरण प्रत्यक्ष गाडा स्थानमें मिलती है। इस लिये इस प्रतिमाको खरी—सच्ची प्रतिमा कहते हैं और यह प्रतिमा उलटी होती है।

अब आ अक्षरेषापर म और ल बिंन्दुओंसे मट और लच लम्ब रेषाये निकाली हैं। म बिन्दु वक्रताके के केन्द्रको जोडनेसे केम उस वक्रताकी त्रिज्या होती है।

उपरके चित्रमें गड=मट, और गाडा=लच।

गड पदार्थके लिये प अक्षर और गाडा प्रतिमाके लिये छा अक्षर लिखा तो

और गोलीय कांचसे पदार्थके बड अन्तरके बदले ले अक्षर और

गोलयि कांचसे प्रतिमाके बडा अन्तरके लिये लो अक्षर लिखा है।

लचफ और गडफ ये दोनों त्रिकोण सम होते हैं इस लियेः

$$\frac{\text{लच}}{\text{गड}} = \frac{\text{चफ}}{\text{डफ}} = \frac{\text{छा}}{\text{प}}$$

त्रिकोण **मटफा** और **गाडाफा** ये दोनो सम है। $\therefore \frac{\text{गाडा}}{\text{मट}} = \frac{\text{डाफा}}{\text{टफा}} = \frac{\text{छा}}{\text{प}} = \frac{\text{चफ}}{\text{डफ}} = \frac{\text{डाफा}}{\text{टफा}}$;

चफ=चब+बफ।

लेकिन चब अन्तर सूक्ष्म होनेसे उसको छोड देवे तो चफ=बफ यानी=फ अन्तर और डफ=ले

$$\therefore \frac{\text{चफ}}{\text{डफ}} = \frac{\text{फ (पूर्व केन्द्रिय लम्बाई)}}{\text{ले पदार्थका पूर्व केन्द्रिय अन्तर)}}$$

इसी तरहसे टफा=बफा—बट: लेकिन बट सूक्ष्म होनेसे उसको छोडें तो टफा=बफा यानी=फा (पार्श्वकेन्द्रीय अन्तर) और डाफा के बदले फो लिखा तो

$\frac{\text{डाफा}}{\text{टफा}} = \frac{\text{फो (प्रतिमाका पिछला केन्द्रिय अंतर)}}{\text{फो पार्श्वकेन्द्रिय लंबाई}}$। यानी $\frac{\text{फ}}{\text{ले}} = \frac{\text{लो}}{\text{फा}}$ या फफा=लेलो।

यानी **पूर्व और पार्श्वकेन्द्रिय लम्बाई इन दोनोंका गुणाकार पदार्थ का पूर्वकेन्द्रिय अन्तर और प्रतिमाका पार्श्वकेन्द्रिय अन्तर इन दोनोंके गुणाकारके बराबर होता है।**

लेकिन चित्र नं. २३४से यह मालूम होगा कि डफ=बड—बफ; या डफ=ले—फ; और

डाफा=बडा—बफा: या डाफा=लो—फा। यानी $\frac{\text{चफ}}{\text{डफ}} = \frac{\text{फ}}{\text{ले-फ}}$ तथा $\frac{\text{डाफा}}{\text{टफा}} = \frac{\text{लो-फा}}{\text{फा}}$

लेकिन $\frac{\text{चफ}}{\text{डफ}} = \frac{\text{डाफा}}{\text{टफा}} \therefore \frac{\text{फ}}{\text{ले-फ}} = \frac{\text{लो-फा}}{\text{फा}}$: या

फफा=(ले—फ) (लो—फा) या, फफा=लेलो—लेफा—लोफ+फफा:

या लेलो=फफा—फफा+लेफा+लोफ यानी लेलो=लेफा+लोफ: इस समीकरण को

लेलोसे भाग देनेसे वह $१ = \frac{\text{फा}}{\text{लो}} + \frac{\text{फ}}{\text{ले}}$ होता है।

गड पदार्थ की किरणें **गाडा** स्थानपर केंद्रिभूत होनेसे **डागा** उसकी खरी और उलटी प्रतिमा होती है। पदार्थ मुख्य केन्द्रयिके दुगने अन्तरके पार हो तो प्रतिमा खरी, उलटी और छोटी होती है। पदार्थ मुख्य केन्द्रीयके दुगने अन्तरके स्थानपर हो तो प्रतिमा पदार्थके आकारकी होती है। पदार्थ मुख्य केन्दीयके दुगने अंतरके भीतर और मुख्य केन्द्र इन दोनोंके बीचमे हो तो उसकी प्रतिमा पदार्थके आकारसे बडी होती है।

जब पदार्थ मुख्य केन्द्र और वक्रीभवन माध्यमके बीचमें हो तो पदार्थ की किरणें फैलनेवाली होनेसे वक्रीभूत होनेके बाद ज्यादह फैलती जाती है।

यहांतक एक बाजू जिसकी गोल है ऐसे माध्यममेंके वक्रीभवन का बयान किया। चाक्षुष शास्त्रमें जिनकी दोनों पार्श्व गोल होते हैं ऐसे शीशोंका इस्तेमाल होता है। इस लिये दोनों पार्श्वोसे होनेवाले वक्रीभवन का अब विचार करेंगे।

गोलीय शीशा मुख्यतः दो तरह का होता है; एक **उभयोन्नतोदर** (कॉन्व्हेक्स) **शीशा** और दूसरा **उभयनतोदर** कांकेव्ह शीशा। उभयोन्नतोदर शीशा केन्द्रके पास मोटा और परिधि भागको पतला होता है। इसमें से जानेवाली किरणें केन्द्रगामी होती हैं।

उभयनतोदर शीशा बीचमें यानी केन्द्रके पास पतला और पराधि भागमें मोटा होता है। इसमें से पार जानेवाली किरणे केन्द्रसे अपसृत यानी फैल जानेवाली होती है। इनके सिवाय नतोन्नतोदर शीशे। बाह्य गोल समतल कांच (प्लेनो-कांकेव्ह)। आन्तर बाह्य गोळीय और आन्तर गोल समतल काच ऐसी तरहके शीशे होते हैं।

चित्र नं. २३५—२४४

२३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४०

ओ आ अ ओ आ अ

२४१ २४२ २४३ २४४
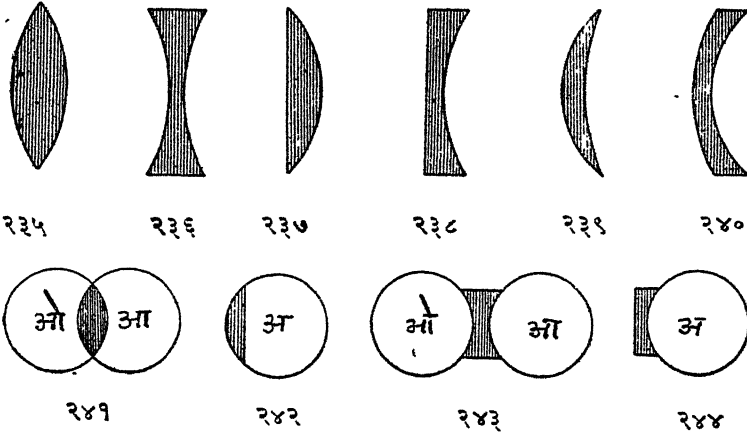
युगलोन्नतोदर शीशा (चित्र नं. २३५) दो वर्तुल जिनके केन्द्र **आ** और **ओ** है उनके परस्परको काटनेसे बना है ऐसा मान सकते है(२४१)। समोन्नतोदर शीशा (चित्र नं.२३७) वर्तुल और समतलके पारस्परीक काटनेसे तयार होता है (२४२)। युगलनतोदर शीशा (चित्र नं. २३६) दो वर्तुल जिनके केन्द्र **आ** और **ओ** हैं नजदीक आनेसे बनता है ऐसा मान सकते हैं (२४३)। समनतोदर शीशा चित्र नं. २३८) वर्तुल और समतलके नजदीक आनेसे बनेगा।

उभयबाह्यगोलीय शीशा (उभयोन्नतोदर कांच)

साधारणतया इस शीशे की दोनो पार्श्वकी वक्रता की त्रिज्याकी लम्बाई समसमान होती है। इसके दो वर्ग होते हैं। एक वर्गमें शीशेकी केन्द्रस्थानकी मोटाई उनकी

चित्र नं. २४५
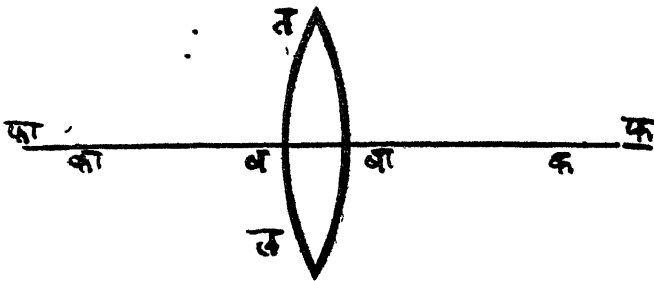
त्रिज्याकी लम्बाईके प्रमाण से बहुत कम होती है। इनको पतला गोलीय शीशा कहते है साधारणतया चष्मे के शीशे इस वर्गके होते है। दुसरी तरहमें शीशेकी केन्द्रस्थानकी मोटाई उनकी त्रिज्याकी लम्बाई से कम होती है।

तल यह एक पतला शीशा है। उसके **तबल** पृष्ठ भाग पर किरणें पहले गिरें तो **तबल** प्रथम पृष्ठ होगा; और किरणें इसमेंसे वक्रीभूत होकर **तबाल** पर गिरेगी तो **तबाल** द्वितीय पृष्ठ होगा। **तबल** पृष्ठ की वक्रताका केन्द्र **क** है और उसकी त्रिज्या **रे** है। द्वितीय पृष्ठकी वक्रता का केन्द्र **का** है और त्रिज्या **रो** है। दोनों वक्रता के केन्द्रों को जोडनेवाली रेषा अक्षरेषा होती है। पहले पृष्ठपर की समानांतर किरणें **फ** पश्चात पर केन्द्रीभूत होती है, जिससे उसीको मुख्य केन्द्र कहते हैं। पश्चात मुख्य केन्द्रके काचके **कब** अंतरको मुख्य पश्चात केन्द्रिय लम्बाई कहते है। इसका सूत्र $\frac{\mu\,\text{रे}}{\mu - १}$ है।

उभयोन्नतोदर कांच-शीशेकी मुख्य केन्द्रिय लम्बाइ का नापन करना।

पहले पृष्ठभाग परकी आघात किरणे वक्रीभूत होनेके बाद **फ** बिन्दुपर केन्द्रीभूत होती हैं। इस बिन्दुका (पश्चात मुख्य केन्द्र) पृष्ठभागसे अन्तर जाननेकी तरह पहले कह चुके हैं।

उसका सूत्र (पश्चात मुख्य केन्द्रकी) लम्बाई $= \frac{\mu\,\text{रे}}{\mu - १}$ है।

यहां बिलकुल पतले कांच का विचार कर रहे हैं और उसकी मोटाई का विचार न करें तो चलेगा। यानी आघात किरणे द्वितीय पृष्ठभागसे वक्रीभवन होकर **फा** पूर्व मुख्य केन्द्रपर केन्द्रीभूत होंगी। पदार्थका दूसरे पृष्ठसे अन्तर $\frac{\mu\,\text{रे}}{\mu - १}$ है। यहां इसका चिन्ह ऋण (−) होता है।

सिर्फ द्वितीय पृष्ठका विचार करें तो यह मालूम होगा कि अक्षरेषाको समानान्तर जैसी किरणे वक्रीभूत होनेके बाद **फा** बिन्दुके स्थानमें केन्द्रीभूत होगी और उसका अन्तर (केन्द्रीय लम्बाई) $\frac{\mu\,\text{रो}}{\mu - १}$ के बराबर है।

और इस गोलीय शीशेकी अक्षरेषाको समानान्तर जैसी किरणे बाहर आनेके बाद **फ** बिन्दुपर केन्द्रीभूत होगी और इसका अन्तर (केन्द्रीय लम्बाई) $= \frac{\text{रो}}{\mu - १}$

पहले निकाले हुए सूत्रमें यानी $\frac{\text{फ}}{\text{ले}} + \frac{\text{फा}}{\text{लो}} = १$ में उपरके मूल्य लिखनेसे (यहां ले=पदार्थका और लो प्रतिमाका काचसे अन्तर है)

और $\dfrac{\frac{\text{रो}}{(\mu - १)}}{\frac{\text{ले}}{१}} + \dfrac{\frac{\mu\,\text{रो}}{\mu - १}}{\frac{\text{लो}}{१}} = १$ या $\left(\frac{\text{रो}}{\mu - १} \times \frac{१}{\text{ले}}\right) + \left(\frac{\mu\,\text{रो}}{\mu - १} \times \frac{१}{\text{लो}}\right) = १$ ऐसा लिख सकते है।

लो के बदले उसका मूल्य $\frac{\mu\,\text{रे}}{\mu - १}$ लिखनेसे $\frac{\text{रो}}{\mu - १} \times \frac{१}{\text{ले}} + \left(\frac{\mu\,\text{रो}}{\mu - १} \times \frac{\mu - १}{\mu\,\text{रे}}\right) = १$

या $\frac{\text{रो}}{\mu - 1} \times \frac{1}{\text{ले}} + \frac{\text{रो}}{\text{रे}} = 1$ इस समीकरण को "रो" से भाग देनेसे उसका रूप

$\frac{1}{\text{ले}} \times \frac{1}{\mu - 1} + \frac{1}{\text{रे}} = \frac{1}{\text{रो}}$; या $\frac{1}{\text{ले}} = \mu - 1 \left(\frac{1}{\text{रे}} + \frac{1}{\text{रो}}\right)$

उभयोन्नतोदर काचकी मुख्य केन्द्रीय लम्बाई के बदले यानी "ले" के बदले "फ" लिखें तो यह समीकरण निम्नलिखित जैसा होगा $\frac{1}{\text{फ}} = (\mu - 1)\left(\frac{1}{\text{रे}} + \frac{1}{\text{रो}}\right)$

दोनों पृष्ठों की वक्रताकी त्रिज्या की लम्बाई एक समान जैसी हो तो इस समीकरण का रूप $\frac{1}{\text{फ}} = (\mu - 1)\frac{2}{\text{रे}}$ होगा

μ यानी वक्रीभवन आवर्तनांक का मूल्य यदि १.५ हो उसको μ के बदले लिखनेसे

$\frac{1}{\text{फ}} = \left(\frac{3}{2} - 1\right)\frac{2}{\text{रे}}$ ऐसा होगा या $\frac{1}{\text{फ}} = \frac{1}{2} \times \frac{2}{\text{रे}}$ या $\frac{1}{\text{फ}} = \frac{1}{\text{रे}}$

यानी मुख्य केन्द्रीय लम्बाई वक्रताकी त्रिज्या के बराबर होती है; **उन्नतोदर** समतल शीशे का सूत्र $\frac{1}{\text{फ}} = \left(\frac{\mu}{2} - 1\right)\frac{1}{\text{रे}}$

उभयनतोदर कांच–शीशेपर किरणे गिरनेसे वक्रीभवन के पश्चात एक बिन्दुपर केन्द्रीभूत हो जायेंगी। इसकी केन्द्रकी लम्बाई $\frac{\mu\ \text{रे}}{\mu - 1}$ होगी लेकिन इसका चिन्ह ऋण(–)होनेसे वह $\frac{\mu\ \text{रे}}{\mu - 1}$ होगा। $\frac{\text{फ}}{\text{ले}} + \frac{\text{फा}}{\text{लो}} = 1$ यानी ले – $\frac{\frac{\text{रो}}{\mu - 1}}{\frac{\text{ले}}{1}} + \frac{\frac{\mu\ \text{रो}}{\mu - 1}}{\frac{\text{लो}}{1}} = 1$

या $-\left(\frac{\text{रो}}{\mu - 1} \times \frac{1}{\text{ले}}\right) + \left(\frac{\mu\ \text{रो}}{\mu - 1} \times \frac{\mu - 1}{\mu\ \text{रे}}\right) = 1$

या– $\frac{\text{रो}}{\mu - 1} \times \frac{1}{\text{ले}} + \frac{\text{रो}}{\text{रे}} = 1$। इसको रो से भाग देनेसे $-\frac{1}{\mu - 1} \times \frac{1}{\text{ले}} + \frac{1}{\text{रे}} = \frac{1}{\text{रो}}$

या– $\frac{1}{\mu - 1} \times \frac{1}{\text{ले}} = \frac{1}{\text{रो}} - \frac{1}{\text{रे}}$; या – $\frac{1}{\text{ले}} = (\mu - 1)\frac{1}{\text{रो}} = \frac{1}{\text{रे}}$

या $\frac{1}{\text{फ}} = (\mu - 1)\left(\frac{1}{\text{रे}} + \frac{1}{\text{रो}}\right)$

उभयनतोदर काच के लिये $\frac{1}{\text{फ}} = \mu - 1\ \frac{1}{\text{रे}}$

उभयोन्नतोदर शीशेसे प्रतिमाः—उशी यह एक पतला–उभयोन्नतोदर शीशा है। फ और फा उसके मुख्य केन्द्र हैं। "गड" पदार्थ उसके सामने उसकी मुख्य केन्द्रिय लम्बाईसे दूर अन्तर पर रखा हो तो यह देखना है कि उसकी प्रतिमा किस अन्तर पर

गिरेगी। गड पदार्थके ग बिन्दुसे चारों ओरको किरणे फैलती जाती हैं। उनमेसे एक किरण गअ कांचकी डओडा अक्षरेषाको समानान्तर जैसी काचमेंसे जाकर वक्रीभूत होनेके बाद फा मुख्य केन्द्रसे पार होकर अफागा दिशासे जाती है। और दूसरी

चित्र नं. २४६ उभयनतोदर शीशा
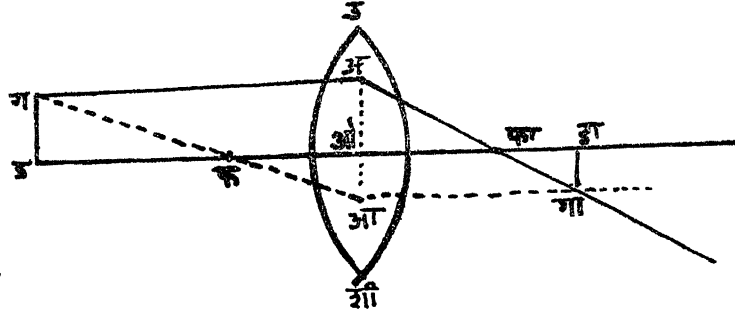
किरण गफआ मुख्य केन्द्रिय बिन्दु फ मे से जाकर आ जगह से वक्रीभूत होनेके बाद अक्षको समानान्तर जैसी होकर पहली गअ किरणको गा जगहमे मिलती है। इन दोनों किरणोंके मिलन का बिन्दु गा, ग बिन्दु की प्रतिमा होगी। इसी तरहसे गड पदार्थके सब बिन्दुओंकी प्रतिमा गाडा स्थानपर बन जायेगी।

फ.ओ अन्तर तथा फा ओ अन्तर (मुख्य केन्द्रिय लम्बाई) के लिये अनुक्रमसे फे फै अक्षर लिया है। डफ (पदार्थका मुख्य केन्द्रसे अन्तर) के बदले ले और डाफा के वास्ते लो अक्षर लिया है। ओ आ = गाडा और ओ अ = गड।

$\triangle$ गडफ और $\triangle$ आ ओफ त्रिकोणोंमे

$$\frac{\text{गड (पदार्थ)}}{\text{आओ (प्रतिमा)}} = \frac{\text{ले पदार्थका मुख्य केन्द्रसे अन्तर}}{\text{फे मुख्य केन्द्रीय लम्बाई}}$$

इसी तरहसें $\triangle$ अओफा और $\triangle$ गाडाफा इन त्रिकोणोंमें

$$\frac{\text{अओ}}{\text{गाडा}} = \frac{\text{फै}}{\text{लो}} \therefore \frac{\text{ले}}{\text{फे}} = \frac{\text{फै}}{\text{लो}} \text{ या लेलो} = \text{फे फै}$$

ड ओ लम्बाई के बदले फो और डाओ लम्बाई के बदले फौ लिया है

$\therefore$ ले=फो–फे और लो = फौ–फे। लेलोके वदले यह मूल्य रखनेसे

लेलो = फेफै समीकरण = (फो–फे) (फौ–फे) = फेफे अर्थात्

फोफौ—फेफौ–फेफो + फेफे = फेफे: या

फोफौ=फेफे–फेफे+फेफौ+फेफो। या फोफौ + फेफो

इसको फोफौसे भाग देनेसे $1 = \frac{\text{फे}}{\text{फो}} + \frac{\text{फे}}{\text{फौ}}$

उभयोन्नतोदर शीशा या कांच

यदि पदार्थ उन्नतोदर शीशे की मुख्यकेन्द्रीय लम्बाई के दुगने अन्तरपर हो तो उसकी प्रतिमाका आकार पदार्थके आकार जैसा होता है और वह प्रतिमा उलटी और खरी होती है।

यदि पदार्थ मुख्य केन्द्रीय लम्बाई के दुगने अन्तर के पार ज्यादह अन्तर पर हो तो उसकी प्रतिमा उससे छोटे आकारकी उलटी और खरी होती है।

पदार्थ मुख्य केन्द्रीय लम्बाई के दुगने अन्तरसे जितना ज्यादह दूर स्थित होगा उतनी नजदीक उसकी प्रतिमा पश्चात मुख्य केन्द्रके पास जायेगी। और पदार्थ यदि आनंत्य स्थान पर स्थित तो उसकी किरणें समान्तर जैसी होनेसे उसकी प्रतिमा पश्चात मुख्यकेन्द्रके स्थानपर गिरेंगी।

लेकिन यदि पदार्थ मुख्य केन्द्रीय लम्बाई के दुगने अन्तरसे कम अन्तरपर हो. तो प्रतिमा पदार्थके आकारसे बडी होगी।

पदार्थ उभयोन्नतोदर शीशा और उसके मुख्य केन्द्र इन दोनों के बीचमें हो तो उसकी प्रतिमा पदार्थके आकारसे बडी मालूम होगी।

जब पदार्थ उन्नतोदर शीशे की मुख्य केन्द्रीय लम्बाई से कम अन्तर पर होता है तब उसकी प्रतिमा बडी और सरल दिखाई पडती है। ऐसा मानो कि गड पदार्थ उभी उन्नतो-

चि. नं. २४७ म उभयोन्नतोदर शीशा
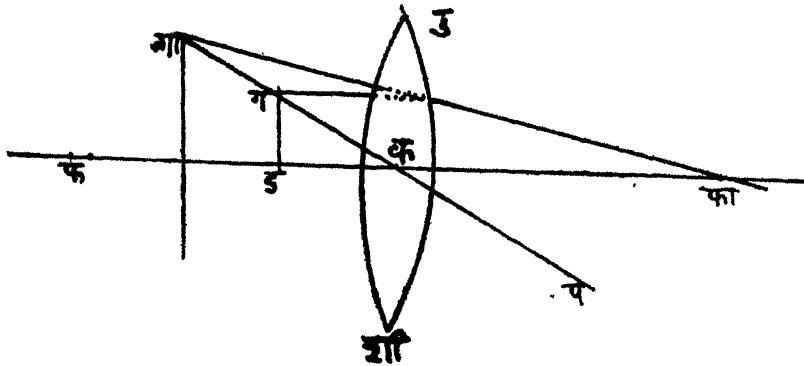
दर काच के सामने उसकी मुख्य केन्द्रीय लम्बाई के भीतर रखा है। उसके ग बिन्दुसे 'ग म' किरण शीशेकी 'फ क फा' अक्षरेषा को समानान्तर होनेसे वक्रीभवन के बाद "फा" मुख्य केन्द्रमें से पार जायगी। 'ग' बिन्दुसे दूसरी किरण उन्नतोदर शीशेके मध्यमें से यानी पातबिन्दुमे से वक्रीभूत न होते ही सरल "ग क प" इस दिशासे जायगी। ये दोनो किरणें कांच के बाहर जाते ही 'फा' की ओरकी फैली हुई जाती है। लेकिन उनको यदि उलटी दिशाको बढावें तो वे गा बिंदुपर केन्द्रीभूत हो जायेंगी। यानी पदार्थ को "फा" बिन्दुकी ओरसे कांचमे से देखें तो गड पदार्थ "गाडा" जैसा बडा और सरल लेकिन भ्रामक (भासमान) होगा (चित्र नं. २४७)।

यदि उन्नतोदर शीशेको पदार्थपर जैसे कि कोई किताब के अक्षरपर रखा जाय तो वह पदार्थ या किताब के हरूफ मूल आकारके दिखाई पडेंगे लेकिन उन्नतोदर शीशेको हरूफोंसे दूरदूर हटाया जाय तो हरूफ बडेबडे मालूम होते जायेंगे। शीशे को इस तरहसे दूरदूर हटानेमें ऐसा एक स्थान आ जायगा कि वहां कोई भी हरूफ दिखाई नहीं पडेगा। यह स्थान उन्नतोदर शीशे के मुख्य केन्द्रका होता है। यहांतकी सब प्रतिमाएँ साची नहीं होतीं। लेकिन इस स्थानसे उन्नतोदर शीशे को और दूर हटाया जाय तो प्रतिमा उलटी दिखाई पडेगी।

उभयनतोदर शीशेमेंसे दिखाई देनेवाली प्रतिमायें—

उ शी यह एक उभयनतोदर शीशा है जिसके सामने गड पदार्थ रखा है। फ और फा उसके मूल्य केन्द्र है। गड पदार्थ की सब किरणें चारो ओर को फैल जायेंगी। उनमेंसे गम किरणें "फ क फा" अक्षरेषाको समानांतर जैसी 'म' बिंदुपर गिरेगी। वह वक्रीभवनके बाद

चि. नं. २४८
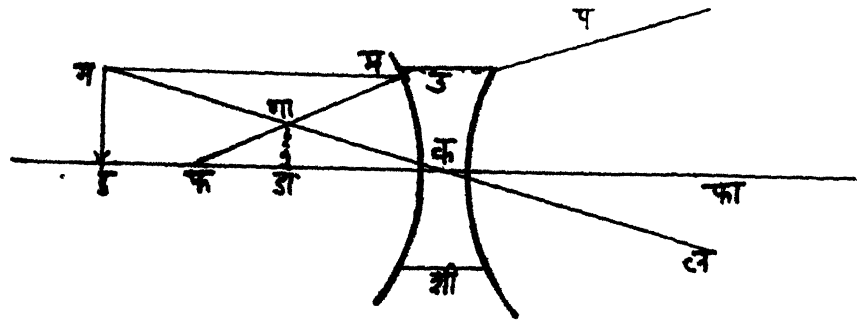
"फमप" दिशामें जाती है ऐसा मालूम होगा। ग बिंदु की दूसरी "गक" किरण नतोदर कांचके मध्य यानी पातबिंदुमेंसे पार जानेसे उसका वक्रीभवन न होनेसे कल दिशामें सीधी जायगी। पम किरण को पिछली औरको बढानेसे "गक" किरणको गा स्थान पर मिल जायगी। ग बिन्दुकी प्रतिमा "गक" और "पम" किरणे मिलनेके स्थान पर यानी "गा" बिन्दुके स्थानमें बन जायगी। इसी तौरसे गडके सब बिन्दुओंकी प्रतिमायें गाडा स्थानमें बन जायेंगी। यह प्रतिमा सरल (यानी अप्रतिप) और पदार्थ से छोटी होती है। यानी उभयनतोदर शीशेमेंसे देखे हुए पदार्थ छोटे दिखाई पडते हैं।

ऱ्हस्वदृष्टित्व मनुष्य की दृष्टिकी परीक्षा करनेके समय उभयनतोदर शीशे का उपयोग करते हैं। यदि पदार्थ छोटे मालूम होने लगें तो शीशे के बलका प्रमाण ज्यादह हुआ है ऐसा समझना चाहिये। और इसी कारणसे कम बलके शीशेका इस्तेमाल करना चाहिये। उभयोन्नतोदर शीशेमें से पदार्थ बडे दिखाई पडते हैं।

खंड ५ और खंड ६

नेत्रप्रकृतिविज्ञान—प्राकृतिक दृक्शास्त्र

नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिबिम्ब–प्रतिमा

जीवन दृक्शास्त्र

प्रकाशकी दृष्टिपटल पर होनेवाली भौतिक रासायनिक क्रिया

खंड ५ वां

अध्याय १३

नेत्रप्रकृतिविज्ञान—प्राकृतिक दृक्शास्त्र

नेत्रगोलक यह एक दृगिन्द्रिय व्यूहका प्राथमिक भाग है। इस व्यूह के (१) दृक्-शास्त्रीय भौतिक व्यूह यानी वक्रीभवन माध्यम (फिजिकल ॲपरेटस), (२) दृगिन्द्रिय प्रकृति व्यूह (फिजिआलाजिकल ॲपरेटस), और (३) दृक्संज्ञा संवित्तिव्यूह (सायकालाजिकल ॲपरेटस) ऐसे भिन्नभिन्न कार्यके अनुसार तीन भाग माने गये है।

बाह्य पदार्थोंकी किरणोंको दृष्टिपटल पर केन्द्रीभूत करना यही दृक्शास्त्रीय भौतिक व्यूहका कार्य माना गया है। प्रकाशकिरणोंका संस्कारमें रूपान्तर करना यह कार्य दृगिन्द्रिय प्रकृति व्यूहमें होता है। ये संस्कार दृष्टिपटल, दृष्टिरज्जु और चाक्षुषपथमें से होकर मस्ति-ष्कको जाते हैं; फिर आत्माको मस्तिष्ककी बाह्य तहके दृक्संज्ञा संवित्तिव्यूह के केन्द्रके द्वारा पदार्थका ज्ञान होता है।

दृगिन्द्रिय व्यूह के बयानमें तीनों भागोंके कार्यका विचार करना जरूरी है। पहले दृक्शास्त्र भौतिक व्यूहके द्वारा बाह्य पदार्थकी स्पष्ट प्रतिमा दृष्टिपटल पर किस तरहसे केन्द्रीभूत होती है, इसका बयान करेंगे; फिर प्रकाशका दृष्टिपटलमें किस तरहसे रूपान्तर होता है इसका स्पष्टीकरण करेंगे और अन्तमें प्रकाशज्ञान किस तरहसे होता है इसका विचार करेंगे।

नेत्रेन्द्रियका भौतिक दृक्शास्त्र व्यूह

नेत्रगोलक यह एक दृक्शास्त्र विषयक साधन है। नेत्रगोलक फोटोग्राफिक कैमेरा—तसबीर खींचनेके छायाचित्रणयंत्र—के मानिंद है। कैमेरेमें बाह्य पदार्थोंकी किरणें इस यंत्रमें रखे हुए तारका सदृश परदेके कनीनिका सम छिद्रमेंसे पार जाकर परदेके पीछे के युगलो-न्नतोदर शीशे पर गिरती है। फिर वे उसके पार होकर पीछेकी ओरको रखे हुए केन्द्रण परदेपर केन्द्रीभूत होती है। इस परदेपर बाह्य पदार्थकी गिरी हुई प्रतिमा प्रतीप यानी उलटी होती है। यह प्रतिमा स्पष्ट होनेके लिये डायफ्राम या पतले परदेके छिद्रको छोटा या बडा करके प्रकाश की तीव्रता आवश्यकतानुसार कमतर या प्रखरतर कर सकते हैं। केन्द्रण परदेको भी आगे या पीछे हटा सकते हैं।

नेत्रगोलक के वक्रीभवन मार्गसे—माध्यमसे नेत्रमें गयी हुई किरणें दृष्टिपटल पर केन्द्री-भूत होती है। तारकामेंके दैवकृत छिद्रके यानी कनीनिकाके संकोचन या प्रसरणसे प्रकाशकी तीव्रताका नियमन होता है। नेत्रगोलकके अन्दरभी कैमेरेके जैसा काला रंग होता है। किन्तु दोनोंमें इतनाही फर्क है, कि कैमेरेके केन्द्रण परदेको आगे या पीछे हटा सकते हैं। लेकिन नेत्रगोलकका दृष्टिपटल, जिसपर बाह्य पदार्थोंकी प्रतिमा गिरती है, स्थिर होता है; उसको आगे या पीछे हटा नहीं सकते। किन्तु नेत्रमेंके स्फटिकमणिके बाकमें फर्क हो सकता है।

परावृत्त–प्रतिबिम्बित–प्रतिमा (कैटापट्रिक इमेजिस)।

पदार्थपर गिरी हुई किरणोमेसे कई किरणें पार जाती है, कई पदार्थपरसे परावृत्त होती हैं और कई पदार्थमें ही सोखी जाती है यह पहले ही कहा है। पदार्थ जब पूर्णतया कांच के जैसा मुलायम होता है, तब उसपर गिरी हुई कुल किरणें भूमितिय दृक्शास्त्रानुसार परावृत्त होती है। इस तरहके परावर्तनको **दर्पणीय परावर्तन** (स्पेक्युलर रिफ्लेक्शन) कहते है। अकसर करके कोई भी पदार्थ पूर्ण मुलायम न होनेसे कुछ किरणें विस्तृत–अनियमित –तौरसे परावर्तित होती हैं। यानी पदार्थके सूक्ष्म असम भागपर गिरी हुई प्रकाशकिरणें चारों ओर फैलती हैं (डिफ्युज्ड् रिफ्लेक्शन)। और उसकी वजहसे पदार्थका अप्रकाशित भाग दिखाई पड़ता हैं। कुछ किरणोका नियमित परावर्तन होता है, इर्दगिर्द किरणें जो के मनुष्योंके नेत्रमें जाती हैं उनसे पदार्थकी परावृत्त या प्रतिबिम्बित प्रतिमा दिखाई पड़ती है।

इन परावृत्त प्रतिमाओंका वर्णन पहले पहले सन १८२३ मे **परकंजी** पंडितने किया था। इसके बाद सन १८३७ में फ्रेंच पंडित **सामसन** ने किया। इसी वजहसे इन प्रतिमाओंको **परकंजी–सामसन प्रतिमाएँ** इस नामसे जाना जाता है। परकंजी पंडितने पहले चार प्रतिमाओका वर्णन किया था जिनमे तारकापिधानके पिछले पृष्ठकी परावर्तित प्रतिमा भी एक थी; लेकिन हालमें तीन प्रतिमाओका उल्लेख करते हैं। (चित्र नं. २५३ देखिये)।

इन प्रतिमाओंकी सहायतासे वक्रीभवन व्यूह के घटकोंके पृष्ठकी गोलाईका और दृक्संधानशक्ति संबंधी ज्ञान पैदा होता है। तारकापिधानकी प्रतिमा छोडके अन्य प्रतिमाएँ दुय्यम परावर्तनसे होती हैं।

नेत्रोंपरका प्रकाश परिवर्तन–परावर्तन

प्राथमिक परावर्तित प्रतिमाः—नेत्रगोलकमे दृष्टिपटलके वक्रीभवन माध्यम असम घनताके बने है : इसी वजहसे इनके ऊपर गिरी हुई किरणोंका परावर्तन मिश्र स्वरूपका होता है। नेत्रकी असली परावर्तन पृष्ठ छः होती हैं। तारकापिधानकी सामनेकी और पिछली ऐसी दो, स्फटिकमणिकी सामनेकी और पिछली ऐसी दो और युवकके स्फटिकमणिके केन्द्रोकी दो।

स्फटिकमणिकी प्रतिमा विराम चिन्हांकित जैसी दिखाई देती है; इससे यह साफ मालुम होगा कि यह प्रतिमा स्फटिकमणिके आवरणकी नही है। स्फटिकमणिके केन्द्रस्थ भागकी प्रतिमा विस्तृत और अस्पष्ट जैसी दिखाई पडती है। इन बातोंपरसे अनुमान करना संभाव्य होता है कि स्फटिकमणिकी तहोंके वक्रीभवन आवर्तनांकोमे कुछ बहुतसा फर्क नहीं है।

इन छः पृष्ठोंसे नियमित प्रकाशपरावर्तन होनेसे दीप ज्योतिकी प्रतिमाएँ हर पृष्ठसे दिखाई पड़ती है। इन नियमित किरण छटाओंमें दर्पणीय प्रतिप्रकाश होनेके कारणसे किसी पृष्ठमें अनियमित भाग हो तो दिखाई पड़ता है; और इसी वजहसे स्फटिकमणि या उसके केन्द्रमें आयुके कारणसे होनेवाली पेशिघटकोंकी कठिनता आदि विकार स्पष्ट होते हैं; और इसी कारणसे मोतीबिन्दुका भास होता है।

दुय्यम परिवर्तित प्रतिमाः—तारकापिधानके सामनेके पृष्ठकी परकंजीकी प्रतिमा सिर्फ प्राथमिक परावर्तनसे होती है। **परकंजी** की शेष प्रतिमाएँ नेत्रमे घुसे हुए किरणोका अन्य पृष्ठोपरसे दुय्यम परावर्तन होनेसे दुय्यम परावर्तित प्रतिमाएँ बनती हैं। ये दुय्यम प्रतिमाएँ अनेक होती हैं; लेकिन उनमेकी दो प्रतिमाएँ महत्त्वकी होती हैं। एक स्फटिकमणिके

चित्र नं. २४९
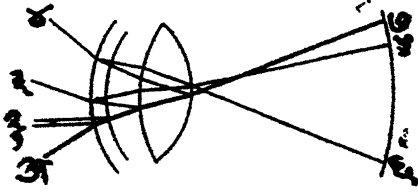
नेत्रपरकी प्रतिबिम्बित प्रतिमा। मोटी रेषा अ ७ यह असली किरण है। १–२ प्राथमिक परिवर्तन तारकापिधानके सामनेकी और पिछली पृष्ठ से (३) स्फटिकमणिके सामनेकी पृष्ठ और (४) पिछली पृष्ठ बताया है। (३) और (४) अंशतः दृष्टिपटलपर परावृत्त होते हैं जिनकी दुय्यम प्रतिमा (५) और (६) ये होती हैं।

सामनेकी पृष्ठपरसे प्राथमिक परावर्तित किरणोका दुय्यम परावर्तन होनेके बाद बननेवाली दुय्यम प्रतिमा; और दूसरी तारकापिधानके सामनेकी पृष्ठ परसे इसी तरहसे बनी हुई दुय्यम प्रतिमा।

नेत्रगोलक की वक्रीभूत प्रतिमा (डायापटेरिक इमेजिस)

नेत्रगोलक का दृक्शास्त्रविषयक नैसर्गिक कार्य

नैसर्गिक नेत्रगोलकः—जिस नेत्रगोलक के कुल घटक अव्यग होते हैं, जिस नेत्रका ऐन्द्रिय कार्य (फिझिआलजिकल फंक्शन) नैसर्गिक होता है, और जिस नेत्रको, विना बाह्य साधनके दूरीका और नजदीकका स्पष्ट दिखाई पडता है ऐसे नेत्रगोलक को **नैसर्गिक** समझना चाहिये। ऐसे नेत्रका दृक्शास्त्रीय व्यूह यानी वक्रीभवन माध्यम (मार्ग) निर्दोष होता है। अर्थात् नेत्रकी विश्रामावस्थामें तारकापिधान पर गिरी हुई किरणें स्फटिकमणिके पार जाकर दृष्टिपटलकी **राड** और **कोन** की तहोपर बराबर केन्द्रीभूत होती हैं। दृष्टिपटल नेत्रके वक्रीभवन व्यूहका केन्द्रिय पृष्ठ होता है। ऐसी वक्रीभवन की अवस्थाके नेत्रगोलक को **नैसर्गिक नेत्रगोलक** समझना चाहिये।

नेत्रगोलकका वक्रीभवन व्यूह, पहलेही कहा है, की तीन घटकोका बना है (१)तारकापिधान, (२) स्फटिकमणि, और (३) चाक्षुष जल तथा स्फटिकद्रवपिंड इन दोनोंसे बना हुआ संयुक्त घटक। इन तिनों घटकोको वक्रीभवन **व्यूह, माध्यम** या **मार्ग** यह संज्ञा दी गई है। इन हर एक मार्गोंके सामनेके और पिछले ऐसे दो पृष्ठ होते हैं। इनके वक्रीभवन **आवर्तनांक** मे फर्क होता है। तारकापिधान के सामनेकी पृष्ठ, और स्फटिकमणि के सामनेकी और पिछली पृष्ठ इन तीनों पर आघात किरणोका जो वक्रीभवन होता है उनका विचार करना जरूरी है।

नेत्रगोलक के हरएक वक्रीभवन मार्गमेसे अन्दर जानेवाली और अन्दरसे बाहर जानेवाली प्रकाशकिरणोंके कार्यका ज्ञान ठीक ठीक होनेके लिये हरएक मार्गका बांक, उसका वक्रीभवन-**आवर्तनांक** में और उनकें पारस्परीक फासलोंका बराबर ज्ञान होना चाहिये। इन मूलभूत बातों का बराबर ज्ञान जब होगा तब प्रकाश किरणें एक मार्गमेंसे पार होकर दूसरे

मार्गमेंसे पार जानेमें उनकी दिशाओंमें जो फर्क होता है वह मालूम होगा । तारकापिधा-**नका** वक्रीभवन **आवर्तनांक** दर्शकांक ~ = १.३३७

तारकापिधान के सामनेकी और पिछली पृष्ठका नाप:—सामनेकी और पिछली **पृष्ठकी** त्रिज्ज्या अनुक्रमसे ७.८ मि. मि. और ६.२२ से६.८३ मि. मि. होती है। तारका-**पिधानकी** साधारण मोटाई ०.५ मि. मि. होती है । इसका नाप सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे कर सकते है ।

चाक्षुषजल और स्फटिकद्रवपिंड इन दोनोका वक्रीभवन **आवर्तनांक** (~) १.३३३ होता है, यदि हवाका **आवर्तनांक** एक समझें ।

स्फटिकमणि व्यूहः—स्फटिकमणिकी सामनेकी और पिछली पृष्ठ तारकापिधानकी **पृष्ठसे** अनुक्रमसे ३.६ मि. मि. और ७.२ मि. मि. फांसले पर होती है। यानी स्फटिकमणि **की** मोटाई ३.६ मि. मि. होती है; स्फटिकमणि की पृष्ठों की त्रिज्ज्याओंका नाप आफथालमा-**मिटर** यंत्र की सहायतासे कर सकते हैं। उससे सामनेकी और पिछली पृष्ठ की बाक की **त्रिज्ज्याएँ** अनुक्रमसे १० से ११.५ मि. मि. और ६ से ६.७३ मि. मि. जितनी होती है। ध्यानमें **रखिये** कि यह नाप स्फटिकमणि के केन्द्रस्थ भाग का है । **टि शेरिंग** के मता-**नुसार** स्फटिकमणिसे निर्बिन्दुता दिखाई पडती है, उसकी खडी रेखाश का नाप १०.१ **मि.** मि. होता है। स्फटिकमणिका वक्रीभवन **आवर्तनांक** ~ = १.३८५ है ।

नेत्रगोलकके वक्रीभवन माध्यमके-मार्ग (रिफ्रेकटिव्ह मिडीया) के बाक की त्रिज्ज्या **उनके** आर्वतनांक गुणक और अन्य बातें नीचे लिखे हुए खुलासेमें स्पष्ट की गई हैं ।

दृक्संधान शक्ति कार्यमें होनेवाले फर्क

		दीर्घ-दूर दृष्टि मि. मि.	निकट-ह्रस्व दृष्टि मि. मि.
बांक की त्रिज्ज्या	तारकापिधानकी सामनेकी पृष्ठ	७.८	७.८
	स्फटिकमणिकी सामनेकी पृष्ठ	१०.०	६.०
	स्फटिकमणिकी पिछली पृष्ठ	६.०	५.५
अलग अलग पृष्ठोंका अन्तर	तारकापिधानकी सामनेकी पृष्ठ और स्फटिकमणिकी सामनेकी पृष्ठ इन दोनों के बीचमेंका अन्तर	३.६	३.२
	तारकापिधानकी सामनेकी पृष्ठ और स्फटिकमणिकी पिछली पृष्ठ इन दोनोके दरमियानका अन्तर	७.२	७.२
	स्फटिकमणिके सामनेकी और पिछली पृष्ठ के दरमियानका अन्तर यानी उसकी मोटाइ	३.६	४.०
	स्फटिकमणिकी पिछली पृष्ठसे दृष्टिपटल का अन्तर	१४.६.	१४.६
नेत्रके आगेसे पीछे जानेवाली अक्ष रेषाकी लम्बाई		२१.८	२१.८

भिन्न भिन्न घटकोंका वक्रीभवन आवर्तनांक (गुणक)

हवा	१.०००	तारकापिधान	१.३३७
जल	१.३३५	स्फटिकमणि	१.४३७
चाक्षुषजल	१.३३६५	स्फटिकद्रवपिंड	१.३३६५

स्किम्याटिक नेत्रगोलकः—नेत्रगोलकके ऊपर दिये हुए वक्रीभवन मार्गके आवर्तनाकोका विचार करनेसे ख्यालमें आ जायगा कि, चाक्षुषजल और स्फटिकद्रवपिंड इन दोनोंका वक्रीभवन आवर्तनांक एक जैसा ही है। इस लिये दोनोंको अलग अलग घटक माननेके बदले एकही समझना ठीक है। और तारकापिधानका वक्रीभवन आवर्तनांक इन दोनोंके वक्रीभवन आवर्तनांकसे बढके नहीं होनेसे उसकी घनता चाक्षुषजल समान ही है यह समझना अनुचित नहीं होगा। यानी वक्रीभवन व्यूहमें फक्त दो घटक बाकी रहते हैं: (१) एक नेत्रगोलक का बाहरी वातावरण और भीतरी वक्रीभवन व्यूह जिन दोनोंके बीचमें तारकापिधानका पृष्ठभाग होता है; (२) भीतरी वक्रीभवन व्यूह स्फटिकमणि का बना है।

इस तरहके सीधे (स्किम्याटिक) नेत्रगोलककी कल्पना, नेत्रगोलककी वक्रीभवन व्यूहकी रीतिका नापन आसानीसे होनेके लिये, सन १८५३ में सबसे पहले **स्टिर्लिंगने** निकाली थी। **डान्डर्सने** भी एक स्किम्याटिक नेत्रगोलक बनाया था। उसका नापन नीचे दिया है।

डान्डर्स के स्किम्याटिक नेत्रगोलक के नापः—

दर्शनीय वक्रीभवनके पृष्ठकी बाक की त्रिज्याका नाप ५.१ मि. मि.
वक्रीभवन माध्यमका वक्रीभवन आवर्तनाक या गुणक १.३५ मि. मि.
इस नेत्रगोलक के आगेसे पीछे जानेवाली अक्षरेषा की लम्बाई २०.०० मि. मि.
तारकापिधान के दर्शनी पृष्ठ और पिछले वक्रीभवन मार्ग इन
दोनोमेंका फासला............... १.८० मि. मि.
दर्शनी वक्रीभवन पृष्ठ और पातबिंदु इन दोनोंमेंका फांसला ५.०० ,, ,,
पातबिन्दु और दृष्टिपटल (मुख्य केन्द्रिय पृष्ठ) का फांसला १५.०० ,, ,,

स्किम्याटिक नेत्रगोलक की सहायतासे नेत्रगोलक की रचना निश्चित करनेके लिये **गॉस** ने नेत्रगोलक के प्रधान दिग्बिन्दुकी (काराडिनल पॉइन्ट्स) कल्पनाका प्रचार किया। नेत्रगोलकके प्रधान दिग्बिंदु छः माने हैं। किसी भी वक्रीभवन माध्यमके मार्गके कायम बिंदु प्रधान दिग्बिंदु होते है। इन बिन्दुओंकी सहायतासे वक्रीभवन माध्यममें प्रवेश करनेवाली किरणोंकी दिशाओंका ज्ञान, उनकी प्रतिमाओंका स्थान और आकार का नापन बराबर होता है।

नेत्रगोलक के प्रधान दिग्बिंदुः—दो मुख्य बिन्दु, दो पातबिन्दु और दो मुख्य केन्द्रिय बिन्दु ऐसे छः होते है। **असली (मुख्य) बिन्दु** (प्रिन्सिपल पॉईन्ट्स):—वक्रीभवन मार्गके पृष्ठभाग के जिस बिन्दुपर प्रकाशकिरणोंका आघात होता है उन बिन्दुओंको **मुख्य या असली बिन्दु** नाम दिया है। ये पूर्व और पार्श्व (सामनेका और पिछला) ऐसे दो होते हैं। इन बिन्दुओंका कार्य सादे उन्नतोदर शीशे के सहचरित बिंदु या केंद्र—(कानज्युगेट फोसाय) के

समान होता है। इन बिंदुओंकी असली अक्ष रेखासे इस तरहका संबंध होता है कि, एक बिंदुपर कोई भी पदार्थ हो तो उसकी प्रतिमा दूसरे बिंदुपर गिरती है। इन बिंदुओंके पृष्ठ को असली (मुख्य) पृष्ठ नाम दिया है। **पातबिन्दु** (नोडल पॉईन्ट्स):—वक्रीभवन माध्यमके पृष्ठ के बांक के केन्द्र को पातबिंदु नाम दिया है। ये बिंदु भी दो होते हैः पूर्व और पार्श्व (सामनेका और पिछला) पातबिन्दु। एक पातबिंदु की तरफ जानेवाली निकलती आघात किरणें उन्मग्न किरणे होकर दूसरे पात बिंदुमें घुसकर पहलेकी दिशामें बाहर निकलती हैं। इन बिंदुओंके पृष्ठको पातबिंदु पृष्ठ नाम दिया है। ये पातबिंदु तारकापिधानके पीछे अनुक्रमसे ६·९ और ७·३ मि. मि. होते हैं।

असली (मुख्य) केंद्रिय बिंदु (फोकल पॉइन्ट्स) ये भी सामनेका और पिछला बिंदु ऐसे दो होते हैं। दृगक्षके जिस बिंदुपर की अप्रसृत किरणें (डायव्हर्जिंग रेज) नेत्रगोलकके वक्रीभवन मार्गमें घुसकर समानान्तर होती हैं उस बिंदुको सामनेका **असली केन्द्रिय बिन्दु** (ऍंटीरियर प्रायमरी फोकल पॉइन्ट) कहते है। समानान्तर किरणें वक्रीभवन मार्गमें जाके दृगक्षके जिस बिन्दुपर केन्द्रीभूत होती है उस बिन्दुको पिछला **असली केन्द्रिय बिन्दु** (पोस्टेरियर सेकन्डरी फोकल पॉईन्ट) कहते हैं। सामनेका **असली केन्द्रिय बिन्दु** तारकापिधानके सामने १४ मि. मि. फांसलेपर होता है। पिछला **असली केन्द्रिय बिन्दु** तारकापिधान की पिछली ओरको २३ मि. मि. फासलेपर यानी दृष्टिरज्जुशीर्ष—नेत्रबिम्ब—और दृष्टिस्थान इन दोनोंके बीचमें रहता है।

कोई भी पदार्थकी दृष्टिपटलपरकी वक्रीभूत प्रतिमा स्पष्ट होनेके लिये पदार्थकी किरणें नेत्रगोलकके दृगक्षकी तरफ जाकर उनका दृष्टिपटल पर बराबर केन्द्रीभूत होना जरूरी है। किरणोंके केन्द्रीभूत होनेका नियमन दो बातोंसे होता है : एक वक्रीभवन माध्यमके बांककी त्रिज्या और दूसरे जिन भिन्न भिन्न वक्रीभवन माध्यमोंसे किरणें जाती हैं उन माध्यमोंको वक्रीभवन आवर्तनांकोंमेंका फर्क। बांककी त्रिज्या जिस प्रमाणमें छोटी होती है, और दोनों माध्यमोंके वक्रीभवन आवर्तनांकोंका फर्क जितना ज्यादह होता है उतनेही ज्यादह जोरसे किरणोंको वक्रीभवन होता है।

प्रतिमाका आकारः—दृष्टिपटल पर पदार्थकी गिरी हुई प्रतिमाका आकार पदार्थके आकारके समप्रमाणमें और पदार्थ और नेत्रगोलक इन दोनोंमेंके फासलेके व्यस्त–विपरीत प्रमाणपर अवलंबित होता है। प्रतिमा छोटी और प्रतीप याने उलटी होती है। अर्थात पदार्थके ऊपरके और नीचेके भाग अनुक्रमसे दृष्टिपटलके नीचे और ऊपरके भागपर गिरते है। और पदार्थकी दाहिनी बाजू और बांई बाजू दृष्टिपटल पर अनुक्रमसे बांई और दाहिनी ओरको होती है। बाह्य पदार्थकी प्रतिमाका दृष्टिपटल परका आकार नीचे लिखे हुएँ नियमानुसार जानना संभव है।

पदार्थका आकार और पातबिन्दूसे प्रतिमाके अन्तर इन दोनोंके गुणाकारको पातबिन्दुसे पदार्थके अन्तरसे भाग दें तो उत्तर प्रतिमाका आकार होगा।

$$\text{प्रतिमाका आकार} = \frac{\text{पदार्थका आकार} \times \text{प्रतिमाका पातबिन्दु अन्तर}}{\text{पदार्थका पातबिन्दुसे अन्तर}}$$

दृष्टिपटलकी प्रतिमाकी रचना स्किम्याटिक नेत्रगोलकपरसे और प्रधान दिग्बिंदुकी सहायतासे कर सकते हैं। अब पदार्थके सिरोंपरसे पा पातबिंदुमेंसे दृष्टिपटलको मिलती हुई दो रेषाएँ अ आ ब बा निकाली तो दृष्टिपटलका आ बा भाग ही प्रतिमाका आकार होगा। यह प्रतिमा वास्तविक, उलटी और छोटी (रियल, इनव्हरटेड नं. २५०) होती है।

दृष्टिकोन सामनेके अब पदार्थके सिरोंपरसे और नेत्रगोलकके **पा** पातबिन्दुसे दृष्टिपटलको मिलनेवाली दो सीधी रेषाएँ **अपाआ बपाबा** निकाली तो इन दोनों रेषाओंसे पातबिन्दुपर होनेवाले कोणको दृष्टिकोण ∟अपाब कहते हैं। अर्थात किसी भी पदार्थका नेत्रगोलके पातबिन्दुसे बना हुवा कोण दृष्टिकोण होता है। उसी कोणसे दृक्शक्ति की तीव्रताका(व्हिज्युअल अक्युइटी) नाप करते हैं। प्रमाणके आकारकी वस्तु जितनी दूरसे देखी जायगी उतनीही दृक्शक्ति ज्यादह तीव्र होगी। या दृष्टिकोण जितना सूक्ष्म होगा उतनीही दृक्शक्ति ज्यादह तीव्र होगी। नैसर्गिक नेत्रगोलकका लघुत्तम दृष्टिकोण एक मिनिटका समझा गया है। दृष्टिकोण और दृष्टिपटलकी प्रतिमाके पातबिन्दुसे होनेवाले कोण ये दोनों बराबर प्रमाणके होते हैं। भिन्न भिन्न फांसलेपरके पदार्थोंके पातबिन्दुओंसे एक ही प्रमाणके किये हुए कोणसे उन पदार्थों की दृष्टिपटल परकी प्रतिमाएँ समान आकारकी होती हैं (चित्र न. २५१ देखिये)।
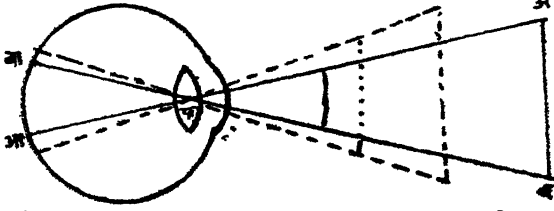
चित्र नं. २५०

चित्र नं. २५१
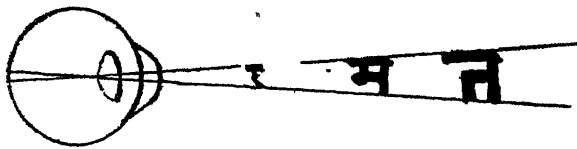
दृक्शक्ति तीव्रता (दृ. श. ती) याने लघुत्तम दृष्टिकोणका नाप दो तरहसे होता है। (१) निश्चित आकार की वस्तु ज्यादहसे ज्यादह कितनी दूरीसे स्पष्ट दिखाई देती है, इस परसे या (२) बीस फुट याने छः मीटरके फासलेपरसे **स्नेलनके** छोटेसे छोटे कसौटीके हरूफ (निकषाक्षरों) को पढनेसे दृक्शक्तिकी तीव्रताको नापनेका दूसरा तरीका है। स्नेलनके सब हरूफोका पातबिन्दुसे पाच मिनिटका कोण होता है और हरूफके बाजूका कोण एक मिनिटका होता है। जिस फांसलेसे निकषाक्षर या हरूफ दिखाई देंगे और जितने फासलेपरसे ये हरूफ दिखने चाहिये इन दोनों अन्तरके प्रमाणपद इतनी दृक्शक्तिकी तीव्रताका प्रमाण होता है।

$$\text{दृ. श. ती.} = \frac{\text{रोगीको दिखा हुआ पदार्थका अन्तर ६० (मि.)}}{\text{पदार्थ जितने अन्तरसे दीखना चाहिये ६ (मि.)}}$$

लम्बे अन्तरकी दृक्शक्तीकी तीव्रता छः मीटरसे नापते हैं। क्यों कि उस अन्तरपर दृक्संधान शक्ति ढीली याने विश्रामावस्थामें होती है। नज़दीककी दृक्शक्ति की तीव्रता अतिसूक्ष्म पदार्थ कितने नज़दीकसे दिखाई पडते हैं इसपरसे जान सकते है।

दृक्संधानशक्ति

नैसर्गिक नेत्रगोलपर गिरी हुई समानान्तर किरणें बराबर दृष्टिपटलपर जिस वक्री-भवन व्यूहसे केन्द्रीभूत होती हैं उसका वर्णन कर चुके हैं, किन्तु नेत्रगोलकका कार्य बराबर होनेके लिये मनुष्यको नज़दीकका और दूर का भी स्पष्ट दिखाई पडना जरूरी है। ऐसा ख्याल करो कि आप एक किताब पढ रहे है। और अगर इस समयमें नेत्र और किताबके बीचमें एक पेनसिल पकडे तो पेनसिल अस्पष्ट और मोटीसी दिखाई पडेगी। पेनसिल स्पष्ट दिखाई पडे तो किताब के अक्षर अस्पष्ट से मालूम होंगे। एकही समयमें दोनों पदार्थमेंसे एक अस्पष्ट दिखाई देनेका कारण एकही समयमें भिन्न भिन्न फासलों परके पदार्थपर दृष्टि स्थिर करनेका कार्य अपनी दृक्संधान शक्तिसे नहीं हो सकता। और यह भी संभाव्य है कि नेत्रमें दूर-दीर्घदृष्टित्व या विकट-न्हस्व दृष्टित्व के जैसे वक्रीभवन दोष होनेसे अस्पष्ट दिखाई पडता है। इसी कारणसे पदार्थोंकी किरणें दृष्टिपटलपर बराबर केन्द्रीभूत नहीं होतीं और उसके बदले दृष्टिपटलपर विस्तृत प्रकाश मंडल गिरता है। और पदार्थकी प्रतिमा अस्पष्ट दिखाई देती है। विस्तृत प्रकाश मंडल जितना मोटा होगा उतनी ही अस्पष्ट और दूर प्रतिमा मालूम होती है। विस्तृत प्रकाश मडलोंके आकार कनीनिकाके आकारसे नियंत्रित होते हैं। कनीनिका बहुत विस्तृत हो तो प्रकाश मंडल भी बडे होंगे; और कनीनिका संकुचित हो तो प्रकाश मंडल छोटे होंगे। निकट दृष्टिवाले वृद्ध लोग ऐसा समझते हैं कि जैसी जैसी उमर बढती जाती है वैसी वैसी उनकी दृष्टीमें तो सुधारा होता है। किंतु वस्तुस्थिति ऐसी होती है कि बूढेपनमें कनीनिकाका आकार छोटा होनेसे विस्तृत प्रकाश मंडल भी छोटे होते हैं। इस कारणसे प्रतिमा अब पहलेसे ज्यादह स्पष्ट होती है।

जब कोई मनुष्य दूरके पदार्थ परसे नज़दीकके पदार्थपर दृष्टि स्थिर करता है तब उस मनुष्यको कुछ व्यवस्थापनगति करनेकी आवश्यकता मालूम होती है। यह व्यवस्थापनगति कार्यक्षम स्वरूपकी होती है लेकिन जब निकट पदार्थ परसे दूरके पदार्थपर दृष्टि स्थिर करता है, जब, पहले, कार्यके संधानिक स्नायुओंके कार्योंको शिथिल करनेकी आवश्यकता होती है। जब निसर्ग दृष्टिवाला मनुष्य बीस फुटसे आगे यानी आनन्त्यपर दृष्टि डालता है तब उसके सब संधानिक नेत्रस्नायु विश्रामावस्थामें रहते हैं। वह विश्रामावस्था संधानिक स्नायुओंके रोगमें और जब वे अट्रोपीनसे स्तंभित होते हैं तब भी रहती है।

भिन्न भिन्न अन्तरों-फासलों-परके पदार्थ स्पष्ट देखने की नेत्रगोलककी नैसर्गिक शक्ति को हि दृक्संधानशक्ति कहते हैं। पहले वर्णन किये हुए किताब और पेनसिल के दृष्टांत में जब किताब के शब्द स्पष्ट दीखते हैं तब उन शब्दोंकी प्रतिमाएँ बराबर दृष्टिपटल पर केन्द्रीभूत होती हैं, और पेनसिल अस्पष्ट दिखाई देती है। क्योंकि पेनसिल की किरणें दृष्टिपटल पर केन्द्रीभूत नहीं होतीं, किन्तु दृष्टिपटलके पीछे उनके सहचरित केन्द्रोंपर केन्द्रीभूत

होनेसे दृष्टिपटल पर सिर्फ विस्तृत प्रकाश मंडल ही गिरते हैं । इसी कारणसे पेनसिल अस्पष्ट दिखाई देती है । दृष्टिपटलकी पिछली ओर को केन्द्रीभूत होनेवाली किरणोंको दृष्टिपटल पर केन्द्रीभूत करनेकी नेत्रगोलककी शक्ति को ही दृक् संधानशक्ति कहते हैं । और जिन घटकोसे यह कार्य होता है उस घटक समूह को दृक्संधानका व्यूह या तंत्र (मेक्यानिज़म ऑफ अकोमोडेशन) ऐसा नाम दिया है । यह दृक्संधान व्यूह स्फटिकमणि और तारकातीत पिंडके स्नायु इन दो घटकोसे असलमे बना हुआ है । और यही दो घटक दृक्संधानके (तंत्रके) व्यूह के कार्य मे भाग लेते हैं ।

दृक्संधान व्यूह का अस्तित्व पंडित **स्किनरनें** सन १६१९ में प्रयोग करके प्रस्थापित किया । इस प्रयोग का स्पष्टीकरण नीचे के चित्रसे चित्र नं. २५२ होगा । एक कार्डपर कनीनिकाके व्यासकी लंबाईसे किंचित् कम लंबाई के अन्तर पर सूचीसे दो छिद्र करके उनमेंसे कुछ अंतरपर लंब रेषामें पकडी हुई सूचीकी तरफ देखें तो एक हि सूची दिखेगी । लेकिन सूचीके उसपार या इस पारके पदार्थ पर नजर डाले तो एक सूची के बदले दो सूचियां दिखाई देगी । कार्डपर **छि छि** ऐसे दो छिद्र बनाये तो सामनेकी "**व**" वस्तुपरकी किरणें "**प**" इस परदेपर बराबर केन्द्रीभूत होगी । लेकिन परदा **पा** जगह पर हटाया तो सूचीकी दो प्रतिमाएँ **छी छी** दिखेंगी ।

चित्र नं. २५२
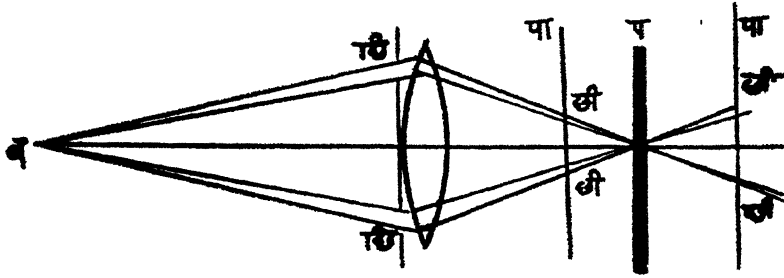
दृक्संधान व्यूह व्यापार

दृक्संधान व्यूहके कार्यके संबंधमें बहुतसी कल्पनाएँ प्रचलित हैं । लेकिन सब कल्पनाओंका एकमत अभीतक नहीं हुआ । इन कल्पनाओंमेंसे प्रचलित कल्पनाओंका वर्णन संक्षिप्तम नीचे दिया है ।

(१) **हेल्महोल्टज्**की कल्पना सबसे पुरातन है, इस कल्पनाका प्रचार हेल्महोल्टज् पंडितने सन १८५५ मे किया । इनकी कल्पनानुसार स्फटिकमणिका आंदोलन बंद नैसर्गिक अवस्थामें हमेशा तना हुआ रहता है । जब दृक्संधान व्यूहके कार्यमें तारकातीत पिंडकी स्नायुका आकुंचन होता है तब इस स्नायुके दोनो किस्मके तन्तु इस कार्यमें भाग लेते है । स्नायुके रेखांशके **लंबे** तन्तुओंके आकुंचनसे कृष्णपटल आगेकी ओरको खींचा जाता है । और स्नायुके **वर्तुलवर्ती** तन्तुओंके आकुंचनसे तारकातीत पिंडकी प्ररोहा स्फटिकमणिके परिधिकी तरफ जानेसे स्फटिकमणिका आंदोलन बंद ढीला हो जाता है । और इसी

वजहसे स्फटिकमणिके आवरणपरका दवाव कम हो जाता है। इसका असर यह होता है कि स्फटिकमाणि ज्यादह गोलाकार होता है यानी फूल जाता है। ध्यानमें रखिये कि स्फटिकमणिमें स्थितिस्थापकताका अभाव होता है लेकिन उसके आवरणमें स्थितिस्थापकता होती है, जिसका सबूत यह है कि आवरणमे काट देनेसे उसकी काटी हुई किनारियां अपनेपर मुड जाती है और स्फटिकमणिके तन्तु बाहर जाते हैं। उसके पुरोपार्श्वगामी अक्षकी लंबाई बढ जाती है। और फिर स्फटिकमणिके दोनो पृष्ठ–दर्शनी और पिछली–दर्शनी ज्यादह प्रमाणमें–उन्नतोदर हो जाती है। उन्नतोदरता बढनेसे निकटवर्ती पदार्थोंकी किरणें दृष्टिपटलकर केन्द्रीभूत होती है। दृक्संधानशक्तिका असली दवाव स्नायुके वर्तुलवर्ती तंतुपर होता है।

इस कल्पनानुसार स्फटिकमणिकी दर्शनी पृष्ठ अतिपरवलयाकृति (हायपरबोलिक) किस तरहसे होती है इसका निर्णय बराबर न होनेसे सन १९११ में **गुलस्ट्रांड** पंडितने ऐसा प्रतिपादन किया कि स्फटिकमणिके आदोलन बंदकी तनी हुअी अवस्था और स्फटिकमणिके आवरण की स्थितिस्थापकता इन दोनों अवस्थाओमे फरक होनेपर स्फटिकमणिकी उन्नतोदरता अवलंबित रहती है। आदोलन बंद जितने ज्यादह प्रमाणमें ढीला होगा उतने ज्यादह प्रमाणमे आवरणकी स्थितिस्थापकता जोरदार होगी और स्फटिकमणि उन्नतोदर होगा। दृक्संधान व्यापार, कार्यक्षम होनेके लिये दो बातोंकी आवश्यकता होती है। एक स्फटिकमणि दवना चाहिये। और दूसरी तारकातीत पिंडके स्नायुकी शक्ति आरंभसेही जोरदार रहनी चाहिये। स्फटिकमणिके घटक लचलचा नहीं होंगे तो तारकातीत पिंडके स्नायु कितनीही जोरदार होवे तो भी स्फटिमाणिके आकारमे फरक नहीं होगा। तारकातीत पिंडकी स्नायु कमजोर या स्तंभित होनेसे स्फटिकमणि पूर्ण लचलचा याने दव जानेवाला हो तोभी स्फटिकमणिके आकारमे फरक नहीं होगा। प्रथम अवस्थाको **भौतिक दृक्संधानशक्ति** (फिझिकल अकामोडेशन) और द्वितीय अवस्थाको **प्राकृतिक दृक्संधानशक्ति** (फिझियालाजिकल अकामोडेशन) कहा जाय ऐसा फुक्स का मत है।

(२) टिशेरिंग की कल्पनाः—इस पंडितने ऐसी नयी कल्पनाका प्रचार किया कि तारकातीत पिंडकी स्नायुके आकुंचन में स्फटिकमणिका आंदोलन बंद ढील होनेके बदले चपटा होता है। उसके **असरसे** स्फटिकमणिका परिधिस्थित भाग चपटा होता है। और कनीनिकाकी ओरका भाग अतिपरवलयाकृती होता है। इन दोनो कल्पनानुसार स्फटिकमणिका केन्द्रस्थित भाग उन्नतोदर होता है।

(३) लिओनार्ड हिलकी कल्पनाः—इस पंडितने सन १९२० मे अपनी कल्पनाका प्रचार किया। इनकी कल्पनानुसार तारकातीतपिंडकी स्नायुके आकुंचनसे पार्श्व वेश्मनीका चाक्षुष जल दब जानेसे स्फटिकमणि का परिधिस्थित भाग चपटा हो जाता है। और केन्द्रस्थित भाग फूल जाता है। इस कल्पनाको **भौतिक जलशास्त्रीय कल्पना** कहते हैं। (हायड्रालिक थिअरी)

(४) क्रोमरकी कल्पनाः—इनकी कल्पनाके अनुसार नजदीक देखनेके समयमें तारकाके स्नायुओंका–कनीनिका का प्रसरण करनेवाले स्नायु और कनीनिका का आकुंचन करनेवाले

स्नायुओंका आकुंचन होता है। विश्रामावस्थामें तारका सामनेकी ओरको फूलती रहती है। नज़दीक देखनेमें इन दोनों स्नायुओंका आकुंचन होनेसे स्फटिकमणि का परिधी का भाग दब जाता है। इसी समयमें तारकातीत पिंडके स्नायुका आकुंचन होनेसे कृष्णपटल भी सामने खिंच जाता है। इन दोनों कारणोंकी वजहसे स्फटिकद्रवपिंड आगेको ढकेला जाता है। स्फटिकमणिके कनीनिकाके भागको छोडकर सब ओरके भाग दब जाते हैं और कनीनिकामेंका भाग आगे जाता है। इस कल्पनाका खंडन **फान ग्राफने** किया। उनका मत ऐसा था कि जिन मनुष्योंमें तारकाका अभाव होता है उनको नजदीक और दूरका भी बराबर दीखता है। इस लिये यह तारका आकुंचन की कल्पना बराबर नहीं है।

(५) **कारमोना ई वॅले की कल्पनाः**—दृक्संधानशक्तिमें तारकातीत पिंडकी स्नायुके बल्याकार तन्तुओंसे स्फटिकमणिका परिधी स्थित भाग दब जानेसे ज्ञानुलाके आगेके तन्तुपर असर होता है। उसकी वजहसे स्फटिकमणिका मृदुभाग केन्द्रकी ओरको ढकेला जाता है फिर केन्द्र स्थित भाग फूलता है।

(६) **ग्रासमन की कल्पनाः**—जिन लोगोंके नेत्रगोलकमें तारकाका अभाव होता है उनमें स्फटिकमणिकी परिधि छोटी होनेसे स्फटिकमणिका पूर्व ध्रुव आगेकी ओरको ढकेला जाता है और पार्श्व ध्रुव पीछे की ओरको जाता है।

(७) **मूलरकी कल्पनाः**—

दीर्घ दृष्टित्वके लोगोंको दूर और नज़दीकका स्पष्ट देखनेके दोनों समयमें अपनी दृक्संधान शक्ति का इस्तेमाल करनेकी जरूरत माल्रम होती है। इस कारणसे उनमें तारकातीत पिंडीय स्नायुके वर्तुलवर्ती तन्तुओंकी अतिवृद्धि होती है।

बूढेपनमें भौतिक दृक्संधान शक्ति क्षीण हो जाती है। और किसी बीमारीसे या अन्य कारणसे मनुष्यकी शक्ति कम हो जाये तो प्राकृतिक दृक्संधान शक्ति क्षीण हो जाती है।

दृक्संधान व्यूहकी शक्तिका प्राकृतिक तुलनात्मक विवेचनः—

मत्स्यवर्ग प्राणियोंके नेत्रकी रचना इस तरहसे बनी है कि उन प्राणियोंको फकत् दूर देखनेके समयमें दृक्संधान शक्तिकी जरूरत माल्रम होती है। नज़दीकका देखनेके लिये दृक्संधान शक्तिकी जरूरत नहीं होती। दूर देखनेके समयमें उनका स्फटिकमणि पीछेकी ओरको ढकेला जाता है। यह कार्य स्फटिकमणि पीछे खींचनेवाले स्नायुके आकुंचनसे होता है। सन १८९४ में **बीर** पंडितने शोध किया कि जलमें मत्स्यकी आंखोंके वक्रीभवनमें ३—१२ डीयापटर फरक हो सकता है। अन्य पृष्ठवंशी प्राणियोंको नज़दीक देखनेके समयमें दृक्संधान शक्तिकी जरूरत माल्रम होती है। भूजलचर प्राणियोंमें दृक्संधान व्यूहका अभाव है। लेकिन उसका कार्य कनीनिका आकुंचनसे होता है। सर्पजातीय प्राणियोंमें और पक्षिगणोंमें दृक्संधान व्यूहका कार्य स्फटिकमणिके आकारमें फरक होकर होता है, ऐसा **हेस**का मत है। तारकातीत पिंडकी स्नायुके आकुंचनमें पार्श्ववेश्मनीमेंका दबाव बढ़ जानेसे स्फटिकमणि आगे ढकेला जाता है और उसका आंशिक भाग फूलता है और इसी कारणसे वक्रीभवन शक्ति बढती है। रात्रिंचर पक्षिगणोंको छोडके अन्य पक्षिगणोंकी दृक्संधान शक्ति

ज्यादह होती है। सस्तन प्राणियोकी दृक्संधान शक्ति बहुत कम होती है। मनुष्यप्राणियोंमें तारकातीत पिंडकी स्नायुका विकास सबसे ज्यादह होनेसे उनकी दृक्संधान क्षेत्रमर्यादा ज्यादह होती है।

दृक्संधान व्यूहके मज्जातन्तु—दृक्संधान व्यूह मज्जापथ

दृक्संधान व्यूहका कार्य इच्छाशक्तिके काबूमें होता है। तारकातीत पिंडके स्नायुके मज्जातन्तु चाक्षुष मज्जाकंद अर्थात तारकातीत पिंडीय मज्जाकंद (सिलियरी गैंग्लियन) की शाखाओंसे पाये जाते हैं। इन तंतुओंका संबंध तीसरे मस्तिष्क रज्जुमेंसे उनके मस्तिष्क केंद्रके अगले भागमें स्थित होनेवाले दृक्संधान के उपकेंद्रतक मिलाफ होता है। इस उप-केंद्र भागको उत्तेजित करनेसे तारकातीत पिंड स्नायुका आकुंचन होकर नज़दीकके पदार्थ दीखेंगे। यही परिणाम तीसरे मस्तिष्करज्जु या उसकी तारकातीत पिंडकी लघुमज्जातंतुओंको उत्तेजित करनेसे भी होगा। यदि दृक्संधान व्यूहके इस मज्जापथको चोट लगे या उसका स्तंभ हो तो नज़दीक का नहीं दीखेगा।

दृक्संधान शक्तिमें नेत्रगोलकके घटकोंमे होनेवाले फरक

(१) स्फटिकमणिका पूर्व गोलाकार पृष्ठ अधिक गोल होता है। इसका परिणाम यह होता है कि कनीनिकाके सामनेके पूर्व वेश्मनीका भाग उथला होता है और परिधिभाग

चित्र नं. २५३
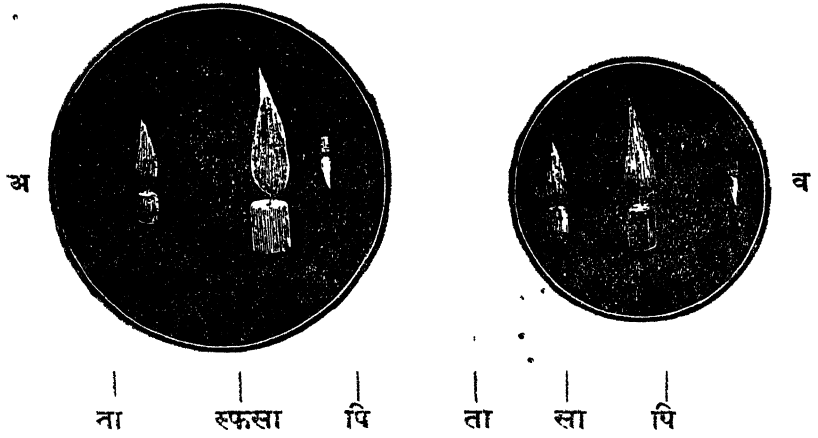
अ. कनीनिका प्रसृत हुई है और दृक्संधान शक्तिका अभाव है

ब. कनीनिका संकुचित है और दृक्संधान शक्तिका इस्तेमाल किया है

ता. तारकापिधानकी उन्नतोदर पृष्ठकी प्रतिमा। **स्फसा** स्फटिक मणिके सामनेके उन्नतोदर पृष्ठकी प्रतिमा। **पि** स्फटिक मणिकी पिछली नतोदर पृष्ठकी सीमाकी प्रतिमा।

ज्यादह गहरा दीखता है। (२) कनीनिकाके संकोचक स्नायुके आकुंचनसे कनीनिका छोटी होती है। जब दोनों नेत्र दृक्संधान व्यूह व्यापारमें भाग लेते हैं, तब दोनों नेत्रोंकी सरल आन्तर चालनी स्नायुके आकुंचन होनेसे दोनों नेत्र एक केंद्राभिमुख याने अंदरकी ओरको आते हैं।

दृक्संधान शक्ति कार्यमें स्फटिकमणिके पूर्वगोलीय पृष्ठके फरक—(१) पुरो पृष्ठकी गोलीयता ज्यादह बढती है इसका निश्चय प्रतिबिम्बित परकंजी प्रतिमासे कर सकते हैं। ये प्रतिमाएँ तीन होती हैः एक तारकापिधानके पुरो या दर्शनी पृष्ठकी, दूसरी स्फटिकमणिके पुरो पृष्ठकी, और तीसरी स्फटिकमणिके पार्श्व नतोदर पृष्ठकी सीमाकी। तारकापिधान और स्फटिकमणि इन दोनोंके पुरो पृष्ठ उन्नतोदर दर्पणके जैसे ही कार्य करते है। और स्फटिकमणि की पार्श्व नतोदर सीमा नतोदर दर्पणके जैसा कार्य करती है। पहले दो पृष्ठोंकी प्रतिमाएँ भ्रामक, स्पष्ट और सीधी हो जाती है। लेकिन तीसरे पृष्ठकी प्रतिमा वास्तविक उलटी और छोटीसी होती है। दूसरी बीचकी प्रतिमाका स्थान पहली और तीसरी प्रतिमाओंके बीचमे होता है। जब नज़दीककी वस्तु देखनेके लिये दृक्संधान शक्तिका इस्तेमाल किया जाता है तब बीचमेंकी प्रतिमाका आकार और भी छोटा होकर यह प्रतिमा पहले प्रतिमाके नज़दीक जाती है क्योंकि दृक्संधान कार्यमे स्फटिकमणिके पूर्व पृष्ठकी गोलीयता ज्यादह होती है। दृक्संधान कार्यके पहले इस पृष्ठकी त्रिज्या १० मि. मि. होती है और बादमें ६ मि. मि. होती है (चि. नं. २५३)।

दृक्संधान शक्ति नापने मे कुछ शब्द-प्रयोग का इस्तेमाल करना हमेशा जरूरी होती है। प्रथम उन शब्दों की व्याख्या देके फिर नापन पद्धतिका विवेचन करेंगे **दूर बिन्दु** (दू) (पंक्टम रिमोटम्—फार पॉईन्ट **R**) कोई पंडित इसी को दविष्ट बिंदु भी कहते है, जिस बिंदु परकी किरणें बिना दृक्संधान शक्ति के इस्तेमालसे याने नेत्रगोलक की विश्रामावस्थामे उसके दृष्टिपटल पर बराबर केन्द्रीभूत होती है उस बिंदुको नेत्रगोलकका **दूरबिन्दु** कहते हैं। निसर्ग दृष्टि नेत्रगोलकमें दूरबिंदु आनन्त्य (इनफिनिटी) या बीस फुट के पार होता है। इस बिंदुकी किरणे समानान्तर होती है और वे सिर्फ दृष्टिपटलपर केन्द्रीभूत होती हैं।

निकट बिन्दु (नि. बि.) पंक्टम प्राक्सिमम—नीयर पॉईन्ट **P.**) नेदिष्ट बिंदु—जिस बिंदुकी किरणें महत्तम दृक्संधान शक्तिकी सहायतासे दृष्टिपटल पर केंद्रीभूत होती है उस बिंदको नेत्रगोलक का निकट बिंदु कहते है।

दृक्संधान शक्ति के व्यापार का विस्तार वि. (आम्पलिट्यूड ऑफ अकामोडेशन **A.**) दूरबिंदूके पदार्थ देखनेके लिये जितना वक्रीभवन शक्तिका उपयोग होना है और फिर नज़दीकके पदार्थ देखनेके लिये दृक्संधान शक्ति सहित वक्रीभवन शक्तिका उपयोग करना पडता है इन दोनों वक्रीभवन शक्तियोंके अतरको दृक् संधान व्यापार का विस्तार कहते हैं। वि = नि – दू ऐसा सूत्र लिखते हैं (**A = P – R**)।

निसर्ग दृष्टिवाले लोगोंके दूरबिंदुका स्थान एकही जगह याने आनन्त्य पर या बीस फुट के पार स्थिर होता है। लेकिन निकट बिन्दुके स्थानमे फरक होता है। इन लोगोंके जिस लघुत्तम अंतर परसे ज्यादहसे ज्यादह सूक्ष्म अक्षर स्पष्ट दिखेंगे, वह अंतर इन लोगोंके निकट बिंदुका स्थान होगा। ऐसा ख्याल कीजिये कि निसर्ग दृष्टि मनुष्य छः मिटर या २० फुट अंतर परसे स्नेलन की सब कसौटीके हरूफ (निकपाक्षर) पढ सकता है और दस सेंटीमिटर परसे सूक्ष्म अक्षर भी पढ सकता है। अर्थात उसका दूरबिंदु—दू. वि.—छः मीटर याने आनन्त्य पर होगा और उसका निकट बिंदु नि. बि. दस सेंटिमीटर पर होगा।

बि=नि–दू इस सूत्रमें अन्तर के बदले गोलीय शीशे का डी–डीयपटेरिक–मूल्य लिखनेका तरीका है। एक मीटर मुख्यकेंद्रीय लम्बाईके गोलीय शीशेको एक डी गोलीय शीशा कहते हैं। और यही शीशा दृक्संधान शक्तिके नापनेका ही एक समजते हैं (चि. नं. २५४)।

निसर्ग दृष्टि मनुष्यका निकटबिंदु (नि. बि.) यदि दस सेंटिमीर पर होवे तो इस अन्तरके डीयापटेरिक मूल्य १०० (सौ) को १० से. मी. से भाग देवें तो जो उत्तर आएगा वह $\frac{१००}{१०}$ से. मी. = १० डी. होगा; जब निसर्ग दृष्टि मनुष्य अपने दूर बिंदुके पदार्थोंको देखता है तब उन पदार्थोंकी किरणें समानान्तर होनेसे दृष्टिपटलपर ही केन्द्रीभूत होती है। उस मनुष्यको दृक्संधान शक्तिकी जरूरत नहीं मालूम होती। वह शक्ति विश्रामावस्थामें होनेसे उसका मूल्य शून्य जैसा होता है। किन्तु जब वही मनुष्य निकटबिंदु के–नज़दीकके-पदार्थको देखता है तब उस पदार्थको स्पष्ट दीखनेमें उसे तकलीफ मालूम पडती है इस लिये-उस मनुष्यको पदार्थ स्पष्ट दीखनेके लिये दृक्संधान शक्तिकी जरूरत मालूम होती है। उसका निकट बिंदु १० से. मी. पर हो तो पदार्थ स्पष्ट दीखनेके लिये उसको अपनी महत्तम दृक्संधान शक्तिका उपयोग करना होगा। इस दृक्संधान शक्तिके इस्तेमालसे स्फटिक-मणिके पुरो पृष्ठकी गोलियता (बाक) ज्यादह हो जाती है और इसी वजहसे निकट-बिंदुके पदार्थोंकी किरणें ज्यादह वक्रीभूत होके दृष्टिपटलपर केन्द्रीभूत होगी और फिर अति सूक्ष्म अक्षर भी स्पष्ट दीखेंगे।

जब निसर्ग दृष्टि मनुष्य अपने दूरबिंदुकी ओर देखता रहे तब उसके १० से. मि. के निकट बिंदुपर एक किताब पकडकर उसके नेत्रके सामने १० से. मि. मूल्यका १० डीया-पटरका शीशा रखें तो उसको किताबके अक्षर स्पष्ट दीखेंगे। इसका कारण यह है कि किताबपरकी किरणें इस शीशेमेंसे जानेसे समानान्तर होकर दृष्टिपटलपर केन्द्रीभूत होती हैं। अर्थात यह शीशा दृक्संधान शक्तिके कारणसे स्फटिकमणिकी पूर्व पृष्ठकी गोलीयता (बाक) जितनी ज्यादह होती हैं उस शक्तिका नाप होगा।

निसर्गदृष्टि मनुष्यकी दृक्संधान शक्तिको अट्रोपीनसे स्तंभित करें तो भी उसको दूरका दिखता हैं; क्योंकि दूरबिन्दुपरकी किरणें समानान्तर होनेसे दृष्टिपटलपरही केन्द्रीभूत होती हैं। किन्तु निकट बिन्दुपरकी किरणें वर्धमानान्तर (अपसृत) होती हैं। नैसर्गिक अवस्थामें दृक्संधान शक्ति स्फटिकमणिके पूर्व पृष्ठकी गोलीयता ज्यादह बढनेसे ये किरणें दृष्टि-पटलपर केन्द्रीभूत होती है।

लेकिन अट्रोपीनसे दृक्संधान शक्ति स्तंभित होती है। और उसी वजहसे स्फटिक-मणिके पृष्ठोंकी गोलियता नहीं बढ़ सकती। इसलिये निकट बिन्दुकी किरणें दृष्टिपटलपर केन्द्रीभूत न होनेसे मनुष्यको निकट बिंदुके पदार्थ नहीं दिखई देते लेकिन उसके नेत्रके सामने काफी 'डी' शक्तिका उन्नतोदर शीशा रखा जाय तो निकट बिन्दुपरकी किरणें उसमेंसे जाकर समानान्तर होके दृष्टिपटलपर बराबर केन्द्रीभूत होंगी और फिर उस मनुष्यको निकट बिन्दुके पदार्थ स्पष्ट दीखेंगे। यानि अट्रोपीन डालनेके पहले उसकी दृक्संधान शक्ति जो कार्य कर रही थी वही कार्य अब इस शीशेसे होता है। इस लिये यह शीशा उस मनु-ष्यका निकट बिन्दु १० से. मि. पर होगा तो उसके दृक्संधान व्यापार विस्तार का नाप

वि=नि – दू या वि = १० डी – ० या वि = १० डी। क्योंकि दूरबिन्दुपरकी किरणें समानान्तर होनेसे दृष्टिपटलपर विना दृक्संधान शक्तिकी सहायतासे केन्द्रीभूत. होती हैं। इसलिये उसका मूल्य शून्य दू = ० माना है।

दृक्संधान क्षेत्रकी मर्यादा

दूरबिन्दु और निकटबिन्दु इन दोनोंके बीचके अन्तरको दृक्संधान क्षेत्रकी मर्यादा (रेंज ऑफ अकामोडेशन) कहते हैं। नैसर्गिक दृष्टि मनुष्यका यह मर्यादाक्षेत्र उसके दूरबिन्दु–आनत्य–से उसके निकटबिन्दु (१० से. मि.) तक फैला हुआ होता है। ध्यानमें रखिये कि इस क्षेत्रकी मर्यादा डीयाप्टरमें लिखें तो हर ऱ्हस्वदृष्टि मनुष्यके क्षेत्रकी मर्यादा अनिश्चित होती है, क्योंकि इनका दूरबिन्दु आनन्त्यके अन्दर किसी भी स्थानपर होगा। ऐसा समझो कि ऱ्हस्वदृष्टि मनुष्यका दूरबिंदु १० से. मि. पर है और निकट बिन्दु ५ से. मि. पर है तो इस निकट ऱ्हस्वदृष्टि मनुष्यकी दृक्क्षेत्रकी मर्यादा सिर्फ पाच ही से. मि. होगी उसके द. सं. की मर्यादा का मूल्य $= \frac{१००}{५} =$ २० डी होगा।

चित्र नं. २५४
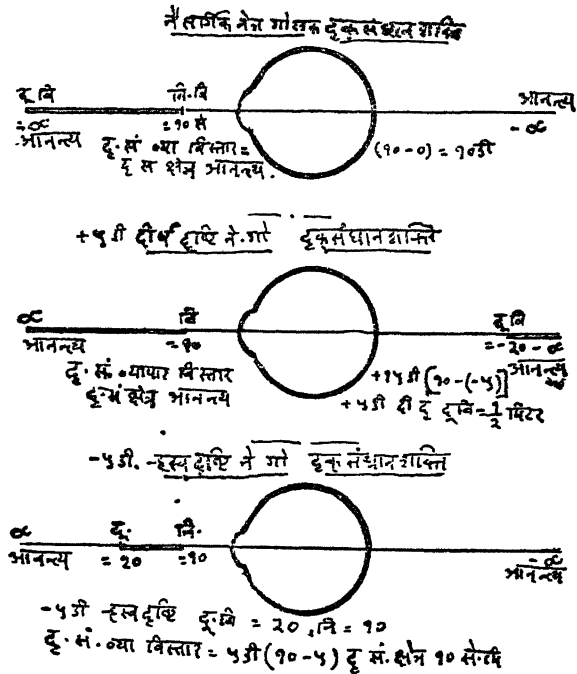
नैसर्गिक दृष्टि मनुष्यकी उमर ३६ साल की और उसका निकट बिंदु २० से. मि.पर हो तो उसके द.स.क्षे.की मर्यादा आनन्त्यसे २० मि.मि.तक होगी यानी द.सं.क्षे.म.का मूल्य ५ डी इतना होगा। इस विवेचनसे यह बात ख्यालमें आयेगी कि दृक्संधानके क्षेत्रकी मर्यादा और दृक्संधान व्यापार विस्तार ये दोनो भिन्न भिन्न हैं। नैसर्गिक दृष्टि मनुष्यका निकट बिन्दु

सापेक्ष एककेन्द्राभिमुखताका नापन करनेके लिये दृक्संधानशक्ति दृश्य पदार्थपर स्थिर करके गोलीय शीशे या त्रिपार्श्वकी सहायतासे एककेन्द्राभिमुखतामें फरक कर सकते हैं। त्रिपार्श्वका तल बाहरकी ओरको करके नेत्रके सामने पकडें तो द्विधा दर्शन (डिप्लोपिया) की तकलीफ बिना ज्यादहसे ज्यादह बलके जिस त्रिपार्श्व को सह सहते हैं वही त्रिपार्श्व सापेक्ष एककेन्द्राभिमुखताके धन भागका नाप होगा । इसी तरहसे त्रिपार्श्व का तल अन्दरकी ओरको करके ऋण भागका नाप ले सकते हैं। तल जब बहारकी ओरको करें तो एक-केन्द्राभिमुखता की शक्ति ज्यादह होती है और तल अन्दरकी ओरको करे तो शक्ति ढीली होती है।

सापेक्ष दृक्संधानशक्ति (चित्र नं. २५५)

जब मनुश्य कोई पदार्थ दोनो नेत्रसे देखता है तब उसकी दृक्संधान शक्ति और एक-केन्द्राभिमुखता दोनों भी एक तंत्रसे कार्य करते है। जब (मनुष्य) २० फुट या उसके पारका पदार्थ देखता है तब उसकी दृक्संधानशक्ति विश्रामावस्थामें होती है इस लिये उसके विस्तारकार्यका मूल्य शून्य होगा और दोनों नेत्रोंके दृगाक्ष समानान्तर होंगे याने दोनो नेत्रकी एककेन्द्राभिमुखता भी विश्रामावस्थामें शून्य होती है । लेकिन जब वही मनुष्य २० से. मि. परके पदार्थ को देखनेकी कोशिश करेगा तब उसको ५ डी मूल्यकी समानबल दृक्संधानशक्ति का इस्तेमाल करना होगा और नेत्रको पाच मिटर कोण जितनी एककेन्द्राभिमुखता करनेकी जरूरत होगी। तब दोनों नेत्र निकट पदार्थ की तरफ अंदरकी ओरको घूम जाएँगें। हमेशा सहकार्य करनेके अभ्यास से दृक्संधानशक्ति और एककेन्द्राभिमुखता इन दोनोमें अन्योन्य संबंध जुडा है। यानें खास प्रमाण की दृक्संधान शक्ति से एककेन्द्रांभिमुखता का प्रमाण हमेशा स्थिर रहता है।

एककेन्द्राभिमुखताके खास अंतरको मिलती हुई दृक्संधानशक्तिका प्रमाण कम या ज्यादह करनेकी शक्ति को **सापेक्ष दृक्संधान व्यापारविस्तार** कहते है। कम या ज्यादह प्रमाणको **सापेक्ष दृक्संधानशक्ति** कहते हैं।

ऐसा नहीं कि दृक्संधानशक्ति और एककेन्द्राभिमुखता इन दोनोंके कायम अन्योय संबंधमें कभी भी फरक नहीं होता। याने खास अन्तरकी एककेन्दाभिमुखतासे जमी हुई दृक्संधानशक्तिके प्रमाणमें फरक हो सकता है।

निसर्ग दृष्टि मनुष्य का दूर बिन्दु **आनन्त्य** स्थानपर (२०फुट के पार) होता है। उसी मनुष्यका निकट बिन्दु १० से.मि.के पास है ऐसा समझें तो उसके दृक्संधान व्यापार विस्तार (वि) का मूल्य १० डी इतना होगा। जब वह मनुष्य दूरबिन्दु पर देखता है तब उसके दोनों नेत्रके दृगाक्ष समानान्तर रहेंगे। यदि यह मनुष्य सामने बराबर बीचमें के ३३ से. मि. पास के अ पदार्थको देखे तो उसके दोनों नेत्र तीन मिटर का कोण करके अंदरकी ओर को जाएँगे याने उस पदार्थपर केन्द्रीभूत होंगे और ३३ से. मि परका पदार्थ स्पष्ट दीखनेके लिये उस मनुष्यको अपने १० डी मूल्यके दृक्संधान व्यापार विस्तारमेंसे ३ डी के बलकी दृक्संधानशक्तिकी जरूरत होगी। (चित्र नं. २५५)

जब वह मनुष्य ३३ से.मि. पर देखता है तो उसी समयमें उसके नेत्रके सामने – १ डी मूल्यका नतोदर शीशा रखें तो तुरन्त वह पदार्थ उसको अस्पष्ट दिखेगा । लेकिन कुछ प्रयाससे पदार्थ स्पष्ट दीखने लगेगा । –१ डी नतोदर काचसे उसके वक्रीभवनमे जो फरक होगा उसका परिणाम नष्ट करनेके लिये याने पदार्थ स्पष्ट दीखनेके लिये उस मनुष्यको अपने दृक्संधान व्यापारमेंसे + १ डी मूल्य की दृक्संधान शक्तिकी जरूरत पडती है । – १ डी के बदले + १ डी का उन्नतोदर शीशा नेत्रोंके सामनें रखें तो वक्रीभवन शक्ति ज्यादह होगी । उस + १ शीशेका परिणाम दूर करनेके लिये उतनेही प्रमाणमें उसको दृक्संगान शक्ति को ढीली करनेकी जरूरत होगी । किन्तु इन दोनों समयमें उसके दोनों नेत्र ३३ सें. मि. (या $\frac{1}{3}$ मिटर) पर ही केन्द्रीभूत रहेंगे ।

चित्र नं. २५५

सापेक्ष दृक्संधानशक्ति

इस तरहसे नेत्रोंके आगे ऋण व्यवकलन-(–) या धन–संकलन (+) चिन्हांकित शीशेके इस्तेमालसे दृक्-संधानशक्तिकी ढील, या जोरदार होनेकी मर्यादा नाप सकते हैं । जिस शीशेके इस्तेमालसे उत्पन्न हुई अस्पष्टता दृक्संधानशक्तिसे दूर हो सकती है वही शीशा दृक्संधान-शक्तिका नाप होगा ।

इस ३३ से. मि. के पदार्थ देखनेवाले मनुष्यके नेत्रके सामने + १ के बदले + २ डी शीशा रखें और फिर भी वह पदार्थ स्पष्ट दीखता हो तो यह बात स्पष्ट है कि उस मनुष्यने ३ डी की दृक्संधानशक्तिका प्रमाण १ डी तक ढीला किया अर्थात उसका सापेक्ष दूर बिन्दु १ डी के मूल्यके अन्तरपर यानें १ मिटरपर है ऐसा समझना चाहिये और इसी तौरसे इसी अन्तर पर (३३ से.मि.) केन्द्रीभूत नेत्रों के सामने–३डी मूल्य का शीशा रखें तो उसका परिणाम दृक्संधान शक्ति का प्रमाण ६ डी तक बढनेसें दूर हो जायगा । याने उस मनुष्य का सापेक्ष निकट बिन्दु जो ३ डी मूल्य के अन्तर पर था वह ६ डी मूल्य के अन्तर पर याने १७ से. मि अन्तर को हट जायगा । याने सापेक्ष दृक्संधान व्यापार विस्तार द.वि=नि'–दू अथवा=६डी–१डी=५डी होगा जिसमेंसे २ डी ऋण और ३ डी धन भाग होगा ।

उपरके विवेचन से यह बात ख्याल में आयेगी कि पदार्थ नेत्रके जितने नज़दीक होगा उतने ही प्रमाण में दृक्संधान मर्यादा क्षेत्र का धन चिन्हांकित का प्रमाण कम होगा और ऋण चिन्हांकित भाग ज्यादह होगा। अखिर को नेत्र नैसर्गिक हो और पदार्थ या स्थैर्य बिन्दु आनन्त्य पर हो तो ऋण चिन्हांकित दृक्संधान व्यापार विस्तार नहीं रहेगा । और जब पदार्थ निकट बिन्दुपर होगा तब धन चिन्हाकित दृक्संधान व्यापार विस्तार शून्यके मूल्य का होगा ।

सापेक्ष दृक्संधान मर्यादा क्षेत्रः—जिस स्थैर्य बिन्दुपर (फिक्सेशन पॉइन्ट) नेत्र केन्द्राभिमुख होते हैं उस बिंदुसे सापेक्ष दृक्संधान मर्यादा क्षेत्र के दो भाग होते हैं, एक भाग स्थैर्य बिंदुके इस पारका भाग और यह भाग वास्तविक घन चिन्हाकित हैं। यह भाग ऊपर के चित्रमें ३ डी से ६ डी तक फैला हुआ होता है और जैसी जरूरत हो उस तरहसे उसका इस्तेमाल हो सकता है। इस लिये इस भाग को बाकी भाग समझनेमें कुछ हरज नहीं हैं। इस भाग को घन (+) भाग कहते है। सापेक्ष दृक्संधान मर्यादा क्षेत्र का दूसरा भाग स्थैर्य बिंदुके उस पार होता है। इसका फैलाव ३ डी से १ डी तक होता है। खास केन्द्राभिमुखता स्थिर रखनेके लिये इसका इस्तेमाल हो चुका है इस लिये इसको ऋण भाग समझना चाहिये। इस भाग को ऋण (−) चिन्हसे सूचित कर सकते हैं। याने ३३ से. मि. पर केन्द्राभिमुख नेत्रके सापेक्ष दृक्संधान मर्यादा क्षेत्र का घन भाग ३ डी है और ऋण भाग २ डी है।

३३ से. मि. पर एककेन्द्राभिमुख नेत्र के सापेक्ष दृक्संधान व्यापार विस्तार का यह वर्णन है। भिन्न भिन्न अन्तर पर एककेन्द्राभिमुख नेत्रके सापेक्ष निकट बिन्दु, सापेक्ष दूर बिंदु और सापेक्ष दृक्संधान मर्यादा क्षेत्र अनुक्रमसे भिन्न भिन्न होते हैं। लेकिन **परम** निकट बिंदु, परम दूरबिंदु और परम दृक्संधान मर्यादित क्षेत्र हमेशा एक ही रहते हैं।

बढ़ती उमरके साथ साथ दृक्संधान शक्तिमें दृश्य होनेवाले फरकः—

मनुष्यकी उमर जैसी जैसी बढ़ती जाती है वैसे वैसे उसकी दृक्संधानशक्ति कमजोर होती है। और यह फरक उसका निकटबिंदु दूर दूर हट जानेसे मालूम होता है।

दृक्संधानशक्तिके गुण-ऱ्हासका कारणः—मनुष्यके बूढेपनमें स्फटिकमणिकी स्थितिस्थापकता आहिस्ते आहिस्ते कम होती है। यह गुणऱ्हासका मुख्य कारण है। इस अवस्थामें स्फटिकमणिमेंका द्रवाश कम होकर उसके केन्द्रस्थित भागमें ज्यादह कठिनता पैदा होती है। इसका परिणाम यह होता है कि स्फटिकमणिका आदोलन बंद कितना भी ज्यादह ढीला हो तो भी स्फटिकमणिके आकारमें कुछ भी फरक नहीं होता। तारकातीत पिंडकी स्नायुकी कमजोरीका दृक्संधान शक्तिके गुणऱ्हाससे कुछ संबंध नहीं है।

नक्षेपरसे समझमें आएगा की दू दू रेषा दूर बिन्दुकि है। यह रेषा शून्यसे शुरू होकर आगे सीधी जाती है। इसपरसे दूरबिंदु स्थानका बोध होगा। नि नि रेषा निकटबिंदु की है। इस रेषापरसे भिन्न भिन्न उम्रमें ८–७२ तक निकट बिंदुका स्थान दिखाया है। यह रेषा तिरछी जाती है। दू दू रेषा और नि नि रेषा इन दोनोंके अन्तर परसे भिन्न भिन्न उम्रोंके दृक्संधान शक्ति व्यापार विस्तारके डीयाप्टेरिक मूल्यका ज्ञान होगा। वह नकशमें बाँएं ओरको दिया है। नकशेके दाहिने ओरको नेत्र केन्द्रीभूत होनेका अन्तर दिया है। (चित्र नं. २५६)

निसर्गदृष्टि नेत्रगोलकमें साधारणतया दूर बिन्दुका स्थान कायम याने आनन्त्य स्थानमें ही होता है। किन्तु उमर जैसी पढ़ती जाती है वैसा निकट बिंदु का स्थान आगे आगे हटता जाता है, यह पहले ही कहा कि है वह आखिरको दूरबिन्दु स्थानके पास जाता है। नि नि रेषा

दू दू रेषाको मिलती है । इन दोनो रेषाके मिलनेके स्थानमें दृक्संधान शक्ति व्यापार शून्य होता है । और इस स्थान से ५५ उमर तक स्फटिकमणिके आकार में फरक नहीं हो सकता । दृक्संधान व्यापार-विस्तार जवानीसे बुढेपनमें कमतीही होता जाता है ।

दृक्संधानशक्तिके गुणऱ्हास का लक्षण

दृक्संधानशक्तिके कम होनेका पहला लक्षण यह है कि नजदीकसे छोटे अक्षर पढ़ने या चित्रकला सरीखे बारीक काम करनेमे तकलीफ होने लगती है । और इसलिये चश्मेकी

भिन्न भिन्न उम्रके अनुसार एक नेत्रीय दृक्संधान व्यापार का विस्तार

मध्यमान या औसत का मूल

चित्र नं. २५६
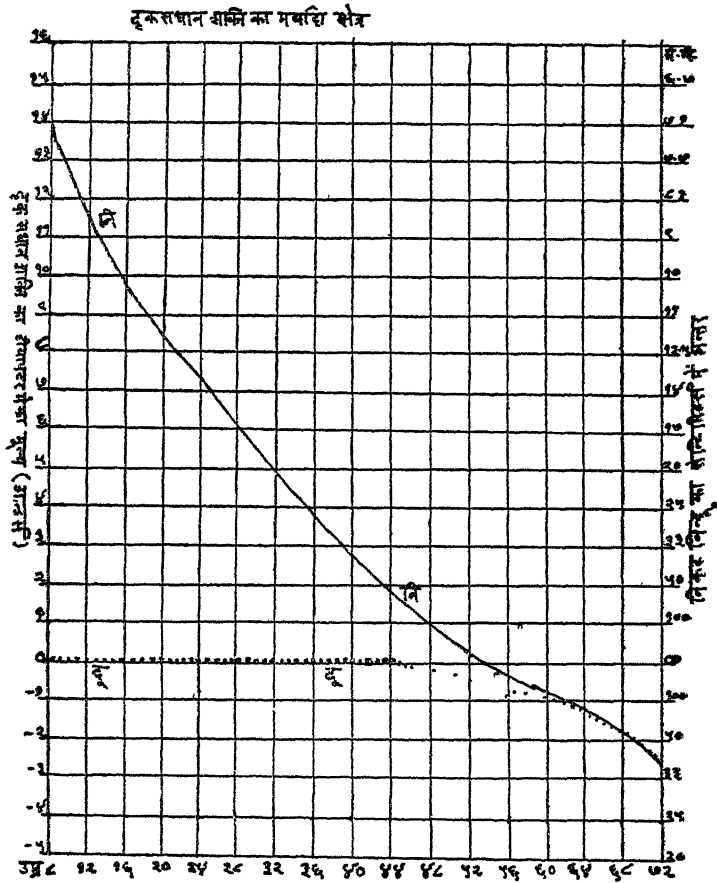
जरूरत मालूम होती है । इससे यह समझना चाहिये कि निकट बिंदु दूर दूर हट गया है । निकट बिंदुके दूर हटनेकी आयुकी मर्यादा हमारे देशमें ६० प्रति सैकडा लोगोंमें ३५ से ३८ की आयुके समयमें दिखाई पड़ती है यह हमारा अनुभव है । इस दशामें पुस्तक दूरसे पढनेमें तकलीफ कम होती है । पाश्चात्य देशोमें यह असर ४० उम्रके बाद शुरू होता है ।

वार्ध्यक्य दृष्टि यह कोई रोग नहीं है; यह प्राकृतिक धर्म है। पैंतीस उम्रके उपर बहुत लोगोंके नेत्रोंमे यह फरक होने लगता है। आयुके बढ़नेके साथ साथ दृक्‌संधान शक्तिका प्रमाण कम होता जाता है। वार्ध्यक्य दृष्टिके लोग पुस्तक को दूर करके पढ़ते हैं। उन्हें छोटे छोटे अक्षर पढनेमें दिक्कत होती है, रातको पढनेसे उन्हें तकलीफ होती हैं क्योंकि मंदप्रकाशसे कनीनिकाके विस्तृत होनेसे विस्तृत प्रकाशमंडल ज्यादह मोटी हो जाती है और इस लिये तकलीफ होती है। इससे बचनेके लिये वे पुस्तक दीपकके उसपार पकडते हैं। इससे कनीनिका संकुचित हो जाती है और तकलीफ कम मालूम होती है। इन लोगोंको दीर्घ या दूर दृष्टिवाले लोगोंके (हायपरमेट्रोप) जैसी दृक्‌शक्तिकी क्षीणतासे वेदना नहीं होती।

चाक्षुषव्यूह की बनावटकी अनियमित बातें या दोष

दृश्य पदार्थों की प्रतिमाओंका प्राकृतिक उपयोग ठीक होनेके लिये नेत्रकी बनावट खूब सावधानीके साथ बनी है। और इसके साथ नेत्रकी नैसर्गिक मिलती जुलती अवस्थाकी मर्यादा भी कायम रखी गई है। यह ठीक है कि दृष्टिस्थानकेन्द्रके (फोव्हिया) दृष्टिकार्यके लिये परिधि दृष्टिकार्यकी ताकत कम की गयी है। किन्तु केन्द्रस्थ दृष्टि भी अचूक स्वाभाविक कार्य करती रहती है और प्रकाशके अपभवन (सरलरेषासे वक्र होना) में इस हद की कार्यक्षमता कायम रहती है।

चाक्षुष वक्रीभवन व्यूहके पूरे गोलाकार सजातीय घटको के छिद्र एक अक्षरेषा पर स्थिर हो, और एकरंगी प्रकाश वक्रीभवन व्यूह पर समकोणसे आघात करें तो **गॉस की** दृक्‌शास्त्रीय कल्पनाका चाक्षुषव्यूह में इस्तेमाल कर सकते हैं।

चाक्षुष व्यूहका छिद्रः—गॉसकी कल्पनानुसार दृक्‌शास्त्रव्यूह का छिद्र इतना छोटा होना चाहिये कि प्रकाशकिरणें अक्षरेषामे से ही अन्दर जावे; लेकिन चाक्षुष व्यूहमें यह बात नहीं दिखाई देती। दृक्‌शास्त्र मे जिन औजारोंका इस्तेमाल किया जाता है, उनके छिद्रोंका आकार १०° इतनी मर्यादा तक होवे तो कार्य ठीक तौरसे होता है। नेत्रकी कनीनिका का आकार ४ मि. मि. से कभी कम नहीं होता, यानी तारकापिधान का छिद्र २०° का होता है। कनीनिका के आकार परसे दृष्टिपटल पर गिरने वाले विस्तृत मंडलोंका आकार निश्चित होता है। लेकिन तारकापिधान पर गिरनेवाली आघात किरणोंका कनी-निका तक पहुंचने के पहले ही, वक्रीभवन हो जाता है। और उन्मग्न किरणे तारकापिधानके पार दृष्टिपटल पर जाने के पंहले ही, स्फटिकमणिसे वक्रीभूत हो जाती हैं। आघात-किरणके कोणकी नीव तारकापिधान से कनीनिका पर गिरी हुई प्रतिमासे बनती है। इसको अँग्रेजी अन्तरगमन कनीनिका-एन्ट्रन्स प्युपिल—कहते है। और उन्मग्न किरण कोणकी नीव स्फटिकमणिसे कनीनिकाकी बनी हुई प्रतिमासे होती है: इसको अँग्रेजी बहिर्गमन कनीनिका एक्झीट प्यूपिल—कहते हैं। दृष्टिपटल पर गिरे हुये विस्तृत मंडलके केंद्रका स्थाननिर्णय बहिर्गमन कनीनिका केन्द्रको पार्श्वमुख्य केन्द्रसे जोडने वाली रेषासे—अर्थात् कनीनिका रेषासे होता है, पार्श्वबिन्दुको जोडने वाली रेषासे नहीं होता।

नेत्रकी दृक्‌शास्त्रीय अनियमित बातें तीन तरहकी होती है:—एकरंगी प्रकाशकी अनि-यमित बातें, वर्ण विक्षेप (क्रोम्याटिक एबरेशन) और नेत्रके वक्रीभवन व्यूहके दोष :

अ एकरंगी प्रकाशकी अनियामित बातें:—

१ नेत्रके वक्रीभवनव्यूहके घटकों के केन्द्रोंका एकही अक्षपर ठीक स्थिर होना (चि. नं. २५७)

वक्रीभवनव्यूहका बराबर केन्द्रीभवन होनेके लिये हरएक वक्रीभवनकी पृष्ठ पूरी गोलाकार और वे एकही अक्षरेषापर केन्द्रीभूत होना जरूरी है। लेकिन पहली शर्त तारकापिधानमें बराबर पूरी नहीं होती यह मालूम है। क्योंकि उसकी अक्षरेषाएँ समान नहीं है यद्यपि नेत्रका दृक्शास्त्रीय आकार गोल है। नेत्रके नमुनेदार वक्रीभवनके सब पृष्ठ (तारकापिधानकी पूर्व पृष्ठ और स्फटिकमणिकी पूर्व और पिछली पृष्ठ) एकही अक्षरेषापर केन्द्रस्थ होना जरूरी है। लेकिन यह बात हमेशा ठीक नहीं दिखाई देती। और अक्षरेषा दृष्टिस्थान केन्द्रको नहीं मिलती इस कारणसे चाक्षुषव्यूहमें दृष्टि तिरछी दिखाई देती है जैसे की दृक्शास्त्रीय दुर्बीनका कोई शीशा हट गया है। लेकिन यह इतना कम होता है की उसको भूलजाना ही ठीक होता है।

दृगाक्ष (चि.नं.२५७ द.अ.) वह रेषा होती है जो सब वक्रीभवनके पृष्ठोंके केन्द्रसे होकर जाती है। लेकिन यह कह चुके है कि कोईभी वक्रीभवन पृष्ठ भूमितीय दृष्टिसे ठीक सुडौल नहीं होते। और स्फटिकमणि भी समकेन्द्रिय नहीं होता है। उसका च्यवन दो प्रकारका होता है। पहले उसकी खडी अक्षरेषामें वह इतना घूम जाता है कि उसकी कनपटी की बाजू नासिकाकी बाजूके पीछे की ओरको होती है। और उसका ऊपरी भाग सामनेकी ओरको झुकनेसे नीचेका भाग पीछे को जाता है। इस कारणसे स्फटिकमणिकी अक्षरेषा तारकापिधानकी अक्षरेषामें नहीं जाती. बल्कि वह उसे नीचे और नासिकाकी ओरको काटती है। इस च्यवनका परिणाम यह होता है कि तारकापिधानकी प्राकृतिक निर्बिन्दुता का निराकरण हो जाता है। मनुष्य का दृगाक्ष (द. अ.) तारकापिधानके केन्द्रमेंसे जाती है, न कि स्फटिकमणि के केन्द्रमेंसे, और वह दृष्टिस्थान केन्द्रको स्पर्श नहीं करता।

चाक्षुष अक्षरेषा (व्हिज्युअल ॲक्सिस) जब किसी पदार्थपर दृष्टि डाले तो नेत्र इस तरहसे घूमता है कि पदार्थकी प्रतिमा ठीक दृष्टिस्थान केन्द्रपर गिरे। अर्थात दृश्य पदार्थ और दृष्टिस्थान केन्द्रको जोडनेवाली और पात बिन्दुमेंसे जानेवाली रेषाको **चाक्षुष अक्षरेषा** कहते हैं। दृश्यबिंदु और दृष्टिस्थान केन्द्र ये दोनो अनुबद्ध बिन्दु होते हैं। लेकिन दृष्टिस्थान दृगाक्षपर नहीं होता है बल्कि वह १.२५ मि. मि. उसके नीचे कनपटीकी ओर होता है (चि. नं. २५७ चा. के)।

अल्फा कोण:—जब दृगाक्षरेषा दृष्टिस्थान केन्द्रमें जा पहुंचती है तब दृगाक्षरेषा और चाक्षुष अक्षरेषा दोनो एक सरीखी होती हैं। लेकिन यह हमेशा नहीं दिखाई देता। चाक्षुष अक्षरेषा तारकापिधानके केन्द्रके थोडे उपरकी और नासिकाकी ओरसे जाती है। जब नेत्र बिलकुल सामनेकी ओरको देखता है तब दृगाक्षरेषा थोडी नीचेकी ओरको और थोडी बाहरकी ओरको जाती है। **पाताबिन्दुपर दृगाक्षरेषा और चाक्षुष अक्षरेषा इन दोनोंसे जो कोण बनता है उसे अल्फा कोण** कहते हैं। इस कोणका प्रमाण साधारणतया ५° अंशका होता

है। जब दोनों चाक्षुष अक्षरेषाएँ समानान्तर होती हैं तब दृगाक्षरेषा १०° बाहरकी ओरको झुकी हुई मालूम पडती है। इस कोणका प्रमाण दृष्टि स्थान केन्द्रके स्थान पर अवलम्बित होता है। जब चाक्षुष अक्षरेषा तारकापिधानकी दृगाक्ष रेषाको नासिकाकी ओर काटती है तब वह कोण धन चिन्हांकित होता है। यह कोण महाबली निकट दृष्टित्व के सिवाय ऋण चिन्हांकित नहीं होता (चित्र नं. २५७-१)।

स्थैर्यरेषा-दृश्यरेषा (फिक्सेशन लाईन) **गामा कोणः**—नेत्रके बीच स्थित और दृगाक्षपरके स्थित बिंदुके सब ओर नेत्र घूमता है। इस बिन्दुको **विवर्तन केंद्र** (सेन्टर ऑफ रोटेशन परिभ्रमण केन्द्र विवके.)कहते है। विवर्तनकेन्द्रको दृश्यबिन्दुसेजोडने वाली रेषाको **स्थैर्य-रेषा** कहते हैं स्थै.रे.। **दृगाक्ष रेषा और स्थैर्यरेषासे बने हुए कोण को गामा कोण कहते हैं।** गामाकोणका प्रमाण बहुत ज्यादा या धनचिन्हाकित हो तो नेत्रका बाह्यच्यवन होगा। **गामा कोण** छोटा या ऋण चिन्हांकित हो तो नेत्रका अन्तर्च्यवन होगा (चित्र नं. २५७-२)।

बीटाकोणः—दृगाक्षरेषाकी कल्पना वास्तविक है। और यह स्पष्ट है कि तारका-पिधानका केन्द्र रुग्ण परीक्षामें ठीक नहीं होता। लेकिन कनीनिकाका केन्द्र आसानीसे नाप

चित्र नं. २५७-नेत्रगोलककी भिन्न भिन्न अक्षरेषा और कोणका चित्र
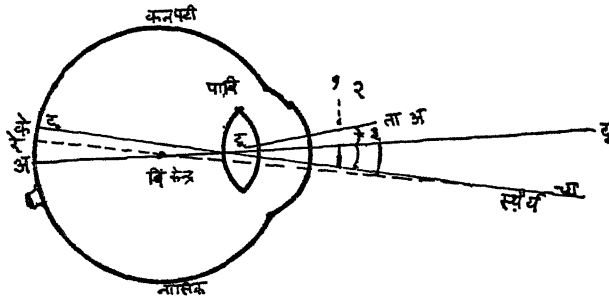
ता. अ. तारकापिधानकी अक्षरेषा; दृ. अ. दृगाक्ष; (चा के. चाक्षुष अक्षरेषा; (स्थै. रे.)स्थैर्य रेषा; १ अल्फा कोण; ३ गामा कोण; २ बीटा कोण. कनपटीकी बाजू, नासिकाकी बाजू

सकते हैं। इस कारणसे व्यवहारमें दृगाक्षरेषाके बदले कनीनिकाके केन्द्रमेंसे जानेवाली रेषा जो तारकापिधानको लंबरेषा होती है उसका यानी कनीनिका केन्द्ररेषाकाही नापनेमे उपयोग होता है। **चाक्षुष अक्षरेषा और कनीनिका केन्द्ररेषासे बननेवाले कोणको बीटा कोण** कहते है। कनीनिकाका केन्द्र तारकापिधानके केन्द्रकी नासिकाकी बाजूको कुछ होता है। लेकिन रुग्ण संबंधमे दृगाक्षरेषा कनीनिकाकेन्द्र रेषासे मिली होती है। इससे तारका-पिधान पर बना हुआ कोण पातबिन्दुसे बने हुए कोणके बराबर है ऐसा समझना ठीक है।

बीटा कोण का नापनः—दृष्टिक्षेत्र नापन यंत्रके कंसकी सहायतासे कर सकते हैं। रोगीको इस कंसके केन्द्र की तरफ देखनेको कहना। **चा के** रेषा चाक्षुष अक्षरेषा होगी। **फ** की जगह पर दीपक रखे तो कंस पर **ब** बिन्दुस्थान पर तारकापिधान परकी प्रतिबिम्बित प्रतिमा कनीनिकाकेन्द्रमें दिखाई देगी।

दृक्शास्त्रीय दृष्टिसे विचार करें तो चाक्षुष व्यूहमें यह विशेषता है कि वह केन्द्रसे हटा हुआ दिखाई देता है। दृष्टिस्थान केन्द्रके प्रकाशित भाग का निर्णय कनीनिकासे हो सकता है। लेकिन कनीनिकाके केन्द्रकी रेषा और दृगाक्षरेषा परस्पर नहीं मिलती। अतः प्रतिमाका निर्णय करनेवाली किरणें प्रायः केन्द्रच्युत यानी पारिधि स्थानको जानेवाली होती है। ये निर्णयकारक प्रकाश किरणें तिरछी होनेसे यह दृगाक्षरेषासे कोण बनाती है। इसीसे व्यासार्धकी निर्बिन्दुता (रेडियल अस्टिगम्याटिझम) उत्पन्न होती है। इस निर्बिन्दुताका माप गुलस्ट्रान्डने ०.१ डी बतलाया है। यह प्रमाण इतना छोटा होता है कि उसका असर दृक्शक्ति की तीव्रता पर अधिक नहीं दिखाई देता।

२ गोलापायन—गोलीयकिरण विचलन (स्फेरिकल एबरेशन)

जब कोई किरण गोलीय दर्पण या नेत्रगोलक पर गिरती है तब परिधिकी ओरकी किरण केन्द्रकी ओरकी किरणकी अपेक्षा जलदी केन्द्रीभूत होती है। सब किरणें एक ही जगह पर केन्द्रीभूत न होने से किरण गुच्छकी प्रतिमा अस्पष्ट दिखाई देती है और तकलीफ मालूम होती है। इस अवस्था को **गोलापायन गोलीय किरण विचलन** कहते हैं। इस समय नेत्रकी कनीनिका संकुचित होनेसे परिधिकी ओरकी किरणें अन्दर नहीं जा सकती और फिर तकलीफ भी नहीं मालूम होती।

इन सब परावर्तित किरणोंकी **स्पर्शज्ज्या रेषा** (टॅन्जन्ट लाईन) निकालें तो वह रेषा वक्र होती है। इस रेषाको **परावृत्त प्रभावक्र** (किरणस्पृष्ट कास्टिक कर्व) या **वक्रांशु संगम** कहते है। गोलीय शीशेकी परिधि भागकी किरणें केन्द्रीय भागके किरणों की अपेक्षा जलदी केन्द्रीभूत होती हैं; तब किरण परावृत्त प्रभावचक्र रेषा (अर्थात कंस) मे एकत्रित होनेसे प्रतिमा अस्पष्ट दिखाई देती है।

चित्र नं. २५८
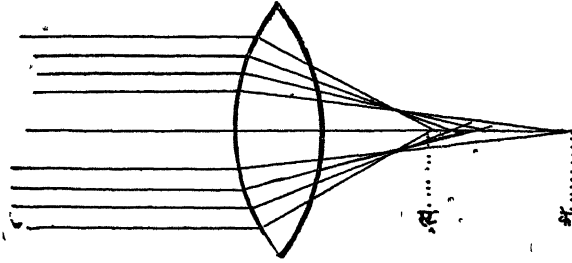
गोलापायनका चित्र : स्ट्रके=स्ट्रमर्का केन्द्रीय रेषा।

गोलापायन का नापन प्रथम सन १८०१ में **यंगने** किया। फिर सन १९११ मे **गुलस्ट्रान्डने** परिस्कृत किया। उसने आत्मगत और वस्तुगत नापन ऐसी दो पद्धती प्रचलीत की।

आत्मगत नापन पद्धतीः—मनुष्य को किसी तेजस्वी पदार्थकी तरफ देखनेके लिये कहकर उसके नेत्रों के सामने चष्मेके भिन्न भिन्न शीशे रखे तो दृष्टिपटल के मुख्य केन्द्रमें फरक होकर परावृत्त प्रभावक्र रेषाके भिन्न भिन्न भाग दृष्टिपटल पर गिरेंगे। इस कारणसे नेत्रामें जानेवाली किरणों का पृथक्करण उस मनुष्य को मालूम होकर परावृत्त प्रभावक्र का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।

वस्तुगत नापन (स्टिगम्याटास्कोपी) का रुग्णविषयक परीक्षामें उपयोग होता है। प्रथम रोगीका वक्रीभवन नैसर्गिक न हो तो शीशोंसे नैसर्गिक करना। फिर उसके नेत्रोंपर ५० सेन्टीमिटरके अन्तरसे प्रकाश डालना। अपायन घनचिन्हाकित हो तो उसके कनीनिकाके केन्द्रमें चकाचौंध बिन्दु और उसकी किरणें कृष्णवलयसे मर्यादित ऐसी दिखाई देंगी और कनीनिकाकी किनार लाल दिखाई देगी। फिर परीक्षकको वह कृष्णवलय अदृश्य होने तक रोगीके पास जाना चाहिये। इस अन्तर से अपायन का नापन होता है। ऐसा समझो कि रोगीके नज़दीक २५ से मिटर आनेसे कृष्णवलय अदृश्य हो जाता है तो अपायन का माप $\frac{१००}{२५}$ से. मि. =+४.० डी बलका होगा। पहलेसे ही कृष्णवलय नहीं दिखाई दे तो नेत्रोंमें कृत्रिम ऱ्हस्व दृष्टित्व उत्पन्न करके कृष्णवलय पैदा करना चाहिये। और फिर इस कृष्णवलय को अदृश्य करनेवाले शीशेसे माप लेना होगा। ऐसा समझो कि कृत्रिम ऱ्हस्व दृष्टित्व–४.० डी बलके शीशेसे नष्ट हुवा तो अपायनका माप –२.० डी (–४.० डी+२.० डी) होगा; क्योंकि परीक्षक का अन्तर .५० मिटर अर्थात् $\frac{१००}{५०}$ =+२डी इतना कम करना चाहिये।

चाक्षुषव्यूह समतल न होनेसे गोलापायनका असर बहुत कम होता है अर्थात रंगीन गोलापायन और अपभवन (क्रोमॅटिक एबरेशन एन्ड डिफ्रॅक्शन) के परिणामसे बिलकुल कम होता है। इसका आंशिक–कारण यह है कि तारकापिधान का परिधिका भाग केन्द्रीय भाग की अपेक्षा ज्यादा समतल होता है। लेकिन मुख्यतः स्फटिकमणिके केन्द्रीय भागका वक्रीभवन उसके परिधि भागकी अपेक्षा ज्यादा होता है। इन दोनों कारणोंसे आक्षिक किरणो का वक्रीभवन परिधि किरणोंकी अपेक्षा ज्यादा जोरदार होनेसे गोलापायनका असर कट जाता है। **तारकापिधानका** विचार करनेसे यह बात स्पष्ट हुई है कि उसका परिधिभाग किंचित् समतल होनेसे उसमें यदि अप्लानाटिक शीशेके परिणाम दिखाई देते है तो भी परिधिके अंदरूती भागमें घन चिन्हाकित गोलाकार अकेन्द्रीभवन दिखाई देता है। लेकिन कनीनिका विस्तृत होगी तो परिधिके समतल भागके कारणसे ऋणचिन्हाकित अकेन्द्रीभवन होकर यह परिणाम नष्ट हो जाता है। संपूर्ण नेत्रगोलकका विचार करनेसे यह दिखाई देता है कि उसके अक्षभागके दोषकी दुरुस्ती करनेका प्रमाण कम होनेसे वहां घन चिन्हाकित अकेन्द्रीभवन दिखाई देता है और परिधि भागमें ऋण चिन्हांकित अकेन्द्रीभवन दिखाई देता है।

अप्लानाटिक शीशाः—जिस शीशेके पृष्ठकी वक्रताका प्रमाण केन्द्रसे परिधितक कम होता जाता है उस शीशेको अप्लानाटिक शीशा कहते है। इस रीतिसे तैयार किये हुए शीशेसे किरणोंके गोलाकार अकेन्द्रीभवन का परिणाम नष्ट या कम होता है। इन शीशोंकी पूर्व पृष्ठ की वक्रताका प्रमाण पार्श्व पृष्ठकी वक्रताके प्रमाणसे ज्यादा होता है।

३ किरण केंद्रकी गहराई (डेप्थ ऑफ फोकस)

ज्यादासे जादा अन्तरके दो पृष्ठोंके बीचके पदार्थ आगे पीछे हटानेसे उन पदार्थोंकी प्रतिमाएँ जिस अन्तरमें केन्द्रीभूत होकर स्पष्ट दिखाई देती हैं उस केन्द्रीभवन अन्तरको दृक्शास्त्रीय व्यूहोंके किरण केद्रीभवनकी गहराई कहते हैं। दृक्शास्त्रीय व्यूहका छिद्र बडा हो या पदार्थोंके बीचका अन्तर कम हो तो इस गहराईका प्रमाण कम होता जाता है।

नेत्रमें इस गहराईकी हरएक प्रतिमा एक ही कोन घटकपर गिरती है । निम्नलिखित कोष्टक हार्टरीजसे लिया है ।

कनीनिकाका व्यास	आनन्त्यपरकी गहराई	२५ से.मि. की गहराई
१ मि. मि.	∞ से ८ मिटर	३·२ से. मि.
२ मि. मि.	∞ से १६ ,,	१·६ से. मि.
३ मि. मि.	∞ से २४ ,,	१·१ से. मि.
४ मि. मि.	∞ से ३२ ,,	०·८ से. मि.

अर्थात कनीनिकाका व्यास ३ मि. मि. हो और २४ मिटर दूर के पदार्थ पर दृष्टि डालें तो आनन्त्य से १२ मिटर दूरके पदार्थोंका ठीक केन्द्रीभवन होता है । लेकिन नेत्र २५ से. मिटर अर्थात पढनेके अन्तर परके पदार्थको देखे तो केन्द्रकी गहराई १·१ से. मि. होती है । दृक्संधान कार्यमें कनीनिका संकुचित होनेसे केन्द्रकी गहराई बढती है ।

४ कामा—ज्या (स्वल्पविराम) अवस्था (साइन कन्डीशन)—

यद्यपि कोई शीशोंकी प्रणालीकी रचना इसतरहकी बनी हुई हो कि किसी भी बिंदुकी प्रतिमाओंमें गोलीय किरण विचलन न होवे तो भी जब किरण गुच्छ का इस्तेमाल किया जाता है तब बिन्दुके इर्दगिर्दके भागोंकी प्रतिमा स्पष्ट नहीं दिखाई पडती । शीशेके भिन्न भिन्न मंडलोंसे पदार्थके भिन्न भिन्न भागोंकी प्रतिमायें अलग अलग स्थानोंपर बनती है जिससे पदार्थकी प्रतिमा स्वल्पाविरामके निशान जैसी होती है और इस निशानकी दुम दृगाक्षकी तरफकी होती हैं । नेत्रमें यह कामाकी अवस्था पूर्णतः पायी जाती है ।

५ दृक्क्षेत्रकी वक्रताकी दुरुस्ती नेत्रमें प्रतिमाकी पृष्ठ बांकदार समझके होती है । दृष्टिपटलकी त्रिज्या करीब १० मि. मि. होती है यानी नेत्रकी वक्रीभवन की प्रणालीका पिछले केन्द्रकी लम्बाईसे कुछ कमतर होती है, जिससे सैद्धान्तिक, या कियासी वक्रताका पूरी तौरसे दुरुस्तीसे संबंध लगा सकते हैं ।

६ प्रतिमाके परिधि भागकी विकृत अवस्थाकी दुरुस्ती कियासी वक्रताके तोर जैसी होती है ।

(ब) वर्णविक्षेप (क्रोम्याटिक एबरेशन)

ध्यानमें रखिये कि नेत्र पहले अवर्णक (अक्रोम्याटिक) मानते थे; लेकिन वह वैसा नहीं है । इस अपायनका शोध पहले पहल वूलास्टन पंडितने सन १८०१ में लगाया ।

नेत्रगोलक पर प्रकाश गिरनेसे कभी कभी चारों और रंगीन प्रभा दिखाई देती है । दूर अन्तरके प्रकाश बिंदुको त्रिपार्श्वमेंसे देखें तो उसके वर्णपट या विच्छिन्न किरणों का लाल अग्रभाग की किरणोंका ठकि केन्द्रीभवन होनेसे वह अग्रभाग स्पष्ट दिखाई देता है, लेकिन नीललोहित या कासनी अग्रभागकी किरणोंका ठीक केन्द्रीभवन न होनेसे वह अस्पष्ट

दिखाई देता है। बल्कि वह प्रकाशित बिन्दु निकटबिन्दु अन्तरके पास लाया जाय तो **वर्णपट** का नीललोहित अग्रभाग स्पष्ट दिखाई देता है और लाल अग्रभाग अस्पष्ट दिखाई देता है। वर्णपटकी भिन्नभिन्न किरणें भिन्नभिन्न स्थानपर केन्द्रीभूत होती हैं। कासनी किरणें लाल किरणोंकी अपेक्षा ज्यादह वर्तनीय होनेसे उनका केन्द्र शीशिके नज़दीक ज्यादह होता है। इस असाम्य अवस्थाको ही **वर्णविक्षेप** कहते हैं। दूरके प्रकाशित पदार्थ कोबाल्ट रंगके कांचमें से देखें तो इस असाम्य अवस्था का स्पष्टीकरण ठीक हो जाता है। क्योंकि इस कांचमें से वर्णपटकी किरणोंके लाल और नील लोहित या कासनी रंग के सिवाय अन्य किरणें सोखजानेसे फकत वे दो ही रंग दिखाई देते हैं। जिस अन्तर परसे दूरबिन्दु स्पष्ट दिखाई

चित्र नं. २५९
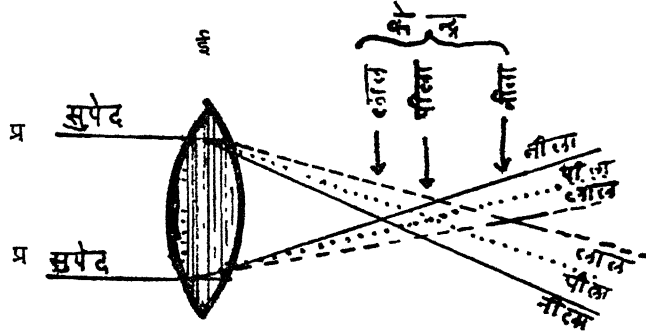
देता है उस अन्तरके पारका पदार्थ लाल दिखाई देता है और उसके चारों ओर नीललोहित प्रभा दिखाई देती है। और जिस अन्तर पर निकटबिन्दु स्पष्ट दिखाई देता है: उसके भीतर वह प्रकाशित पदार्थ लाया जाय तो वह नीललोहित रंगका दिखाई देगा (और उसकी किनार लाल दिखेगी –) और उसके चारों ओर लाल प्रभा दिखाई देगी।

१ केन्द्रके वर्णविक्षेप संबंधीके फरक

सफेत रंग अनेक रंगो के मिश्रणसे पैदा होता है। यह प्रकाश नेत्रगोलक पर गिरे तो दृष्टिपटल परकी उसकी प्रतिमा अनेक रंगीन केन्द्रोंके एकत्रीकरण होनेसे बनती है। नेत्र स्वभावतः दृक्संधान शक्ति की सहायतासे वर्णपटके ज्यादा चमकदार ऐसे पीले–हरे रंगोके दृष्टिपटल पर केन्द्रीभूत कर सकता है। इन भिन्नभिन्न रंगोंकी किरणोंका केन्द्रीभवन अलग अलग होता है। पीले हरे किरण ठीक दृष्टिपटल पर केन्द्रीभूत होते हैं। जिनकी लहरीयोकी लंबाई कम होती है ऐसे नीललोहित किरण जिनकी लहरीयोंकी लम्बाई ज्यादा होती है ऐसे लाल किरणोंसे जलदी केन्द्रीभूत होनेसे नीललोहित किरणे दृष्टिपटलके सामने और लाल किरणे दृष्टिपटलके पीछे केन्द्रीभूत होती है। इस विषय केन्द्रीभवन को **रंग निक्षेप** कहते हैं (क्रोम्याटिक एबरेशन)।

उपरोक्त चित्रमें(नं.२५९) प्र प्रकाश स्थानकें प्रई–प्रध किरणे उन्नतोदर शीशेके ई और ध स्थानमें घुसके बाहर आके म पृष्ठपर केन्द्रीभूत होती हैं। म पृष्ठको किंचित सामने ल स्थानको हटानेसे नीललोहित किरणें ईनी धनी ल पृष्ठपर केन्द्रीभूत होती हैं और

उसके चारों ओर अकेन्द्रीभूत ईला घला लाल किरणोंका वलय दिखाई देता है। फिर म पृष्ठको पीछे ट स्थानपर हटायें तो ईला घला लाल किरण केन्द्रीभूत होकर उसके चारों ओर ईनी, घनी नीललोहित किरणोंकी प्रथा दिखाई देगी।

लाल और नीललोहित या कासनी प्रतिमाओंके बीचके अन्तरको उस उन्नतोदर शीशेकी केन्द्रीय लम्बाईसे भाग देनेसे भजन फल रंग विक्षेप का नाप होता है और यही उस शीशेकी व्यवनकारक–फैलावकारक–शक्ति समझी जाती है।

दुर्बीन सरीखे दृक्शास्त्रीय औजारोंमें रंग विक्षेपका परिणाम न दिखाई देनेके लिये भिन्न भिन्न वक्रीभवन आवर्तनाक के नतोदर शीशेको रखें तो दोनोका व्यवनकारक परिणाम नष्ट हो जाता है और पहलेके वक्रीभवन आवर्तनांक का असर ज्यादा होता है। इस तरहसे बने हुए शीशेको निरंगी शीशे कहते हैं। (अक्रोम्याटिक लेन्स)

नेत्रगोलकका वक्रीभवन व्यूह निरंगी शीशेके स्वरूपका नहीं बना है। लेकिन अपायनके परिणाम कनीनिका संकुचित होनेसे कम होते है और कनीनिका विस्तृत होनेसे ज्यादा मालूम होते हैं।

(क) चाक्षुष दृक्शास्त्रीय व्यूह की अनियमित बातें या दोष.

दृक्शास्त्रीय दृष्टया नेत्रके दोष बहुत ही अल्प दिखाई देते हैं।

(अ) प्रकाशका बिखरना:—दृष्टिपटलपर गिरा हुआ प्रकाश फैलता है किन्तु साधारणतया दृष्टिपटलपरकी प्रतिमाओंको इस प्रकाशसे ज्यादा तकलीफ नहीं होती। लेकिन यह बात ख्यालमें रखना चाहिये कि इस फैले हुए प्रकाशके कारणसे नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे नेत्रतल दिखाई देता है। इस फैले हुए प्रकाशका बडा प्रमाण दृष्टिपटलकी रंजित कला-तह सोख लेती है और इस कारणसे तकलीफ नहीं होती।

(ब) प्रभामंडल (हयालो) नेत्रमेंके अन्य घटकोंसे दृष्टिपटलपरसे परिवर्तित प्रकाशका जब परावर्तन होता है तब यह अवस्था पैदा होती है।

(क): प्रकाशाग्नि (फ्लेअर)—वक्रीभवन के भिन्नभिन्न मार्गोंकी सीमाओंसे प्रकाशके परिवर्तन से यह अवस्था भासमान होती है। ये दोनो अवस्थाएँ क्षुल्लक होती हैं।

नेत्रकी विश्रामावस्थामें जब आनन्त्य परकी समान्तर किरणें दृष्टिपटल पर ठीक केंद्रीभूत होती हैं तब नेत्रकी उस अवस्थाको प्राकृतिक नैसर्गिक दृष्टिका नेत्रगोलक कहते हैं (ईमेट्रोपिया) लेकिन जब नेत्र विश्रांति की अवस्थामें हो तो भी समानान्तर किरणें दृष्टिपटलपर ठीक केन्द्रीभूत नहीं होतीं तब उस अवस्थाको अनैसर्गिक दृष्टि नेत्रगोलक कहते हैं (आमेट्रोपिला) इस अवस्थाका प्रमाण बहुत दिखाई देता है।

अनैसर्गिक दृष्टि तीन तरहकी होती। नेत्रमें घुसनेवाली किरणें केन्द्रीभूत होती है लेकिन वे दृष्टिपटलपर केन्द्रीभूत नहीं होतीं किन्तु दृष्टिपटलके पीछे या सामने केन्द्रीभूत होती है। नेत्र-गोलक की आगेसे पीछे को जानेवाली अक्षरेषा की लम्बाई नैसर्गिक अवस्था से छोटी हो तो नेत्रगोलक छोटा होता है : इस कारणसे समानान्तर किरणे दृष्टिपटलके पीछे केन्द्रीभूत होती हैं। इस अवस्थाको **दीर्घ दूर दृष्टित्व कहते हैं**। जब इस अक्षरेषा की लम्बांई नैसर्गिक अक्षरेषासे ज्यादा होती है तब नेत्रगोलक दीर्घ होनेसे समानान्तर किरणें दृष्टिपटलके सामने केन्द्रीभूत होती हैं। इस अवस्थाको **ऱ्हस्व** या **निकट दृष्टित्व** कहते हैं। चाक्षुष व्यूहके वक्रीभवन घटक समकेन्द्रीक न होनेसे किरणें एक स्थानमें केन्द्रीभूत नहीं होतीं। इस अवस्थाको **निर्बिन्दुत्वका** नेत्रगोलक कहते हैं।

वक्रीभवन दोष के कारणः—

(१) वक्रीभवन व्यूहके घटकोंके स्थानिक दिखाई देनेवाले दोषः—

(अ) नेत्रगोलककी अगले भागसे पिछले भागको जानेवाली अक्षरेषा नैसर्गिकसे छोटी होनेसे नेत्रगोलकी अगली पिछली लम्बाई कम होती है; फिर **आक्षिकदीर्घदृष्टि** पैदा होती है।

(ब) नेत्रगोलककी अगले भागसे पिछले भागको जानेवाली अक्षरेषा नैसर्गिकसे लम्बी होनेसे नेत्रगोलककी लम्बाई बढ़ जाती है और आक्षिक निकट या ऱ्हस्व दृष्टि पैदा होती है।

(क) स्फटिकमणिकी स्थानभ्रष्टता अगले भागको होनेसे निकट या ऱ्हस्व दृष्टि और पिछले भागको होनेसे दीर्घ या दूर दृष्टि पैदा होती है।

(२) वक्रीभवन पृष्ठकी अनियमित बातों के दोषः—

तारकापिधान या स्फटिक मणिके पृष्ठकी वक्रता कम होनेसे पृष्ठसे वक्रीभवनजन्य दीर्घ दृष्टित्व पैदा होता है। यह पृष्ठ ज्यादा वक्र होनेसे पृष्ठसे वक्रीभवनजन्य ऱ्हस्व-दृष्टि उत्पन्न होती है। या भिन्नभिन्न रेखांश भाग की वक्रता भिन्नभिन्न होनेसे निर्बिन्दुता दिखाई देती है।

दीर्घ दृष्टि निर्बिन्दुतामें लम्बरूप और आधार रूप-खडा और क्षौतिजिक अक्ष दोनों असम और छोटे होते है। **ऱ्हस्व दृष्टित्व निर्बिन्दुतामें** दोनों अक्ष असम और लम्बे होते हैं। जब एक अक्षमें दीर्घ दृष्टित्व और दूसरे अक्षमे निकट दृष्टित्व होता है तब उस अवस्थाको मिश्र निर्बिन्दुता कहते हैं। जब ये दोनो असम अक्ष एक दूसरे से समकोण बनाते हैं तब नैयमिकी निर्बिन्दुता दिखाई देती है। लेकिन जब ये अक्ष एक दूसरेसे समकोण नहीं बनाते तब वक्र निर्बिन्दुता दिखाई देती हैं। जब तारकापिधान या स्फटिक मणिमें से जानेवाली किरणें अलग स्थान पर केन्द्रीभूत होती हैं तब अनैयमिकी निर्बिन्दुता होती हैं।

(३) वक्रीभवन व्यूह के घटकों का टेढापणः—

(अ) स्फटिकमाणि टेढ़ा स्थित हो या अपूर्ण स्थान भ्रष्ट हो तो भी निर्बिन्दुता पैदा होती है।

(ब) दृष्टिपटल स्थान भ्रष्ट होगा या शुक्लपटल का—नेत्रका—पार्श्वभाग पीछे हट जाने से दृक्शक्तिकी तीव्रता कम होती है।

(४) वक्रीभवन आवर्तनांक की अनियामिततासे उत्पन्न होनेवाले दोषः—

(अ) चाक्षुष जल के वक्रीभवन आवर्तनांक का प्रमाण कम हो या स्फटिक द्रवपिंडके आवर्तनांक का प्रमाण बढ़ा हो तो वक्रीभवन आवर्तनांकजन्य दीर्घ दृष्टित्व दिखाई देता है। उसके विपरीत चाक्षुष जलके वक्रीभवन आवर्तनांक का प्रमाण बढ़ गया हो या स्फटिक द्रव पिंड का वक्रीभवन आवर्तनांक का प्रमाण कम हुआ हो तो निकट या न्हस्व दृष्टित्व दिखाई देता है।

(ब) स्फटिकमणिके वक्रीभवन आवर्तनांक का प्रमाण बहुत होगा तो वक्रीभवन आवर्तनांकजन्य दीर्घ दृष्टित्व दिखाई देगा। स्फटिक मणिके केन्द्रके चारों ओरके भागका वक्रीभवन आवर्तनांक केन्द्रस्थ भागके आवर्तनांक समप्रमाण हो तो उसकी केन्द्रीभूत करनेकी शक्ति कम होकर दीर्घ दृष्टित्व पैदा होगा। इसके विपरीत केन्द्रीय भागकी आवर्तनांक की शक्ति बढ़ जाय तो निकट या न्हस्व दृष्टित्व दिखाई देगा।

(५) वक्रीभवन घटक नष्ट होनेसे दिखाई देनेवाला दोष निर्यवता में दीर्घदृष्टित्व स्वरूप का होता है।

खंड ५ वां

अध्याय १४ वा

नेत्राभ्यन्तरीय प्रतीबिंब–प्रतिमा (एन्टापटिक इम्याजरी)

दृष्टिपटल की विषय ग्रहणशील तहोंके सामनेका पदार्थ जिसकी पारदर्शकता नेत्रकी माध्यमसे कम है, या जिसकी आवर्तनक्षमता जिस माध्यममें वह स्थिर है उससे भिन्न हो तो उसका नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिबिम्ब दिखाई पडता है यह ख्यालमें लेना। नेत्रगोलकके माध्य-ममेंके पदार्थोंसे, दृष्टिपटलमेंका रुधिराभिसरण और दृष्टिपटलके सूक्ष्म शारीरकी भीतरी तहोंसे पैदा होनेवाली प्राकृतिक घटनाओंका विचार करेंगे।

नेत्रके माध्यमोंके संबंधी नेत्राभ्यन्तरीय प्राकृतिक घटना दृक्प्रत्यक्ष

(१) नेत्रके माध्यमोंकी घनताके फर्क संबंधीकी प्राकृतिक घटना

साधारणतः नेत्रके माध्यमोंके अपारदर्शक या अर्धपारदर्शक कणोंके प्रतिम्बिब कनी-निकामेंसे पार जानेवाले प्रकाशका अनियमिततासे वटाव होनेसे, नहीं दिखाई पडते। लेकिन नेत्रमें जानेवाली किरणें समानान्तर रहे ऐसी तरकीब की जाय तो दृष्टिपटल के सामनेके अपारदर्शक कण की मर्यादित छाया दृष्टिपटल की विषयग्रहणशील तहोपर गिरेगी और फिर उसका नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिबिम्ब दिखाई पडेगा। नेत्रके पुरो केन्द्रिय लम्बाईपर बारिक छिद्र-वाला अपारदर्शक कारट को पकडकर उस छिद्रमेंसे प्रकाश–दीपक की ओर देखनेसे ऐसे कणोंके देखना संभाव्य होता है।

इस सिलसिले में दर्ज करने लायक कुछ महत्त्व की प्राकृतिक घटनाएँ

(अ) **तारकापिधानको चिपटा हुआ श्लेष्म** या **अश्रुबिन्दु** का नेत्राभ्यन्तरिय प्रतिबिम्ब केन्द्रस्थ तेजदार बिन्दु काली छायासे मर्यादित जैसा दिखाई पडता है।
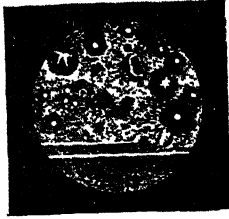
चित्र नं–२६०

तारकापिधान परके कणोंकी नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमा
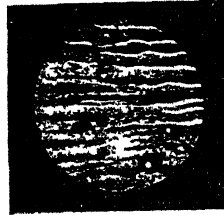
चित्र नं–२६१

तारकापिधानकी झुरियों की नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमा

(ब) **तारकापिधान की पृष्ठ का टेढापन** काली छायासे मर्यादित तेजदार प्रतिमा जैसा दिखाई पडता है। उसकी कलातह की झुरिया आडी रेषा जैसी दिखाई पडती है। पूर्व के दाह या ईजा की खिपली इसी तरह की दिखाई पडती है।

(क) **स्फटिकमणिके घटकों** की प्रतिमाऐं इसी तोरसे स्फटिकमणिके शेष घटकोंसे उनकी आवर्तनक्षमता कम हो तो काले, और ज्यादह हो तो तेजदार, दिखाई देते है। स्फटिक-मणिमेंके कोटर तेजदार बिन्दु (**लिसिंग** के मोती कण) जैसे या स्फटिकमणिमेंकी तारका जैसे नजर मे आते है, और अपक्क मोतीबिन्दु का चित्र खुद रोगी भी खिंच सकता है।

(ड) **प्लवमानत्रसरेणु** (मसी व्हालीलिटान्टीस) रेणुविशेष जो बीमारको आखोंके
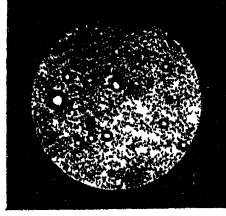
चित्र नं.-२६२

स्फटिकमणिमेंके बिन्दुओंकी नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमा
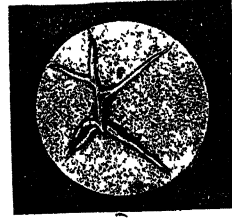
चित्र नं. २६३

स्फटिकमणिमेंके तारका आकारके नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमा
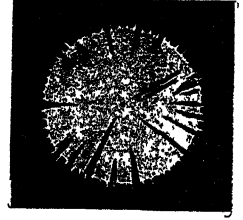
चित्र नं. २६४

अपक्क मोतीबिन्दुकी नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमा

सामने उडते हुए दिखाई पडते हैं, स्फटिकद्रव पिंडमें चिन्हांकित अपारदर्शक कण जैसे होते है; इनका नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिबिम्ब साधारण होता है और वे दृष्टिपटल के नजदीक होनेसे लोगोंको दृक् अवजारी की सिवा देखना आसान होता है। ये कण बाजे वक्त पूर्णतया चल सकते है। या बाजे वक्त स्थायी होते है। नेत्रको घुमानेसे उसी के दिशामे ये कण एक दो सेकन्द तक घुमकर आस्ते आस्ते (५ ते १० सेकन्दोंमें) अपने पहले की स्थितीमें वापिस जाते है। इनका संशोधन और अभ्यास पहले पहल (१८५४) **डांकन** पंडितनें किया। संभव है कि इनमेंके मोठे कण स्फटिकद्रवपिंड की परिधी की ओरकी घुमती पेशियोंसे बने होंगे, लेकिन मामुली तोरसे छोटे कण, जो कभी कभी स्वतंत्र और अलग जैसे और कभी कभी जिनकी लम्बी तन्तूदार प्ररोहाओंसे माला जैसी दिखाई पडती है, स्फटिकद्रवपिण्ड के सरेस–जेलके प्रोतीन घटकोंके पुंज (कोआग्युला) से, भ्रूणीय अवशेषोंसे, या **क्लोकेकी नाली**के दीवालोंमें **घनीभवन** होनेसे पैदा होते हैं। नेत्रको ऊपरकी ओर घुमानेसे विवर्तन केन्द्र के आगेके ओरके स्फटिकद्रव पिंड मे के कण ऊपरकी ओरको जाते है लेकिन उनका नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिबिम्ब नीचेकी ओरको जाता है; इसके अलावा विवर्तन केन्द्र के पीछेके कणोंका प्रति-बिम्ब विपरीत दिशामे यानी नेत्रकी घुमनेकी दिशामें जाता है ऐसा मालूम होगा।

(२) प्रकाशविवर्तन (डिफ्राक्शन) संबंधीकी प्राकृतिक घटना

नेत्रगोलक में का कोई भी घटक जो विवर्तन रेखापट (ग्रेटिंग) जैसा कार्य करता हो उससे प्रकाश के तीव्र तेजदार बिन्दु की ओरको देखनेसे विवर्तन वर्णपट पैदा होकर यह नेत्राभ्यन्तरीय इन्द्रधनुष्य की कुंडली–प्रभामंडल (हैलो) जैसा दिखाई पडेगा जिसमें वर्णपट के रंग बाहरकी ओरको लाल और भीतरी की ओरको नीला रंग है ऐसा दिखाई पडेगा।

इस तरहके प्रभामंडल कई घटकोंसे प्राकृतिक या विकृत अवस्थामें पैदा होते है।

(अ) प्राकृतिक प्रभामंडल—कुंडली (हैलो) ।

(१) **स्फटिकमणिजनित प्रभामंडलः**—स्फटिकमणि के तन्तुओंकी त्रिज्जीय रचनासे विवर्तन रेखापट जैसा कार्य होनेकी वजहसे प्रभामंडल पैदा होता है। स्फटिकमणिजनित प्रभामंडल के पीले वर्तुल का ऐंग्युलर व्यास की लम्बाई ६° से ७° होती है और उसके संपूर्ण प्रभामंडल के व्यास की लम्बाई ८° होती है।

(२) **तारकापिधान** से इसी तरहका प्रभामंडल, लेकिन थोडा छोटा, होता है। (पीले—वर्तुल का व्यास ४°); यह प्रभामंडल रुग्ण परीक्षामें बारबार दिखाई पडता है; और यह बाह्य कलातहकी या आन्तः कलातहकी वजहसे पैदा होता है।

(३) कनीनिकाकी किनार नेत्राभ्यन्तरीय क्षेत्र मे देखनेसे विवर्तन की वजहसे दो काली लकेरियो से मर्यादित हुई हैं, ऐसी दिखाई पडती है।

(ब) विकृत प्रभामंडल

इसकी दो वजह होती हैं:—

(१) श्लेष्मा, रक्त, पीब, वारिक वायु बुद्बुद यदि अश्रुपिंडके श्राव से मिले हो, या तारकापिधान के पृष्ठ भाग पर अन्य पदार्थ हो तो यह प्रभामंडल पैदा होता है। नेत्रच्छद को बद करने से उसका लोप हो जाता है, इस बात से उसको जाना जाता है।

(२) तारकापिधान की कलातह की नीचे के भाग के शोथसे प्रभामंडल दिखाई पडता है। इस हालतमे पेशियोके दरमियानके जलबिन्दु जमे हुए होंगे या पेशियों के शोथसे उनके आवर्तन क्षमतामें फर्क हो जानेसे यह प्रभामंडल पैदा होता है।

रुधिराभिसरण संबंधीको नेत्राभ्यन्तरीय प्राकृतिक घटना

(१) दृष्टिपटल की रक्तवाहिनियोंकी नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमा

दृष्टिपटल की रक्तवाहिनियोंसे दृष्टिपटल पर जो छाया गिरती है, उनपर साधारणतः चैतन्य की अवस्था मे कुछ ध्यान नहीं दिया जाता। ध्यान में रखना जरूर है कि इसके कारण बहुत होते हैं यानी आदत या देहप्रकृति, स्थैर्यबिन्दुके स्थानमे सतत फर्क होना और ज्ञात हुअे नमूनाओंको पूर्ण करनेकी इंद्रियोका गुणधर्म। इनके सिवा ऐसाभी एक कारण दिया जाता है कि, रक्तवाहिनियोसे पीछेके दृष्टिपटल के भाग का संरक्षण होनेसे उसकी कार्यक्षमता बढ जाती है। इसका नतीजा यह होता है कि रक्तवाहिनियोमेसे जो कुछ थोडा प्रकाश पार जाकर दृष्टिपटल पर गिरता है उससे इस भाग की प्रकाश क्रिया दृष्टिपटल के अन्य भागकी, जिस पर पूरा प्रकाश गिरता है,उसकी क्रिया के समान होती है। इसीबारे मे पंडित **यंगने** (१९२६)शारीर शास्त्रके अनुसार ऐसी कल्पना सूचित कीई है कि रक्तवाहिनियोके दबाब से पीछेके दृष्टिपटलका भाग अशंतः या पूरा दृष्टिहीन हो जाता है। और इसी वजहसे रक्तवाहिनियोंकी नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमा नहीं दिखाई पडती। **परकंजी पंडित** का कहना यह है कि

इसी हालतमें यदि तारकापिधान के परिधिभागमेंसे या शुक्लपटलमेंसे प्रकाश नेत्रमे तिरछा डाला जाय तो रक्तवाहिनियोंकी छाया दृष्टिपटलके अन्य भागोपर गिरेगी और फिर उनकी नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमा दिखाई पडेगी।

(२) दृष्टिस्थान केन्द्रके इर्दगिर्द की केशिनियोंकी नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमाः— दृष्टिस्थान भाग की दृष्टिपटल की बारीक रक्तवाहिनियो की नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमाएँ आकाश जैसे पूर्ण प्रकाशित भाग को कारटमें के सूक्ष्म छिद्रमेंसे या स्टेनापिक स्लिटमेंसे,कारट को थोडा हिलाकेदेखनेसे दिखाई पडती है।

(३) रक्तकणोंकी नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमाः—

आकाश जैसे तेजदार प्रकाशित पृष्ठकी ओर को देखनेसे दृक्क्षेत्रमें पीछेकी काली जमीन पर अनेक छोटे चमकदार बिन्दु दिखाई पडते हैं। इनका विशेष यह होता है कि वे यकायक ऊपर कूद कर और इधर उधर वर्तुल दिशामें घुम कर यकायक अदृश्य हो जाते है। आंखोको बंद करके बैठे तो सामनेकी ओर गोल गुलाबी क्षेत्रमे चमकदार बारीक बिन्दु घूमते हैं ऐसा दिखाई पडता है।

इसके तफसीलसंबधी संशोधकों मे अभीतक एकमत नहीं हुआ है। लेकिन ज्यादह सुबत ऐसा मिलता है कि ये बिन्दु रक्तकणोकी ही प्रतिमाये होती हैं।

दृष्टिपटल की शरीररचना संबंधींकी प्राकृतिक घटना

(१) दृष्टिस्थान—(म्याकुला) नेत्राभ्यन्तर को तिरछे तोरसे तीव्र प्रकाशसे प्रकाशित करनेसे क्षेत्रके केन्द्रमें दीर्घ वर्तुलाकार या चन्द्रकोर के आकारकी दृष्टिस्थान की नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमा नज़रमें आती है। पीत लक्ष्म (यलोस्पाट) प्रभामडल से मर्यादित ऐसा पूर्ण गोलाकार ऐसा दिखाई पडता है।

२ नेत्रबिम्ब (आपटिक डिस्क) जिस अवस्थामे दृष्टिपटल की रक्तवाहिनिया दिखाई पडती है उसी अवस्थामें नेत्रबिंब का नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिबिम्ब देख सकते है। जिस क्षेत्र मे रक्तवाहिनियां निकलकर विकीर्ण होती है उसी जगहमें एक खाकी रंग की छाया दिखाई पडती है। यह अवस्था आंधियारेसे मिलती जुलती अवस्थामे दिखाई पडती है। यह शकल—थोडे समय तक रहती है। नेत्रको बंद करके क्षेत्र को ढाकनेसे इस खाकी छाया का रंग चमकदार होता है और फिर वह भी अदृश्य हो जाता है।

(३) दृष्टिपटलके मज्जातन्तु—नेत्रपर निकोल त्रिपार्श्वमेंसे ध्रुवित (पोलराइज्ड) प्रकाश असलमें नीला प्रकाश डाला जाता है तब नीले पिछले पार्श्वभूमीपर गहरे पीले रंगकी श्रेणी दिखाई पडती है।

ब्ल्यू आर्कस—परकंजी पडित ने शोध लगाया कि यदि प्रकाशबिन्दूको अकेन्द्रिय तोरसे देखा जाय तो नेत्राभ्यन्तरीय प्रतिमा नीले रंगकी दिखाई पडती है। दाहिने आंखको प्रकाशके दाहिने ओर को स्थिर करनेसे प्रकाशके ऊपरके सीरेमें एक और नीचेके सीरेमें एक ऐसी दो नीले

रंग की लकेरियां निकलकर दोनो भी नेत्रबिम्ब की नीचेकी ओरको केन्द्रित होती है(ब्ल्यूआर्क)। ऐसी नेत्राभ्यन्तरीय प्राकृतिक घटना दिखाई पडेगी। नजर बाये ओरको रोखी जाय तो नीले रंगका एक पट्टा आडा और नेत्रबिंब के नीचे की ओरको जाता है ऐसा मालूम होगा।

दृष्टिपटलका अन्तर्विहित (इनट्रिन्झिक) प्रकाश

आंखो पर प्रकाश बिलकूल नहीं गिरेगी ऐसी व्यवस्था की जाय तोभी नेत्राभ्यन्तरीय क्षेत्र बिलकूल काले रंग का नहीं होता। सचमुच कहे तो कह सकते है कि नैसर्गिक नेत्र चमकदार संज्ञा विराहित कभी नहीं होता। उसका अन्तरीय क्षेत्र कुछ चमकदार रहता है न काला या न सुफेद बल्कि माध्यम खाखी रहता है;उसकी प्रवृत्ति एकबार काला और एक बार सुफेद की ओर डुलती रहती है और यह क्रिया श्वास–प्रश्वास क्रियासे तालबद्ध रहती है (जे. मूलर १८२६)। इसतरह की पीछेकी जमीन पर पहले देखे हुए पदार्थोंकी पश्चाद प्रतिमाऐं बंद हो जाने के बाद भिन्न भिन्न प्रकाशके नमूने पैदा होते है; प्रकाश बिन्दु के पट्टे, प्रकाश प्रवाह और तरते प्रकाशित बादल बनते है, और यह दृश्य नेत्रबिम्ब के क्षेत्रमें केन्द्रित रहता है (परकंजी १८२५)।

इसकी कारण मीमासा अभितक निश्चित नहीं हुई है। लेकिन सूचित किया गया है कि यह दृष्टिपटल के अन्तर उत्तेजनसे पैदा होता होगा लेकिन इसके पैदाईश मे मस्तिष्ककी पेशियोका हिस्सा होगा ऐसा माना जाता है। इसके दो सूबत यह है कि (१) जिनका नेत्र निकाला डाला है उनको भी यह प्राकृतिक घटना दिखाई पड़ती है, (२) मस्तिष्कशूल वाले लोगोंके दृक्क्षेत्रमें जगमगाहट (सिन्टिलेशन्स) पैदा होते है।

खंड ५ वां

अध्याय १५

जीवनदृक्‌शास्त्र (बायालाजिकल आपटिक्स)

नेत्रगोलकके घटकोंसे किरण विसर्जन शक्तिका (दीप्तिमान शक्तिका) शोषण.

(१) नेत्रगोलकके अन्दर जानेवाली और शोषण होनेवाली किरण विसर्जन शक्तिका प्रमाण और (प्रकार) तरह

सन १९१३ में **ल्युकीशनें** दृश्य वर्णपटकी किरणोंके संबंधमे ऐसा मत प्रदर्शीत किया था कि जलकी तहकी समान घनताके नेत्रके घटकोंमे जानेवाली तथा शोषण होनेवाली किरणोंका प्रमाण ८°/० प्र. सें. से ज्यादह नहीं होता । लेकिन ख्यालमें रखना कि उनमें भी किरणोंको चुनकर वितरित करनेकी शक्ति होती है । जब किरणविसर्जन शक्तिकी लहरियोंके आवर्तनोंका प्रमाण, जिस पदार्थके परमाणुव्यूहमेंसे किरणें जाती हैं उनके आवर्तनोंके प्रमाणसे मिलता होता है तब परमाणुव्यूह उन किरणोंको शोषण कर सकते हैं । नेत्रगोलकके नत्रप्रचुर यानी प्रोटीन युक्त घटकोंके बडे अणुमें प्रकाशका अन्दर जानेका प्रमाण ज्यादह होता है । इसलिये नेत्रगोलकके भिन्न भिन्न माध्यमोंका प्रेषण धर्म (ट्रान्समिसिबिलिटी) उनमेंके प्रोटीन युक्त बडे बडे घटकोंके प्रत्यक्ष प्रमाणके बराबर होता है । और इन द्रव्योंमे तनु जलदार द्रावणके शोषण लक्षण दिखाई पडते हैं ।

नेत्रगोलकके माध्यमोंसे प्रकाशकी लम्बी लहरियोंकी किरण विसर्जन शक्ती पार जा सकती है, और वर्णपटकी परालाल यानी उष्णताकी किरणोंसे मर्यादित (इनफ्रारेड) भाग की किरणें जिनकी आवृत्ति (पिरिआडीसिटि) परमाणुकी गतिकी आवृत्तिसे मिलती होती है, वे शोषित होती हैं; और इस भागके पश्चात भाग की किरणे पार ही जाती हैं । जिस भाग के परमाणुओंकी गतिकी आवृत्ति नीललोहितातीत--पराकासनी (अलट्राव्हायोलेट) किरणोंकी लहरियोंकी आवृत्तिसे मिलती होती है तब वे किरणें ज्यादह प्रमाणमे शोषित होती हे । आखिरको क्ष किरणोंकी छोटी लहरियोंकी मर्यादासे वे घटक पारदर्शक होते हैं । यह बात ख्यालमें रखना कि शोषण और प्रेषण की मर्यादा कायम नहीं है । नेत्रगोलक के माध्यमोंका प्रेषण धर्म भिन्न जातिके प्राणियोंमें भिन्न भिन्न होता है इतनाही नहीं बल्कि एकही प्राणिवर्गके व्यक्तिओंमें भी भिन्नता दिखाई देती है । स्फटिकमणिमें आयुमान की अवस्थासे होनेवाले फर्कोंका भी असर होता है । असल बात यह होती है कि किरणविसर्जन शक्तिकी तीव्रताके प्रमाण का प्रेषण पर असर होता है । प्रेषण विसर्जनशक्तिके समप्रमाण मे होता है, लेकिन इसकी मर्यादाका विवरण,पारिमाणिक विकरणमापक यंत्र के आधारसे विसर्जन शक्तिके प्रमाणपर किया हुआ आदर्श निरूपण के सिवा, लहरियों की खास लम्बाईके प्रमाणमें प्रगट करना संभाव्य नहीं । तो भी शोषणकी पट्टीयां (अँबसारप्शन ब्यान्डस्) जल्द दिखाई पडती है, और आंशिक शोषण के क्षेत्र बडे नहीं होते ।

इस विषयका संशोधन तीन दिशासे शुरू हुआ । पहले पहल **ब्रुकने** (१८४५) पराकासनी किरणोंकी अदृश्यता का कारण का संशोधन शुरू किया । **व्होगटनें** (१९१२) बतलाया कि वर्णपटक की लाल सीरेकी

शक्ति-विकिरणशक्ती, जो दृष्टिपटल को जा पहुंचती है उसमेंका बहुतसा प्रमाण दृष्टिगोचर होता है। दृष्टि-गोचरता की मर्यादासे वर्णपटके ऊपरके भागसे नेत्रगोलकके माध्यमोंकी प्रेषणशक्तिका बोध नहीं होता; तो भी मान सकते है कि वर्णपटकी नीचेकी सीरे की सब किरणें जो माध्यममेंसे अन्दर जा सकती है वे दृष्टि-गोचर होती हैं। इस जगह पर दृष्टिगोचरता की नीचेकी मर्यादासे प्रेषण की मर्यादा जानना संभाव्य है, यदि दृष्टिगोचरता की (व्याख्या) परिभाषा, प्रतीदीप्तिसे शुद्ध वर्णपट की रेषाका निरीक्षण ऐसा करें।

संशोधन की दूसरी दिशा **प्रतीदीप्ति का संशोधन** थी। यह **हेल्महोल्ट्झ** (१८५५) ने किया। दृश्यवर्णपटकी नीचे की सीरे की सीमा को इस दृक्प्रत्यक्ष का प्रत्यक्ष अनुभव लेना यह इसमें उद्देश था। इस विषय का अचूक अवलोकन **हाफमनने** (१९२७) किया इन्होंने पहले मनुष्यको फ्लुरीसिन लवण खानेको दे कर फिर पूर्व वेश्मनीनें प्रतीदीप्ति दिखाई देते ही वर्णपटके अलग किया हुआ प्रकाश नेत्रमें डाला।

संशोधन की तीसरी असली दिशा इसनें वर्णपट मापक यंत्रसे प्रकाशका वर्ण विश्लेषण करके उसको नेत्रके माध्यमोंसे भेज कर वर्णपटके कौन कौनसे भाग अन्दर जा सकते है इसको देखना और विसर्जन शक्तिका थरमोपाईल आदि यंत्रोंसे नापन करना। १९१२ में **व्होगट** नेत्रकी नापवाहकता (डाथरमानसी) पर संशोधन करके स्पष्ट किया कि परालाल किरणोंकी विसर्जन शक्ति जो नेत्रमें जाती है उसमेंसे ८० % प्रति सेकडा अदृश्य होती है, और स्फटिकमणि में जो प्रमाण शोषित होता वह हानिकारक होता है।

नेत्राश्रुः—नेत्राश्रुमें किरण विसर्जन शक्तिका शोषण जीवन शास्त्रमें महत्व की बात नहीं है। वर्णपटके ऊपरके भागकी किरणोंका शोषण की मर्यादा तारकापिधानमें के शोषण की मर्यादासे मिलती जुलती है, और पराकासनी भाग की शोषण की क्रिया ३०२५ अं. एकं मे शुरूं होती है और ज्यादहसे ज्यादह शोषण की मर्यादा २८०० मे शुरूं होती है जिसमे पट्टीया २५३५ और २४६४ में दिखाई पडती है।

तारकापिधानमेंका प्रेषण तथा शोषणः—इन दोनों गुणोंके संबंधमें सब संशोधकोंमें एकमत है। वर्णपटके परालाल भागके ऊपरकी ३०००० अं.एक की लहरियोंकी सब किरणें

चि. नं. २६५
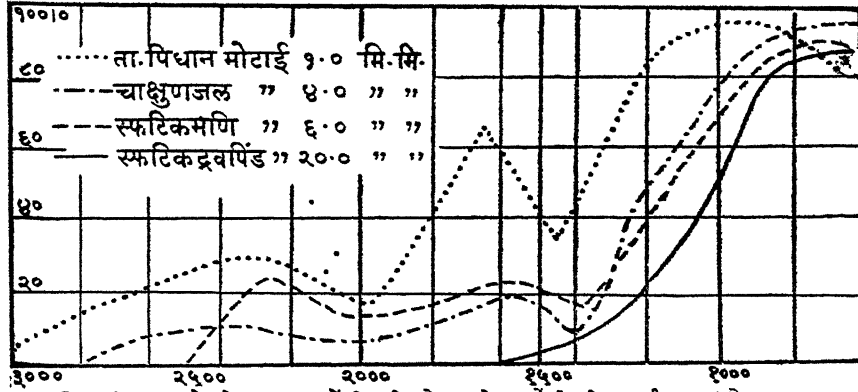
चित्र नं. २६५ नेत्रगोलक माध्यमोंकी वर्णपटके उपरके भागोंकी पारदर्शकता (बैल तारका-पिधानका का प्रयोग) कोटी–खडी रेषाएं (आरडिनेस प्रतिमिकडा प्रमाण और भुज आडी रेषायें (अबासिसी) लहरियोंकी लंबाई का प्रमाण $\mu\mu$ (मायक्रो मिलि-मिटर्स) ले लिये है (**रागेन बो** और **वेथोर**के अनुस्वार)

तारकापिधानमें शोपित होती हैं। लेकिन इसके नीचेकी२००००अं. ए.(अंगुस्ट्रियन युनिट) तक की लहरियोंकी किरणोंका ज्यादह प्रमाण पार हो जाता है। उसके नीचेकी किरणें शोपित हो जाती हैं। इसके बाद सापेक्षपारदर्शकता क्षेत्र आता है; फिर १६५०० अं. एकं के

क्षेत्रमें कुलविसर्जन शक्तिका ६५°/० प्र. सेकडा प्रमाण तारकापिधानमेंसे पार होकर नेत्रमें जाता है। उसके पश्चात १४००० अं. एकं तक दूसरा शोपण क्षेत्र होता है और फिरसे पारदर्शकताका क्षेत्र दिखाई पडता है। १२५०० अ. एकं के क्षेत्रमें तापविसर्जन शक्तिका ८०°/० प्रमाण प्रेषित होता है; १०००० अं. एकं के क्षेत्रमे पारदर्शकता ज्यादह प्रमाणमें होती है। वास्तवमें तारकापिधान वर्णपटकी परालाल छोटी लहरियोंकी किरणोंको दृश्य लाल किरणोंकी अपेक्षा (७५०० अं. एकं) ज्यादह पारदर्शक है। उसके पश्चाद दृश्यवर्णपटका प्रेषण इतना अधिक होता है कि तारकापिधानपर गिरनेवाली प्रकाशकिरणे सब की सब अन्दर जाती हैं। लेकिन पराकासनी किरणोंका शोषण हो जाता है।

चाक्षुष जलसे शोषण:—चाक्षुप जल की भिन्नभिन्न तहोंमेंसे प्रकाश के शोषण में फर्क होता है। लेकिन तारकापिधान में से पार आई हुई सब किरणें इसमेंसे ही पार जाती है। वर्णपटके ऊपरके भागकी किरणों की ताप २० से ३० प्र. सै. प्रमाणमें शोपण होती है।

स्फटिकमणि—२५००० अं. ए. की ऊपरकी लहरियों की किरणोंका सोख लेता है। उसके बाद वर्णपटके ऊपर के भागमें उसकी पराजानेके प्रमाण की वक्ररेषा साधारणतया नेत्रके अन्य माध्यमों के प्रमाण की वक्ररेपा जैसी होती है। लेकिन महत्व की बात यह होती है कि, जब स्फटिकमणि नेत्रमें अपने नैसर्गिक स्थानमें होता है तब विसर्जन शक्तिके शोषणके प्रमाण की नाप मुकर्रर करना यह होती है; क्यों कि मोतीबिन्दुकी पैदाइशमें इसका प्रत्यक्ष और महत्वका हिस्सा होता है इस भागमें वर्णपटका शोपित प्रमाण चित्र नं. २६६ में से दिखाई पडेगा।
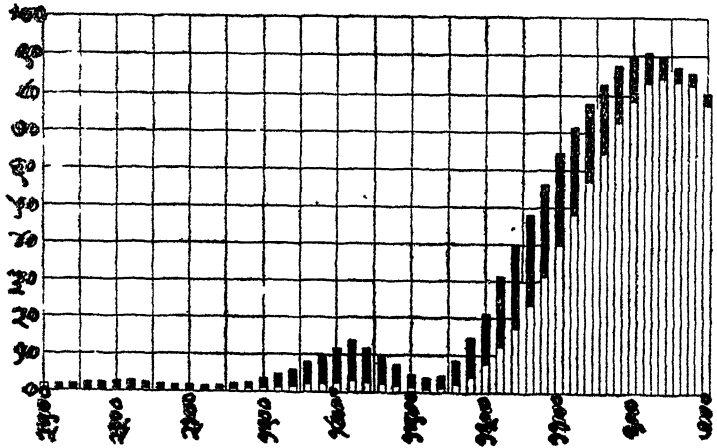
चित्र नं. २६६ वर्णपटके ऊपर के भागकी किरण विसर्जन शक्तिका स्फटिकमणिमें होनेवाला शोषण।

रेषांकित भाग स्फटिकमणिपर गिरनेवाली विसर्जन शक्तिका है; काला रेषांकित भाग उसमें शोषित होनेवाला प्रमाण है। चित्रके बाजूके अंक गिरनेवाली विसर्जन शक्ति की प्रतिशतताकी कोटी के दर्शक है, भुज लहरियों की लम्बाई μ है। **(रागिनहम और वर्यामर)**

यह बात ध्यान मे आजायेगी कि परालाल का बहुतसा प्रमाण याने पराजानेवाली विसर्जन का प्रमाण ३०% प्रति सेकडा इसमें शामिल होता है। इसमे दो भागोमें चूनाव होता है, एक छोटासा क्षेत्र होता है जिस पर वर्णपटकी गिरनेवाली विसर्जन शक्तिका १५००० से १८००० अं. ए. के भागका १० % प्रति सैंकडा प्रमाण शोषित होता है, और दूसरे बडे क्षेत्रपर वर्णपटके १०००० से १२००० भाग की विसर्जन शक्तिका २५% प्रति सैंकडा प्रमाण शोषित होता है। इसके बाद दृश्य वर्णपट साधारणतया पार जाता है। वर्णपटके नीचेके क्षेत्र का शोषण का औसत ४००० अं. ए. से शुरू होता है। स्फटिकमणिकी शोषण शक्तिमें आयु-मर्यादा के अनुसार फरक होता जाता है। बालदशामें ३०५५ के ऊपरकी किरणें पार जाती है; नवज्वानीकी दशामे ३२०० के तक कुछ किरणे पार जाती हैं लेकिन शोषण का क्षेत्र ३५०० से ४००० दिखाई पडता है। बूढेपनमें यह मर्यादा ४५०० तक पहुँच जाती है, और मोतीबिन्दुमे शोषण दृश्य कासनकि क्षेत्र तक होता है। स्फटिकमणिके आवरण का शोषण में कुछ हिस्सा नहीं होता क्योंकि पराकासनी (२३२७ अ. ए.) के क्षेत्र के बाद शोषण होता है और स्फटिकमणि के केन्द्रस्थ भागमे उसके इर्दगीर्दके क्षेत्रकी अपेक्षा शोषण ज्यादह होता है।

स्फाटिक द्रवपिंडः—यह पारदर्शक होता है, और उसके शोषण का प्रमाण उसकी तहोंका ऊपरके या नीचे के स्थान पर अवलम्बित होता है, इसमें तापकिरणोंका शोषण का प्रमाण ६० प्र. सैं. होता है।

साधारणतया किरण विसर्जन शक्ति का तेज मध्यम हो तो वर्णपटके परालाल भाग के १५००० अं. एकं के ऊपर की सब किरणोंका नेत्रगोलक के माध्यमों में शोषण होता है। उसके नीचे के भाग की ज्यादह तर किरणे पार हो कर दृष्टिपटल तक पंहुचती है जब ९००० की ९०°/० और ७७०० की ९४°/० विसर्जन शक्ति तारकापिधान में से पार जाती है, अर्थात इसी मे अदृश्य ताप या उष्णताकी किरण विसर्जन शक्तिभी मिली हुई होती है। सब माध्यमोसे किरणोंका—यह पार जाने का प्रमाण. वर्णपटके नीचेकी किरणोंका अर्थात नील—लोहित भागकी किरणोतक कायम रहता है जब फिरसे शोपण शुरू होता है; यह शोपण क्रिया अर्थात स्फटिकमणि की कठनताकी अवस्थापर अवलम्बित रहती है। ४००० अ. एक से छोटी और ३२०० अं. एकं तक की किरणें नैसर्गीक स्फटिकमणि में सोखी जाती है; इसके बाद किरणोका दृष्टिपटल तक जाना रुक जाता है। ३२०० से २९३० तक की किरणों का स्फटिकमणिमे शोपण हो जाता है लेकिन २९३० से कम लम्बाई की किरणोंको तारकापिधान मे रुकावट होती है। नैसर्गीक नेत्रलगोकमे तारकापिधान पर गिरनेवाली उष्णता में से २०°/० से २५°/० प्रमाण नेत्रमें जाता है। इस प्रमाणका २०°/० से ३०°/० प्रमाण चाक्षुपजलमे सोखा जाता है; स्फटिकमणिमे तारकापिधान और तारकासे पार गयी हुई उष्णताका ३० °/० प्रमाण सोखा जाता है; यानी तारकापिधान, तारका और स्फटिकमणि तीनोंसे मिलकर तारकापिधान पर गिरनेवाली उष्णता का ६°/० प्रमाण पार जा सकता है। शेप का ६०°/० प्रमाण स्फटिक-द्रवपिंड में सोखा जाता है यानी नेत्र पर गिरनेवाली कुछ उष्णता में से ३°/० प्रमाण दृष्टिपटल को जा पहुंचता है।

नेत्रमें किरण विसर्जन शक्तीका समाहरण (कानसेन्ट्रेशन)

नेत्रगोलकमें किरणविसर्जनशक्ति पार होनेके पश्चाद उसके कितने प्रमाणका समाहरण होता है इस विषयका **ल्युकीशने** बहुत संशोधन किया। उस शक्तिका वितरण दो पारस्प-

रिक भिन्न बातों पर अवलम्बित होता है:(१)शक्ति क्षयका असर जो अंशतः नेत्रगोलक के माध्यमोंकी विशिष्ट शोषण शक्ति पर और अंशतः अनियमित वर्ण विश्लेषण, परावर्तन और अपायनपर अवलम्बित रहता है (२) समारहणीय–समाहृत–असर जो नेत्रगोलक की प्रकाशसंबंधी की प्रणालीसे होनेवाले वक्रीभवन भर अवलंबित होता है। साधारणतया किरण विसर्जन शक्तिका शोषणसे होनेवाला क्षय नेत्रगोलकके सामनेके भागमें होता है। शोषण करनेवाले घटकोंकी तहोंकी गहराई जिस प्रमाणमे बढती जाती हैं उसी प्रमाणमें शोषण का प्रमाण घटता जाता है। वर्णविश्लेषण से होनेवाली घटत का प्रमाण प्रत्यक्ष गिरी हुई विसर्जनशक्ति के प्रमाणका १०°/० होता है।

नेत्रगोलकमे विसर्जन शक्तिका समाहरण कनीनिका का आकार और प्रकाशित करनेवाले वस्तुके आकार पर अवलंबित रहता है। कनीनिकाकी वजहसे दृष्टिपटलपर गिरनेवाले प्रकाश की तिव्रताके फरकोका **रीव्हजने** (१९१८)नापन किया;उसकी समज चित्र नं. २६७–से ख्यालमें आजायेगी कि कनीनिका क्षेत्र और दृष्टिपटल के प्रदीपन का संबंध लघुगणकीय (लागरथमिक) होता है। प्रकाशके उगम क्षेत्र के संबंध मे यह बात निश्चित है' कि यदि यह बिलकूल मर्यादित आकारका हो तो विसर्जन शक्तिकी तिव्रताका एक सा औसद नेत्रके आधे माध्यमोंमे दिखाई पड़ता है; क्योंकि माध्यमोंमेका शोषण तथा वर्ण विश्लेपणमे वक्रीभवनसे पैदा होनेवाले समाहरण के असरका ठीक प्रतिपेध होता है। लेकिन नेत्रगोलक के पिछले भागमें जहा प्रकाशका केन्द्रमें–समाहरण होता है उसका असर होने लगता है, और विसर्जन शक्तिकी तीव्रता ज्यादह हो तो प्रकाश वक्रीभवसे दृष्टिपटलके घटकोंका नाश होगा यद्यपि सामनेके घटकोंपर तारकापिधान स्फटिकमणि–कुछ असर नहीं होता मसलन सौर प्रकाशसे पैदा होनेवाला अंधत्व। इससे यह अनुमान कर सकते है कि प्रकाश उगम छोटा लेकिन समाहृत हो तो दृष्टिपटल पर विसर्जन शक्तिका समाहरण ज्यादह होता है।

चित्र नं. २६७
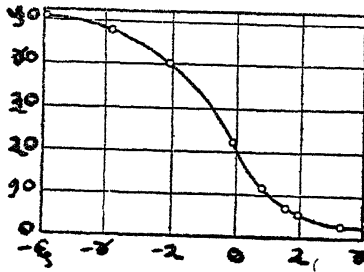
लघुगणकीय तीव्रताका मि.मि. नापन कनीनिका का क्षेत्र और दृष्टिपटल के प्रकाशनका संबंध(रीव्हजके निर्दिष्ट विषयसे हेकेटने निकाली हुई वक्ररेषा

चि. नं. २६८
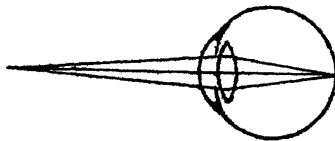
एक बिन्दूपरसे निकलेवाली किरण विसर्जन शक्तिका नेत्रमें का समाहरण

चि. नं. २६९
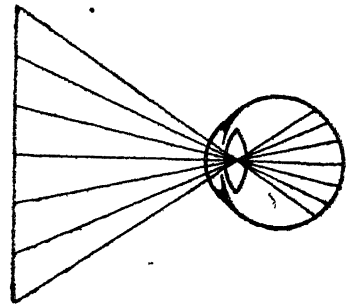
बड़े आकारके पदार्थसे निकलनेवाली किरण विसर्जन शक्तिका नेत्रमें होनेवाला समाहरण

नेत्रमे किरणविसर्जन शक्तिका केन्द्रित होना कनीनिकाके छेदके आकारपर और प्रकाशके उगमस्थानके आकारपर अवलम्बित रहता है।

(२) नेत्रगोलकके घटकोपर किरणविसर्जन शक्तिकी जीवन दृक्शास्त्रीय क्रिया

नेत्रगोलकके जिन घटकोंमें किरण विसर्जन शक्तिका शोषण होना है उन्हीं घटकोपर उसका असर होता है। परावर्तित किरणोका किसी तरहका अच्छा या बूरा परिणाम नहीं होता। शोषित प्रकाशकिरणोका निम्न लिखित तीन्हो परिणामोंमेंसे कोई भी एक दिखाई देगाः—(अ) तापजनित दुष्परिणाम; (ब) प्रकाशरासायनिक या जीवनकी कमी का परिणाम; (क) और पुनर्प्रकाशजनित परिणाम–प्रतिदीप्ति (फ्लुरेसेन्स)।

परालाल जैसी लम्बी लहरियों की किरणोंकी आवृत्ति परमाणुओंकी गति की बराबर होती है ऐसी कल्पना कर सकते है। वर्णपटके ऊपर के भागके यानी परालाल (इनफ्रारेड) के सिवाय अन्य किरणोका समाहरण होता है। इन किरणोंकी लहरियोंकी लम्बाईकी आवृत्ती-आवर्तन–साधारणतया परमाणूओंकी गतिकी आवृत्तीसे मिलती जुलती होती है। इसी वजहसे परमाणू किरणोंको सोख लेनेसे उनकी गति ज्यादह बढ जाती है, और तापका अनुभव होता है। इस उष्णताके परिणामसे घटकोंके प्रोतीन द्रव्य जम जानेसे **जलनेकी जैसी इजा** होती है। वर्णपटके इसके नीचेके यानी कम लम्बाईकी लहरियोंकी किरणोको मददगार प्रतिकम्पक न मिलनेसे वे सीधे नेत्रगोलकके पारदर्शक माध्यमोंमेंसे दृष्टिपटलतक पार जाते है, और उनकी इन घटकोंपर परिणामकारक क्रिया नहीं होती। इन किरणोंमेंसे जिनकी लहरियोंकी लम्बाई छोटी होती है, यानी पराकासनी, जिनकी आवृत्ति परमाणुओं-मेंके आवर्तोंके दोलनोंसे मिलती होती है वे सोखी जाती है। इन किरणोकी विसर्जनशक्तिका परमाणूओंके संस्थानसे योग होनेमें विद्युतकणोंकी–इलेक्ट्रान्सकी कक्षा बदल जाती है यानी परमाणूकी रासायनिक रचना बदल जाती है; या परमाणू संस्थानसे बाहरी ओर को वे फेंके जानेसे प्रकाशविद्युत फर्क पैदा होता है; इससे प्रोतीन द्रव्य जम जाते है और प्रकाशरासायनिक क्रिया या जीवनकी कमी का क्षत पैदा होता है। ये दोनों परिणाम, तापद और प्रकाशरासायनिक, बिलकुल भिन्न हैं तो भी उनके अन्तिम पृथक्करण मे साम्यता दिखाई देती है, और ये परिणाम विसर्जन शक्तिका अणूओंको या उनके भागोंको स्थानान्तर होनेसे पैदा होते हैं और इसका नतीजा यह होता है कि परमाणू हिल जाते है। सैद्धान्तिक–तात्त्विक–तौरसे विचार करे तो वर्णपटके विस्तृत सीमामें दोनों, विकिरणकी तीव्रता पर अवलम्बित रहनेसे संभाव्य है तो भी व्यावहारिक निरीक्षणसे उष्णताका परिणाम ७७०० अं. एकं की लहरियोंकी किरणोंकी नीचेकी ओर को खतम होता है, और प्रकाशरासायनिक या जीवनकी कमीका परिणाम ३००० अं. एकं की लहरियोंकी ऊपर की ओरको नहीं दिखाई पडता। वर्णपटकी इन दो मर्यादाओंके बीचमें दोनो, ताप और जीवन की कमी के, परिणाम उपेक्षणीय होते है, लेकिन रंगी घटकोंमे जहा सब की सब विसर्जन शक्ति सोखी जाती है और जहा उसका उष्णतामें परिवर्तन होता है ये परिणाम ज्यादह जोरदार जैसे होते है।

नेत्रगोलक के माध्यमोंपर किरणविसर्जन शक्तिका कार्य

(अ) ऊष्णताजन्य दुष्परिणाम

परालाल ऊष्णताकी किरणोंका नेत्रगोलक के माध्यमोंपर होनेवाला असर विकृत स्वरूपका होता है । **तारकापिधान** के प्रोतीन द्रव्य जम जाते है, और इसमे अपारदर्शकता धुंधलापन—पैदा होती है; **तारका** पर उसके रंजित घटकोंमे ऊष्णताका शोषण होनेसे रक्त-स्राव होकर वह जम जाता है और तारकाका स्तंभिक विस्तार होता है फिर वह बेरंग होकर उसका अपोषण क्षय होता है । **स्फटिकमणि** के कटिबंधके घटक अलग होकर गल जाते हैं; क्रिया बलवान हो तो प्रोतीन द्रव्य जम जाते है जिससे मोतीबिन्दु पैदा होता है । **दृष्टिपटल** के भाग जल जानेसे वे सड जाते हैं । उसके रंजित घटकोंमें उष्णताकी किरणोंका शोषण होनेसे उनका परिणाम उनके अगले ओरके **राड** और **कोन** घटकोंको और पीछले ओरके कृष्णपटल को फैलता है ।

ऊष्णताके रुग्णविषयक दुष्परिणाम—भट्टीके सामने काम करनेवाले लोगोमे दिखाई देनेवाले कटिबंधका (ग्लान्युलर) मोतीबिन्दु, और सूर्यग्रहणके समय विनाकाली काचसे, नेत्रोंसे देखनेसे पैदा हुआ अंधत्व ये इसके दृष्टान्त समझना ।

(ब) प्रकाश रासायनिक या जीवन की कमी का कार्य (अबायाटिक ऍक्शन)

प्रकाश का रासायनिक या जीवन की कमी के क्षत का स्वरूप उष्णताजन्य दुष्परिणाम से बिलकूल भिन्न होता है । यह प्रतिक्रिया किरण विसर्जन शक्ति के शोषण के प्रमाण पर अवलम्बित होनेसे उसको प्रदीप्त करनेके लिये लहरियों की संधि अवस्थाका प्रारंभिक मान का (क्रिटिकल थ्रेश होल्ड ऑफ वेव्ह लेंग्थ) और विसर्जन शक्ति की तीव्रताका इस्तेमाल करना जरूरी होती है । **काबलेन्स न्यूकमर हरटल** आदि संशोधकोंके मतानुसार यदि बाह्य अवस्था लायक हो और प्रतिबिम्ब काफी तीव्र हो तो यह परिणाम ३६५० से ३०५० लहरियो पर दिखाई पडता है । व्यावहारिक तोरसे जीवनकी कमी का परिणाम ३००० अं. एकं से कम लम्बाई की लहरियोंसे पैदा होता है और हर एक सेन्टिमिटर के वर्गाकार क्षेत्र पर वीस लाख २०००००० **अर्ग** (शक्ति की इकाई) सेकन्ड की तीव्रताका प्रमाण का इस्तेमाल करना जरूरी होती है । यह नियम अर्थात् घटकों को जा पहुंचनेवाली विसर्जन शक्ति की तीव्रता के लियेही मानी गयी है; और इसी वजहसे व्यवहारमें इस क्रिया का कार्य काल के समान प्रमाणमे (अर्थात क्रिया जितने ज्यादह काल तक होगी उतनाही ज्यादह उसका प्रमाण होगा), और प्रकाश के उगमस्थान के फासले के वर्ग के व्यस्त यानी उलटे प्रमाणमें और आघातकोणके कोटिज्याके सम प्रमाणमें होता है ।

प्रकाश रासायनिक क्रियासे घटकों के सूक्ष्म शरीर रचनामें होनेवाले फरकों के संबंधीका संशोधन **ड्यूक एल्डरनें** सन १९२९ मे जाहीर किया उसका सार यह है:— यह निरीक्षण असलमें तारकापिधान की कलातहों पर किया था । पहले तारकापिधान

की कलातहकी पेशियोंके जीवनबीज के रंजितकण नष्ट हो जाते हैं (क्रोम्याटोलायसिस), और उसके साथ साथ पेशीरस (सायटोप्लाझम) सूजा होता है। जीवन बीज आसिडोफिल होते हैं। और उनमे वक्रीकरणकारक लाल दाने पैदा होते है, ये इकट्ठा जमे होकर उनके अनुर्गत पिंड (इनक्ल्यूजन बाडीज) बनने हैं जो जीवनबीज की जगा व्यापित करते हैं; इनके इर्दगिर्द कोपाणुओंका कोटर जैसा दिखाई पडता है। बादमें अनुर्गत पिंड जीवनबीज के वेष्टन के बाहर गिर जाते हैं और बादमे पेशिया नष्ट हो जाती है। जीवनबीज मे की इन क्रियाओंके साथ इर्दगिर्द के घटकोमे (नसीदारता) रक्त-वाहिनी संबंधी की प्रतिक्रिया और इओसिनोफिलसे (रक्तकी अम्ल कण की पेशियोंसे) भर जाना दिखाई पडती है। क्रिया कमजोर हो तो वह जलदी बंद होकर पेशियां पूर्वरूप सरीखी हो जाती हैं। इस प्रतीपगमन क्रियाके दो दृश्य भाग होते हैः—(१) चोट लगी हुई पेशियोंमे झट नैसर्गिक अवस्था पैदा होकर नष्ट हुई पेशियोंकी जगह भरनेके लिये पेशियोंमे बहुप्रसवन शीलता बढ जाती है; (२) इस सुधार क्रियामें मायटाटिक (चलनसबंधी) प्रतिक्रिया का अभाव होता है। इससे यह मान सकते है कि यह क्रिया असलमे जीवन बीज के प्रोतीन कणोंपर रासायनिक क्रिया होनेसे पैदा होती है। रासायनिक किरणे (जिनमें रासायनिक परिवर्तन उत्पन्न करनेकी शक्ति होती है) प्रोतीन कणोंसे सोखी जाती है, और उनसे निसर्ग बदलनेका प्रकाश रासायनिक फरक पैदा होकर घटको की रंगलेने की अवस्थामें फर्क दिखाई पडते हैं। यदि यह क्रिया वे हद्द तक बढाई जाय तो प्रोतीन जम जाकर पेशियोंका नाश हो जाता है।

तारकापिधान की कलातहमे इस क्रियाके साफ असर ज्यादह दिखाई पडते हैं और उसके गूदामे कमतर होते है। इससे पैदा हुए तारकापिधान दाहसे, जिसके साथ शुक्लास्तर दाह भी होता है, प्रकाशजन्यचाक्षुप दाह की अवस्था पैदा होती है। यह अवस्था सौर प्रकाशकी सौरचाक्षुप दाह या बनावटी प्रकाशकी (जिसमें छोटी लहरियोंकी किरणोंका प्रमाण ज्यादह होता है) जोरदार क्रिया नेत्रोंपर होनेसे पैदा होती है। तारकापिधान के घटकोंमे रासायनिक विकारक किरणोंका शोषण होनेसे उनके जीवनकी कमी का असर नेत्रगोलक के भीतरके घटकोंपर ज्यादह नहीं दिखाई पडता। **तारका**—तारकाकी रंजित कलातह इस विसर्जन शक्तिको सोखकर उसको उष्णतामे बदलती है। इसके साथ कनीनिका का संकुचन होता है। लेकिन उसपर अट्रोपीन का कुछ असर नहीं होता इससे यह क्रिया तारकाकी स्नायूकी पेशियोंपर होती है ऐसा कोई कोई मानते है और यह क्रिया **हिस्टामाइन** की पैदाईशसे होती है।

स्फटिकमणिः—स्फटिकमणि परके असर ज्यादह साफ नजरमें आते हैं। उसका आवरण सूजा जाता है, आवरणके नीचेकी कलातहपर इओसिनो फिलियाकी प्रतिक्रिया दिखाई पडती है और कनीनिकाकी चारो ओर कलातह बन जाती है। इन पेशियोंकी बहुप्रसवन-शीलता कमजोर यानी नाशकारक नहीं इतने (सबलीयल) प्रकाशके उत्तेजकसे होती है। स्फटिकमणिके गूदाके भागमेंके तन्तुओंके जीवनबीजोंमें यही रासायनिक क्रिया दिखाई

पडती है । लेकिन प्रत्यक्ष प्रयोगसे मोतीबिंदु पैदा करना कठन है, तो भी उसका ग्लुटोथायोनिन नष्ट होनेसे उसकी चयापचय क्रिया बिगड जाती है यह निर्विवाद है; और उनके प्रोतीन द्रव्योंमे, वे जल्द बिगड जाकर इस तरह का फर्क होना संभाव्य होता है जिससे चूर्ण के जैसे–कैल्शियमके क्षारोंके प्रभाव से वे जल्द जम जाते है । इस विषयका ज्यादह स्पष्टीकरण अन्य जगह (मोतीबिन्दुके प्रकरणमे) करेंगे ।

दृष्टिपटलः—दृष्टिपटलमे प्रकाशकार्य तीन तरहका होना संभव है । (१) ऊष्णताजन्य दुष्परिणामः (२) प्रकाश रासायनिक या जीवन की कमी के दुष्परिणामः (३)दृष्टिकी संज्ञाकी उत्पत्ती । यह तीसरी क्रिया दृष्टिपटल की असली क्रिया होती है । दूसरी दो क्रियाएँ शरीरके अन्य घटकोंपर होनेवाली क्रियाके समान होती है । दृष्टि कार्यको जरूरी की विसर्जन शक्तिमे से बचा हुआ प्रमाण उसमे सोखा जाता है । छोटी लहरियोंकी किरणोंकी विसर्जन शक्ति उसके अगले तहोंकी पेशियोंके प्रोतीन घटकोंमे शोषित होनेसे प्रकाश रासायनिक जीवन की कमी की क्रिया होती है । लम्बी लहरियोंकी किरण विसर्जनशक्ति (परालाल और दृष्टिकार्यमेंसे बची हुई दृष्य किरणोंकी शक्ति) दृष्टिपटल की तहोमेंसे पार होकर पिछले भागके कृष्णपटल की रंजित तहमें सोखी जाती है । उसके उष्णताके परिणामका बयान पहले ही किया है ।

दृष्टिपटलमें पराकासनी या नीललोहित किरणोंसे पैदा होनेवाले फर्क नेत्रके अगले भागोंके घटकोंमे होनेवाले फर्कोंकी अपेक्षा कमजोर होते हुए भी उनके खास विकृत फर्क जीवनकी कमी के दुष्परिणाम के जैसे ही होते है । ये मज्जाकंद पेशियोंमेका रंगक्षय और आक्झिफिल कण बनना इस स्वरूप के होते है । आन्तरजीवनबीजकी तहमें रंगक्षय कम तादादमें दिखाई पडता है । लेकिन ख्यालमे रखना कि पराकासनी किरणोंका असर कम समयतक होनेसे दृष्टिपटलमे कुछ जोरदार क्रिया नहीं होती । क्रिया जोरदार होनेसे उसके समाहार के असरमें इजा होना संभव है । इस विषय पर ज्यादह बहस अन्य जगह करेंगे ।

(क) प्रतिदीप्ति (फ्लुरिसेन्स)

फ्लोरस्पार-कैल्शियम फ्लोराईड नामक खनिज यौगिक जो फ्लोरिन अथवा हायड्रोफ्लोरिक अम्ल तयार करनेके काम मे आता है उसपर **सर जे. हरशेल** और **सर डी. बुस्टरने** प्रयोग करनेसे जो प्रकाशदीप्ति पैदा हुई उसीपरसे फ्लुरेसेन्स यह शब्दप्रयोग जारी हुआ है ।

प्रकाशकिरणें स्वप्रभ–प्रतिदीप्तिमान पदार्थोंमेंसे जब पार जाती हैं तब उनके घटकोंके कण प्रकाशकिरणोंको सोख कर स्वयंप्रकाशजनित होते है । ये प्रकाशकिरणें आघातप्रकाशकिरणोंसे भिन्न रूप की होती हैं । इसी वजहसे यह पुनर्प्रकाशजनित परिणाम होता है ऐसा समझा जाता है । प्रकाश शोषणसे पदार्थके कणोंकी क्रिया का अधिकतर शक्तिमे रूपान्तर होता है । **वेगर्ट** की कल्पनानुसार प्रकाश, विसर्जनशक्ति एक पदार्थमें जमा होनेसे वह दूसरेही पदार्थमें बदल जाता है; और जब दूसरा पदार्थ अपने आपसे पहले पदार्थ के रूप में वापिस जाता है तब उसमे जमा हुई विसर्जन शक्तिका स्कन्दन–इखराज–होना यही

स्वप्रभ प्रकाश होता है। लेकिन हालके नये संशोधनसे मालूम हो सकता है कि यह क्रिया स्कन्दन–इखराज–करनेवाले अणूओंकी प्रत्यक्ष स्वरूप की नहीं है, बल्कि विसर्जन शक्तिका एक अणुसे जो प्रकाश विसर्जन शक्तिको ग्रहण कर सकता है, दूसरे अणूको जो इस विसर्जन शक्तिको निकाल दे सकता है, स्थानान्तर समझना चाहिये।

प्रतिदीप्तिका इस्तेमाल नयनोंके का लिये पहले पहल **हेल्महोल्टझ** पंडितनें (१८५५) किया; इन्होंने बताया कि ४००० से ३००० अं. एकं की लहरियोंकी किरणोंको स्फटिक-मणिमेंसे पार करनेसे फीका कुछ हरा–पीला रंग पैदा होता है। वर्णपटका ३७०० से ३९०० अं. एकं का भाग इसके लिये काफी काबिल होता है; और ३५०० अ. एकं के नीचे के भागसे यह प्रातिक्रिया नहीं पायी जाती। दृष्टिपटलमें कुछ सुफेद हरी प्रतिदीप्ति पायी जाती है जो शायद चाक्षुपनीललोहितपिंगकी वजहसे होती होगी ऐसा मानते है।

प्रतिदीप्ति दृश्य का जीवनशास्त्रीय बतीजा भिन्न सा होता है। इसके पैदाईशमें शोषण-क्रियाका भाग होनेसे यह क्रिया जहरीली जैसी **स्कान्झने** समझी है। इसके अलावा स्फटिक-मणिके प्रोतीन ज्यादह तर जम जानेसे प्रतिदीप्ति कम दिखाई पडती इसमें कुछ पारस्परिक संबंध हैं ऐसा **वर्जने** (१९१५) प्रतिपादन किया था। इस परसे कल्पना कर सकते है कि यह प्रतिक्रिया संरक्षक तंत्र जैसी होती होगी। छोटी कार्यकारक लहरियां, जिससे प्रोतीन जम जाना सभाव्य होता है, दृश्य लम्बी लहरियोंमें बदल जाती है; और जिससे उनकी विसर्जन शक्ति जो ज्यादह प्रेरक जैसी है वे त्वरसे लगाई जाती है।

खंड ६ वां

अध्याय १६ वा

प्रकाशकी दृष्टि पर होनेवाली भौतिक रासायनिक क्रिया

वर्णपटकी दृश्य किरणें दृष्टिपटल पर गिरनेसे मिश्र तरह की क्रिया पैदा होकर प्रकाश विसर्जन शक्तिका चाक्षुष उत्तेजक में रूपान्तर होता है। लेकिन इस भौतिक विसर्जन शक्तिका मज्जाजनित ऐन्द्रिय कार्यमें रूपान्तर किस तरहसे होना है इसका अभितक पूरा ज्ञान नहीं हुआ है; इसमे प्रकाश रासायनिक क्रियाका प्रश्न जरूर होता होगा। लेकिन इस रूपान्तर के साथ दृष्टिपटलमें खास तोरके रचनात्मक, रासायनिक और विद्युत अवस्था संबंधीके फर्क होते है जिनका गुणात्मक तथा पारिमाणिक परिशीलन संभाव्य है।

रचनात्मक फर्क

(१) **सूक्ष्म शरीर रचनात्मक फर्कः**—दृष्टिपटलपर दृश्य प्रकाश डालनेसे सूक्ष्म रचनाके फर्क दो किस्मके होते है। उनके पेशियोंके पेशीर क्षमके **निसल** के कणोका लोप हो जाता है और **पेशीरस में कोटर** दिखाई पडते हैं; और इसके साथ उनके जीवनबीज या केन्द्रोंपर रंग जल्द नहीं चढता और उनमें रक्त की अम्लता की प्रतिक्रिया पायी जाती है; यानी ये फर्क छोटी लहरियोंकी किरणोकी रासायनिक या जीवन की कमी की क्रियासे होते हैं।

(२) **प्रकाश यांत्रिक चलनः**—इस अवस्थामे (अ) पेशियोंके रंजित कणोका स्थानान्तर; (ब) कोन घटकोका संकुचन; और (क) राड घटकोंकी नूतन ये फर्क होते हैं।

(अ) **पेशियोंके रंजित कणोंका प्रकाशजन्य स्थानान्तर**—इस संबंधमे सब प्रयोग मेंढक पर किये गये हैं और सब सिद्धान्त इन प्रयोगोंसे निकाले गये हैं। छोटी लहरियोंसी प्रकाशसे दृष्टिपटल की रंजित कलातह की पेशीयोमे के रंजित कण पेशीयोकी प्ररोहाओमे जाते हैं। ये प्ररोहाएं राड और कोन घटकोमें जाकर दुशाला जैसी लपटी रहती है; इसके विपरीत अंधियारेमे कण पेशीयोमें वापिस लोट कर जीवनबीजके इर्दगिर्द तरतीवसे जमा होते हैं। ख्यालमें रखा कि इस प्राकृतिक घटनामे पेशीयोकी प्ररोहोओमें अभी बाबत चलन गति नहीं सिर्फ रंजित कणोंमे गति होती है और प्रकाशमें ही कलातह राड और कोन घटकों को लगा रहता है और अंधियारेमें उनसे अलग हो जाता है। रंजित कणोंका स्थानान्तर दृष्टिपटलपर ताप या शीतलता लगानेसे या उसका प्रदाह या दृष्टिरज्जुके प्रदाह में भी दिखाई पडता है। प्रकाश कार्य पांच मिनिट होनेके बाद यह स्थानान्तर शुरू होता है। यह परिणाम होनेकी कालमर्यादा ज्यादहसे ज्यादह ५० मिनिट मानी गयी है।

(ब) **कोनघटकोंका संकुचनः**—दृष्टिपटलपर प्रकाशकार्य सिर्फ दो मिनिटतक **होनेसे कोनघटकोंका** भीतरी का भाग संकुचित होता है। यह क्रिया रंजित कणोके चलन **के पहले शुरू होती है**। कम प्रखर किरणों से यह क्रिया जलदी दिखाई देती है।

वर्णपटकी छोटी लहरियों की किरणों से भी यह क्रिया जलदी होती है। और उष्णता या शीतलता, और दृष्टिपटलके या दृष्टिरज्जु के दाहमे भी दिखाई देती है। एक नेत्रपर प्रकाश डालनेसे दूसरे नेत्रमें यह क्रिया परावर्तन क्रिया जैसी दिखाई पडती है। संभव है कि दृष्टि-रज्जुमेंके केन्द्रगामी मज्जातन्तु दृष्टिपटलके चालक तन्तु होंगे।

(३) राडघटकों का प्रकाश कार्यसे फूलजानाः—प्रकाश कार्यसे राडघटक फूल जाते हैं इससे अंधेरेमें हर एक घटकमें जो नैसर्गिक अन्तर होता है उसका लोप हो जाता है।

यह ख्यालमें रखना चाहिये कि दृष्टिपटल पर के ये सब प्रयोग मेंढक पर किये गये है और .उस ज्ञानका अनुमान मनुष्य प्राणियों मे दिखाई देता है यह निश्चित नही है। अन्य सस्तन् प्राणियोंमें भी ये परिणाम कम प्रमाणमें दिखाई देते हैं। इस कार्य में रासा-यनिक स्थिरता का कार्य महत्त्व पूर्ण है और यह क्रिया भी जबर रासायनिक तोरकी होती है यह समझना चाहिये। इस दृक्प्रत्यक्षसे यह स्पष्ट होता है कि कोनघटकोंके भितरी भागका आकुंचन होनेसे राडघटक ज्यादा अलग अलग होते है। और उनके चारों ओर रंजित कणोंका आवरण बनजानेसे उनका बचाव होना संभव है। कोन और राड घटक ये दोनों दृष्टिकार्यके भिन्न भिन्न व्यूह होते हैं। प्रकाशसे मिलते जुलते कार्य करनेवाले व्यूहको **फोटापिक व्यूह** कहते हैं, यही कोन घटक व्यूह है। अंधेरेसे मिलते जुलते कार्य करनेवाले व्यूहको **स्कोटापिक व्यूह** कहते है; यह राडघटक व्यूह है। इस चलनगति कार्यमें ये दोनों घटक भिन्न भिन्न होते है। चूहा और चमगीदड़ (बॅट) रात्रिंचर प्राणियोंमें कोन घटक स्पष्ट नहीं दिखाई देते यह शोध लगाया गया है। इन प्राणियोंमें प्रकाश कार्यसे रंजित कणोंका स्थलान्तर और पेशियोंका चलन ये बातें नहीं दिखाई देती इस परसे स्पष्ट होता है।

रासायनिक परिवर्तनके फर्क

(अ) दृष्टिपटलकी आम रासायनिक रचनामेंके फरक

प्रकाशसे दृष्टिपटलमें मुख्य रासायनिक बदल आम्ल की तरह होता है। यह बदल घटकोंमें वर्णपटके रासायनिक कार्यक्षम किरणोंसे होता है और फिर घटकोंको **इओसिन रंग** चढ़ता है। प्रकाश अधिक तीव्र हो, या बहुत कालतक कार्य किया जाय तो यह आम्ल क्रिया जोरदार होती है और पीले—हरे प्रकाशसे भी अर्थात वर्णपटकी किरणोंके अधिक चकाचौंध भागसे—ज्यादा जोरदार होती है। दृष्टिपटल रंजित कलातहको मिला रहता हो तो यह आम्लकी क्रिया ज्यादा जोरदार मालूम होती है।

(ब) चाक्षुष नीललोहित-वैंगनी-कासनी—पिंग (व्हिज्युअल पर्पल—होडॉप्सिन)

दृष्टिपटलको प्रकाशसे उत्तेजित करनेसे उसमें पैदा होनेवाली असली रासायनिक क्रियासे चाक्षुष नीललोहित पिंग चाक्षुष वैंगनी द्रव्य सुफेद होता है यानी उसका रंग उड जाता है। प्रकाश जितना ज्यादा प्रखर होगा और उसकी क्रिया जितने ज्यादा कालतक होती होगी उतनाही ज्यादा जलदी चाक्षुष नीललोहित पिंगका रंग उड जायगा। दृष्टिपटलपरसे प्रकाशको

निकाल लेनेसे चाक्षुष नीललोहित पिंगकी नई पैदाईश होने लगती है। दृष्टिपटल और रंजित कलातह एक दूसरेसे चिपट जाते हैं तब यह नई पैदाइशकी क्रिया शीघ्रता से दिखाई देती है।

चाक्षुष नीललोहित पिंग बहुत महत्त्वपूर्ण पदार्थ है। इस पदार्थका शोध सन १८५१ मे **एच. मूरलने** किया। पश्चाद सन १८७६ में **बॉल** ने और यह शोध किया कि प्रकाशकार्यसे इस पदार्थका रंग उड जाता है। इस पदार्थके प्रकाश ग्राहक कार्यसे उसका निरीक्षण अंधेरेमें करना जरूर होता है। यह पानीमें घुलता नहीं लेकिन इसपर क्लोरोफार्म, ईथर, अलकोहल, तेजाब या क्षार पदार्थोंकी क्रिया होनेसे उसका रंग उड जाता है। पित्तके तेजाब या क्षार द्रव्योंसे यह घुल जाता है। सापोनिन या डिजिटोनिनसे इसको दृष्टिपटलसे अलग कर सकते है। वर्णपटका रक्तकिरण भाग और नीललोहित भागका कुछ थोडासा भाग छोडकर शेष सब किरणोंका इसमें शोषण हो जाता है। **मगर** जैसे प्राणि जिनके नेत्रोंमें **टापिटम** परदा सुफेद होता है उन प्राणियोंके सिवाय अन्य प्राणियोमे इसके रंगके कारणसे नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे इसको नहीं देख सकते।

चाक्षुष नीललोहित पिंग का अस्तित्व मनुष्यमे प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं किया गया है। उसका अस्तित्व अप्रत्यक्ष रीतिसे माना गया है।

किसी प्राणिके दृष्टिपटलके मर्यादित भागपर प्रकाशकी क्रिया कुछ समय तक करके उसको फौरन मार डाला जाय तो इस रंग बदलनेका असर दिखाई पडेगा। मेंढकको बारीके सामने कुछ समयतक पकडकर फिर उसको मार डालनेसे इसका चित्र अच्छी तरहसे खींच सकते है। इस चित्रको फटकरीके द्रावणमें स्थायी कर सकते हैं।

मेंढकके नेत्रके नीललोहित पिंग का रंग प्रकाशकार्यसे दो मिनिटमें उड जाता है लेकिन उसकी नई पैदाईश शुरू होनेको २९ मिनट लगते हैं। उसकी पैदाइश दो घंटेमे पूरी होती है। उष्णताका प्रमाण कम करनेसे दोनों क्रियाओंको ज्यादा समय लगता है। यह क्रियायें मस्तिष्कके कार्यके सिवा होती है। चैतन्योत्पादक द्रव्योंमें (व्हिटॅमिन्स सप्लाई) जीवनसत्व "ए" की पूर्ती कम होनेसे यह नई पैदाईश ठीक नहीं होती। **रतौंधी** इस सत्वके अभावकी वजहसे होती होगी ऐसा माना गया है।

किरण विसर्जन शक्ति जिस प्रमाणमे शोषित होती है उसी प्रमाणमे चाक्षुष नीललोहित पिंग का रंग उड जाता है। किसीभी किरण लहरियोंकी विसर्जन शक्तिके प्रत्यक्ष शोषित समानुपातपर चाक्षुपनीललोहित पिंगका रंग उडजाना अवलम्बित होता है। मनुष्यके दृष्टिपटलकी अंधेरेसे मिलती जुलती हुई अवस्थामेका यह प्रमाण, उजालेसे मिलती जुलती होनेवाली अवस्थामें प्रकाश संज्ञा पैदा होनेका कमसे कम आवश्यक प्रकाश प्रमाणके समान होता है।

ई. मूलर और **हेक्ट** इनके प्राणियों परके प्रयोगसे यह सिद्ध हुआ है कि दृष्टिकार्यकी प्राथमिक क्रिया प्रकाश रासायनिक स्वरूपकी होती है। और पहले प्रकाश रासायनिक पदार्थमेंसे नित्य प्रमाणका भाग अलग होता है। और दृष्टिपटलपर प्रकाशक्रिया होनेसे उसका प्रकाश रासायनिक द्रव्य कम होता है किन्तु अंधेरेके कार्यसे वही द्रव्य

एकत्रित हो जाता है। प्रकाशसे इस द्रव्य एक बडे अणुके (मॉलीक्यूल) दो भाग होते है और नई पैदाइशमे दो सादे अणुके रासायनिक मिलाफ होनेसे एकमिश्र अणु बनता है।

प्रकाशकी भिन्न भिन्न लहरियो की रगको उडानेकी सापेक्ष क्रिया का विषय दिलचस्पीका है। इस विषयपर बहुतसे संशोधकोने कार्य किया है। **हेनरीके वक्र**के चित्र परसे चि. नं. २७० ध्यानमें आजायगा कि प्रकाशकी विसर्जन शक्तिसे नीललोहित पिंगका रंग उड जानेका प्रमाण विसर्जन शक्तिके शोषणके प्रमाणसे मिलता जुलता है। और ये दोनो क्रियायें अंधियारेसे मिलती जुलती अवस्थाके मानवी नेत्रमें संवेदना पैदा करनेको विसर्जन शक्तिका जो प्रमाण जरूरी होता है उसके वक्रसे समानान्तर जाती है। इससे यह अनुमान कर सकते है कि चाक्षुष नीललोहित पिंगका रंग उडानेको जितनी लहरियोकी विसर्जन शक्तिकी जरूरत होती है उतनी चाक्षुष संवेदनाके लिये आवश्यक होती है।

चित्र नं. २७०

अ. एकंमे प्रकाश लहरियोकी लम्बाई
कार्योत्पादनके लिये जरूरी विसर्जन शक्तिका सापेक्ष मूलक एक (बाजूके २ से १२)
(अ) मनुष्यमे चाक्षुष संवेदनाका प्रारंभिक उत्तेजकका वक्र (ब) प्रकाशकी चाक्षुष नील-लोहित पिंगको सुफेद करनेकी क्रियाका वक्र (क) चाक्षुष नीललोहित पिंगसे प्रकाशका शोषण कार्यका वक्र। (हेनरी बारसेलस)।
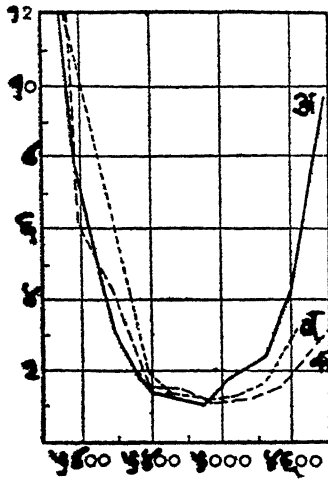
चित्र नं. २७१

नेर्स्टप्रकाश के त्रिपार्श्वीय वर्णपट की लहरिया
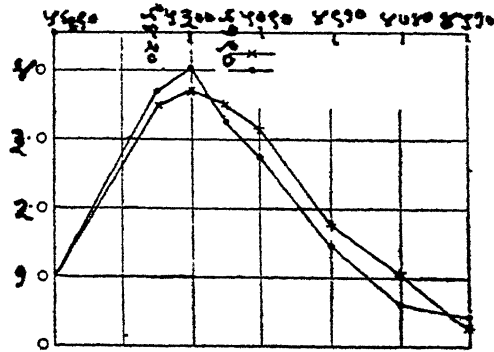
मेंढकके नीललोहित पिंगको सुफेद करनेके कार्यका और अंधियारेसे मिलती जुलती अवस्थाको मानवी नेत्रकी आवश्यक दीप्ति इन दोनोका सह संबंध (ट्रेनडेलेनबर्ग)

रंग उडानेको जरूरी विसर्जन शक्ति के राशिपुंज का प्रमाण २ × १०$^{-१२}$ **अर्ग** इतना होता है जो दृष्टिपटलकी संज्ञाग्राहकतासे मिलता जुलता होता है, और **ट्रेनडेलेनबर्गकी** वक्रसे ध्यानमे आजायगा कि रंग उडानेका प्रमाणका संबंध अंधियारेसे मिलती जुलती अवस्थाके मनुष्यके आवश्यक दीप्तिके प्रमाणसे मिलता जुलता है। ये पाचों वक्रसे शाबित होता है कि इस रंगके उडजानेमे और चाक्षुष संवेदनामें निकट संबंध है।

चाक्षुष नीललोहित पिंग दृष्टिपटलके राड घटकोंमें ही मिलता है यह **कुन्हें** और अन्य संशोधकोंका मत है। इस लिये जिस प्राणियोंमें सिर्फ कोन घटक ही होते हैं, और मनुष्योंके दृष्टिस्थान केन्द्रमेंभी, यह पदार्थ नहीं मिलता। **एल्डरीजग्रीनका** मत यह है कि कोन घटकोंमेंभी यह पदार्थ मिलता है। दृष्टिस्थानकेन्द्रके कोनघटकोंकी प्रकाश रासायनिक क्रिया और परिधिभागकी राडघटकोंकी प्रकाश रासायनिक क्रिया इन दोनोंमें समानरूपता होती है। किन्तु इस संबंधमें बहुत प्रमाण एकत्र किये गये हैं जिससे यह मालूम होता है कि दोनों व्यूहके व्यापारमें फर्क होता है। और प्रकाशतीव्रता कम हो तो भिन्नभिन्न उत्तेजकोंके फर्कों को जाननेका दृष्टिपटलका धर्म, और ज्यादा प्रकाश-तीव्रताके भिन्नभिन्न उत्तेजकोंके फर्कोंको जाननेका धर्म इन दोनोंमें अन्तर दिखाई देता है।

दृष्टिपटलके नैसर्गिक व्यापारमें दिखाई देनेवाले ये दो परिवर्तन दृष्टिकार्यकी प्राकृतिक कार्यकी अन्य अवस्थाओंसे मिलते हैं। दृष्टिकार्यके इस धर्मका रासायनिक दृष्टिसे विचार करनेसे यह स्पष्ट होता है कि ये क्रियायें दो स्वतंत्र व्यूहोंसे होती हैं। एक व्यूहका कार्य प्रकाश तीव्रता कम होनेसे होता है इसको **स्कोटापिक व्यूह** कहते हैं। और दूसरे व्यूहका कार्य प्रकाशतीव्रता ज्यादा होनेसे होता है इसे **फोटोपिक व्यूह** कहते हैं।

अभीतक एकत्र हुई जानकारी परसे यह स्पष्ट होता है कि चाक्षुष नीललोहित पिंग आलोक चेतन पदार्थ है। और अंधेरेमें उसकी नई पैदाईश होती है। उसकी कार्यक्षमता दृष्टि-कार्यसे मिलती है। उसका रंग उड जाना यह सीधी प्रकाश-रासायनिक क्रिया है। और प्रकाश जितना ज्यादा प्रखर होता है उतनी यह क्रिया जलदी और ज्यादा प्रमाणमें होती है। उद्दीपन करनेवाली प्रकाशप्रखरता का वेग कायम प्रमाणमें रहता है। चाक्षुष नील-लोहित पिंग का रंग उडानेकी लघुतम प्रकाश विसर्जन शक्तिका प्रमाण और दृष्टिपटलकी प्रकाश ग्राहकताकी मर्यादा का प्रमाण साधारणतया समान होता है।

विद्युत परिवर्तन

प्रकाशकार्यसे दृष्टिपटलकी विद्युत अवस्थाका दिखाई देनेवाला परिवर्तन

दृष्टिपटलपर प्रकाशकार्यसे होनेवाला तीसरा परिणाम उसके घटकोंके विद्युत समतोलनमें होनेवाला परिवर्तन है।

जगत की सब पंचमहाभूत तत्वोंकी घन, द्रव और वायुरूप जड़वस्तुएँ विद्युत संचारित होती हैं। यह आधुनिक कल्पना है। लेकिन नैसर्गिक स्वभावसे यह विद्युत संचारित अवस्था इतनी स्थिर और समतोल होती है कि उसके अस्तित्व का बाह्य लक्षण कुछ भी नहीं दिखाई देता है। उसके अस्तित्वका प्रत्यक्ष स्पष्टीकरण वस्तुमेंके उसके सर्वव्यापित्वमें बिगाड होनेके बाद जब समतोलता फिरसे प्रस्थापित होने लगती है तब दिखाई देता है।

वस्तुमेंकी विद्युत के सर्वव्यापित्वका बिगाड उसका संचय एक भागमें ज्यादा और दूसरे भागमें कम होनेसे होता है। यह विद्युत संचयका बिगाड वस्तुको किसीभी शल्यसे ईजा होनेसे या उसके ऊपर रासायनिक क्रिया होनेसे या अन्य मार्गसे हो सकता है।

दो अवाहक या अचालक पदार्थ (नॉनकन्डक्टिंग सबस्टन्सेस) जिनमें से विद्युत-प्रवाह नहीं बह सकता, **अेक दूसरेपर** रगड़नेसे एकके पदार्थका विद्युत संचय प्रमाण कम होता है और उसी प्रमाणमे दूसरे का बढ़ जाता है । जिस पदार्थ का विद्युत संचय कम होता है उसको **ऋणविद्युत संचारित पदार्थ** और जिसका विद्युत संचय बढ़ जाता है उसको **धन विद्युत संचारित पदार्थ** कहते है। कांच और रेशम यह दोनो विद्युतके अचालक पदार्थ हैं। कांच पर रेशम को रगडनेसे कांच धन विद्युत संचारित और रेशम ऋणविद्युत संचारित होता हैं ।

आधुनिक कल्पनासे विद्युत भी जड वस्तुकी तरह मानते हैं। यह जड़ वस्तु सूक्ष्म परमाणुओंकी बनी है। और यह परमाणु हायड्रोजन परमाणुओके $\frac{१}{१८००}$ भागका होता है। इन परमाणुओको **इलेक्ट्रोन्स** कहते हैं। जिन वस्तुओंमें या उनके किसी भी भाग मे इले-क्ट्रोन्स की संख्या नैसर्गिक प्रमाणमे होती है, उनके विद्युत लक्षण स्पष्ट नहीं दिखाई देते। किन्तु एक पदार्थ की इलेक्ट्रोन्स की संख्या नैसर्गिक प्रमाणसे ज्यादह हो जावे तो दूसरेमें इले-क्ट्रोन्सकी संख्या उसी प्रमाणमे कम होती है। और यह प्रमाण पूर्व रूपमें समतोल होनेके समय **विद्युत् दृक् प्रत्यक्ष** स्पष्ट दिखाई देता है।

विद्युत वर्णनमे स्थिर विद्युत (स्टॅटिक इलेक्ट्रीसिटी) और प्रवाही विद्युत(करंट इलेक्ट्रि-सिटी) ऐसा शब्दप्रयोग होता है। लेकिन स्थिर और प्रवाही विद्युत भिन्न नहीं होती है।

पदार्थकी धन विद्युतावस्था या ऋणविद्युतावस्था जहांतक स्थिर होती है तब तक उस अवस्थाको **स्थिर विद्युतावस्था कहते** है। लेकिन जब असमता होने लगती है तब विद्युत प्रवाही होकर ज्यादा भागमें से कम भागको बहती है।

स्थिर विद्युत दो पदार्थोंको एक दूसरेपर रगड़नेसे पैदा होती है। काचपर रेशमके कपडे से रगडनेसे यह स्थिर विद्युत पैदा होती है। कांच धन विद्युत संचारित और रेशम ऋण विद्युत संचारित होता यह ऊपर कह चुके हैं। यह विद्युत अवस्था तुरंत नष्ट नहीं होती। वह कुछ समय तक रहती है इस कारण से उसको स्थित विद्युत कहते हैं। यह समझना चाहिये कि विद्युत पैदा होती है यानी उसकी नई पैदाईश नहीं होती । विद्युतसे सर्व पदार्थ व्यापित है। संघर्षणसे साम्यावस्थामे फरक होता है।

दृष्टिपटल प्रकाशसे उत्तेजित होनेसे रासायनिक फर्कोंके साथ उसकी विद्युत अवस्थामें भी फर्क होता है। सब सेन्द्रिय या निरेन्द्रिय प्रकाशग्राहक पदार्थ प्रकाशसे उत्तेजित करनेसे उनकी विद्युतसमतोलतामे फर्क होता है। लेकिन दृष्टिपटलका यह फर्क निस्सदेह **प्रत्या-घात विद्युत प्रवाह (रिॲक्शन करन्ट)** के समान होता है। दृगेन्द्रिय व्यूहके नैसर्गिक कार्यक्षमताके व्यापारको अलग करना संभव नहीं है। इसलिये उसके ग्रहणशील व्यूहकी बातोंका स्पष्टीकरण करना आवश्यक है।

सब पृष्ठवंशी प्राणियोंके नेत्रगोलकके पूर्व और पार्श्व ध्रुवकी संभाव्य शक्तिमें—वह नेत्रगोलक शरीरमे स्थित हो या वे शरीरके बाहर निकाले गये हों, और दृष्टिपटलमें, जहांतक वह जीवन कार्यक्षम है तबतक, फरक दिखाई देता है। कटाहुआ दृष्टिरज्जु ऋण-विद्युत संचारित होता है, और तारकापिधान धनविद्युत संचारित होता है। दृष्टिपटलके

राड तह और कोन तह ऋणविद्युत संचारित और मज्जातन्तु तह घनविद्युत संचारित होते हैं। इस विद्युत चलनशक्तिका प्रमाण हरएक जातिमे तथा उसके प्रत्येक घटकमे ७ से ९ मिली **व्होल्ट** होता है। इस विद्युत प्रवाहको **स्थिर विद्युत प्रवाह** (करन्ट आफ रेस्ट) कहते हैं। शरीरके बाहर निकाले हुए नेत्रगोलकको अंधेरेमे रखा जाय तो यह स्थिर विद्युत प्रवाह मेंढकके वर्गके (कोल्ड ब्लडेड) प्राणियोमे कई घंटोतक दिखाई देता है लेकिन वार्म ब्लडेड प्राणियोमें थोडेही मिनट तक रहता है।

चित्र नं. २७२
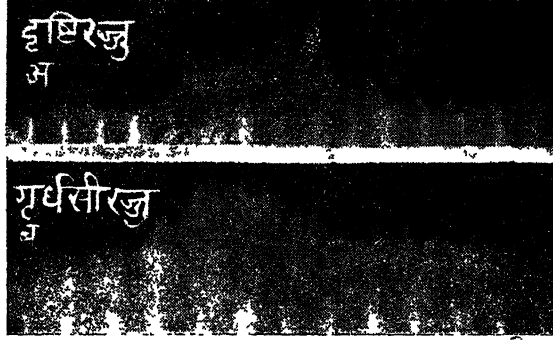
(अ) वाम मछलीमे दृष्टिरज्जुमेके प्रकाश कार्यके प्रवाहका दृश्य जिसका संशोधन विद्युत गाल्व्हाना मिटरसे किया था। (ब) मेंढकमेके ये कार्य प्रवाह, उसकी गृध्रसी मज्जारज्जूमें पिंचिडिका महान् स्नायुको (ग्यासट्राक निमियस मसल) ताननेसे पैदा होते हैं, सरीखे दिखाई देते हैं। चित्रमेंके वक्रके महत्तम उंचाईसे चलन बडा हुआ है ऐसा नहीं बल्कि वह शीघ्र से हुआ है ऐसा समझना। जोरदार प्रवाहका स्पष्ट असर की वजह यह होती हैं कि इलेक्ट्रा-मिटरमेका पारद का स्थानान्तर यकायक होनेके पश्चात वह धीरे धीरे नीवकी रेषाको उतरता है। इससे ध्यानमें आजायेगा कि वक्रमेंकी उंचाई सभाव्य शक्तिकी वजहसे नहीं बल्कि संभाव्य शक्तिमेके फरकोंकी संख्यामेके हरएक संख्या समानताकी होनेसे होती है।

(**एड्रिन** और **एखार्ड**)

दृष्टिरज्जुको ईजा होनेसे या उसका क्षय होनेसे, या दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणीका प्रवाह स्थगित होकर जमजाय, या रक्तप्रवाहके क्षार द्रव्यका प्रमाण कम हो जाय तो यह स्थिर विद्युत प्रवाह दिखाई देता है। और इस स्थिर विद्युत प्रवाहसे दृष्टिपटलके सभाव्य शक्तिके अन्तरका ज्ञान हो सकता है। इसका ज्यादा संशोधन होना आवश्यक है।

प्रकाश उत्तेजनसे विद्युत संभाव्य शक्तिमे दिखाई देनेवाला फरक दृष्टिपटलकी कार्य-क्षमताका लक्षण माना जाता है। दृष्टिपटलपर प्रकाशका आघात होनेसे किंचित अप्रकटित काल के बाद स्थिर विद्युत प्रवाहके विरुद्धका ऋणविद्युत फरक दिखाई देता है। और तुरन्तही, राड और कोन तहे ऋण विद्युत होनेसे, जोरदार घनविद्युत प्रवाह का प्रारंभ होता है फिर थोडेही समयमें धीरे धीरे कमजोर होकर बंद हो जाता है।

यह विद्युत फर्क बंद हो जाने के पहले ही प्रकाश उत्तेजक निकाल लिया जाय, या नेत्रपर अंधःकार गिराया जाय तो फिरसे यह बदल ज्यादा जोरदार होता है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रकाश या अंधकार इन दोनोंसे स्थिर विद्युत प्रवाह मे फर्क होता है।

मेंढकमें प्रकाश विद्युत फर्क स्पष्ट दिखाई देने के लिये प्रकाश का जो आवश्यक प्रारंभिक प्रमाण होता है, वह मनुष्यकी स्कोटापिक अवस्था के नेत्रको प्रकाश संज्ञा पैदा करने के लिये जो प्रमाण आवश्यक होता है, उसके समान होता है। लेकिन विद्युत प्रवाह शक्ति जाँचनेके पहले मेंढकके **दृष्टिपटलको प्रकाशसे** उत्तेजित किया जाय तो यह प्रकाशका प्रमाण ज्यादा करना आवश्यक होता है। सुफेद प्रकाशके अप्रकटित कालका साधारण प्रमाण ०.०१ से ०.०५ सेकन्ड होता है। और यह प्रमाण चाक्षुष संज्ञा पैदा होनेके अप्रकटित कालके प्रमाण से कम होता है। उद्दीपक प्रकाशकी तीव्रता बढ़ानेसे यह प्रमाण और भी कम होता है। दृष्टिपटलका क्षणिक उद्दीपन होनेसे उसके आरंभके घनविद्युत फरक का प्रमाण ज्यादासे ज्यादा .०६ से .२ सेकंड में पहुँचता है। यही प्रमाण प्राथमिक चाक्षुष संज्ञाके बढ़ जानेका होता है। यह प्रमाण उद्दीपक के **घातांक गणनका** होता है। विद्युत फरक की बढ़ती पूरी होनेके बाद उसका उतार होने लगता है। यह उतार पहले जल्दी फिर धीरे धीरे होता है। इस उतारकी कालमर्यादा ०.२ से ०.४ सेकन्ड तक रहती है और फिर से दूसरा चढाव शुरू होता है, यह अनिश्चित होना है और बहुत समय तक (२ से ५ सेकंड) रहता है। इसका प्रमाण अंधेरेकी मिलती जुलती अवस्था जितने ज्यादा कालतक रहेगी उतनाही वह प्रमाण बढ़ता रहेगा। यह दो प्रकारके विद्युत फर्कोंका काल और मर्यादा का संबंध क्षणिक उद्दीप्त दृष्टिपटलकी दो प्रकारकी प्रतिमाओसे मिलता जुलता होता है।

भिन्न भिन्न रंगोंकी संवादि क्रियाओंमें फरक होता है और यह फरक खास रंगकी दीप्तिपर अवलम्बित होता है। अप्रकटित कालका प्रमाण प्रकाश ग्रहण शक्तिके प्रमाण के बराबर होता है। हरे रंगके अप्रकटित कालका प्रमाण लाल और नीललोहित के प्रमाण की अपेक्षा कम होता है।

विद्युत फरक के चाक्षुष नीललोहित पिंग के स्थलान्तरसे कुछ संबंध नहीं है।

दृष्टिरज्जुके विद्युत प्रवाह (चित्र नं. २७२)

दृष्टिरज्जुपरके प्रयोगसे उसके हरएक तन्तुके विद्युत प्रवाहके संबंध का ज्ञान हो गया है। साधारणतया अंधेरेमें दृष्टिरज्जुमेंसे विद्युत प्रवाह नहीं होता। लेकिन दृष्टिपटलको प्रकाशित करनेसे जल्द बहनेवाली, समान आकारकी प्रवर्तक प्रवाहकी परंपरा दिखाई देती है। उसकी कालमर्यादा ०.००१५ सेकंड रहती है (चि. नं. २७२)। यह संवेदना प्रवाह ०.१ सेकन्डके अप्रकटित कालके पश्चात शुरू होता है। शुरूमें यह प्रवर्तक क्रियाऐं जोरदार होती है। किन्तु प्रकाश तीव्रता कायम रखी जाय तो आवर्तन जल्द कम होता जाता है। लेकिन प्रकाश बंद करते ही फिरसे विद्युत प्रवाह शुरू होता है। प्रकाश उद्दीपन क्षणिक हो तो विद्युतप्रवाह परंपरा धीरे धीरे बंद होती है। इस प्रवाहकी वक्र रेषा मनुष्यके चाक्षुष वक्ररेषाके समान होती है। यह संवादिक्रिया **मूलरके** मज्जातन्तु की विसर्जन शक्तिके खास नियमानुसार होती है। अर्थात **दृष्टिरज्जुमेंसे विसर्जन क्रिया अन्य संज्ञावाहक तथा चालक मज्जातन्तुके समान होती है** (चि. नं. २७१)। ख्यालमे रखना चाहिये कि प्रवर्तन प्रवाहका आकार (प्रमाण) उद्दीपनकी तीव्रताके अनुसार बदलता नहीं। दृष्टि-

खंड ७

दृष्टिकार्यका मध्यमस्तिष्कीय मज्जायंत्र

खंड ७ वा

अध्याय १७ वा

दृष्टिकार्यका मध्यमस्तिष्कीय मज्जायंत्र

पशू और मनुष्य इन दोनोंके विकासमे असली फर्क यह होता है कि पशूकी घ्राणेन्द्रिय के बदले मनुष्यमें दृगिन्द्रियके विकास का महत्व बढ गया, शारीरिक चपलता और बौद्धिक महत्वके व्यापार दृगिन्द्रियसे आसानीसे होनेके लिये संपूर्ण मज्जामंडल की रचनामें बदल हुआ है। मनुष्यके दृष्टिपटलमें दृष्टिस्थानका (म्याकुला लुटिया) विकास होनेसे दृष्टिका अचुक होना संभव हुआ है। और दोनों दृष्टिरज्जुओंके तन्तुओंका–तारोंका–एक ओरसे दूसरी ओरको मध्यरेषाको पार होकर जानेसे और दोनो दृष्टिपटलके प्राकृतिक दृष्टिसे मिलते जुलते बिंदुओंका (फिजिआलाजिकल कारसपान्डिग पॉईन्टस्) विकास होनेसे दोनो नेत्रोंमे एकसमय ज्ञान और सहकारता ठीक दिखाई देती है।

दृगिन्द्रियके विकासके साथ साथ स्पर्शेन्द्रिय का भी विकास हुआ है। दृगिन्द्रिय और हाथो की उंगलियोंकी सूक्ष्म और हालचाल की कुशल क्रिया इन दोनोंसे और अन्य संज्ञाओंका पारस्परिक संबंध आदि बातोंसे मनुष्यके मस्तिष्कके अन्य भागका विकास हुआ है।

प्रकाशकिरणें नेत्रके भीतर घुसनेके बाद उनका संस्कारोंमे रूपान्तर करना यह नेत्रके प्राकृतिक व्यूहका कार्य-होता है। वर्णपटके दृश्य किरणोंका दृष्टिपटलपर आघात होनेके पश्चाद उसमें मिश्र स्वरूपकी क्रिया होकर प्रकाशशक्तिका चाक्षुप उत्तेजकमे रूपान्तर होता है; लेकिन यह रूपान्तर किस तरहसे होता है इसका अभितक पूर्ण निर्णय नहीं हुआ है। किन्तु इस रूपान्तर के साथ दृष्टिपटलमे रचनात्मक, रासायनिक और विद्युत अवस्था संबंधी के फर्क होते हैं यह निश्चित है। उसका बयान करनेके पहले सस्कार जिन मार्गोसे मस्तिष्क को जा पहुँचते है उनका अल्प शारीरिक वर्णन करना मुनासिब है; इन मार्गोको चाक्षुप संज्ञावाहक मज्जापथ नाम दिया है। फिर प्रकाश उत्तेजक का और प्रकाश के जीवन शास्त्रीय कार्यका विवेचन करके फिर दृष्टिपटलमे दिखाई देनेवाले फर्कोका वर्णन करेंगे।

१ चाक्षुप संज्ञावाहक मज्जापथ

दूसरी मस्तिष्करज्जु–दृष्टिरज्जु और उसके मस्तिष्कीय संबंध

चाक्षुप संज्ञावाहक मज्जापथ और मस्तिष्कको जानेवाले अन्य सर्वसाधारण संज्ञावाहक मज्जापथ इनमे पूर्ण समरूपता दिखाई पडती है। हरएक संज्ञापथ मस्तिष्कको सीधा नहीं जाता बल्कि एक या दो टप्पेसे परिवर्तकसे मस्तिष्क को जा पहुँचता है। किसी मनुष्यको चिमटा लेनेसे पैदा हुई वेदना की संज्ञाका मस्तिष्क को जानेका मार्ग चित्र नं.२७३से ध्यानमे आयेगा।

स्पर्शेन्द्रिय का अन्तिम भाग (एन्ड ऑरगन) जो शरीर की त्वचामे होता है उसको चिमटा लेनेसे वह उत्तेजित होता है। फिर त्वचाके सांवेदनिक–ज्ञानवाही तन्तुद्वारा संज्ञा

सुषुम्नाके मूल मज्जाकोर समूहमें—दशा कदिक और कोण कंदिकको(ग्रासिलस और क्युनिए-टस न्युकलिया) जा पहुँचती है। यहां पहला टप्पा परिवर्तक हुआ फिर यहांसे नये तन्तु

चित्र नं. २७३ चित्र नं. २७४
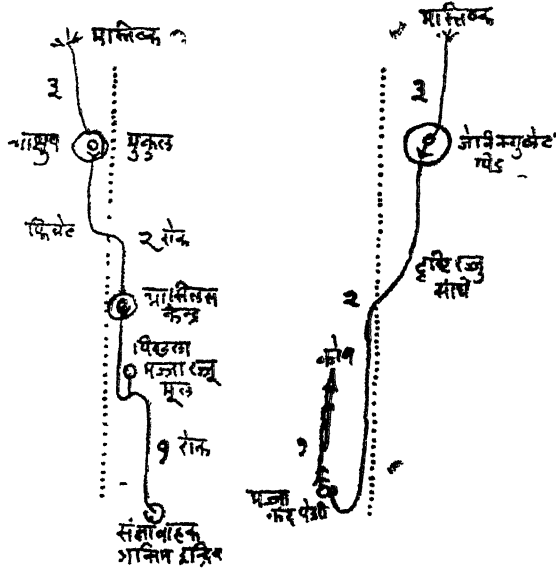
स्पर्श संज्ञावाहक मज्जापथ व्यूह — चाक्षुष संज्ञावाहक मज्जापथ

निकलकर आन्तर फिलेटके पार होकर दूसरे ओरकी चाक्षुष मुकुलमें के (आपटिक थाला-मस) जीवनस्थान केन्द्रोंमे घुसते है। यह दूसरा टप्पा—परिवर्तक हुआ। चाक्षुषमुकुलके जीवन-स्थान केन्द्रोंसे नये तन्तु निकलकर मस्तिष्क के बाहरीके धूसर पृष्ठमें के जीवनस्थान केन्द्रोंमें घुसते हैं। यह तीसरा टप्पा हुआ। यहा मानसिक क्रिया होती है।

अधोचाक्षुष संज्ञापथ

अधोचाक्षुप पथ या केन्द्रगामी चाक्षुष पथ के क्रम का दूसरा मज्जाव्यूह (न्यूरान) होता है। चाक्षुप संज्ञाव्यूहका अन्तिम इन्द्रिय दृष्टिपटलके राड और कोन कला की तहोंसे बना है। चाक्षुष संज्ञाव्यूहका पहला टप्पा द्विध्रुव पेशियोंसे (बायपोलर सेल्स) बना है। यह मज्जाव्यूह आकारमें छोटा है तो भी अन्य संज्ञाव्यूहके पहले टप्पे के समान कार्यक्षम है। संज्ञाव्यूहका दूसरा टप्पा दृष्टिपटल की मस्तिष्ककी मज्जाकन्द पेशियोंकी शाखाओंके जालामें शुरू होता है। इन पेशिओकी अक्षरेषा एँ दृष्टिरज्जु, दृष्टिरज्जुसधि, और चाक्षुष पथमेंसे होकर अन्तमे बाह्य जेनिक्युलेट पिंड, द्वियुग्मीपिंड (ऐन्टीरियर क्वाड्री जेमिनल बॉडीज) इनके जीवनस्थानोमे अर्थात अधोचाक्षुष केन्द्रोंमें खतम होती है। चाक्षुष मुकुल प्रत्यक्ष प्रवतकमें भाग नहीं लेता। इस संपूर्ण भाग को अधो चाक्षुष संज्ञापथ कहते है। इन केन्द्रोसे नये मज्जातन्तु निकलकर जेनिक्युल कैलकेरियन पथमें प्रविष्ट होते हैं। फिर वहांसे

मस्तिष्कके पार्श्वखंडमेंके (आक्सीपिटल लोब) चाक्षुष केन्द्रोंमे जाते हैं। यह तीसरा टप्पा होता है और यहां चाक्षुष मानसिक क्रिया होती है। इस टप्पेको ऊर्ध्व-उपरका चाक्षुष संज्ञापथ कहते हैं (चि. नं. २७४)।

नेत्रके अधोचाक्षुष संज्ञापथ के मज्जातन्तुओंका पृथक्करण

दृष्टिपटलके मज्जातन्तुओंका रचना प्रबंधः दृष्टिस्थानसे निकलनेवाले मज्जातन्तुओंका अन्डाकृति वन्डल बन कर वह दृष्टिस्थान और नेत्रबिम्ब या दृष्टिरज्जुशीर्षका भाग व्याप्त करता है। इस बंडल को **पैपिलो मैक्युलर बंडल** कहते हैं। दृष्टिपटलके परिधि भागमेंसे निकलने-वाले मज्जातन्तु नेत्रबिम्ब की तरफ घूमते हैं। दृष्टिपटलके नासिकाकी ओरके तन्तु-ऊपरके और नीचेके-सीधे नेत्रबिब की भीतरकी किनारेको जाते हैं। लेकिन दृष्टिपटलके कनपटीकी ओरके तन्तु, बीचमें दृष्टिस्थान होनेसे, सीधे नेत्रबिंबकी बाहरकी किनार को नही जा सकते। इसलिये दृष्टिस्थानके नज़दीक इन तंतुओंको ऊपरके ऊपरकी ओरको और नीचेके नीचेकी ओरका होकर जाना जरूरी होता है। इन बाके हुए तन्तुओंको **आरक्युएट तन्तु** कहते हैं। ये तन्तु एक दूसरे के ऊपर चढते है इसी वजहसे नेत्रबिंबके बाहरीके किनारेके पास ज्यादह भीड होती है (चि. नं. २७५)।

दृष्टिरज्जु मे दृष्टिपटलके परिधिकी ओरके मज्जातन्तु उसके बाहरके पृष्ठपर और

चित्र नं. २७५
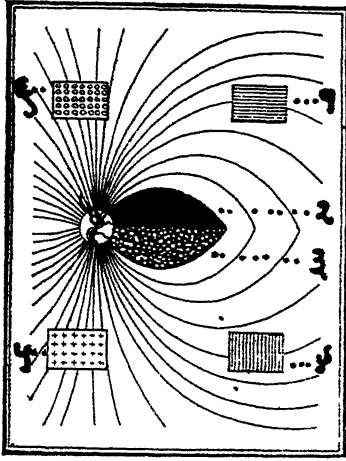
दृष्टिपटलके चाक्षुष मज्जातन्तुओंका मार्ग

१ परिधिभागके कनपटीके ऊपरी भागके तन्तु
२ दृष्टिस्थानके ऊपरी भागके तन्तु
३ दृष्टिस्थानके नीचे के भागके तन्तु
४ परिधिभागके कनपटीके नीचेके भागके तन्तु
५ परिधिभागके नासिका भागके नीचेके तन्तु
६ परिधिभागके नासिका भागके ऊपरके तन्तु

मध्यभाग के तन्तु मध्यभागम होते हैं, नीचेकी ओरके सामनेके भागमें, नासिकाकी ओरके भितर की ओरको और कनपटी के ओरके बाहरकी ओरको, ऊपरके ऊपर और नीचेके नीचे दिखाई देते हैं। यह रचना दृष्टिरज्जुमें आखिरतक पायी जाती है। दृष्टिरज्जु संधिके पास मैक्युलर बंडल कनपटीके ऊपरके और नीचेके बंडलोंमें घुसकर रज्जुके गाभामें जाता है।

दृष्टिरज्जुके मज्जातन्तुओका पृथक्करण करनेसे दृष्टिरज्जुमें तीन किस्मके मज्जातन्तु पाये जाते हैंः-(१) दृष्टिपटलकी मज्जाकन्द पेशियोंकी मस्तिष्क गामी चाक्षुष अक्षरेषाएँ

(२) मस्तिष्क केन्द्रोंसे दृष्टिपटल को जानेवाले चालक तन्तु जिनका कार्य रक्तवाहिनियोंका और दृष्टिपटल के घटकोंका नियमन करना होता है;(३) और कनीनिकाका नियमन करनेवाले मज्जातन्तु । दोनो दृष्टिपटलो को जोडनेवाले तन्तु भी होते है ऐसा कोई कोई मानते हैं। दृष्टिपटलके चालक मज्जातन्तुओंके उगमस्थानका शोध अभीतक ठीक नहीं लगा है। इन्होंसे **चाक्षुषनीललोहित** पिंगके चलनकार्यका नियमन होता होगा ऐसा कोई कोई संशोधक मानते हैं।

दृष्टिरज्जुसंधि (दृष्टिरज्जुयोजिका आपटिक कायझमा):—दृष्टिरज्जु संधिके नजदीक दृष्टिरज्जुओंमेंकी इनतन्तुओंकी रचनामें एक तिरछे परदेसे फर्क होता है। दृष्टिरज्जुसंधिके नजदीक दोनों दृष्टिरज्जुओंमे उनके ऊपर और बाहरकी ओरसे उनके भीतरकी और नीचेकी ओरको एक तन्तुदार तिरछा परदा जाता है। जिससे दृष्टिरज्जुके दो भाग बनते है। दोनों दृष्टिरज्जुओके परदेके भीतरके भाग यानी दृष्टिपटलके नासिका भागके तन्तु दृष्टिरज्जु संधिमें एक ओरसे पार होकर मध्यरेषाकी दूसरी ओरको जाते है, और दोनो रज्जुओके परदेके बाहरके भाग सीधे अपने ओरके मस्तिष्क भागमे जाते है ये दृष्टिपटलके कनपटीके भाग के तन्तु होते है। दृष्टिस्थानसे तन्तु एक ओरसे पार होकर मध्यरेषाकी दूसरी ओर जाते हैं।

सब सस्तन प्राणियामे, दो छोडकर, दृष्टिरज्जु संधिमे मज्जातन्तुओंका प्रबंध इसी तरह का दिखाई पडता है। यह प्रबंध द्विनेत्रीय एकदर्शनकी नींव होती है। निचले दरजेके पृष्ठ-वंशीय प्राणियोंमे, जैसे कि मछलीये, एक नेत्रकी दृष्टिरज्जु पूर्णतया मध्यरेषा पार होकर दूसरी ओरको जाती है।

दृष्टिरज्जुसंधिका आकार अण्डाकृति होता है; लंबा आडा माप २० मि. मि. मोटाई ८ मि. मि. सामनेसे पीछेका माप ५ मि. मि. होता है।

चि. नं. २७६

दृष्टिरज्जुसंधि
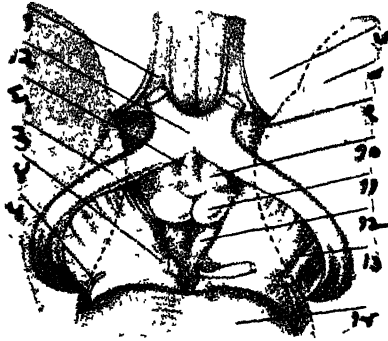
मध्य मस्तिष्क के नीचेके पृष्ठसे दिखाई देनेवाला दृश्य। बिन्दाकार रेषासे कनपुटीके शंखखंड, जो यहां निकाला गया है, की मर्यादा बतलाई है।

१. गंधपथ; २ दृष्टिरज्जुसंधि; ३ चाक्षुषपथ ४. तीसरी मस्तिष्करज्जु; ५. चौथी मस्तिष्करज्जु ६ इनफंडीब्युलम ७ ललाटीय खंड; ८ शंखखंड; ९ सामनेका सछिद्र भाग; १० ट्यबर साथनेरियम; ११ स्तनसदृश पिंड; १२ पिछला सछिद्र भाग; १३ मस्तिष्कस्तंभ; १४ पान्स-भ्रमरगुंफा.

चाक्षुषपथ या दृष्टिपथ के (आपटिक ट्राक्ट) मज्जातन्तुओंकी रचनाः— हरएक चाक्षुषपथमें (१) एक नेत्रके दृष्टिपटलके कनपटीकी ओरके सीधे आये हुए तन्तु; (२) दूसरे नेत्रके दृष्टिपटलके नासिकाकी ओरके मध्यरेषाको पार होकर आये हुए तन्तु; (३) दृष्टिस्थानके सीधे आये हुए और (४) दृष्टिस्थानके पार होकर आये हुए तन्तु एकत्र होते है। ये सब तन्तु एकत्रित होकर उनका गोल पट्टा जैसा होता है। हरएक

पथ पहले **ट्यूबर सायनेरियम** और मस्तिष्क का **पुरसुषिर भाग**—अगला सछिद्र भाग—(ऐन-टेरियर परफोरेटेड सर्बस्टन्स) इनके दरमियानसे आगे जाता है; फिर मस्तिष्क के स्तंभ की बाहरकी ओरसे चाक्षुषमुकुल के पिछले बाहरकी ओरको जाता है। यहा उसके दो भाग होते है जिनको उसके मूल कहते है। बाहरीका बडा मूल **बाह्य जेनिक्युलेट पिंड,** चाक्षुष मुकुल का **बट्टा,** और द्वियुग्मी पिंडके **ऊर्ध्व कालिक्युलस ऊपरके पिंडमें** जाता है;भीतरीका छोटा मूल **मध्य जेनिक्युलेट** पिंडको जाता है। दृष्टिरज्जुके सब तन्तु बाह्य जेनिक्युलेट पिंडमे होते हैं। भीतरीके मूलमे गुडनके तन्तु होते है। जिनका दृष्टिकार्य से कुछ तालुक नहीं होता।

दृष्टिरज्जुसंधि और दृष्टिपथ के संबंधमें कुछ सहायक तन्तुओंके जो बन्डल आते है वे ये होते हैं:—(१) **गुडन** का अधो संयोजन बंडल (इनफेरियर कमीशर) इनसे दोनों ओरके भीतरी जेनिक्युलेट पिंड का संबंध जुडा जाता है, इनका दृष्टिकार्यसे कुछ तालुक नहीं यह इपर कहा है। (२) **मेनर्टका** ऊर्ध्व संयोजन बंडल; (३) **अनसाठा का संयोजन बंडल** आदि।

अधो चाक्षुषकेन्द्र

दृष्टिपटलके तन्तु दो धूसर भागमें जाते है। (१) **बाह्यजेनिक्युलेट पिंड** जो उत्पत्ती शास्त्र दृष्टिसे चाक्षुष मुकुल या चाक्षुष पुष्पाधार का भाग होता है; और **(२) ऊर्ध्व कालि-क्युलसमें—सामनेका द्वियुग्मी पिंडमें** (ऐनटेरियर कार्ड्रीजिमिनल बॉडी) जो मध्य मस्ति-ष्कका भाग होता है। तीसरा एक भाग चाक्षुष मुकुल या पुष्पाधार का बट्टा होता है जिसका इन दो भागोंसे निकट संबंध आता है लेकिन इसका चाक्षुष पंथमें टप्पा परिवर्तक स्थान (रिलेस्टेशन जिसकेद्वारा क्षीण प्रवाह एक प्रबल प्रवाहका संयोजन करनेमें उपयोग होता है) जैसा उपयोग नहीं होता।

विकाससे (उत्क्रान्तिसे) मध्यमस्तिष्क के छतमें बडे बदल हुए है। प्राणियोंकी पहले श्रेणीमें इसी स्थानमें जो एक फोटास्टाट (एक तरीका खास कैमेरा) जैसा कार्य करता है कुल संज्ञाओंका ग्रहण होता है। सेलाचिन जैसे प्राणियोंमे एकही भागमें चाक्षुषसंज्ञा और अन्य संज्ञाओंका अन्योन्य संबंध जुडा हुआ होता है। भूजलचर प्राणियोंमें (अमूफी-बियन्स) दो प्रणालीया स्वतंत्र होकर दो अलग अलग केन्द्रोंका विकास होता है, नेत्रके लिये एक और कान के लिये दूसरा। पक्षीवर्गमें ज्यादह विकास होनेसे ऊर्ध्व कालिक्युलसमें चाक्षुष संज्ञाका विकास होता है। मछली, भूजलचर प्राणि सर्प-वर्गमें मस्तिष्कका भाग निकाल डालनेसे चाक्षुषसंज्ञाका कार्य कायम रहता है। इसके अलावा पक्षीवर्गमें मस्तिष्क निकाल डालनेसे पहँचानना जैसे उच्च गुणोंमे फर्क होता है और प्राथमिक केन्द्रों को नाश करनेसे अंधत्व ही पैदा होता है। सस्तन प्राणियोंमें चाक्षुष खंड का महत्त्व कम होता है। उनसे जटिल चाक्षुष संवेदनाका भेद जानना या अनेक संज्ञाओंके मिलनके भेद जानकी जरूरी होनेसे सब संज्ञाग्राहक केन्द्रोंके संस्थानको मस्तिष्क के ऊपरके भागमें रखनेकी जरूरी मालूम हुई। और इसमें चाक्षुष कार्यने अग्रेसरत्व लिया। ज्यादह मुलायम अन्तिम स्थान, जिसमें जटिल अनुकलन बनानेका धर्म होता है ऐसा, बृहत् मस्तिष्कका

बाहरी भागमें रखा गया और उसके लिये परिवर्तन केन्द्र-स्थान नीचेके समतल मे रखना जरूरी हुई। सर्वसाधारण स्पर्श संज्ञाओंके पथको चाक्षुष पुष्पाधार या मुकुल (थेलेमस)में स्थान मिला, और चाक्षुष तन्तुओंका यह स्थान असलमें बाह्य जेलिक्युलेट पिंडे में मिला। ध्यानमें रखना कि सिलेचन मछलींके चाक्षुष मुकुलमे यह भाग प्राथमिक तोरसे होता है। सस्तन प्राणियोंकी ऊपरकी श्रेणीमे दृष्टिपटलके तन्तुओंका ८०% प्रति सेकडा इसी भागमें जाता है। ऊर्ध्व कालीक्युलसमें इनका खतम होनेका प्रमाण बहुतही कम होता है। इस दूसरे भागमें पीछेसे विकसित हुए दृष्टिस्थानके तन्तुओंका अभाव होता है; और इसमे मस्तिष्कके बाह्यभाग के (कारटिकल) परिक्षेप (प्रोजेकशन्स) भी नही दिखाई पडते। इसके जो कुछ तन्तु मस्तिष्कको जाते है वे उत्क्रान्ति शास्त्रके अनुसार विलकुल मूल स्वरूपके होते हैं। और ये, नीचेके वर्गके प्राणियोंके मस्तिष्कके छत के केन्द्रगामी चाक्षुष तन्तुओं की प्राथमिक अवस्थाके रूपके होते हैं। इसमें कुछ संदेह नहीं कि मनुष्य मे इनका कार्य दृष्टिके संज्ञा के कार्य के जैसा नहीं बल्कि **फोटोस्टाट** जैसा होता है।

ऊर्ध्वकालिक्युलस (ऐनटेरियर काड्री जेमिनल बाडी) द्वियुग्मीपिंडोका अगला-पिंडः—यह भाग मध्यमस्तिष्कके छत मे है। चाक्षुष मुकुल या पुष्पाधार और पिनीजल पिंड की (तृतीद्विक कंदिका की नीचे की) ओरको होता है। इसकी बनावटमे मज्जा घटको की चार तहे होती है : (१) **स्ट्रेटम झोनेल** जिसके सुफेद तहमे दृष्टिपथके तन्तु जाते हैं; (२) **स्ट्रेटम सायनेरियम** जो धूसर मज्जा घटकोका बना हुआ होता है और जिसमें छोटी गोल बहुतन्तुरित पेशिया होती है और इनके चारों ओरको दृष्टिरज्जुके मज्जातन्तुओंका जाला बनता है; (३) **स्ट्रेटम् आपटिकम्**-इस तहमे दूसरी तह की पेशियोंके चारो ओरके तन्तू होते है; (४) **स्ट्रेटमलेमनिस्की**-इस तहमें बडी मज्जा पेशिया, फिलेट के मज्जा तन्तु और **स्ट्रेटम् आपटिकम**के तन्तु होते है। इस पिंडमेके **केन्द्रगामी मज्जातन्तु** तीन तरहके होते हैं। (१) ऊर्ध्वकालि क्युलसमेके दृष्टिपथके तन्तु जो बाह्यजेनिक्युलेट पिंड के नीचे की ओरसे आते है : (२) मस्तिष्क के बाहरी भागमेसे आनेवाले तन्तु (दि कारटिको कालिक्युलेट फ्यासिक्युलस) : (३) सुषुम्ना कन्दके (मेड्युला एन्ड कार्ड) मध्य फिलेट की संज्ञाग्राहक क्षेत्रमेंके तन्तु केन्द्रत्यागी तन्तुः—

केन्द्रत्यागी तन्तुः—ऊर्ध्व कालिक्युलससे मस्तिष्कमें परिक्षेप (प्रोजेक्शन) नहीं होता। बल्किं ये मध्यरेषाके पार के तीसरी, चौथी और छटी मज्जारज्जुओंके केन्द्रोंको मिलकर सुषुम्नाकंद और सुषुम्नासे नीचेकी ओरके चालक मज्जातन्तुओंको मिलते है। कुछ तन्तु उसी ओरको नीचे जाकर **असेन्डिग** फिलेट के तन्तुओमें मिल जाते हैं। शेष तन्तु दूसरी ओरके द्वियुग्मी पिंडके अंगले पिंडमें घुसते है। इन तन्तुओंका अन्योन्य पार होनेवाले तन्तु कहते हैं।

बाह्य जेनिक्युलेट पिंडः—यह साधारणतः अण्डाकृति आकार का होता है। यह पिंड चाक्षुष मुकुलके **वट्टा** की (पलव्हायनर) पिछली और बाहरकी ओरको होता है। इस पिंडमें दृष्टिरज्जुके ८० प्र. सैकंडासे ज्यादह तन्तु घुसते हैं। इनमेंके कुछ तन्तु यही खतम होते हैं और कुछ बट्टामेंसे या उसकी बाहरकी ओरसे ऊर्ध्व कालिक्युलस को जाते है। यहासे

चाक्षुष तन्तु परिवर्तित होकर मस्तिष्कके पार्श्व खंड को **जेनिक्युलो कैलकेरियन पथ** जैसे जाते है, और संभव है कि चाक्षुष मुकुलसे इसका **जेनिक्युलो थालामिक पथ** से सयोग होता है। चाक्षुष सावेदनिक कार्यका यह पिंड असली प्राथमिक परिवर्तित स्थान होता है। इस पिंडकी बनावट एक के ऊपर एक लगी हुई सफेत और धूसर तहोंसे बनी होती है। चाक्षुषपथके सुफेद तन्तु प्रत्यक्ष आते है। धूसर तहोंमें की पेशिया बडी और रंजित होती है और उनकी अक्ष रेषाओंसे चाक्षुष तन्तुओंका मस्तिष्क की तहोंमे जेनिक्युलो कैलकेरियन पथद्वारा परिवर्तन होता है (रिले)।

बाह्य जेनिक्युलेट पिडमे नीचेके चाक्षुष संज्ञापथके तन्तुओंका स्थान निर्णय हुआ है। दृष्टिपटल के परिधिभागके तन्तु इस पिंडके अगले भागमें, ऊपरके तन्तु भीतरकी ओरको और नीचेके तन्तु बाहरकी ओरको दिखाई देते हैं। दृष्टिस्थानके तन्तु इस पिंडके पिछले भागमे ऊपरके भीतरकी ओर और नीचेके बाहरकी ओरको दिखाई देते हैं। दोनों दृष्टिपटलके समन्वित भागोंके तन्तु साथ साथ जाकर आखिर इस पिंडके एकही पेशीके केन्द्रोंमें जाते है ऐसी कुछ लोगोंकी समझ है।

चाक्षुषमुकुल या पुष्पाधार (—अर्जाचक्र—) (आपटिक थैलामस) यह एक मज्जा-कंद पेशियोका पिंड गंडमूलके (पिंडकल) मार्गमें तिरछा पडा रहता है। इसका पिछला मोटा भाग यानी बट्टा बाह्य जेनिक्युलेटपिंड और ऊर्ध्व कैलिक्युलस पर टंगा जैसा रहता है। चाक्षुषपथ के चाक्षुष तन्तु इसको बाह्यजेनिक्युलेट पिंडमेसे होकर जा पहुँचते है लेकिन इससे चाक्षुषपथको परिवर्तिक स्थान जैसा उपयोग नहीं होता।

यद्यपि प्रत्यक्ष चाक्षुष पथमें इसका कोई भाग नहीं होता तोभी चाक्षुष यंत्रमे इसका महत्व पूर्ण भाग होता है। मनुष्यमे इसके संबध बहुत गुंतागुंतके होते है। ऊपर मस्तिष्कको जानेवाले चाक्षुष सावेदनिक पथमें इसका असली कार्य परिवर्तिक स्थान जैसा होता है। मस्तिष्कचाक्षुष मुकुलीय (कारटिको थैलापिक) तन्तुओंकी मिश्र प्रणाली इसको मिलती है। बट्टा का खास संबंध कोनीयतरंग (एंक्युलर गायरस) पार्श्विक पाश्चात्य खंड प्रीक्युनियस, आक्सीपिटो—पारायटल लांब और पाश्चात्य शंखखंड (आक्सीपिटो टेंपोरल लोब) इतरेसे होनेसे इसका लघु मस्तिष्कसे संबंध जुडा जाता है। संभव है कि इससे नेत्रोंके चलन, नेत्र और हाथोके संबंध परतादर्शनमे भाग होता होगा।

ऊर्ध्व या ऊपरका चाक्षुष संज्ञापथ

(जेनिक्युलो कैलकेरियन पाथवे)

चाक्षुष मज्जापथका तीसरा मज्जाव्यूह बाह्य जेनिक्युलेट पिंड की पेशियोंसे शुरू होता है, इन पेशियों की अक्षरेषाएँ मस्तिष्क के पाश्चात्य खंडकी चौथी तहकी चाक्षुष क्षेत्र की पेशियोंके चारों ओर को फैलती हैं। इन अक्षरेषाओंका एक पट्टा या चाक्षुष गंडमूल (आपटिक पिंडकल) बनता है। यह गंडमूल जल्द ही फैलकर उसका एक बडा चपटासा पंखा—मज्जामय चाक्षुष पत्र (मेड्युलरी आपटिक लामिना) बनता है। इस पंखा या पत्र

की सामनेकी किनार सामनेकी ओरको झुक कर मस्तिष्क के शंख खंड मे घुसती है; फिर तन्तु पीछेके कैलकेरियन सिता की ओरको पलटते हैं। इस पत्र की पिछली किनार ऊपरके

चित्र नं. २७७

चाक्षुष पथ

मस्तिष्क के बांये अर्धखंड का भीतरीका पृष्ठ देखनेसे उसके धूसर भागका भीतरी भाग और मस्तिष्कके तलके मज्जामंडल और जेनिक्युलो कैलकेरियन सिता दिखाई पडती है (फीफर के अनुसार)। **का** काडेट केन्द्र। **महासंयोजन**। **ले** लेन्टीपार्थ केन्द्र। **मेचाप** मेडयुलरी चाक्षुष पत्र। **मु** चाक्षुष मुकुल। १ मेडयुलरी चाक्षुष पत्र का अगला जेन्यु।

पार्श्विक पाश्चात्य खंड (परायटो आक्सिपिटल लोब के सुफेद द्वीप भाग (इनसूला) मेंसे उसकी ऊपरकी किनार के समतल तक जाती है। फिर वहासे पलटकर कैलकेरिन सिता की पिछले भाग की जाती है। पत्रका पिछला भाग पीछेकी **रेषांतिक तहकी** तरफ जानेके समय उसमे नीचेके अग्रभागको वहुतसे ये मज्जातन्तु समकोण करके मस्तिष्कके नीचेकी ओरको जाकर उसमें घुसते है।

फीफरके संशोधनके अनुसार मज्जामय चाक्षुष पत्र (मेडयुलरी आपटिक लामिना) के सामनेके भागके त्रिकोण शकल के गंडमूलके पास, दो भाग बनते हैं; उनमेंसे कुछ तन्तु सामनेकी और ऊपरकी ओरको घुमकर **महासंयोजक के कन्दुक** (स्पेलियम ऑफ कारपस कैलोझम) की ओर जाते हैं; इन तन्तुओंसे दृष्टिसंबंधी (आपटिक कमीशर) बनता है; और संभव है कि इनसे दोनों दृष्टि स्थानोका मस्तिष्क के दोनो भागोमें साहचर्य प्रदर्शन होता होगा।

चाक्षुषकार्यके मस्तिष्कीय बाह्यक्षेत्रमें के केन्द्र

यद्यपि मस्तिष्क के बाह्यक्षेत्रमेंके निश्चित भागोंका, एक या अनेक संज्ञा ग्राहक कार्य के केन्द्र ऐसा वर्णन करनेका रिवाज है, तो ख्यालमे रखना कि इनकी ऐसी मर्यादित व्याख्या नहीं कर सकते; क्यों कि किसीभी जटिल प्रणालीके, जिसको किसी भी कार्य लायक होने के लिये अखंडितरूपसे कार्य करनेकी जरूरी होती है, उनके वे सिर्फ विवर्तक केन्द्र होते है। इस अर्थसे ऊपरके चाक्षुष संवेदना केन्द्र मस्तिष्के **पाश्चात्य खंड** मे होते हैं। इसका संशोधन **पावलोव्ह पंडितने** (१९२७) मे किया। उन्होनें कुत्तेके यह पाश्चात्य खंड निकाल डाले जब उनको मालूम हुआ कि कुत्ते को कोईभी पदार्थ नज़र में नहीं आताथा (इस प्रयोगका एक कुत्ता तीन सालतक ऐसा जिन्दा था)। इस भागकी पूरी अखंडतापर चाक्षुष प्रतिवर्ती क्रिया जिनमे संश्लेषण सरीखी मिश्र क्रिया और पृथक्करण के सूक्ष्म भेद जाननेकी क्रिया की जरूरी होती है, अवलम्बित रहती है। शाबीत होता है कि यद्यपि चाक्षुष कार्यका केन्द्र पाश्चात्य खंडमें होता है। तो भी मस्तिष्क बाह्य क्षेत्र जटिल प्रणाली वैसी

होती है जिसका कार्य अखंडरूप का होता है। **पावलोव्हके** संशोधनसे शाबित होता है कि केन्द्रवर्ती मस्तिष्कमंडल की उच्च क्रिया जिन पर अवलम्बित होती है ऐसे साहचर्य केन्द्र नहीं होते बल्कि मस्तिष्कावरण का क्षेत्र अन्योन्याश्रयी क्रिया का अखंड सहचर जैसा होता है। ख्यालमें रखना कि मनुष्यके मस्तिष्कावरण के किसी भी भागमे ठीक ठीक **खास** स्थाननिर्णय संबंधके रुग्णविषयक प्रमाण नहीं मिले हैं। मस्तिष्क के स्थानिक भाग निकाल लेनेसे जो क्रिया का लोप दिखाई पडता है उसकी वजह यह होती है कि, मतिष्क के इस निकाले हुए भागमे जो चाक्षुस पथ जाते है या उनमेंसे जो बाहर आते है, उनको अवरोधन या रुकावट होती है; इसके अलावा मस्तिष्कको उत्तेजित करनेसे जो परिणाम दिखाई पडते है वे इन पथोका उत्ते-जन होनेसे पाये जाते है।

कोनीयचक्रांग (**ऍंग्युलर गायरस** चित्र नं. २७८:को) यह भाग चाक्षुष कार्यके संबंधमे

चित्र नं. २७८
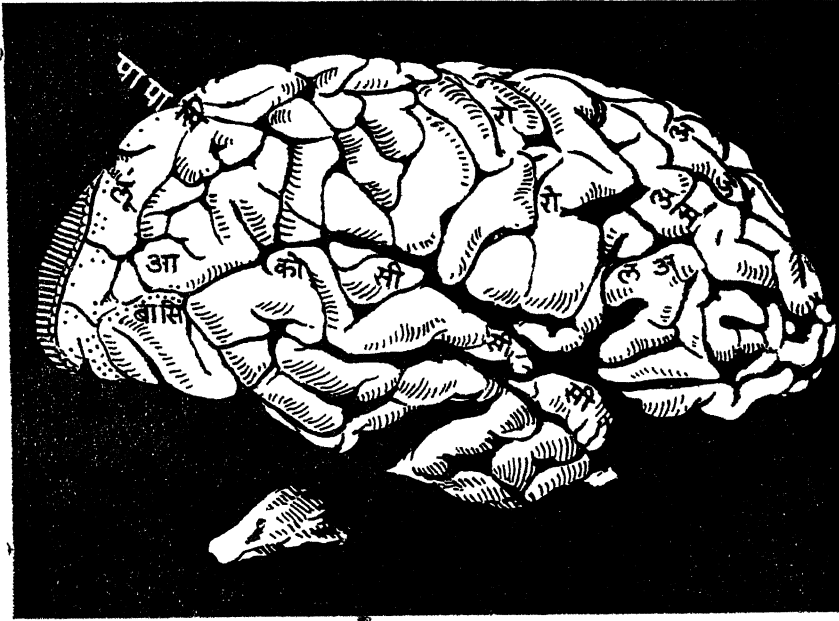
मस्तिष्कके दाहिने अर्थ खंड का बाहरी का पृष्ठभाग जिस परसे चाक्षुष संबंधीके केन्द्रोके स्थान दिखाई पडते है।

रेषांकित क्षेत्र आडी रेषाओंसे बतलाया है। परा रेषांकित क्षेत्र बडे बिन्दुओंसे **और** परा रेषांकित क्षेत्र बारिक बिन्दुओंसे बतलाया है। **को**:–कोनीय तरंग (चक्रांग)। **ल ऊ, ल म, ल अ** अनुक्रमसे ऊर्ध्व, मध्य और लघो ललाटीय तरंग। **बा सि** बाहरीकी सिता। **लू** लूटेन सिता। **पा पा सि** पार्श्विक पाश्चात्य सिता। **रो रो** रोलान्डो की मध्य सिता। **सी सी सी** सिलान्वियस की पार्श्वकी सिता। **आ** आडी पाश्चात्य सिता।

(व्हिटनाल का शारीरशास्त्र)

महत्वपूर्ण है। इसमें **चाक्षुष स्मरण शक्तिका केन्द्र** (व्हिज्युअल वर्ड मेमरी सेन्टर) होता है; इस भागको इजा होनेसे लिखे हुए शब्दोंका बोध नहीं होता लेकिन वही शब्द सुननेसे बोध होता है। इस भाग को इजा होनेसे नेत्रोका स्थिर करनेका कार्य और घनतादर्शक कार्यका लोप और इसके साथ अवकाश दर्शनका लोप होता है।

ऊपरके ऊर्ध्व चाक्षुप संज्ञापथके मज्जातन्तुओंकी रचना शारीर शास्त्रीय दृष्टिसे नीचेके—अधो चाक्षुष पथके समान होती है। अगले चाक्षुष क्षेत्रका या दृष्टिपटल के पिछले आधे भागका प्रक्षेपण बाह्य जेनिक्युलेट पिंड के मध्यभागसे चारोंओरको फैलनेवाले रेषाओंके पिछले भागके द्वारा **कैलकेरियन** सिता के पिछले ढक्कन की किनारी की तरफ होता है। और पिछले चाक्षुप क्षेत्र का या दृष्टिपटलके अगले भागका प्रक्षेपण **जेनिक्युलेट** पिंड के पार्श्विक भागसे रेषांकित क्षेत्र के आगले भागमेसे होकर **कैलकेरियन सिताके** अगले ढक्कन की किनारीमें जानेवाले मज्जातन्तु द्वारा होता है।

चाक्षुप मज्जारज्जु की आरासदृश फैलनेवाली शाखाओंको इजा होनेसे पैदा होनेवाले अनेक अंधतिलक आडी रेषासे मर्यादित जैसे दिखाई देनेसे **पंडित होम्सने**(१९१९) कल्पना कीई कि दृष्टिपटलके अगले और पिछले भाग को जानेवाले तन्तुओंमें शारीरिक अवकाश रहता होगा,और इस अवकाश के बीचका एक तिहांई भाग दृष्टिस्थानके तन्तुओंसे व्यापित होता होगा ।

तन्तुदार या रेषांकित क्षेत्र (ऐरिया स्ट्रायेटा चित्र नं. २७८।२७९)

मस्तिष्कीय चाक्षुषसंवेदना क्षेत्र मस्तिष्क के पाश्चात्य खंडके भीतरी पृष्ठ की ओरको और पार्श्वध्रुव के पास किंचित् बाहरकी पृष्ठपर फैला हुआ होता है (चि. २७८) इस क्षेत्र की विशेषता यह होती है कि इसमें एक सुपेद-पट्टा साफ दिखाई पडता है। इस पट्टेको **जिनरीका पट्टा** कहते हैं। यह पट्टा मस्तिष्क के धूसर भागकी चौथी तहमें होता है। पट्टा मस्तिष्ककी पेशिया और तन्तुओंके जाला से बना है। इस तहमें **जेनिक्युलो क्यालकेरियन चाक्षुष** पथ मिलता है। इस लिये मस्तिष्ककी इस तह को **रेषांकित क्षेत्र** (एरिया स्ट्रायेटा) कहते हैं।

यह भाग महासयोजक के कदुक भागके (स्प्लेनियम ऑफ कारपस कैलोझम) पिछले और नीचेके भागमें होता है। वहांसे यह भाग मस्तिष्कके पाश्चात्य खंड की ओरको जाकर फिर बाहरकी ओरको घुमता है। कलल के विकास के छटे मासके समयमें यह क्षेत्र उसके लम्बे आस मे दुपट जाता है यह कैलकेरियन सितासे ज्यादह गहरा हो जाता है। इस सीताके चारों ओरको चाक्षुष संवेदन क्षेत्र असमसा फैलता है; यह उसकी नीचेकी किनारेके सामनेके भागमें उपरी की किनारकी अपेक्षा ज्यादह फैलता है।

पार्श्विक पाश्चात्य सिता ऊपरसे इसको मिलनेको नीचे फैली हुई होती है जिससे इस सिताके दो भाग होते हैं। अगला भाग—खास **कैलकेरियन सिता** और एक पिछला भाग;

अगला भाग ज्यादह गहरा, ज्यादह पैदार और पिछले भागसे पहले बना हुआ होता है। और उसके नीचेके ढक्कन के किनारेपर फकत् रेषांकित मस्तिष्क भाग दिखाई पडता है जिससे यह मर्यादा करनेवाली सिता होती है। लेकिन पिछले भाग के दोनो ढक्कनोंकी किनारीपर यह रेषांकित भाग दिखाई देता है। और इस उथली और नयी बनी हुई सितासे यह रेषांकित भाग कोनीय और लिंग्युअल चक्राग को फैलता है चि. नं. २७९।

रेषांकित क्षेत्रः—इसके रचना की चार तहें–(१) बाह्य बडी मूच्याकार पेशियोंकी (तीसरी) तह जिसमे के तन्तुरभागसे उसके दो भाग होते हैं जिसमे दृष्टिरज्जुके बाहरी ओरको

चित्र नं. २७९
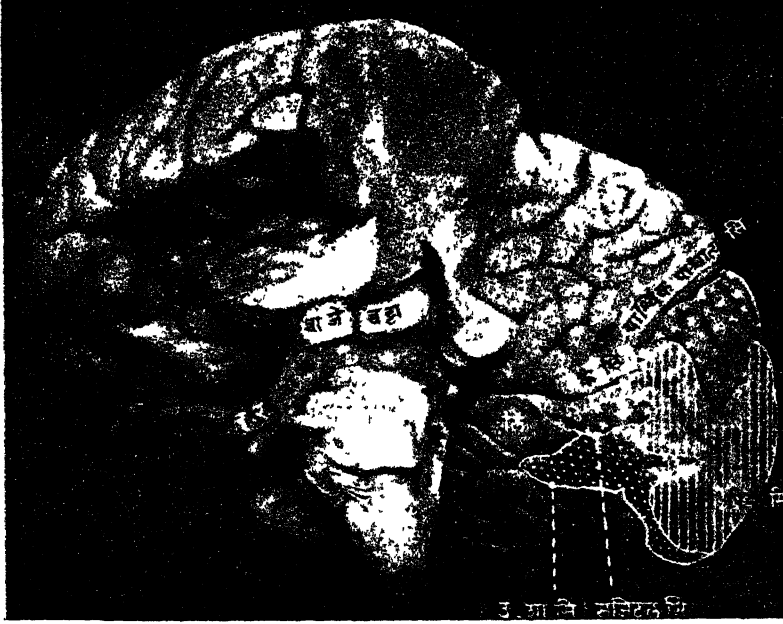
मस्तिष्कीय चाक्षुषक्षेत्र का स्पष्टीकरण करनेके लिये, बाये मस्तिष्क के अर्धखंड का पिछला भाग निकालकर मस्तिष्कके दाहिने अर्धखड का भीतरी भाग बतलाया है।

रेषांकित क्षेत्र खडी लम्बी रेषाओंसे बतलाया है। पररेषाकित क्षेत्र स्वास्तिक चिन्होंसे बतलाया है। परि रेषाकित क्षेत्र बिन्दवाकार चिन्होंसे बतलाया है।

का. सि.	कैलकेरियनासिता जिसकी (का. पि. सि.) पिछली मिरा	दृ. र.	दृष्टिरज्जु
		बट्टा	चाक्षुप मुकुल का वट्टा
उ. शा. सि.	कैलकेरियनकी उपशाखा सिता	पा. पा. सि.	पाश्विक पाश्चात्य सिता
बा. जे.	बाह्य जेनिक्युलेट पिंड		सजिटल सिता
का. अ.	अधो कालिक्युलस	ऊ. का.	ऊर्ध्व कालिक्युलस
लि.	लिग्युअल चक्राग	चा. प.	चाक्षुष पथ

किरण सदृश फैलनेवाले तन्तुओंका आखरी भाग होता है, इसीको गिनरीकी रेषा कहते हैं; (२) तारासदृश पेशियोंकी तह; (३) आन्तर सूच्याकार पेशियोंकी मेनर्टकी पेशियोंकी

तह; (४) मस्तिष्क के भीतरी ओरकी **मेनर्टकी** रेषाओंकी शाखाएँ जो जेनिक्युलोपथ की प्रक्षेपण प्रणाली की रेषाओंसे मिलती हैं।

रेषांकित क्षेत्रका कार्यः—मस्तिष्क की इस रेषांकित तहमें चाक्षुष संवेदना क्षेत्र होता है। एक ओर की इस क्षेत्र को इजा होनेसे एक नेत्रकी दाहिनी ओर मे और दूसरे नेत्रकी बाई ओरमें अंधत्व पैदा होतो है जिसको **व्यस्तस्थ नेत्रार्धभागीय अंधत्व** (क्रासड होमानिमस हेपिअनापसिया) कहते हैं। मस्तिष्कके इस दोनो भागोंको इजा होनेसे पूर्ण अंधत्व पैदा होता है।

इस रेषांकित क्षेत्र की बाहरकी चारों ओरको एक के पार, दूसरी ऐसी दो मस्तिष्क के भाग की **परारेषांकित** और **परिरेषांकित** तहें(प्यारा ऍन्ड पेरी स्ट्रायेट एरियाज **चित्र नं.२७९**), होती है। यहां मानसिक चाक्षुष केन्द्र होते है और उन्होंसे चाक्षुषसंवेदनाका बोध होता है। ऐसा पहले कोई समझते थे। इस भाग को इजा होनेसे मानसिक अंधत्व पैदा होता है। अर्थात दृष्टिपटल परकी प्रतिमाकी संवेदना मानासिक केन्द्रोंको जा पहुँचती है। लेकिन उनका परिणाम इन केन्द्रोंपर न होनेसे प्रतिमाका बोध नहीं होता। आधुनिक संशोधनसे स्पष्ट हुआ है कि बाहरकी परिरेषांकित तह का कार्य बाह्य पदार्थोंपर नेत्र स्थिर करनेके चलन कार्यका नियंत्रण यह होता है और यहा ये नियमन करनेवाले मज्जातन्तु शुरू होकर वे **तीसरी चौथी** और **छटी** मास्तिष्क रज्जुके केन्द्रोंसे मिलते है।

दृष्टिस्थान का प्रक्षेपण बाह्य जेनिक्युलेट पिंडसे निकलनेवाले रेषांकित क्षेत्रके बीचके **एक** तिहाई ($\frac{1}{3}$) भागके द्वारा पाश्चात्य खंड के ध्रुव की तरफ जानेवाले मज्जातन्तुद्वारा होता है।

चाक्षुषीय मस्तिष्क

चाक्षुष मस्तिष्कीय स्थानोंका पृथक्करण

चाक्षुषीय मस्तिष्कके स्थानोंके निर्णय का विचार तीन विभागोंमे कर सकते हैः-(१) परिधिओरकी दृक्शक्तिका द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्र (पेरिफिरल बायनाक्युलर फिल्ड); (२) दृष्टिस्थान दृक्क्षेत्र (मैक्युलर एरिया); (३) एकनेत्रीय दृक्क्षेत्र।

(१) परिधिओरकी दृक्शक्तीका द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्रः—रुग्णविषयक और विकृत शारीर इन दोनों के संशोधनसे निश्चित हुआ है कि दोनों दृष्टिपटल के परिधि भाग का प्रक्षेपण चाक्षुषीय मस्तिष्कीय स्थानके अगले भागोंमें होता है। हर दृष्टिपटल का ऊपरी आधा भाग हर रेषांकित क्षेत्र के नीचे के भागमें और दृष्टिपटलका नीचेका आधा भाग रेषांकित क्षेत्रके ऊपरके भागमें होता है। सन १९१९ मे गत युद्ध मे एकत्रित किये हुए संशोधनोंपरसे **पंडित होम्सने** कल्पना कीई कि दृष्टिस्थानसे परिधिकि ओरके दृष्टिपटलके समकेन्द्रिक भाग मस्तिष्कमें अनुक्रमसे पीछेसे आगे की ओर को दिखाई देते हैं। (चि. नं. २८१ में दृष्टिस्थान मध्यभागमें ०° के पास और परिधि भाग ९०° के पास है; कैलकेरियन सितामें दृष्टिस्थान पिछले चौडे भागमें (१) और परिधिभाग भीतरी सीरे को है)।

चित्र नं. २८०
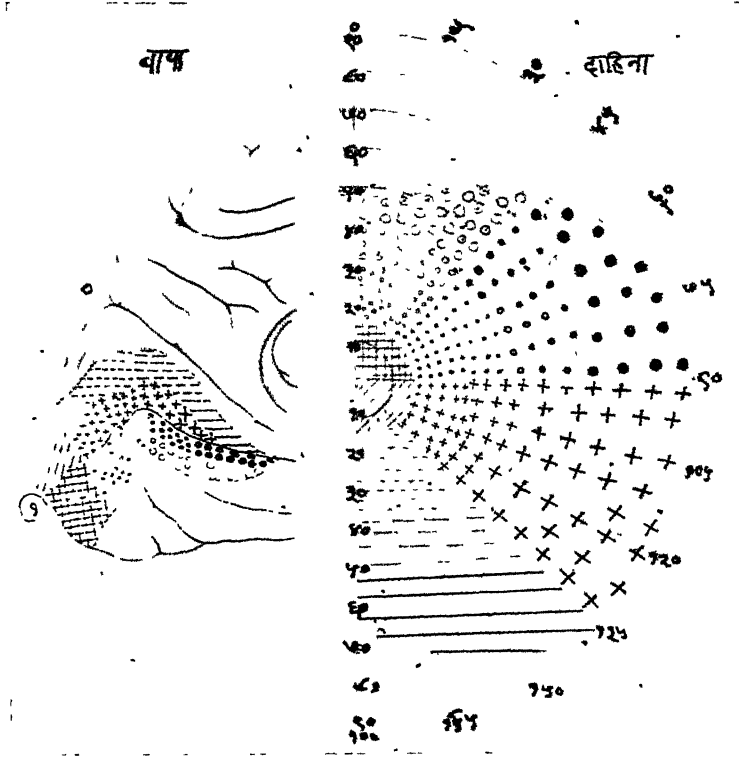
मस्तिष्कका दृष्टिपटल

चित्रमे दाहिना भाग क्षेत्र-नापनका चित्र है और बाया छोटा भाग मस्तिष्क नें की कैल्केरियन सिता का है, सिताके पिछले भागमें (१) दृष्टिस्थान और अगले भागमें परिधि भाग का प्रक्षेपण बताया है। क्यालकेरियन चीर या सिताको इस चित्रमे खोला है। दृष्टिस्थानके क्षेत्र की मर्यादा परिधिके क्षेत्रकी अपेक्षा बडी है। चाक्षुष क्षेत्रके भाग मस्तिष्कमेंसे उनके प्रक्षेपणके अनुसार चित्रित किये है (**गार्डन होम्स** के अनुसार)

चि. नं. २८१
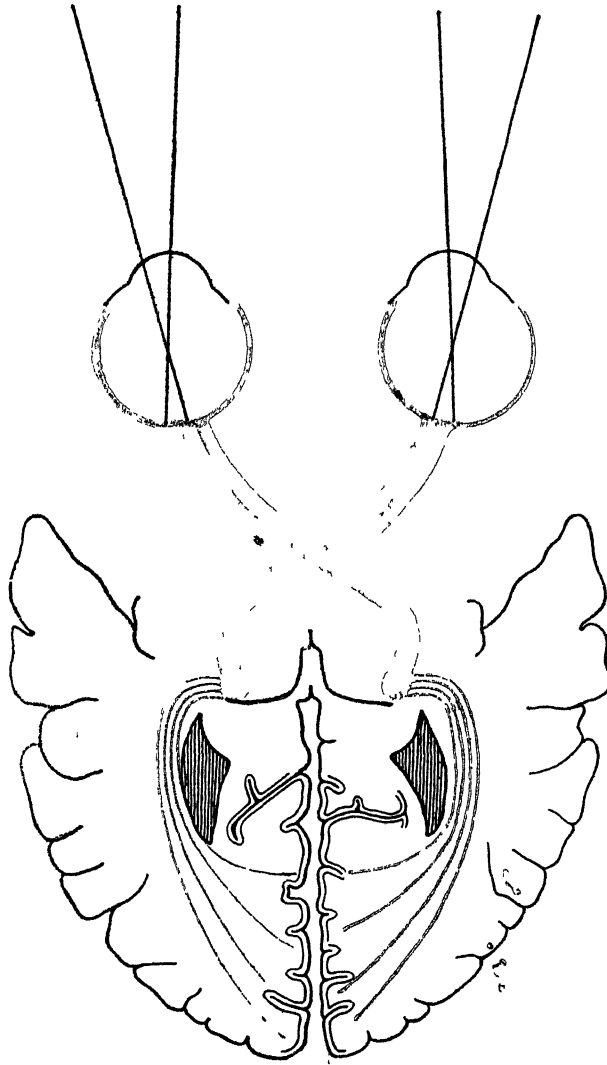
स्थैर्यबिंदु क्षेत्र और अंध तिलक का प्रक्षेपण बतलानेवाले चाक्षुष पथ.

(२) **दृष्टिस्थानका दृक्क्षेत्रः**—मस्तिष्क के दोनो भागोंमे दृष्टिस्थान नमूद किया गया है या नहीं और उसका प्रक्षेपण हर कैल्केरियन सिता में होता है या नहीं इस संबंधमें अभी भी कुछ संदेह है। मस्तिष्कके एक ओरके पाश्चात्य खंडके ध्रुव को चोट आनेसे पैदा होनेवाला अंधतिलक स्थैर्यबिन्दुके स्थानसे १०° दूर होता है यह देखा है। दृष्टिस्थान का इस तरहसे बचावके संबंध में दो कल्पनायें प्रचलित हैः—एक कल्पना ऐसी कीई है कि दृष्टिस्थान मस्तिष्क के दोनों भागोंमें नमूद होनेसे एक ओरकी इजा का असर उसके कार्यपर नहीं होता; या दूसरी कल्पना ऐसी कीई है कि मस्तिष्कमें दृष्टिस्थान इस तरहसे रखा गया है कि वह चोट आनेसे बच जाता है पर नहीं होता। पहले कल्पनाका पुरस्कार पहले पहल (१८९०) **विलब्रांड पंडित** ने किया और **हेन** ने वनतादर्शक दृष्टिपरके प्राकृतिक प्रयोगोंसे शाबित किया कि दोनो दृष्टिपटलके संगत या मुकाबिल होनेवाले आधे भागोंके तन्तु मस्तिष्कके दोनो आधे भागोंको जाते हैं। उसके पश्चात **लेन्झ पंडितने** (१९०९-१४) विकृत पुरावाओंसे बतलाया कि महासंयोजक में थे तन्तु अन्योन्य छेदसे अलग होकर मस्तिष्कके एक ओरके तन्तु दूसरे ओरके मस्तिष्क में जाते हैं। और **बौडवर पंडितनें** (१९१७) एक मिसाल ऐसी दर्ज कीई है जिसमें चाक्षुप तन्तुओंके अरीभवन (आपटिक रेडियेशन्स) से एक पाश्चात्य खंड बिलकूल अलग होते ही दृष्टिस्थान की शक्ति कायम थी। और **फैफर पंडितने** (१९२५) शरीर शास्त्रीय तोरसे यह अन्योन्य छेदन सिद्ध किया है। **दूसरी कल्पनाके** संबंधमें ऐसी दलीले पेश कीई जाती है कि दृष्टिस्थानका मस्तिष्कमेंका प्रक्षेपण का भाग बहुत नीचे होनेसे इजाका आसर यहातक नहीं पहुँचता है। मस्तिष्क की रक्तवाहिनी संबंधीकी इजामे दृष्टिस्थान बच जाता है क्यों कि पाश्चात्यध्रुव,रक्तभरती की दो भिन्न भिन्न प्रणालीयो की सीमापर होता है; और ऐसा भी एक दावा किया जाता है कि दृष्टिस्थानका प्रक्षेपण मस्तिष्कमें मर्यादित होते हुए भी वह सापेक्षतासे उसके बडे क्षेत्रमें फैला हुआ होता है।

(३) **एकनेत्रीय दृक्क्षेत्रः**—नये संशोधनसे मालूम होता है कि एकनेत्रीय और द्विनेत्रीय चाक्षुषदृक् क्षेत्र की तरक्की दो भिन्न भिन्न तंत्रोसे होती है। खरगोषमें द्विनेत्रीय प्रक्षेपण बाह्य जेनिक्युलेट पिंड के मध्य भागके छोटेसे क्षेत्रमें होता है, लेकिन एकनेत्रीय दृक्क्षेत्र इस पिंड के सब भागमे होता है। मनुष्यमे यह अवस्था विपरीत जैसी दिखाई पडती है। प्रकाश उत्तेजक कनपटीकी ओरके क्षेत्रसे बिलकुल बाहरीके भागसे दृष्टिपटल के बिलकुल नासिका के भाग पर गिरता हो तो वह एक ही नेत्रसे देखा जाता है; और दृष्टिपटलके इस भागका क्षेत्र बाह्य जेनिक्युलेट पिंड के अगले भागमे छोटे मर्यादित भाग मे प्रक्षेपित होता है। इन बातों परसे कल्पना करना संभाव्य होता है कि एकनेत्रीय दृष्टि के तन्तु द्विनेत्रीय दृष्टि के तन्तुओंमें नहीं मिलते; दृटिपटलके नासिकाके भागमें शुरू होनेवाले तन्तुओंका बंडल बन कर व्यस्तस्त्य चाक्षुष पथ में के मध्य भागमे अलग बंडल जैसा घुसकर बाह्य जेनिक्युलेट पिंडके भागमेंकी पेशियोंके स्थानमें जाता है। इस परिवर्तन स्थान से नये तन्तु निकल कर मेड्युलरी चाक्षुष पत्र के पुरोभागमेसे कैल्केरियन सिताके नीचेके ढकन के पुरोभागमेंके चाक्षुष मस्तिष्क भागमें परिवर्तित होते हैं।

दाहिने और बांये दृक्क्षेत्रका मस्तिष्कमेंका स्थाननिर्णय

दोनों दृष्टिपटलोंके मज्जातन्तु दोनों चाक्षुषपथोंमें होते हैं। अर्थात दोनों दृष्टिपटलोंके दाहिने भाग यानी बायी ओरके दृक्क्षेत्र दाहिने चाक्षुष पथमें, और दोनों दृष्टिपटलोंके बांये भाग यानी उनके दाहिनी ओरके दृक्क्षेत्र बाये चाक्षुषपथ में होते हैं। शरीरकी मध्य रेषाके बायी ओरकी वस्तु दोनों दृष्टिपटलोंके दाहिने भाग का उद्दीपन करती है। और यह संस्कार दाहिने चाक्षुषपथद्वारा मस्तिष्कके दाहिनी ओरके केन्द्रों को जा पहुँचता है। इसके विपरीत शरीरकी मध्य रेषा की दाहिनी ओरकी वस्तु दोनों दृष्टिपटलोंके बाये भाग का उद्दीपन करती है। और यह संस्कार बाये चाक्षुषपथ द्वारा मस्तिष्क के बायी ओरके केन्द्रोंको जा पहुँचता है। इससे ख्यालमें आजायगा कि मस्तिष्क का दाहिना भाग बायी ओरकी वस्तु और उसका बांया भाग दाहिनी ओरकी वस्तुको देखता है। अन्य संज्ञावाहक मज्जारज्जु के जैसी ही दृक् संज्ञाकी मज्जारज्जु कार्य करती है। और मज्जारज्जु मस्तिष्कके काविल भाग को जाती है।

जिस पदार्थको बाये हातसे स्पर्श किया जाता है उसका ज्ञान, मनुष्य के मस्तिष्कके दाहिने भागकी चेतना होनेसे पैदा होता है। और इस भाग का किसी बजहसे नाश हुआ हो तो बाये हातकी स्वेच्छिक गतिका लोप दिखाई पडता है। दृष्टि की संज्ञा इस नियम को अपवाद जैसी होती है क्योंकि हर नेत्रका संबंध मस्तिष्कके दोनों अर्ध भागोंसे जुडा होता है। लेकिन दृक्क्षेत्र के अर्ध भाग के चाक्षुष संज्ञाका विचार करें तो यह अपवाद निकल जाता है।

दृष्टिरज्जुसंधि और मस्तिष्क इन दोनोंके बीचके चाक्षुषपथमे ऐसा समझो कि बाये चाक्षुषपथमे काट किया है तो दोनों दृष्टिपटलों के बाये भागका संबंध मस्तिष्कके बाये भागसे टूट जायेगा। अर्थात दोनों नेत्रोंके दाहिने दृक्क्षेत्रमें के पदार्थ नही दिखाई देंगे फ़कत बाये दृक्क्षेत्रमेंके पदार्थ दिखाई पडेंगे। और यही अवस्था दाहिने चाक्षुषपथमें खंड होनेसे दोनो नेत्रोंके बांये दृक्क्षेत्रमेंके पदार्थ नहीं दिखाई पडेंगे फ़कत दाहिने दृक्क्षेत्रमें के पदार्थ दिखाई देंगे। दोनों नेत्रोंकी इस विकृत अवस्थाको एक ओरकी (बायी या दाहिनी ओरकी) दृक्शक्तिका **कार्यनाश** यानी **समस्थित नेत्रार्ध भागका अंधत्व (होमानिमस हेमि अनापसिया)** कहते हैं। यह विकृती चाक्षुषपथ संबंधी के मस्तिष्क के नाश होनेसे दिखाई पडेगी। इस विकृतीके कारण का स्थान दृष्टिरज्जु-संधि और उसके संबंधके मस्तिष्कके बीचमें होता है। दृष्टिपटल के जिस ओरके भागमें अंधत्व दिखाई देता होगा उसी ओरको इस कारणका स्थान होगा (चित्र नं. २८२ ३ और ४)

दृष्टिरज्जुसंधिकी मध्यरेषामें आगेसे पीछे की ओरको काट देनेसे उसकी एक ओरसे दूसरी ओरको जानेवाले तन्तु कट जायेंगे और दोनो नेत्रोंके कनपटीके दृक्क्षेत्रमेंके पदार्थ नहीं दिखाई पडेंगे। दोनो नेत्रोंके सामनेके क्षेत्र अर्थात मध्य रेषामेंके पदार्थ दिखाई देंगे (चित्र नं. २८२।२)

जब एक ही नेत्र पूर्णतया अंधा होता है तब खंडका स्थान नेत्रगोलक और दृष्टिरज्जु-

चित्र नं. २८२ चाक्षुषपथ का चित्रलेखन
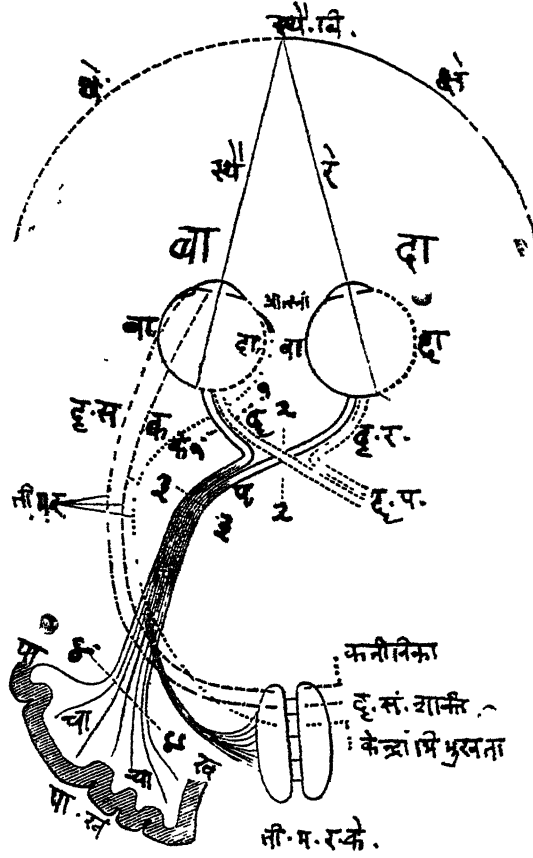
दोनों नेत्रोके दृष्टिपटलका आम समान दृक्क्षेत्र स्थै. क्षे. और वि. क्षे. मिलकर बनना है। स्थै. क्षे. दोनों नेत्रोंके दाहिने भागका है और वि. क्षे. दोनों नेत्रोंके बाये भागका क्षेत्र है। हर नेत्रके ये दो भाग खडी देशान्तर रेषासे होते हैं। ये रेषाएँ स्थैर्य बिन्दुसे दृष्टिस्थान केन्द्रको (फ) मिलती हैं। दोनों नेत्रोंके दृष्टिपटलके दाहिने भागसे निकलनेवाले दृष्टिरज्जुओंके तन्तु, जो चित्रमे बिन्द्वाकार रेषासे बतलाये हैं, दाहिने दृष्टिपथमें जाते हैं और बाये भागके तन्तु बाये दृष्टिपथमें जाते है। हर दृष्टिपथमेंके चाक्षुष तन्तु (चा) पाश्चात्य खंडके (पा. खं.) पृष्ठभागको जाते हैं। जिसको ग्राटिओलेट का चाक्षुष तन्तुर जाला कहते है। चाक्षुष तन्तुओंमेंके कनीनिकाके जानेवाले तन्तु तीसरी मस्तिष्क रज्जुके केन्द्रको जाते है। यह ती. म. र. के. अनेक जीवन बीजोका बना है; इसमेंसे एक जीवनबीजसे तन्तु क कनीनिकाके संकोचक स्नायुको जाता हैं। दूसरे बीजसे द. स. तन्तु तारकातीत पिंडके स्नायुको जाता है और तीसरा के एककेन्द्राभिमुखताके जीवनबीजसे आन्तरसरल चालनी स्नायुको(आस्नां) जाते हैं। ये सब तन्तु तीसरी मस्तिष्करज्जुमें पाये जाते है। दृष्टिरज्जुका १।१ स्थानमे काट होनेसे उस नेत्रमें अंधत्व दिखाई पडता है; दृष्टिरज्जु संधिका २:२ स्थानमें काट होनेसे दोनों नेत्रोंकी कनपटीकी बाजूको अंधत्व दिखाई पडता है। दृष्टिपथका ३:३ या ४:४ स्थानमें काट होनेसे दोनों नेत्रोकी दाहिनी बाजूको अंधत्व पैदा होता है; और ३:३ स्थानके काटेसे नेत्रोंके बांये भागके दृष्टिपटलपर प्रकाश डालनेसे प्रकाश प्रतिक्रिया नहीं दिखाई पडेगी। दृष्टिपथमेंके म तन्तुओंमें काट होनेसे प्रकाशकी कनीनिका प्रतिक्रियाका लोप होता है लेकिन दृक्संधान या एककेंद्राभिमुखताके साथ साथकी कनीनिका प्रतिक्रिया कायम रहती है।

संधि इन दोनोंके बीचमें होगा। और एक नेत्रके दृक्क्षेत्रमें ठीक ठीक बीचमें अंधत्व होगा तो उसके दृष्टिस्थान के बंडलका नाश हुआ होगा ऐसा समझना चित्र नं. २८२।१।

नेत्रके पार्श्विय क्षेत्रके नाशके साथ साथ कनीनिकाका प्रसरण या संकुचन कार्य का नाश हुआ हो तो, कनीनिकाको नियंत्रण करनेवाले तन्तु केन्द्रोंसे निकलकर चाक्षुषपथ को मिलनेके पश्चाद्, खंड हुआ होगा ऐसा समझना (चित्र नं. २८२।३) किन्तु कनीनिकाकी प्रकाश प्रतिक्रिया दिखाई देती हो तो उसके नियमन करनेवाले तन्तु चाक्षुष पथको मिलनेके पहले खंडका स्थान (चित्र नं. २८२।४) होता होगा ऐसा समझना। यह ईजा बाह्य-जेनिक्युलेट पिंड, आन्तर्धवलमार्ग (इन्टरनल कैपसूल) या मस्तिष्क भागमें होगी।

प्रेक्षक अपने बायें ओरको जो जो वस्तु देखता है उसका ज्ञान मस्तिष्क के दाहिने भागको चेतन होनेसे इसको मिलता है।

दृष्टिपटलके मध्य भाग के प्रक्षेपणके कार्यके संबंधमें दो मत प्रचलित है। (१) संपूर्ण चाक्षुष संज्ञापथमें और मस्तिष्क के **क्यालकेरियन** भागमें दृष्टिपटलके हरएक अपूर्णांश भाग का संबंध दिखाई पडता है। दृष्टिस्थानकी खासियत नहीं होती ऐसा **हेनेष्कका** मत है। इसके विरुद्ध **फान मोनाका** का मत यह है कि (२) मस्तिष्क में खास भागका संबंध दिखाई पडना संभव नहीं है। सब मतोंका सारांश यह है कि यद्यपि मस्तिष्कमें दृष्टिपटलका शारीरिक दृष्ट्या दर्शन होता है तो भी खास भाग का स्थान निर्णय नहीं हुआ है।

यह पहले ही कहा गया है कि दाहिने नेत्रका मस्तिष्कके बायें भागसे नियंत्रण नहीं होता है जैसे कि दाहिने हाथकी मस्तिष्कके बायें भागसे होता है। मस्तिष्कके बाये भागमेंका चाक्षुष व्यूह संज्ञाग्राहक और कार्यकारक द्विशाखवाला इन्द्रिय होता है (चित्र नं. २८३)। इसकी रचनामें निम्नलिखित भाग दिखाई देते हैं:—(१) दोनों नेत्रोंमेंके तारकापिधान और स्फटिकमणिके दाहिने आधे भाग जो संज्ञाग्राहक कांटेके दो सिरे होते हैं; ये सब मिलके संज्ञाग्राहक इन्द्रिय होता है और इसीको दाहिना स्फटिकमणिवाला सिरा कह सकते हैं। (२) दाहिने और बाये नेत्रका दृष्टिपटलका बांया भाग। यह दोहरा इन्द्रिय बायें मस्तिष्कका सीमाका भाग होनेसे इसको बायें मस्तिष्कका सिरा कह सकते हैं। (१) और (२) में दाहिने ओरके पदार्थोंकी किरणें अ,अ, दाहिने ओरसे बायें ओरको जाती है (यह बाहरीका अन्योन्य छेदक एक्सटरनल डिकससेशन होता है)। (३) दाहिनी दृष्टिरज्जुका व्यस्त बंडल और बांयी दृष्टिरज्जुका सीधा बंडल मिलकर (क) बनता है। वहांसे बायां चाक्षुष पथ (४) मस्तिष्कमेंके चाक्षुष केन्द्रोको (५) जाता है। मस्तिष्कमेंके चाक्षुष केन्द्रसे (६) मज्जाभिगामी तन्तु जो (५) से बायें मस्तिष्कमेके चालक केन्द्र (७) को जाते हैं। वहांसे केन्द्रत्यागी तन्तु (८) दाहिनी ओरके पार जाकर (चालक अन्योन्य छेदक तन्तु ड) छटी (९) और तीसरी (१०) मस्तिष्क मज्जारज्जु के केन्द्रोंको जाते है। इन केन्द्रोंसे मज्जातन्तु निकलते है। (९) से निकलनेवाली दाहिने ओरको (११) और (१०) से निकनलेवाली बायें ओरको जानेसे उनसे अन्योन्य छेदक अर्धचालक कांटा

चि. नं. २८३
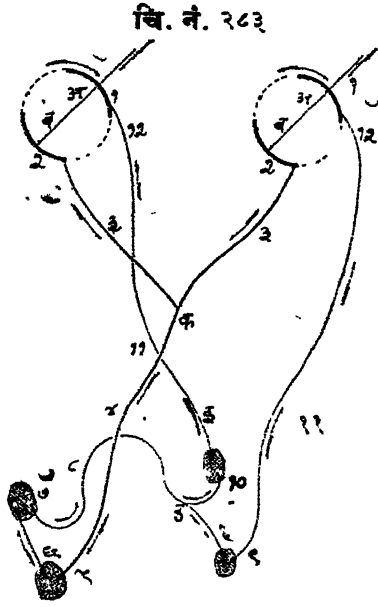
हरनेत्रके आधे भागमेंका चालक और संग्राहक इन्द्रिय

इस चित्रमें बायां इन्द्रिय बतलाया है। संज्ञग्राहक चालक मज्जातंतुओंके दो सिरे होते हैं जिनमेंका एक सिरा दाहिने नेत्रमें और दूसरा बायें नेत्रमें जाता है। दोनों इन्द्रिय, दाहिना और बायां पारस्परिक पर चढ जानेसे और मिलनेसे दोनों नेत्र बन जाने हैं।

(ड) बनता है जिसके सिरे (१२) होते हैं। ये दो सिरे चालक स्नायुके मज्जातन्तु होते हैं। ये दोनो नेत्रोंके स्नायु दाहिने स्फटिकमणि सिरेको (१) दाहिने ओरके पदार्थोंकी ओरको यानी (किनारेकी ओरको) घूमाते हैं। इससे ख्यालमें आ जायेगा कि कुल दाहिना नेत्र मस्तिष्कके सिर्फ बाये भागका चाक्षुप प्रदर्शक-सूरत नामा—नहीं है, बल्कि मस्तिष्कके दोनों एकत्रिक हुए भागका प्रदर्शक है। दाहिने हाथसे काम करनेवाला आदमी जिसका नियंत्रण बाये मस्तिष्कसे होता है उसको दाहिने नेत्रवाला आदमी नहीं कह सकते। हा इतना कह सकते हैं कि उसको दाहिने नेत्रसे बांये नेत्रकी अपेक्षा ज्यादा ठीक दिखाई पडता है।

चाक्षुष पथको रक्त की भरती

दृष्टिपटल की संज्ञाग्राहक कलातहको रक्तकी भरती अप्रत्यक्ष तोरसे कृष्णपटलकी केशिनियोसे और दृष्टिपटलकी मस्तिष्कीय तहों को दृष्टिपटल की रोहणियोकी शाखासे प्रत्यक्ष तोरसे होता है यह पहले ही कहा है, दृष्टिरज्जुके नेत्रगौहिक भागको रक्त की भरती पायापिटर की शाखाओंसे होता है। दृष्टिरज्जु संधि को रक्त की भरती अन्तर्मांत्रिका रोहिणी, पुरोमस्तिष्क और अगली और पिछली संयोजक रोहिणियोंकी शाखाओंसे होती है। चाक्षुषपथ को पिछली संयोजक रोहिणी और अन्तःमांत्रिका रोहिणी की अगली कोराईड शाखाओंसे होता है। संभव है कि दृष्टिरज्जु, दृष्टिरज्जुसंधि और चाक्षुषपथ पृष्ठभाग परकेदबान का आसर इन रक्तवाहिनियोंपर होनेसे इनका पोषण बिगड जाता है जिससे उनका क्षय होनेका संभव है।

बाह्य जेनिक्युलेट पिंड को रक्त की भरती पिछली मस्तिष्कीय रोहिणीसे होता है। ख्यालमें रखना कि **शारको की रोहिणी**, जिसको मस्तिष्कके के रक्त स्रावकी रोहिणी कहते है, इस पिंडके नजदीकसे लेन्टीक्युलर न्युकलीयस और बाह्य धवलमार्ग के पिछला भाग

इन दोनों के बीचमेसे काडेट न्युकलीयस को जाती है। अन्तः धवलमार्ग के पिछली भाग को जिसमेसे चाक्षुष पथकी आरा सदृश शाखाएँ जाती है, पुर कोरायडल (प्रकर) रोहिणी की शाखा मिलती है।

चाक्षुष मस्तिष्कीय क्षेत्र को असलमें कैलकेरियन रोहिणीसे और पिछली मस्तिष्कीय रोहिणी की शाखाओंसे रक्त की भरती होती है; मध्य मस्तिष्कीय रोहिणी की शाखाएँ भी इस भाग को रक्त की भरती करती हैं। इन शाखाओंका पायामिटर परदेमें जाला सा बनता है; जिससे लम्बी और छोटी शाखाएँ निकलती है। लम्बी शाखाएँ धूसर भागमेंसे पार होकर सुफेद तह में जाती है। छोटी शाखाएँ धूसर भागमें खतम होती है यानी इस मस्तिष्कके धूसर और सुफेद भागको स्वतंत्र जैसी रक्त की भरती होती है।

(२) चालक प्रणाली

(अ) चाक्षुष चालक स्नायुप्रणाली

३ री ४ थी ६ ठी मस्तिष्क मज्जारज्जुएँ और उनके मस्तिष्क संबंध

चाक्षुष स्नायु प्रणाली जिससे नेत्रोंके चलन का नियमन होता है और ज्यादह तोरसे जिससे कुल शरीर के पारस्परिक व्यापार पर असर और उसका नियमन होता है वह प्रणाली

चि. नं. २८४

मेंदुके बीचके काटसे बांये भागका दृश्य जिसमें ३ री और ४ थी मस्तिष्क मज्जारज्जुके केन्द्रों का स्थान दिखाई पडता है ये केन्द्र बारिक काले बिन्दुओंकी पंक्ति जैसी दिखाई देते हैः ६ ठी मस्ति। मज्जा रज्जुका केन्द्र ७ वी मस्तिष्क मज्जारज्जुके तन्तुओंके फास में है। इस सातवी रज्जु के केन्द्र के दो भाग है एक बडा और उसके ऊपर छोटासा मौखिकी केन्द्र है। कैल्केरियन सिता काले रंगकी बतलायी है (**व्हिटनालका मानवीनेत्र गृहका शरीरशास्त्र।**

बहुतही गुंतागुन्तकी और जितनी रुग्णविषयसे महत्वकी है उतनी ही ज्यादह शारीर शास्त्र दृष्टिसे प्राथमिक या पुरातन है। इन केन्द्रो के संबंधमें बहुत शारीर शास्त्र की बाते और उनके पथके संबंधी की बाते है जिनका अभितक आखरीका निर्णय नहीं हुआ है; और उनके खास रचनाके संबंध की बाते है जिनका पूरी तोरसे समज नही हुआ है।

इन मज्जारज्जुओंके शारीर का वर्णन पहली किताबके छटे अध्यायमें दिया है।

इन मज्जारज्जुओंके मस्तिष्कीय संयोजन

चाक्षुष चालक मज्जारज्जुओके केन्द्रोका मस्तिष्कीय संयोजन की प्रणाली बहुत गुंतागुतकी होती है और उनके विस्तार का निर्णय अभितक साफ नही हुआ है। उनके असली पथ नीचेके मुजब जैसे होते हैः—

(अ) मस्तिष्कके मध्यभागके संबंधः—(१) तीनों चाक्षुष स्नायु के चालक केन्द्रोका पारस्परिक संबध लम्बे पश्चिम गुच्छ के द्वारा होता है, असलमें छटी और तिसरी मज्जारज्जु, तथा ऊर्ध्व कालिक्युलससे।

(२) ऊर्ध्व गडग्रंथी द्वारा (आलिव्ह) छटी मस्तिष्क मज्जारज्जुके केन्द्रोंसे और आठवी मज्जारज्जुके कुटिर (व्हेस्टीब्युलर) और डीटर के केन्द्रोंसे संमिश्र संयोजन होता है।

(३) लघुमस्तिष्कीय स्तंभके द्वारा लघुमस्तिष्कसे होता है।

(ब) बृहन् मास्तिष्कसे संयोजनः—(४) ललाटीय खंडमेंके नेत्रके चालक केन्द्रोसे संबध होता है।

(५) मस्तिष्कके कैलकेरियन चाक्षुष केन्द्रोसे

(क) (६) तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जुके केन्द्रोके कुछ तन्तु सातवी या मौखिकी मज्जारज्जुके केन्द्रोको जाते हैं

(ड) (७) मध्य मस्तिष्क के धूसर भागके पिछले भागमें एक बंडल होता है (**ष्कुटझका**) जो सामनेकी ओरको चाक्षुष चालक केन्द्रोंके सामनेके **गुडन**के केन्द्रको जाता है, और पीछेकी ओरको चौथे मस्तिष्क कोटरके तलमेंसे सेतु और सुषुम्नाको जाता है। ऐसा माना जाता है कि यह बंडल चाक्षुष चालक प्रणाली और घ्राण पिंड प्रणाली से इनका संयोज करनेका प्राथमिक पथ होता है।

(ई) इनके सिवा और अन्य बीचके चाक्षुष चालक केन्द्र होते है ऐसा कई संशोधक दावा करते हैं।

मस्तिष्कीय चाक्षुष चालक केन्द्र

मस्तिष्कीय चाक्षुष चालक केन्द्र दो होते हैः—

(१) ललाट खंडमेंका स्वेच्छिक चलन का नियमन करनेवाला केन्द्र।

(२) पाश्चात्य खंडमेका परावर्तन क्रिया ओंको स्थिर करनेवाला केन्द्र।

(१) ललाट चाक्षुष केन्द्रका क्षेत्रः—यह क्षेत्र ललाट खंड के दूसरे चक्राग (तरंग) के पिछले (चित्र नं. २७८) भागमें होता है। उसको उत्तेजित करनेसे दोनों

नेत्रोंमें सहचरित या अनुबद्ध चलन च्यवन (डिव्हीएशन) होता है। दोनों नेत्रोंका विरुद्ध दिशामें अनुबद्ध च्यवन या चलन होता है। इस क्षेत्र के ऊपरके भाग को उत्तेजित करनेसे दोनो नेत्रोंका नीचेकी ओरकी अनुबद्ध च्यवन होता है, और इस क्षेत्रके नीचेके भागको उत्तेजित करनेसे दोनों नेत्रोका ऊपरकी ओरकी अनुबद्ध च्यवन होता है। यह अवस्था जो चलन ऐच्छिक तोरसे होता है सिर्फ उनमें ही दिखाई पडती है।

मस्तिष्क के बहिरंग मेंकी इन संज्ञाओंका मध्यमस्तिष्को जानेवाले मार्गका पूरा पताह अभितक निश्चित नहीं हुआ है, लेकिन कल्पना की ई है कि इस मार्गका संबंध अन्तर धवल मार्गमेंके सूच्याकार पथ से होता होगा। इसके तन्तु अन्योन्य छेद करके एक दूसरेके पार जाते है (डिकसेशन); क्योंकि इसका सबुत मिलता है कि मेन्दुमें सामनेसे पीछेकी ओरको खडा काट देनेसे मस्तिष्कके उत्तेजकसे कुछ भी परिणाम नहीं दिखाई पडते है। और माना जाता है कि यह अन्योन्य छेदन पार्श्वसंधिमें होता होगा; इस संधिमें काट होनेसे नेत्रकी ऊपर और नीचेकी ओरकी घुमनेकी क्रिया का लोप होता हैं ऐसा मालूम हुआ है।

(२) पाश्चात्य खंडमेंका चाक्षुष चलन का केन्द्र

पाश्चात्य खंडमेंके चाक्षुष क्षेत्रको उत्तेजित करनेसे दोनों नेत्रोंमे अनुबद्ध च्यवन होता है। संभव है कि पाश्चात्य खंडमेंके केन्द्रका ऐच्छिक चलनसे ताल्लुक नहीं बल्कि वह **दृष्टिका परावर्तन** (रिफ्लेक्स ऑफ रिगार्ड) नेत्रका अपने आपसे चलन होना जिससे दृक्क्षेत्रके परिधि भागमेंके नेकी पदार्थ उसके दृक्क्षेत्रमें के केन्द्रमे दिखाई पडते है, या घुमते पदार्थोंके पीछे नजर जाती है। मस्तिष्कका कैल्केरियन भाग सिर्फ गोचरताका ही भाग है ऐसा नहीं, बल्कि यह मस्तिष्क उच्च चाक्षुष परिवर्तन का केन्द्र है। ऐसा सबुत मिलता है कि परि तन्तुर क्षेत्र का इस कार्यमें भाग होता है, और संभव है कि इसके मस्तिष्कके तन्तु सजिटल भागके साथ अन्तर धवल भागके पिछले भागमेंसे जाकर मध्य मस्तिष्कके केन्द्रोंको मिलते हैं।

कोनीन तरंग(चक्रांग)चाक्षुष चलन का मस्तिष्मेंका तीसरा केन्द्र होता है,ऐसा मानते है। और चाक्षुक स्थैर्य के लिये सहकार और परस्परानुकूल कार्य के परावर्तित चलनसे इसका संबंध होता है; इसको इजा होनेसे पदार्थ दिखाई पडता है लेकिन उसको हाथोंसे पकड नहीं सकते (अवकाशमेंकी विभिन्न स्थान निर्णयता)

चाक्षुष चलनके दरमियानके मददगार केन्द्र

प्राकृतिक और रुग्णविषय सिद्धबातों परसे स्वीकृत गृहीत नियम (फरझीदावा) करने कि जिससे मध्यमस्तिष्कमें तीसरे मस्तिष्क मज्जारज्जुके केन्द्रके नजदीक एक यंत्रवत घटना की कल्पना की जरूरी मालूम होती है; और इस घटनाका असली कार्य नेत्रोंके चलन का कार्य परस्परानुकूल व्यापार (हम कादरी) जैसा होवे ऐसा माना गया है। इस घटनाका कार्य प्राथमिक चाक्षुष चलन केन्द्रकी अपेक्षा ज्यादह उच्च प्राकृतिक समतलपर होता है, और यह मिश्र कार्य नेत्रकी अनुबद्ध खडी और पार्श्विक चलन का पारस्परिक सहकार्य के रूप का होता है। कई संशोधकोंका मत ऐसा है कि यह कार्य मध्यमस्तिष्कमें के दरमियानके केन्द्रोंसे होता है। इन केन्द्रोका अस्तित्व शारीरशास्त्रीय नींव पर नहीं बल्कि कार्योंमेंके बिगाडसंबंधी जो रुग्णविषयक पुरावा मिलता है उसपरसे उन्होंने अनुमान किया है।

चाक्षुषीय चलन के अन्य केन्द्र

(१) नेत्रकी एककेन्द्राभिमुखता और च्यवन के केन्द्र (सेन्टर्स फार कनव्हर-जन्स ऍन्ड डायव्हरजन्स)

नेत्रकी एककेन्द्राभिमुखता के केन्द्र का स्थान तीसरे मस्तिष्क मज्जा रज्जु के केन्द्र के पर्लिया नामके केन्द्र भागमें होता है। च्यवन केन्द्रके अस्तित्व संबंधमें शंका होती है क्यों कि केन्द्राभिमुखता की किया ढीली होनेसे च्यवन आपी आपसे होता है।

(२) अनुबद्ध पार्श्वीय चलन का केन्द्र(सेन्टर आफ कॉन्ज्युगेट लॅटरल डिव्हिएशन)

रुग्णविषय पुरावाओसे कल्पना कीई है कि इस केन्द्रका स्थान छटी मस्त्तिक मज्जा रज्जुके केन्द्रकी पीछेकी ओरको होगा। नेत्रके अनुबद्ध चलन की प्रेरणाओंका नियमन करने, वाले केन्द्र अनेक होते है जैसे कि दूसरे ओरके स्वेच्छिक प्रेरणा करनेवाले ललाटीय केन्द्र, पाश्चात्य और शंखखडके केन्द्रिय भाग, चाक्षुष और श्रवणेद्रिय भाग के केन्द्र,**डीटर** का केन्द्र और मध्यमस्तिष्क के छत मेके केन्द्र आदि। इन केन्द्रो के ऊपरके केन्द्रिय यंत्र का नाश होनेसे नेत्रोंके अनुबद्ध पार्श्विक चलन का ही सिर्फ पक्षाघात होगा। मसलन नेत्रकी आन्तर सरल चालनी स्नायु एक केन्द्राभिमुखतामें कार्य करती रहेगी।

(३) नेत्रके खडी रेषामेंके चलन का केन्द्रः—अडामुक के प्रयोगसे (१८७०) कल्पना कर सकते है कि इस केन्द्रका स्थान उर्ध्व कालिक्युलसके संबंधमें होगा और इस भागके उत्तेजनसे अनुबद्ध ऊपरके चलन होता है और उनके नाशसे यह चलन नहीं पाया जाता।

इन चालक स्नायुके केन्द्रोंके ऊपरके केन्द्रो की वजहसे तीसरे मास्तिष्क रज्जुके मस्तिष्ककी चेतनामें बदल होते हैं यह कल्पना सबको मान्य नहीं है। ऐसा मान सकते है कि नेत्रके चलनके मस्तिष्क पथमें तीसरे मस्तिष्क रज्जुका केन्द्र ऐसा एक भाग होता है कि जहां मज्जातन्तुओकी व्यवस्थामें फिरसे अदल बदल होता है। मस्तिष्क के इस भाग को काटलेनेसे या उसको उत्तेजित करनेके प्रयोगोसे मालूम होता है कि इन केन्द्रोंको जो प्रेरणा पायी जाती है उसका वर्णन वह नेत्रके अनुबद्ध चलन यानी ऊपर, नीचे, पार्श्वीय और केन्द्राभिमुखता का चलन इन शब्दोंमें कर सकते हैं। मस्तिष्कके केन्द्रोको इजा होनेसे इजाका स्थान या उसके फैलाव के अनुसार-नेत्रके इन हर या सब चलन कार्यका लकवा—पक्षाघात होता है। यह पथ तीसरे मस्तिष्क मज्जारज्जुके केन्द्रके पार्श्वको जब उतरता है तब उसके घटक भीतर की ओरको अनुक्रमसे पहले ऊपरके चलनके कार्यके घटक, फिर नीचेके चलनकार्यके घटक, फिर केन्द्राभिमुखता कार्यके घटक और आखिरको पार्श्वियचलन कार्य के घटक, घुमते है। इस पथ के भिन्न भिन्न घटक भिन्न भिन्न समतल पर भीतर घुमते है इसकी वजहसे केन्द्रको स्थानिक इजा होती है तब इसका वर्णन दृष्टिकार्यका स्थानिक लोप इन शब्दोंमें कर सकते है; मस्तिष्कके धूसर भागमेके खास कार्यका नाश ऐसा नहीं करते।

(ब) सातवी (मौखिकी) मस्तिष्क मज्जारज्जु

पश्चात—ललाट स्नायु; (आक्सिपिटोफ्रन्टालिस मसल) नेत्रनिपिलिकी स्नायु और भौं

भ्रुकुटि-संकोचनीय स्नायु इनके कार्य सिलियरी स्नायुओंके कार्यसे निकट सहचर्य का जैसा होता है; और इसी वजहसे पंडित होवेने इनस्नायुओंको दृक्संधान व्यापारके मददगार स्नायु जैसे माना है। इनके निकट सहकार के संबंध का एक सबुत ऐसा होता है कि नेत्रस्नायुओंके पक्षघातमें ललाटिय स्नायु और भ्रुकुटी संकोचनी स्नायुओंका भी पक्षाघात दिखाई पडता है। भागक केन्द्र के नीचेके भागसे चेहरेके जिन स्नायुओंको मज्जानन्तु मिलते है उनका पक्षाघात होता है और मस्तिष्किय मौखिकी पक्षाघातमें चेहरेके ऊपरके भागके ये स्नायु बच जाते है।

मेंडल पंडितने इस संबंधमें ऐसी कल्पना की ई थी कि इनस्नायुओंको जानेवाले मज्जातन्तु तीसरी मज्जा रज्जुके केन्द्रसे निकल कर सातवी मज्जारज्जुके केन्द्रको जाते है और वहासे उर्ध्व मौखिकी मज्जारज्जु जैसी इन स्नायुओंको जाते है। यह कल्पना सबको मान्य नहीं है। केन्द्रके ऊपरी भागके क्षत में इन पेशियोंका संरक्षण होनेसे ऐसी कल्पना कीई है कि ऊर्ध्व मौखिकी केन्द्रको मस्तिष्क के दोनों खंड के चालक केन्द्रोंसे मज्जातन्तु मिलनेसे एक ओर के मस्तिष्कीय क्षत से वे बच जाते है।

(क) अष्टक स्नायुचालक संस्थान (आकटेव्हस मोटार सिस्टिम)

आठवी मस्तिष्क मज्जारज्जु

जीवन शास्त्रीय तोरसे विचार करे तो दृष्टिका प्राथमिक कार्य हर चलन गति का नियमन करना यह होता है। प्राणियोंके विकास का विचार करनेसे मालूम होता है कि पृष्ठवंशी जलचर (रीडवाले) प्राणियोंमे (मछली जैसे) मुकम्मल पार्श्विय इन्द्रियोंकी योजना की ई है जिसकी बजहसे उस प्राणिको अपने गतिका नियमन करना आसान होता है। **श्रवणान्तर्पुट** (लेब्रिन्थ) इसी तोरके इन्द्रियप्रणालीयोंमेका ऐसा एक इन्द्रिय है कि जो शरीर स्थिति नियामक यंत्र के काम मे आता है। सब पृष्ठवंशी प्राणियोंमे (कान्ड्रोपटेरीके—डागफिश—के सिवाय) जिनमें लसिका वाहिनी नाली (डक्टस लिम्फ्याटिकस) सिरपर खुली रहती है, यह प्रणाली बंद नालियोंकी होती है। मिक्झीनाईड प्राणियोंमे यह नाली एक; सायक्लोस्टोमा वर्ग में दो (एक सामनेकी और दूसरी पिछली); दूसरे पृष्ठवंशी प्राणियोंमें ये नालीयां तीन होती है (सामनेकी पिछली और पार्श्विक) जमीन पर रहनेवाले प्राणियोंमें श्रवणान्तर्पुट और उसके कोटर (व्हेस्टिब्युल) की मज्जातन्तु की प्रणाली की सिवा अन्य भागोंका लोप होकर यही घटक शारीर अवस्था का नियमन करनेके कार्यमें प्राथमिक तोरसे काम करता है। भूजलचर प्राणियोंमे इसके सिवा और एक घटक **शंख इन्द्रिय** (काकलिया) का विकास हुआ है जिससे हवा जैसे नये माध्यममे की लहरियोंसे संवादि क्रिया करनेकी काबिली पैदा होती है। जमीन पर के पूर्णतया विकसित प्राणियोंके वर्गमे, जैसे कि सस्तन प्राणि शारीर अवस्था का नियमन करनेके अवयवोंकी **आद्य समग्राहक प्रेरणाओंके(प्रोप्रियोसेपटिव्ह)**के लिये श्रवणान्तर्पुट का महत्व बढ गया और वह कायम रह गया। प्राथमिक पार्श्विक इन्द्रियोंसे उत्तेजक मस्तिष्किय तन्तुत्वचा (टेगपेन्टम) को जाता है, जहा वे चाक्षुष और अन्य उत्तेजकोंसे परस्पर सापेक्षतासे मिलते होते है। और इसी वजहसे मध्यमस्तिष्क के इस क्षेत्रमे अंगास्थिति कायम रखनेके परावर्तनोंका नियमन करनेका असली केन्द्रसमूह का स्थान होता है।

इसी प्रणालीपर लघुमस्तिष्क की रचना मस्तिष्कका मज्जाकंद ऐसी की गयी, और श्रवणान्तर्पुट और उसके सहकारी इन्द्रियोंके कार्य करनेकी मध्य मज्जा की संघटित घटना के कार्यमे काबिल हुआ। शेरिंगटनपंडित के अती महत्वके शोधसे (१९२०) मालूम होता है कि यह असलमे चालक इन्द्रिय होता है जिसका चलन क्रियामें कुछ भाग नहीं होता लेकिन इस चलन यंत्र का कार्य इस तरहसे काबिल होता है कि वह उत्तेजकोंसे शीघ्र, परिणामकारक और अनुरूप जोससे संवादि होता है। यानी इससे शरीर के चलन व्यवस्थापन (मोटार टाक्सिस ऑफ बाडी) की समतुलित और स्थिरता की अवस्था कायम और समान रखी जाती है। ख्यालमें रखना कि शारीर अवस्था या अंगस्थिति का गुंतागुंत का यंत्र जो मध्य मस्तिष्कमे केन्द्रित हुआ है वह असलमें परिवर्तित रूप का है, और वह लघुमस्तिष्क और बृहन्मस्तिष्क के भागों को निकाल डालनेसेही कार्यक्षम रहता है; इन परिवर्तनोंके स्वेच्छिक कार्यमे लघुमस्तिष्कको जरूरी होती है, और बृहन्-मस्तिष्क का बाहरी भाग इस कार्यमें लघु मस्तिष्क के माध्यममेंसे असर करता है।

चित्र नं. २८५
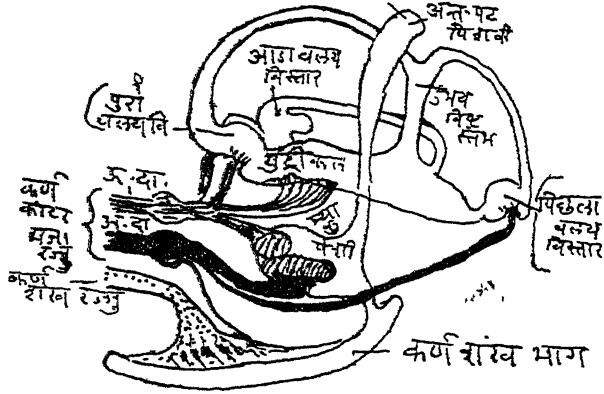
पत्रदार श्रवणान्तर्पुट की मज्जारज्जु प्रणाली (बरलेट)

प्राणिवर्गके नीचेके श्रेणिके प्राणियोंमे (खरगोष् जैसे) अंगस्थिति या शारीर अवस्था का नियमन करनेमें नेत्र कुछ भाग लेते नहीं, लेते हो तो बहुत ही कमदेर्जेका होगा। लेकिन द्विनेत्रीय दृष्टिके विकाससे नेत्र और श्रवणान्तर्पुट मे महत्वका सहकार्य होता है। इस परसे मालूम होता है कि श्रवणान्तर्पुट की आद्यसमग्राहकताकी प्रणालीपर हुकुमत होती है, नेत्रोंकी श्रवणान्तर्पुट पर हुकुमत होती है, लेकिन लघुमस्तिष्क अवकलन या वर्गीकरण करनेवाला और अनुकलन या पृथकरण करनेवाला यंत्र होता है तोभी वह बृहन्मस्तिष्क के हुकुमत में रहता है।

प्राथमिक स्नायुचालक अष्टक संस्थान

इस यंत्र की वजहसे (आठवी) मस्तिष्क मज्जा रज्जुके मस्तिष्किय केन्द्रोका और तीसरे मस्तिष्क मज्जारज्जु संस्थानके केन्द्रोका पारस्परिक संबंध महत्वका होता है।

अष्टम मज्जारज्जुके दो भाग होते हैः कोटरका भाग (व्हेस्टिब्यूलर) जो श्रवणान्त-पुंट का काम करता है और दूसरा शंखका भाग (काकलियर)। मनुष्य में

इसके संबंध गुंतागुंत के होते हैं। इसका संशोधन **बरलेट पंडितने** किया है। उन्होंका इसका वर्णन इस तरहका है:—कोटर मज्जारज्जु भाग **स्कारपाके** मज्जाकंदसे निकलता है, इसके दो भाग होते है एक नजदीक का इसका संबंध सामनेके और पार्श्विक अर्धवृत्त नालीयोंसे (सेमिसरक्युलर कनाल) तुम्बिका आकारकी मूलजीवनाधार अन्तः त्वचा की थैली केन्द्रसे (म्याकुला आफ यूट्रिकल) और कोषाकार भागके केन्द्रके पिछले भागसे (म्याकुला आफ साक्युल) संबंध होता है। दूसरे दूरीका भाग, जिसका कोषाकार भागके केन्द्रके असली भागसे, पिछली अर्धवृत्त नालीके वलय विस्तार से और **कार्टाय इन्द्रियसे** जिससे इसीको एक मज्जातन्तु मिलता है से संबंध होता है।

श्रवणान्तर्पुट और शंख इन दोनोंके विकास में साम्यता होनेसे दोनोंके मज्जारज्जु-ओंका शारीर अवस्थाकी कार्यशक्ति के तन्तु और श्रवणकार्यके तन्तु ऐसा सूक्ष्म अवकलन नहीं होता। एक भागके तन्तुओंसे दूसरे भाग के तन्तु ओंका कार्य होता है। **विंकर** के मतानुसार शंख भागमे शारीर अवस्थाका कुछ कार्य और इसके विपरीत श्रवणान्तर्पुटमें श्रवण कार्य होता होगा।

कोटर भागके तन्तुओंके कुछ तन्तु ऊपरकी ओर को लघुमस्तिष्क को जाते हैं; कोटर भाग के नीचे जानेवाले तन्तुओंके संबंध:—(१) **मोनोकाव्ह** के केन्द्रसे, (२) **डीटर** को केन्द्रसे जिसमें लघुमस्तिष्क के और मध्य मस्तिष्क के तन्तु आते हैं;(३) चौथे मस्तिक जवनिका क तलमें के त्रिकोणाकार केन्द्रसे होता है और जिसका लघु मस्तिष्कसे संबंध जुडा होता है।

शंख भाग के तन्तु भी ऊपर जानेवाला और नीचे जानेवाला ऐसे दो भाग होते है : नीचके भागके तन्तु **पार्श्विक फिलेट** को जाते हैं। इनका संबंध गंडग्रथी केन्द्र (आलिव्हरी न्युकलीयस) ट्रापिझायड केन्द्र और डीटर केन्द्र इनसे होता हैं।

दुय्यम स्नायुचालक अष्टम संस्थान

विंकर ने इस संस्थान के तीन भाग किये हैं:—पिछला, बीचका और अगला; पिछले संस्थान (डारसल सिस्टिम) में शंख के मज्जातन्तु ज्यादह प्रमाण में होते हैं; श्रवणान्तर्पुट भाग के तन्तु अल्प प्रमाण में होते हैं। ये तन्तु डीटर के केन्द्र के पिछले और सामनेके भाग में से शुरू होते हैं। वहासे अन्योन्य छेदन होकर उनका पिछले लंबे मस्तिष्क बंडल,तीसरे चौथे और छटी मस्तिष्क मज्जारज्जुके केन्द्र और अन्य मस्तिष्क मज्जारज्जु आदि भागोंसे संबंध होता है, मध्य जेनिक्युलेट पिंड, अधो कालिक्युलस और बृहन् मस्तिष्कसे संबंध होता है। नीचे जानेवाले तन्तुओंसे पृष्ठ मज्जारज्जुसे होता है। तीसरा संबंध लघुमस्ति-ष्कसे होता है।

मध्यमस्तिष्कमेंके शारीर अवस्थाके केन्द्र

अष्टक संस्थानसे आयी हुई आद्य-समग्राहक प्रेरणाओंको परस्परानुकूल करने के कार्य का और साधारण आद्य-समग्राहक यंत्र से आनेवाली प्रेरणाओंका नियमन करनेका असली केन्द्र **रेड न्यूकलियस** होता है। इसीमें स्नायुओंका तनाव नैसर्गिक रखनेका कार्य और शारीर अवस्थाओंके परावर्तना ओंका नियमन होता है।

(३) संवेदना संस्थान

५ वी (त्रिमुखी-ट्रायजेमिनल) मस्तिष्क मज्जा रज्जु

त्रिमुखी मस्तिष्क मज्जारज्जु के केन्द्र और उसके दुय्यम संबंध ज्यादह गुंतागुत के दिखाई देते है। विकासकी अवस्थामें मस्तिष्क भागमें के,जहांसे शरीरके सब भागोंपर हुकूमत होती है, शारीरिक और आंत्रिक (सोम्याटिक व्हिसरल) संबंध के संवेदना घटक यंत्रो का

ज्यादहतर विकास होता है। शारीरिक संस्थान का जो मस्तिष्क और चेहरेकी केन्द्रगामी प्रेरणाओंके काममें आता है, खंडीय स्वरूप का लोप हो कर वे सब एक मिश्र केन्द्रमें (त्रिमुखी केन्द्रमें) एकत्रित होते हैं। इससे ध्यान में आजायेगा कि मस्तिष्कमेंसे निकलनेवाले चालक मज्जाओंसे मिलते होनेवाले पिछले संवेदन मज्जारज्जु मूलोंका एकत्रीकरण (फ्युजन) और योग (समेशन) होता है। इस विस्तीर्ण भागके संवेदन मज्जारज्जु एकत्रित होनेका नतीजा यह होता है कि अन्य मस्तिष्किय रज्जुकी अपेक्षा इसका केन्द्रिय विस्तार बडा होता है यानी जो मध्य मज्जा खंड (मेसएनकेफलान) के ऊपरके भागसे ग्रैवेयक विभाग के दूसरे भागतक फैला हुवा होता है।

पाचवें मस्तिष्क मज्जा रज्जुके तीन मूल होते हैं: (१) एक बारिक केन्द्रत्यागी स्नायु-चालक मूल जो चर्वण के स्नायुओंका जाता है। दूसरा बडा केन्द्रगामी संवेदन मूल जो गैसेरियन मज्जाकंद से निकलता है और तीसरा मध्य मज्जा खंडमेंका मूल। इसके धर्म अभिनक पूर्ण तथा निश्चित नही हुए हैं (२) **संवेदन मूलः**—इसके असली संवेदन केन्द्र के **विंकर पंडित** के शारीर शास्त्र दृष्टिसे तीन भाग माने हैं जो उनके कार्य और संबंध के अनुसार पारिस्परिक भिन्न होते हैं। **पहला भाग न्युकलियस सेनसिविलस** अ नामका है: इस केन्द्र का असली कार्य आद्यसमग्राहक प्रेरणाओंको ग्रहण करना यह होता है। दूसरा भाग **न्युकलियस सेन-सिबिलिस ब** इससे उस खास भाग की श्लेश्मल त्वचाके दुःख और तापकी (एनेटेरो मेपटिव्ह) संवेदना का ग्रहण होता है। तीसरा भाग **न्युकलियस जिलाटिनोसस** इससे बाह्यत्वचाकी संवेदना का ग्रहण होता है।

त्रिमुखी मस्तिष्क मज्जारज्जु साधारणतया संवेदना की मज्जारज्जु होती है और उसमे जिस क्षेत्रको वह जाती है उसके भिन्न भिन्न विकृत आद्य लक्षणोंकी (प्रोटोपैथिक) और विकृत सूक्ष्म लक्षणोंकी (एपिक्रिटिक) संवेदना के वाहक मज्जातन्तु होते हैं। और यह भी संभाव्य है कि उससे नेत्रके बाह्य स्नायुओंको आद्यसमग्राहक प्रेरणाके (प्रोप्रियोसेपटिव्ह) मज्जातन्तु मिलते है। इन मज्जारज्जुका ग्रैवेयक आनुकंपिक मज्जातन्तुओंसे संबंध होता है।

पोषणनियामक मज्जातन्तुः—मेजेन्डि पन्डितने (१८२४) पहले ही बतलाया था कि त्रिमुखी—पंचम—मज्जारज्जुको काटनेसे नेत्रमें अपकर्षक—गुणऱ्हासज फर्क पाये जाते हैं। पोषण संबंधीकी प्रेरणाओंसे घटकोंकी पोषणक्रियाओंका नियमन होता है; और इन प्रेरणाओंके अभावसे मज्जारज्जु रोगसंबंधी के गुणऱ्हासज फर्क दिखाई पडते हैं। यह मालूम हुआ है कि मज्जारज्जु ओंके पिछले—पश्चिमी—मूलोंका किसी विकृतिसे नाश हुआ हो तो इस क्षेत्रमें पोषणके फर्क दिखाई देते है।

(४) अनैच्छिक (स्वयंचालित) मज्जापथ संस्थान

आत्र, रक्तवाहिनिया और अन्य इन्द्रिये जिनका स्वेच्छिक नियमन नहीं होना उनको स्वयंचालित मज्जातन्तु संस्थानसे मज्जातन्तु मिलते हैं; ध्यानमें रखियें कि यह मज्जातन्तु संस्थान कुछ स्वतंत्र मज्जातन्तु संस्थान नहीं है। इसमें और स्वेच्छिक मज्जातन्तु संस्थानमें असली फर्क यह होता है कि दूसरेमें की मज्जापेशिया मध्य मज्जारज्जु मंडलमें रहती है,

लेकिन पहले की पेशिया बाहर जा कर परिधि की मज्जाकंद ग्रंथी बनती हैं; यानी स्वयं-चालित मज्जातन्तु संस्थान मस्तिष्क-पृष्ठवंश का बाह्य प्रवाह होता है। यह बाह्य प्रवाह पृष्ठ-वंशीय रज्जुके कटिदेश के ऊपरी भागमें और वक्षस्थल मे ज्यादह दिखाई पडता है; और यही **असली आनुकंपिक मज्जामंडल संस्थान** (ट्रू सिंपथेटिक सिस्टिम) होता है। इसके सिवा और दो दुय्यम बाह्य प्रवाह मस्तक और त्रिक भागमें होते हैं जिनको **उप आनुकंपिक (अनैच्छिक) मज्जामंडल संस्थान** (पारासिंपथेटिक सिस्टिम) कहते है। असली आनुकंपिक मज्जामंडल संस्थानमे **धवलतन्तु** मेदस आवरणयुक्त (व्हाईट रेमाय काम्युनिकाटिस) केन्द्रत्यागी मज्जातन्तु पथ होते है। जिनसे मध्य-मस्तिष्क के एक भागका दूसरे भागसे संबंध जुडा जाता है। परिधिके मज्जाकन्दसे अन्य मज्जागोलक प्ररोहाओसे (न्युरान्स) जालदार संयोग बनकर पथ आगे बढता है; इनमेंके कुछ मज्जातन्तु आगे परिधिकी ओरको जाते है और कुछ पीछे लौटकर पृष्ठवंशमेके आवरण की रक्तवाहिनियोंके धूसर तन्तु (ग्रे रेमायकाम्युनिकाटिस)होते है। इस मज्जाकन्द का कार्य स्थानिक नियामक कार्य करनेवाले मज्जाकेन्द्र जैसा नहीं होता; वे सिर्फ बटाव करनेवाले केन्द्र होते हैं। आनुकंपिक संस्थानमें ये पार्श्वकी आनुकंपिक शृंखलामें स्थित होंगे या परिधिकी ओर को बह जा कर उपमज्जाकंद जैसे होंगे या वटकोंमे प्रत्यक्ष जा कर अन्तिम मज्जाकंद जैसे कार्य करते हैं। इस संस्थामेके हर मज्जातन्तु एक दफा ही परिवर्तक होता है, और हर मज्जातन्तु के दो भिन्न भाग दिखाई देते हैं। मज्जाकन्द के इस ओरका मेदस आवरणदार भाग और दूसरा मज्जाकन्द के उस पारका मेदस आवरणरहित तन्तुभाग।

मस्तकमेकी स्वयंचालित संस्थानमे ये तन्तु ३, ७, ९, १० और ११ वी मस्तिष्क मज्जारज्जु के साथ मिलते हैं। इसमें से दो का नेत्ररोग विज्ञान के दृष्टिसे महत्व है; तीसरे मस्तिष्क मज्जारज्जुके साथके तन्तुओके केन्द्र चाक्षुप मज्जाकन्द मे होते है और वे नेत्रको जाते हैं; सातवी मस्तिष्क मज्जारज्जुके साथ के तन्तु सुषुम्ना शीर्षक की **रिसबर्ग** की मज्जा रज्जु होती है जिसके केन्द्र **जतुक तालुकंद या ग्रंथी** (स्फिनो पैलेटाईन गैंगलियन) होते हैं और जहासे नेत्रगुहाको तन्तु जाते है।

(अ) आनुकंपिक मज्जामय संस्थान

मस्तिष्किय संबंध

आनुकंपिक संस्थानके मज्जातन्तुओंका मेन्दुमेके केन्द्रोसंबंधी की जानकारी बहुत कम है। लेकिन संभव है कि मेन्दु, अधो पुष्पाधार (हायपोथैलमस), सुषुम्नाकंद (मेडथुला आबलांगाटा) और सुषुम्ना (स्पायनल कार्ड) इनमें के क्षेत्रोसे आनुकंपिक कार्योंका संबंध होता होगा।

(१) **मेन्दुमेंका केन्द्रः**—मस्तिष्कावरण के खास भागों को उत्तेजित करनेसे, ग्रैवेयक आनुकपिक मज्जासंस्थानको उत्तेजन जैसे परिणाम पाये जाते हैं:—कनीनिका प्रसरण, नेत्रस्पन्दनका प्रत्यावर्तन, नेत्रच्छदान्तराल का विस्तार और नेत्रगोलक सामनेकी ओर को जाना। **पारसन पंडित** के (१९०१–४) कुत्ता, बिलाडी, बानरपर के प्रयोगोंसे मालूम

होता है कि ललाटीय खंड, और कैल्केरियन सिनामें के चाक्षुष स्नायुओंके चलन क्षेत्रोंको उत्तेजित करनेसे ये परिणाम तुरन्त दिखाई पडते हैं।

ट्रेनेडलनबर्ग और **बुम्के** पंडितोंने ऐसा सिद्धान्त निकाला है कि नेत्र के आनुकंपिक मज्जातन्तुओंपर मस्तिष्क के नियमनसबंधी कुछ पुरावा नहीं मिलता।

जबतक आनुकंपिक मज्जासंस्थान अखंड सा होता है तबतक ही आनुकंपिक परिणाम दिखाई पडते हैं, लेकिन उसमे खंड होनेसे कनीनिका प्रसरण के सिवा अन्य परिणाम नहीं दिखाई देते, कनीनिका प्रसरण कम होता है लेकिन कायम रहता है। यह प्रतिक्रिया दोनों नेत्रोंमें पायी जाती है लेकिन महासंयोजक में काट देनेसे मस्तिष्कीय उत्तेजनपर कुछ असर न होनेसे संभव है कि दोनो ओरका परिणाम नीचेके केन्द्रोंसे होता होगा।

मध्यमेन्दुमेके केन्द्रः—संभव है कि अधो पुष्पाधार के ऊपरकी ओरको मस्तिष्क-स्तंभ के पिछले और भीतरी भाग के नजदीक यह केन्द्र होता होगा। **बार्ड** के मतानुसार इसका स्थान वायुमन्दिर (इनफन्डीब्यूलम) के बाजुको होता है। इस स्थानको उत्तेजित करनेसे कनीनिका प्रसरण, नेत्रच्छदोंका अलग होना, स्पन्दन पत्रका प्रत्यावर्तन ये परिणाम दिखाई देते हैं, यह परिणाम दूसरी तीसरी और पांचवी मस्तिष्क रज्जुओं को काटनेसे भी कायम रहता है लेकिन ग्रैवेयक आनुकंपिक मज्जामंडल को काटनेसे कम होना है। मेन्दुको पूर्णतया निकाल लेनेसे परिणाम कायम रहता है।

सुषुम्नाकंदमेंके केन्द्रः—इस भागमे **बज**(१८५१)पंडित ने द्वादशी रज्जु के जीवन-बीज के पास एक केन्द्र का उर्ध्व दन्तुर सुषुम्ना केन्द्र(सुपीरियर **सिलियो–स्पायनलसेन्टर**)ऐसा वर्णन किया जिसका कार्य कनीनिका का नियमन करना यह होता है। लेकिन रक्तवाहिनियों का चालक केन्द्र यहा होता है ऐसा मानते हैं।

सुषुम्ना केन्द्रः—इस सुषुम्ना के ऊपरी भागमें नेत्रका आनुकंपिक मज्जा संस्थान से नियमन करनेवाला अधो दन्तुर सुषुम्ना केन्द्र (इनफेरियर सिलीयो स्पोयनल सेन्टर)होता है। यदि पृष्ठवंशरज्जुको ग्रैवेयक कशेरुक और ४ थी वाक्षसी कशेरुक इन दोनो के दरमियान काट दिया जाय और इस अलग किये हुए भाग को उत्तेजित किया जाय तो कनीनिका का प्रसरण होता है ऐसा **बज पंडितने** शोध किया। **स्किफ** के मतानुसार यह केन्द्र स्वयंचालक और स्वतंत्र सा है लेकिन निसर्गतया ऊपरसे आनेवाले प्रेरणोंसे इसका नियमन होता है।

पथः—इन केन्द्रोंको मेन्दुसे जोडनेवाले पथोंका अभितक पुरा शोध नहीं लगा है। मस्तिष्कसे अधो **पुष्पाधार भाग**को (सबथालामिक) जानेवाले पथ अन्योन्य छेदक नहीं होते क्योकी महा संयोजनमें काट देनेसे मस्तिष्कीय उत्तेजक की संवादि क्रिया दिखाई देती है। इस स्थानके पार जब वे मस्तिष्किय डंडेके (सेरिब्रल पिडंकल्स) पार जाते हैं और जब वे सेतुके ऊपर होते है तब उनमें कुछ अन्योन्य छेदन होता है, यानी अधोपुष्पाधार भाग के केन्द्रोंसे दोनो दन्तुर सुषुम्ना (सिलियो स्पायनल) केन्द्रोंको मज्जातन्तु जाते हैं।

आनुकंपिक मज्जारज्जुओंका प्रान्तीय वितरण (पेरिफिरल डिस्ट्रिब्यूशन)

मज्जाकंदके पूर्व आनुकंपिक मज्जातन्तु सुषुम्ना रज्जुके दूसर भागके दरमियानी पार्श्विक

चित्र न. २८६
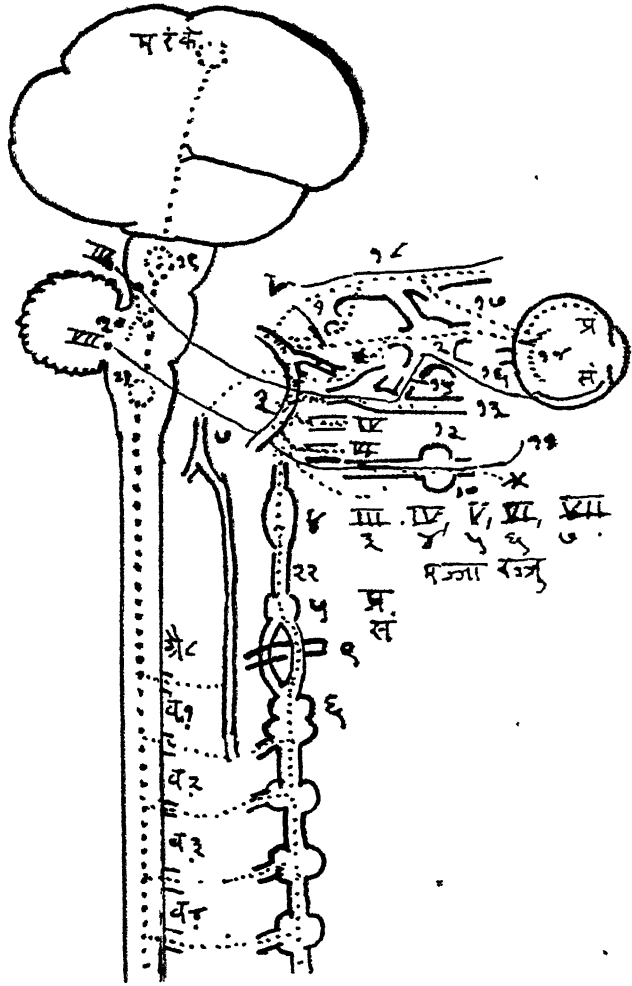
नेत्र की आनुकंपिक तथा परा आनुकंपिक मज्जामंडल प्रणाली। आनुकंपिक मज्जा तन्तु बिन्द्वाकार और परा आनुकंपिक मज्जातन्तु काली रेषा है **म-रं-के** मस्तिष्कके बाह्य रंजन क्षेत्रमेंके केन्द्र : **प्र॰ स** कनीनिकाके प्रसरण-संकोचक कारक स्नायुके मज्जातन्तु : १ गैसेरियन मज्जाकंद : २ चाक्षुषमज्जाकंद : ३ मधुकोषसम नीलाविवर परका जाला (कैव्हारनस प्लेक्झस) : ४, ५, ६ ऊर्ध्व, मध्य अधो ग्रैवेयक मज्जा-कंद : ७ मस्तिष्क तल की रोहिणी : ८ ग्रैवेयक के ऊपरी अनुकापेत : **व** १–४ वक्षीय मज्जारज्जु : ९ अधो जत्रु की रोहिणी (सवक्लेव्हियन) : १०-१२ मिकलका मज्जाकद : ११ अश्रुपिंडको आनुकंपिक रज्जु : १३ तीसरी रज्जु की चाक्षुष चालनी स्नायुकी शाखा : १४ नेत्रगोलक की रक्तवाहिनियोंके चालक तन्तु : १५ चाक्षुष मज्जाकदका चालक मूल : १६ छोटी तारकातीत पिंडीय रज्जु : १७ लम्बी तारकातीत पिंडीय रज्जु : १८ त्रिमुखी रज्जु की चाक्षुष शाखा : १९ मध्यमस्तिष्क केन्द्रः २०सेतु(पान्स)अन्योन्य छेदक तन्तु : २१ सुषुम्नाकंद : २२ ग्रैवेयक रज्जु नेत्रगुहा, अश्रुपिंड और मूलर्स स्नायुको मज्जातन्तु,

पथमे दन्तुर सुषुम्ना केन्द्रसे(सिलियो स्पायनल सेन्टर)शुरू होकर १,२,३री वाक्षसी मज्जारज्जुके अगले मूलों के साथ बाहर आते हैं। इन तन्तुओंकी प्रगति धवल तन्तुओंमेसे ग्रैवेयक आनुकंपिक मज्जामंडल की शृंखला मेसे ऊपर की ओरको होती है।और फिर वे अधो और मध्य ग्रैवेयक मज्जाकंदोंमेसे जाकर ऊर्ध्व ग्रैवेयक मज्जाकंदमे खतम होते हैं। वहासे वे मज्जाकंदके पारसे मेदस आवरण रहित होकर अन्तर्मात्रिका रोहिणी की ओर जाकर उसके साथ अन्तर्मात्रिका नाली मे से मस्तिष्कमें प्रवेश करते हैं। यहा उनका सूक्ष्म जालासा बनता है जो रोहिणीकी दीवालोंको चिपटा रहता है और जिनके अन्तर्मात्रिका रोहिणीका जाला और मधुकोशसमनीलाविवर परका जाला ऐसे दो भाग होते हैं। नेत्रको और नेत्रगुहाको जानेवाले सब आनुकंपिक मज्जातन्तु दूसरे यानी मधुकोपसमनीला विवर के जालासे पाये जाते हैं। रक्तवाहिनियों के जालासे निकलने वाले तन्तुओंका वितरणः—

(अ) मधुकोपसमनीला विवरके जालाकी शाखाएंः—(१) ३ री मस्तिष्क मज्जारज्जु (२) ४ थी मज्जारज्जु; (३) **गैसेरियन मज्जाकन्द और ५** वी मज्जारज्जुका चाक्षुप्रभाग की शाखा; इस शाखाके तन्तु चाक्षुप मज्जारज्जुकी नासा तारकातीत पिंडीय शाखा (नेझोसिलियरी) के साथ जाकर नेत्रगोलक को लंबी तारकातीत पिंडीय मज्जारज्जुसे मिलती है। इन तन्तुओंका का **कार्य कनीनिका का प्रसरण करना** यह होता है। (४) **चाक्षुष मज्जाकन्द की शाखा** यह उस कंद का आनुकंपिक मूल होता है; ये मज्जातन्तु छोटी तारकातीत पिंडीय मज्जातन्तु शाखा द्वारे नेत्र को आते हैं। ये **रक्तवाहिनियोंका संकोचन या प्रसरण करनेवाले मज्जातन्तु (व्हेसो मोटर) होते है।** (५) रक्तवाहिनियोको जानेवाली शाखा चाक्षुप रोहिणी और उसकी शाखाओंके साथ जाती है।

(ब) मात्रिका रोहिणी पारके आनुकंपिक जाला की शाखाएँ

(१) ६ टी मस्तिष्क मज्जा रज्जु की शाखा जो मधुकोपसमनीलाविवरमें शुरू होती है। (२) रक्तवाहिनियोको जानेवाली शाखा एँ; ये असलमे उनका संकोचन या प्रसरण करनेवाले तन्तु (व्हेसो मोटर) होते हैं; इनमेंकी एक शाखा अश्रुपिंड को जाती है: (३) जतुक तालु मज्जाकंद की शाखा और **मूलरकी** स्नायु की शाखा।

ख्यालमें रखना कि नेत्र को जानेवाले आनुकंपिक मज्जातन्तु नेत्रगोलकमे तारकातीत पिंडीय मज्जा रज्जु के द्वारा जाते हैं।

आनुकंपिक मज्जा तन्तुओंका प्राकृतिक तोरसे विवेचन

नेत्र और नेत्रगुहा को जानेवाले आनुकंपिक मज्जा रज्जु तन्तुओंके प्रकारका वर्णनः— (१) नेत्रगोलक और नेत्रगुहा की रक्तवाहिनियोंके स्नायुके चालक (व्हेसो मोटार) तन्तु। (२) कनीनिका प्रसरण कारक तन्तु : (३) कृष्णमंडल की रंगीन पेशिओंको (क्रोम्याटोफोर) जानेवाले तन्तु : (४) मूलर के निरंकित स्नायुके मज्जा तन्तु : (५) अश्रुपिंड की रसवाही (सेक्रिटरी) मज्जा तन्तु।

ब आनुकंपिक उप मज्जा मंडल (पारा—सिपेथेटिक सिस्टिम)

नेत्ररोग विज्ञान दृष्टिसे विचार करे तो आनुकंपिक उपमज्जा मंडल का ३ री और ७ वी मास्तिष्क मज्जारज्जु ओंसे संबंध आता है।

मस्तिष्क मज्जा रज्जु ३

तीसरे मस्तिष्क मज्जा रज्जुमेके आनुकपिक उप मज्जा मंडल के कनीनिका संकोचक तन्तु तारका को जाते है और तारकातीत पिडीय स्नायुको भी जाते है; और वे प्रसरण करनेवाले आनुकंपिक मज्जा तन्तु ओंके खिलाफ कार्य करते है। इनके उत्पत्ती संबंधमे अभीतक पूरा निर्णय नहीं हुआ है। लेकिन कहा जाता है कि ये **एडिनजर वेस्टफाल-केन्द्रसे**, जो तीसरे रज्जुके केन्द्रके बाजुमें एक पेशीसमूह होता है, पैदा होते है। मज्जा-कन्दके पूर्व के तन्तु मध्य मस्तिष्क के केन्द्रसे चाक्षुप मज्जाकन्द को तीसरे मस्तिष्क मज्जा रज्जु मे से जाते है, यहा उनका परिवर्तन तोरका और तारकातीत पिंड को छोटी तारका-तीत पिंडीय तन्तु ओंसे होता है। ध्यानमे रखना की मज्जाकन्द के पार के तन्तुओं पर मेदस आवरण होता है और इसी वजहसे वे आनुकंपिक मज्जामंडल के तन्तुओंसे भिन्न होते है। आनुकंपिक मज्जामडल संस्थान के मज्जाकन्द जैसे यहासे मज्जाकन्दके पारके तन्तु पूर्व के तन्तु की अपेक्षा ज्यादह होते है।

मस्तिष्क मज्जा रज्जु ७

नेत्रगुहा का विचार करे तो सातवी मज्जारज्जुमेका स्वयंचालित भाग रिसवर्ग की मज्जा रज्जु में जिसकी शुरूआत सुषुम्ना कंद मे ९ वी जिव्हाकंठ मस्तिष्क मज्जा रज्जु (ग्लासो फ्रारिनजियल) के केन्द्र के पास होती होगी शुरू होकर जतुकतालु मज्जाकंद को जाता है; वहा उनका परिवर्तन होता है और इनमेके कुछ तन्तु नेत्रगुहामें जाकर अश्रु-पिंड को जाते हैं। अश्रुपिंड के श्रावके कार्य मे उनका कितना या किस तरहका हिस्सा है इसका अभीतक पूरा निर्णय नहीं हुआ है।

खंड ८

दृष्टिकार्य का प्रकृतिविज्ञानः—चाक्षुषसंज्ञा

उत्तेजक, उत्तेजकोंके प्राकृतिक परिणाम, और उससे पैदा होनेवाली संवादि क्रिया,

चाक्षुषसंज्ञाकी अनियमित बातें

दृष्टिकार्यसंबंधी की कल्पनाजें

खंड ८ वा

अध्याय १८

उत्तेजक (स्टिम्युलस)

दृष्टिरज्जुमे बहनेवाली प्रेरणा अन्य संज्ञावाहक मज्जातन्तुमसे बहनेवाली प्रेरणाके समान होती है। भिन्न भिन्न संज्ञाओंके भेदका ज्ञान मस्तिष्कके मज्जामंडलके पृथक्करण कार्यसे ज्ञानेन्द्रिय को होता होगा यह स्पष्ट है। सब संज्ञावाहक मज्जातन्तुओंमे बहनेवाली संज्ञा, फिर वह किसीभी तरहसे पैदा होती हो, मस्तिष्कके मज्जामंडलके पृथक्करण व्यूह को उत्तेजित करती है। लेकिन उसका स्वरूप उत्तेजक के स्वरूपानुसार नहीं होता। इससे यह स्पष्ट मालूम होगा कि—जैसे कि कारडा-टिम्पानी मज्जारज्जु किसीभी तरहके—यांत्रिक, रासायनिक, या विद्युत उत्तेजकसे उत्तेजित की जाय तो उसकी संज्ञाका परिणाम रुचिमय होता है। उसी तरह दृष्टिपटल या दृष्टिरज्जु को उत्तेजित करनेमे परिणामी संज्ञा प्रकाशमय होती है। इसके विपरीत प्रकाशविसर्जन शक्ति दृष्टिपटलपर गिरनेसे प्रकाशसंज्ञा पैदा होती है वही उत्तेजक यदि त्वचा पर गिरे तो उष्णताकी संज्ञा उत्पन्न होती है; और इससे मज्जातन्तुके विशिष्ट विसर्जन शक्तिके संबंधमें जे **मूलर** ने ऐसा सिद्धात निकाला है कि खास **इंद्रिय के मज्जातन्तु किसीभी प्रकारसे उत्तेजित हो तो उस इन्द्रिय की खास संज्ञा ही पैदा होती है।** जिस उत्तेजकमे खास संज्ञा व्यूहका उत्तेजन दिखाई देता है उस उत्तेजकको अनुरूप (योग्य) उत्तेजक (ॲडिक्वेट स्टिम्युलस) अन्य प्रकारके उत्तेजकोको अयोग्य उत्तेजक (इनॲडिक्वेट स्टिम्युलस) समझना चाहिये।

अयोग्य (अननुरूप) उत्तेजक

यांत्रिक उत्तेजक (मेक्यानिकल स्टिम्युलस):—नेत्रगोलकपर यकायक ठूंसा लानेसे नेत्रोंके सामने चिनगारिया दिखाई पडती है। कनपटी पर ठूंसा लगनेसे भी यही चिनगारियोका अनुभव आता है। नेत्रगोलक को धीरे दबाया जाय तो भी प्रकाश परिणाम मालूम होता है। इस दृश्य को **दबाव(प्रेशर)फासफेन** कहते हैं। ऐसा समझो कि दाहिने नेत्रको कनपटीकी ऊपरकी ओरसे उगलीसे धीरेसे दबावे तो नेत्रकी नासिकाकी ओरको नीचेकी ओर प्रकाशवलय दिखाई देगा और नीचेकी ओरसे दबाने तो नासिककी ऊपरकी ओरको प्रकाशवलय दिखाई देगा यह दृष्टिरज्जु की यांत्रिक खींचसे संभव है। यह **दबाव फासफेन** होता है। अंधेरेमें **नेत्र** यकायक घुमानेसे यही परिणाम होता है और दृक्संधान व्यापारमे भी यही प्रकाश परिणाम **दृक्संधान फासफेन जो** दृष्टिपटल यात्रिक तोरसे खींचा जानेसे संभव है दिखाई देता है। लेकिन ख्यालमे रखना चाहिये कि ये सब प्राकृतिक घटनाये आत्मीय रूपकी हैं। और इनसे बाह्य सृष्टीमेके पदार्थ नही दिखाई देतें।

विद्युत उत्तेजक (इलेक्ट्रीकल स्टिम्युलस) मस्तिष्कमें घनविद्युतका (गॅल्व्हानिक) प्रवाह डालनेसे भी प्रकाशपरिणाम दिखाई देता है। इसको **विद्युत फासफेन** कहते हैं।

जब विद्युत प्रवाह दगाक्ष रंगार्का और बाहर जाता है धनचिन्हांकित विद्युत प्रवाहसे तब कुछ कुछ पीले-लाल (यलो–रेड) रंगकी संज्ञा मालूम होती है। जब यह उलटी दिशासे बहता है तब कुछकुछ नीले–सफेद रंग की संज्ञा होती है।

ख्यालमें राखिये कि प्रकाश परिणाम दिखाई देनेके लिये कमसे कम विद्युत प्रवाहका (ग्यालव्हानिक या फॅराडिक) प्रमाण हमेशा नित्य स्वरूपका होता है।

शरीरके घटकोंके विद्युत सज्ञाग्राहक संबंधमें बहुत संशोधन हुआ है जिसमें **लापेक्यु** ने ज्यादह कार्य किया है। विद्युत उत्तेजकमें दो बातोंकी आवश्यकता होती हैः–(१) विद्युत प्रवाहका बल, (२) विद्युत प्रवाहकी कालमर्यादा। कमसे कम बलके प्रवाहकी संज्ञा पैदा होनेके लिये ज्यादासे ज्यादा काल मर्यादाकी आवश्यकता होती है। अनिश्चित कालतक रहनेवाला **और कमसे** कम बलके कार्यक्षम विद्युत प्रवाहके प्रमाणको **व्हीओबेस** कहते हैं। व्हीओबेसको विद्युनकार्यका एकं (इकाई–पहिला प्रमाण) कह सकते हैं। लेकिन यह प्रमाण ठीक ठैराना मुष्किल है। इसलिये व्हीओबेसके दूने बलका प्रवाह कार्यक्षम होनेके लिये जो कमसे कम **काल मर्यादाका प्रमाण** होता है उसी प्रमाण को एकं समझके उसे **क्रोनाक्सि** ऐसा **लापेक्यु** पंडितने नाम दिया है। ख्यालमें रखना कि क्रोनाक्सि का प्रमाण जितना कम होगा उतनी ज्यादा उत्तेजितता घटकोंमें होगी। व्हीओबेसके दुगने बलके विद्युत प्रवाहको दृष्टिपटलमें विद्युत फासफेन पैदा करनेके लिये जो समय लगता है वही उसका **क्रोनाक्सि** प्रमाण होता है। मेंढक की पिन्डिडिकी (ग्यास्ट्राकनेमियस) महती स्नायुका क्रोनाक्सि ०·००३ सेकन्दया ०·०३ **सिगमा** इतना होती है।

लासारेफ, व्हेरिप बूरग्विनान, डेजीन कुरलन्ड और **पीरान** आदि लोगोंके संशोधनसे स्पष्ट हुआ है कि दृष्टिपटलमें दो अलग अलग भागके अलग अलग क्रोनाक्सि होते हैं। एक क्रोनाक्सिकी कालमर्यादा १ से १·९ **सिग्मा** होती है (१ सिग्मा= $\frac{1}{1000}$ सेकंद अर्थात ·०००१ से. ००१९ सेकंद)। और दूसरेकी कालमर्यादा २·१ से २·८ **सिग्मा** होती है। पहला क्रोनाक्सि दृष्टिपटलके परिधि भागमें दिखाई देता है और वह राड घटकोंका होगा और दूसरा दृष्टि स्थानमें पाया जाता है जो कोन का **क्रोनाक्सि** होता है। पहले क्रोनाक्सिका प्रमाण कम होनेसे राड घटक कोन घटकोंकी अपेक्षा जलदी और ज्यादा क्षोभनशील होते हैं ऐसा मानना चाहिये। दृष्टिपटलकी मज्जाकंद पेशी (गॅंग्लिअन सेल्स) उत्तेजित होनेसे भी **दूरीकी स्फुर दीप्ती (डिसटन्ट फासफेन)** दिखाई देती है। नेत्रके संज्ञावाहक मज्जातन्तु अन्य मज्जा संस्थानके उत्तेजकों के नियमोंका पालन करते हैं।

अनुरूप उत्तेजक (ॲडिकेट स्टिम्युलस)

वर्णपटका–प्रकाश यही दृष्टिकार्यका अनुरूप उत्तेजक है। इसके प्रकाशकी लहरियोंकी लम्बाईकी मर्यादा ७५०० से ४२०० अंगुस्ट्रियन एकं (अं. ए–इकाई) में होती है। इनका भौतिक दृष्टिसे (१) गुणवाचक और (२) परिमाणवाचक वर्णन यह है।

(१) उत्तेजक प्रकाशका गुणधर्मः—

वर्णपटकी किरणोंकी दृष्टिगोचरताकी मर्यादाके संशोधनसे यह स्पष्ट हुआ है कि दृष्टिपटल पर गिरनेवाली वर्णपटकी किरणोंके ऊपरके भागके अर्थात रक्तातीत भाग (इन्फ्रा-

रेड पोर्शन) यानी उष्णताकी किरणोंसे मर्यादित भागके विसर्जन शक्तिके ८० प्र. सै. प्रमाण दृष्टिगोचर नहीं होता; यद्यपि नेत्रके वक्रीभवन माध्यममेंसे १२००० अं. ए. के नीचेकी किरणें नेत्रमें घुसती हैं तो भी साधारण मनुष्य ७५०० अं. ए. की लम्बाईकी लहरीवाली रक्तकिरणोंके समान किरणोंको नहीं पहचान सकता। प्रकाशको जाननेकी ज्यादासे ज्यादा मर्यादा ८३५० से ८४०० मानी गई है(हरटेल);वर्णपटके नीचेके भागकी जो किरणे नेत्रके माध्यममेंसे अन्दर घुसती है वे साधारणतया कुछ कुछ नीललोहित भूरे रंगके समान दिखाई देती हैं। इसलिये दृष्टिगोचरताकी मर्यादा कमसे कम ३२०० अं. ए. की किरणोंतक होती है। **ग्लान्सीने** महत् वैद्युत स्फुलिंग के तनाव का इस्तेमाल करनेसे उनको मालूम हुआ कि वर्णपटकी रेखाएँ ४००० अं. एकं. के नीचे अस्पष्ट दिखाई देती हैं; और प्रकाश की तीव्रता महत्तम हो तो ३१७० के नीचे रेखाएँ कुछ नजर में आती है। स्फटिक मणिमें वर्णपटकी इस भाग मे की किरणोंका शोषण महत्तम होनेसे निर्यवताके नेत्रमे यह प्रमाण और भी कम होता है।
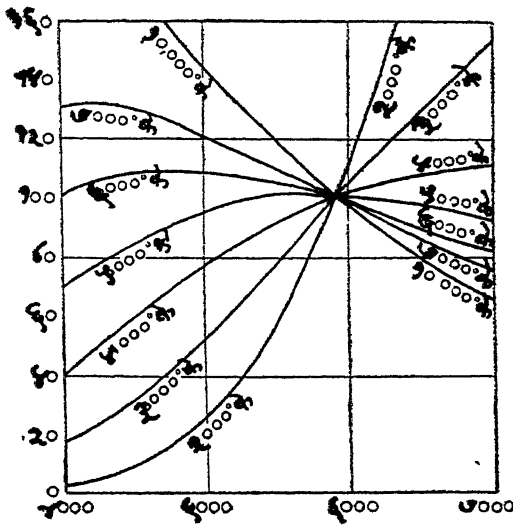
चित्र नं. २८७

अ. एकं मेकी लहरियोंकी लम्बाई **भिन्न भिन्न तापक्रमके काले पदार्थों** की सापेक्ष किरण विसर्जन शक्तिके वितरण के वक्र।

इन वक्रका लेखन करनेके लिये साधारणतया जो पद्धति चुनी गयी है उससे वक्रकी कोटी ५९०० अ. एकं इतनी पायी जाती है। इस प्रचलित प्रथा की इस्तेमाल करनेकी वजह यह है कि ये वक्र भट्टीके तापक्रम के जिस प्रकाश को नेत्र जान सकता है उसके वक्रसे मिलते होते हैं।

"**क्ष**" **किरणोंसे उत्तेजनः**—दृश्य वर्णपटकी विसर्जन शक्ति नेत्र का अनुरूप उत्तेजक होता है तो भी अन्य लहरियोंकी किरणोंसे दृष्टिपटल उत्तेजित होता है। "**क्ष**" किरणोंसे प्रकाश संज्ञा होती है यह शोध **रानजेन्ट** (१८९७) के पहले **ब्रान्डीस** और **डार्न** ने लगाया था (१८९७)। रेडियम के उद्गार से प्रकाशसंज्ञा होती है।

अंधियारेसे मिलती जुलती अवस्थाके नेत्रमें संज्ञा ज्यादह दिखाई देती है इस परसे **नाणल** पंडितने कल्पना की ई की राड घटक ही गोचर घटक होते है।

(२) उत्तेजक कार्यक्षम होनेके लिये विसर्जन शक्तिका आवश्यक समाहरण (कान्सेन्ट्रेशन)

किरण विसर्जन शक्तिका भौतिक तोरसे नापन यह अज्ञात रश्मिनापन शास्त्र (रेडियो मेट्री) होता है और इस जगह पर उसका संक्षिप्त में विवेचन करना अनुचित नहीं होगा।

बोलामिटर रश्मी-उत्पादक शक्ति को नापनेका यंत्र होता है। इसकी रचनामें चार प्रतिरोधोका इस्तेमाल, **व्हिटसन सेतु** की रचना जैसा किया है जिसकी रचनामें के दो को

चित्र नं. २८८
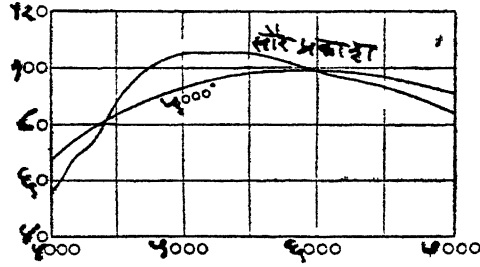
लहरिया की लबाई के अ. एकं.

साधारण माध्यान्ह समयके सौर प्रकाशकी सापेक्ष विसर्जन विपरीत शक्ति की काले पदार्थसे तुलना, किरण विसर्जन शक्ति ५०००° अब्ज है (चित्र न. २८७ देखिये।)

विकिरण शक्तिको सोख लेनेके लिये काला रंग चढाया जाता है। इसमें से विद्युत प्रवाह बहानेसे विकरण शक्तिसोखी जाती है और प्रतिरोध मे फरक होना है।

रेडियोमायक्रोमिटर—विकिरण मापक यंत्रमे प्लाटिनम धातुके काले पंख होते है जो क्वारटझ धातुके तन्तुओसे निर्वात वर्तन मे टंगे होते है; इन पंखो पर विकिरण या विसर्जन शक्ति गिरनेसे वे घुमते है जिनका चलन देख सकते है।

दृष्टिकी सज्ञा पैदा करनेके लिये विसर्जन शक्ति की जरूरीके प्रमाणमे कमसे कम उत्तेजकसे तुलना करनेसे मालूम होता है कि दृष्टिपटल बहुत ही प्रकाश को सुचेन हैं; कहे तो कह सकते है कि आधुनिकके अच्छे मे अच्छे रेडिओ मिटरसे दृष्टिपटल ३,००,००० (तीन लाख गुणा ज्यादह सुचेतन है।

यह ख्यालमें रखना चाहिये कि प्राकृतिक संवादि क्रियायें भौतिक उत्तेजकसे बिल्कुल अलग वर्गकी होती हैं। यह क्रियाये भौतिक उत्तेजकसे सीधी पैदा नहीं होती किन्तु उनके कारणसे अलग होती है। और उनके समप्रमाणमें भी इन क्रियाओमें फरक नहीं होना। चाक्षुष व्यूहका प्रकाश संबंधी वर्तन भौतिक विसर्जन शक्तिके नित्य क्रममे नहीं होता। लेकिन वह स्वतःके गुणोंसे भौतिक उत्तेजकको बढ़ाकर स्वतःके संज्ञानुसार उनके महत्वको समझकर उनका पृथक्करण कर सकता है। अर्थात प्रकाशके प्राकृतिक गुणधर्म उसके भौतिक गुणधर्मोंसे भिन्न होते है।

प्रकाशके प्राकृतिक गुणधर्म

अभीतक प्रकाशके भौतिक गुणधर्मोंका विचार करनेके लिये एक मिलिमिटरका एक दशलक्षाश भाग ($\frac{१}{१००००००}$ का. मि. मि.) और **अर्गके** (Erg) बहुतसे दशलक्षाश भागके प्रमाणोंका उपयोग करनेकी आवश्यकता थी। अब प्रकाशका भौतिक दृष्टिसे विचार नहिं बल्कि प्राकृतिक और मानसिक दृष्टिसे विवेचन करनेके लिये नापके भिन्न भिन्न प्रमाणोका इस्तेमाल करनेकी आवश्यकता होगी। इन प्रमाणोंमे बहुतसे ऐसे होंगे कि जिनकी नापन के लिये कुछ भी कीमत नहीं होती वे सिर्फ उनका सापेक्ष संबंध बतलानेके लिये काबिल

होंगे और उसके ठीक ठीक नापका बोध होना मनुष्यकी सचेतन अवस्थामें संभव है और इसी वजहसे मनुष्यकी ख्यास बौद्धिक शक्तिके अनुसार उनमें फरक दिखाई देगा।

सुपेद प्रकाशः—

सपूर्ण अखंडित विच्छिन्न किरणोंकी विसर्जन शक्ति, जैसे कि माध्याह्न दिनका प्रकाश या जिसकी उष्णता ५००० ° से ६००० ° है ऐसे काले पदार्थकी विसर्जन शक्ति, नेत्र पर गिरती है तब सुपेद प्रकाशकी सज्ञा होती है। सुपेदी यह गुणवाचक संज्ञा है और इसलिये किसीभी तरह उसका स्वतंत्र वर्णन संभाव्य नहीं हो सकता । इस गुणका अस्तित्व मनुष्यकी निर्णय बुद्धि पर अवलंबित होता है। इस सज्ञाकी ज्यादासे ज्यादा व्यापक मर्यादाके फरक को साधारणतः मनुष्य सुपेद संज्ञा देता है । चाक्षुषव्यूह इस संज्ञाका पृथक्करण चकाचौंध या दीप्ति इन शब्दोंमे कर सकता है। अर्थात् पैदा हुई संज्ञाकी तीव्रता की दीप्ति इस संज्ञाका परिमाणात्मक भाग है जिससे इस संज्ञाकी तीव्रताका बोध होता है। और इसी नीव पर नेत्र प्रकाश की विसर्जन शक्ति की तीव्रताका इशारा किये विना उसका मान निकालता है। इसका नाप फोटोमेट्रिक पद्धतीसे हो सकता है।

सुपेदीके नाप का सर्व मान्य परिमाण की (प्रमाण या आदर्श स्टानर्ड) प्रकाश मिति या रंग मिति में जरूरी होती है। दिनका प्रकाश ज्यादह परिवर्तनशील होनेसे उसके बदले हालमें ५००० ° (K) की उष्णतावाले काले पदार्थ की विसर्जन शक्तिके फैलाव का इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति है। लेकिन यह प्रयोगशालामें संभाव्य नहीं होता; और इसी वजहसे प्रकाश उगम की विसर्जन या विकिरण शक्तिका, जिसको अनुरूप रंगीन रासायनिक द्रावण के वर्ण निःस्यन्दक या छन्नासे बदल करके प्राप्त करना संभाव्य होगा, इस्तेमाल करना जरूरी होता है। **न्याशनल फिजिकल** प्रयोगशाला मे के सुपेद प्रदीपक प्रमाण की नीव निर्वात प्रदेश के टुंगस्टीन दीपकपर रची हुई है और जिसके तापदका प्रकाश २३६० °(K) बराबर होकर जिसमे छन्नासे २९०० ° (K) इतना फरक किया होता है।

गैससे भरे हुए टुंगस्टीन लॅम्प जिनका प्रयोगशाला में इस्तेमाल करते हैं,उनका प्रमाण इनके बराबर रखकर उनके साथ और दूसरे छन्नाका उपयोग करतें है जिससें रंगीन प्रकाशका ताप ४८०० ° (K) तक बढाना संभाव्य होता है। रंगीन छन्नाका द्रावण वह होता है कि जिसमें १ सें. मि. मोटाई की दो सेले होती है जिसमे तूतीया—क्युपरीक सल्फेट—और अमोनिया, तथा क्युपरिक सल्फेट और कोबाल्ट सल्फेट के खास समाहृत के द्रावण भरे हुए होतें है।

प्रकाश के प्रमाणका नापन—प्रकाशमिती (फोटोमेट्री)

इस तरतीबमें निकट स्थित दो पदार्थो के प्रकाश की तुलना करके उसका मूल्य मुकर्रर करतें है। इसमें परीक्षकको प्रकाशित पदार्थ के प्रत्यक्ष क्षेत्र का ज्ञान नहीं होता या सापेक्ष तीव्रताका प्रमाण ठीक ठीक मालूम नहीं होता; तो भी निकट स्थित पदार्थ समान प्रकाशित है या नहीं यह बराबर बतलाना संभाव्य होता है।

चमक की संज्ञाका नापन प्रमाण ठैरानेके लिये भौतिक प्रमाणोंका इस्तेमाल नहीं हो सकता इसलिये पहले इस्तेमाल करनेके शब्दोंकी परिभाषा देना जरूर है।

दीप्तिप्रवाह (दी) (ल्युमिनस फ्लक्स एफ):—प्रकाश प्रवाह के प्रमाण को विसर्जन शक्तिके प्रमाणसे नहीं बल्कि प्रकाशसे पैदा हुई चमक की संज्ञाके प्रमाणसे नाप सकते हैं; उस नापको **दीप्तिप्रवाह** (दी-ल्युमिनस फ्लक्स) कहते हैं। किसी पदार्थसे बाहर आनेवाले प्रकाशके प्रमाणसे उसकी **तीव्रता** (**ती-इनटेंसिटी आय**) निश्चित होती है। दीप्तिप्रवाह की तीव्रता की परिभाषा, प्रकाशके उगमके बिन्दुसे हर **ठोस कोणके** (सालिड ऐंगल) इकाई की बरावर बाहर जानेवाली दीप्ति इस स्वरूपमें कर सकते हैं।

(ती=दी । w या I = F । w)

इसका प्रमाण स्वतंत्र ही (आरबिट्ररी) **आन्तर राष्ट्रीय मोमबत्ती** ऐसा ठैरा हुआ है। यह नाप १९०९ में ग्रेटब्रिटन, अमेरिका और फ्रान्स इन मुलकोंमें मुकर्रर किया है।

$\frac{1}{6}$ रतल वजन की मोमबत्ती का एक घंटेमें १२० ग्रेन नाप जल जानेसे जिस प्रमाण का प्रकाश पैदा होता है उस मोमबत्तीको प्रकाशका एकं माना गया है। प्रकाश मिति के लिये इस मोमबत्तीसे ठोस कोणके एकं में बाहर आनेवाले दीप्ति को **ल्युमेन** कहते हैं।

(१) बिन्दाकार प्रकाश उगम वर्तुल केन्द्र में होता है; ठोस कोण का एक वह कोण होता है कि जो वर्तुल की त्रिज्याके वर्ग के बराबर के उस वर्तुल के क्षेत्र का जो भाग होता है उसके सामने होता है। ठोस कोण के चिन्ह के लिये ग्रीक हरूफ w का इस्तेमाल करते हैं।

वर्तुल का क्षेत्र त्रिज्या के वर्ग के चौगुना पाय (π) के बराबर होनेसे एक मोमबत्ती के उगमसे चार पाय (π) ल्युमेन इतना प्रकाश बाहर गिरता है। विद्युत् शास्त्रमें मोमबत्ती की शक्तिका एकं **कुलंब** होती है यानी विद्युत् का एक अम्पीयर वेग की धाराका एक सेकंद तक प्रवाह, और चूंकी दीप्तिप्रवाह विद्युत प्रवाह के बराबर होता है, ल्युमेन आम्पियर के बराबर होता है।

जब किसी पृष्ठभाग पर प्रकाश गिरता है तब वह पृष्ठ प्रकाशित(प्र)हुआ है ऐसा मानते हैं (इल्युमिनेटेड ई) पृष्ठ को प्रकाशन (प्र या ई) यानी क्षेत्र की मर्यादाके एकं—इकाई के भाग पर गिरनेवाले प्रकाश के परिमाण जाना जाता है,या खास तौरसे ऐसा भी कह सकते है कि क्षेत्र पर की प्रकाश दीप्ती की घनता: प्र=दी । क्षे;(यहा क्षे क्षेत्र की मर्यादा समझना)। पाश्चात्य देशोंमें असलमे **अमरीका** और **ब्रिटन** मे नापनमें **फूट कैन्डल** यानी एक वर्गफूट परकी एक इकाई परकी मोमबत्तीके प्रकाशशक्तिका नापन मे इस्तेमाल किया जाता है, मिट्रिक पद्धतीमें मिटर कैन्डल जिससे अन्य लैंपो की प्रकाशशक्ति की तुलना की जाती है यानी हर वर्गमिटरपर एक **ल्युमेन** या **फोट**-यानी एक वर्ग **सेन्टीमिटर** पर एक **ल्युमेन** का इस्तेमाल करते हैं।

पहले ही कहा है कि जब कोई पृष्ठ प्रकाश की किरणोंको लम्ब जैसा होता है तब दूरीके बिन्दुकी प्रकाशकी तीव्रता उसके उगम स्थानके फासले के वर्गके व्यस्त प्रमाणमें होती है (३७२ पन्हा देखिये); और जब वह पृष्ठ प्रकाश की किरणोंसे समकोणसे भिन्न कोण करता है तब उसके प्रकाशकी तीव्रता उस कोण की कोटिज्या के प्रमाणमें कम होती है यानी प्र (θ कोटिज्या) म^{3}

दृष्टिपटल के प्रकाशनके इकाई को **फोटान** कहते हैं जिसका परिमाण कनीनिकाके एक सहस्त्रांश मिटर के वर्ग के भाग परकी हरमिटर वर्ग की कैन्डल शक्ति जैसा होता है।

बाहरके प्रकाशके इकाईको कनीनिकाके सहस्त्रांश क्षेत्रके वर्गसे गुना करनेसे दृष्टिपटलके **फोटान** मेंके प्रकाशन का मूल्य पाया जाता है।

जब प्रकाशकी दीप्ति किसी पृष्ठ पर गिरती है तब उसमेंका कुछ भाग परिवर्तित होता हैं और यहि पृष्ठ की चमक (**च**) कही जाती है। माध्याह्न दिन के आकाश की चमक हर इंच के वर्ग परके तीन मोमबत्तीके प्रकाश की चमक के बराबर होती है यह इस परिमाण की मिसाल होती है। और देखा हुआ पृष्ठ जब लम्ब जैसा होता है उसी अवस्थामें यह नियम मान्य कर सकते हैं। पृष्ठके चारो ओरकी चमक एक सरीखी दिखाई देती हो तो वह पृष्ठ पूर्ण तया फैलाने वाला पृष्ठ है (परफेक्ट डिफ्युजर) ऐसा मान सकते हैं।

रंगीन प्रकाश

जब वर्णपटकी खडित किरणोंकी विसर्जन शक्ति नैसर्गिक नेत्र पर गिरती है तब दृष्टिपटल उत्तेजित होनेसे रंगीन प्रकाशकी संज्ञा पैदा होती है। इस असल बात पर ठीक ध्यान न देनेसे विचारकी बहुत गलतीया होती है। यह रंग संज्ञा वर्णपटकी किरणोंकी रचनापर अवलम्बित होती है। ध्यानमे रखाना कि रंग यह प्रकाशका भौतिक गुण नहीं है। रंग पदार्थका भौतिक गुण नहीं है। यह नेत्र का भी गुण नहीं है। यह एक मानसिक धर्म है। और यह सुचेतन अवस्था के गुणवाचक अस्तित्व दर्शक का व्यापार है। दृश्यमान पदार्थसे परिवर्तित होनेवाली विसर्जन शक्तिसे नैसर्गिक मनुष्यके दृष्टिपटलको चेतना होती है तब रंग की संज्ञा पैदा होती है। नेत्रको रंगकी छटा, संप्रक्तता और तेजस्विता इन तीन गुणोंसे पृथक् करना संभव होता है। ये तीन गुण संज्ञाका धर्म, निर्मेलता और तीव्रताके द्योतक होते हैं।

रंगछटाः—

खिडकीके बारिक छिद्रमेंसे आनेवाले किरणसमूह (गुच्छ) के मार्गमें त्रिपार्श्व (प्रिझम) को पकडें तो प्रकाशका पृथक्करण होकर उसकी सब अंगभूत किरणे उसकी लहरीयोंकी खास लम्बाई के अनुसार एकके नीचे एक सरळ रेषामें रचे हुए दिखाई देते है और इसीको विच्छिन्न किरण या वर्णपट (स्पेकट्रम) कहते है। यह किरणसमूह (गुच्छ) त्रिपार्श्वमेंसे बाहर आनेके समयमे उनमेंकी छोटी लहरियोंकी किरणोंकी गतिको ज्यादा रूकाब होनेसे वे पहले वक्र हो जाते है। और इसी कारणसे लहरियोंके लम्बाईके अनुसार एक के नीचे एक रचे जाते है। इसका शोध प्रथम **सर न्यूनटनें** सन १६७५ मे किया। प्रकाशको बारिक विवर्तन रेषापटमेंसे पार करनेसे यही दृश्य दिखाई पडता है। पहलेको त्रिपार्श्विय वर्णपट और दूसरे को विवर्तन वर्णपट कहते है। इन वर्णपटके सव प्रकाशित किरणोंका उनके खास गुणके अनुसार नेत्रको अलग अलग रंग छटा ऐसा बोध होता है। इस वर्णपटमे लाल, पीला, हरा और नील ऐसे चार रंग क्षेत्र ज्यादा स्पष्ट दिखाई देते हैं। लाल और

चित्रपट
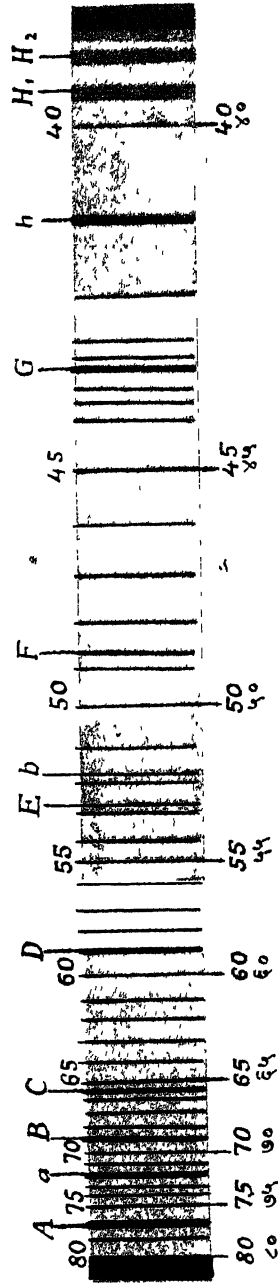
चित्र नं. २८९ फोटापिक वर्णपट (अ. ए. ×१००)

चित्र नं. २९० स्कोटापिक वर्णपट

पीले भागके बीचमे नारंगी छटा दिखाई देती है। अन्य रंग एक दूसरे मे मिल जाते है और नीला रंग नील लोहित रंग के समान दिखाई देता है। इस वर्णपटमें भी स्वतंत्र दिखाई देनेवाली अनेक छटा होती है। नेत्रकी इस संबंधकी सुचेतनका विचार अन्य जगह करेंगे।

त्रिपार्श्व या रेपापट के प्रकारके अनुसार प्रकाशके विस्तरण मे फर्क होनेसे कुछ क्रमाक की जरूरी होती है। **वूलसटनने** (१८०२) देखा कि सौर वर्णपटमें अनेक काली रेषाएँ होती है। इनका संशोधन **फ्रानोफरने** (१८१४) किया, इसी वजहसे इन रेपाओंको फ्रानोफर की रेपाएँ ऐसा कहा जाता है। इनमेंके खास रेपाओंके उन्होने A से K अक्षरोसे संबोधा है। इनका स्थान निश्चित होनेसे उनके स्थान परसे खास रंगका बोध होता है।

सूर्य और पृथ्वी के चारो ओरके वातावरण मेंके कुछ मूलभूत तत्वोसे खास लम्बाईकी लहरियोका या तरंगोका शोषण होनेसे ये लकिरिया पैदा होती हैं; इनके स्थानसे खास रंग का ज्ञान हो सकता है। पट चित्र नं. २८९–२९०।

फ्रानोफरकी रेषाओंका स्थान और कारण

वातावरणमे मिले हुए मूल तत्त्व

	A	७६०६	लालकी सीमाके पारमे
	B	६८६९	लाल रंगमें
(हाइड्रोजन Hydrozen)	C	६५६३	लाल और नारंगीके संधिमें
(सोडियम, So-dium)	D (१)	५८९७	पीले रंगमे
	(२)	५८९१	पीले रंगमे
	E	५२७१	हरे रंगमें
(हाइड्रोजन)	F	४८६२	नीले रंगमे
	G	४३०८	नीला और कासनीके सन्धिमें
	H	३९६९	कासनी (या नीललोहितमें)
(क्यालसियम Calcium)	I	३९३४	कासनीके सीमाके पारमें

दृष्टिपटलके भिन्न भिन्न भागोंमें दिखाई देनेवाले रंगके फरक

(अ) दृष्टिपटलके दृष्टिस्थान केन्द्रमें (फोव्हिया सेन्ट्रालिस) दिखाई देनेवाले फर्क

जब दृष्टिपटलके दृष्टिस्थान केन्द्रमे दृष्टिकार्य होता है तब दृष्टिस्थानके पीले रंजित द्रव्यकी वजहसे छोटि लहरियोकी रंगछटा जाननेके कार्यमें फर्क होता है। लाल और नारंगी रंगोंमे फर्क नहीं दिखाई देता। पीले और हरे रंगोका शोषण शुरू होकर वर्णपटके नीललोहित भाग को वह फर्क धीरे धीरे फैल जाता है।

भिन्न भिन्न लोगामें रंग मिलाने में जो फर्क दिखाई देता है उसका भौतिक कारण भिन्न लोगोमे इस पीले रंजित द्रव्यके प्रमाणमे फरक होता है यह माना गया है यद्यपि उनका रंगज्ञान प्राकृतिक तोरसे नैसर्गिकी मालूम होता है।

(ब) दृष्टिपटलके परिधि भागमें दिखाई देनेवाले फर्क

प्रकाशतीव्रता साधारणतया माध्यम प्रमाण की हो तो रंग छटा दृष्टिपटलके सब भागमें समान नहीं दिखाई देती। इस अवस्थासे परिधिभागमें रंगोंके सब भेद पहँचानना संभव नहीं होता। लेकिन इसको पहुँचाननेके पहले रंग के चकाचौंधमें फरक होता जाता है। दृष्टिपटलके मध्य भागसे परिधि क्षेत्रका निरीक्षण करनेसे रंगके चार भेददर्शक रंगछटा कायम रहती है। वे धीरे धीरे फीके होकर आखिर वर्ण हीन हो जाते हैं। ये **स्थिर रंग** प्राकृतिक दृष्टिसे निर्मेल समझे जाते हैं। ये निर्मेल रंग पीला (५७४० अं. ए.), हरा (४९५०), नीला (४७१० अ. ए.) और कुछ कुछ नील लोहित लाल होते हैं। अन्य रंगछटामें लम्बि लहरियोंकि रंगछटामें पहले पीले छटाकी अवस्थामें से और छोटी लहरियों की नील लोहित छटा पहले असमानी (नील) अवस्थामें से होकर अन्तमें भूरी छटा दिखाई देती है।

संपृक्तता (सॅच्युरेशन)

वर्णपटके रंग निर्मल माने जाते हे। क्यों कि उनकी संज्ञाएँ एक रंग प्रकाशसे पैदा होती है। लेकिन प्रत्यक्ष अनुभव यह है कि रंगीन प्रकाश अन्य लहरियोंके प्रकाशके मिश्रण से मैला हुआ मालूम पडता है। साधारणतः वह प्रकाश सुपेद प्रकाशसे मिश्रित होता है। तब संपृक्त होता है। अर्थात् संपृक्तता संज्ञाकी निर्मलताका नाप हो सकता है। दृश्य विच्छिन्न किरणोंके या वर्णपटके किसी भी रंगमें सुपेद रंगका मिश्रण करने से वह फीका हो जाता है। अन्तमें सुपेद रंग की संज्ञा होती है। यह समझ लेना कि रंग जितना ज्यादा संपृक्त होगा उतनाही वह ज्यादा स्पष्ट दिखाई देगा। सुपेद रंगके मिश्रणसे बनी हुई श्रेणीको अनेक रंग छटा कहते हे। रंगछटा एकही होती है लेकिन संपृक्ततामें फरक होता है।

रंगछटा की व्याख्या लहरियोंकी या तरंगोकी लंबाई से होती है। संपृक्तताकी व्याख्या निर्मेल वर्णपटके किरणोंके मिश्रण का प्रमाण इन शब्दोंमें होती है। उसका नाप प्रकाशके तेजकी संख्याके प्रमाणसे हो सकता है। मैल रंग में $\frac{3}{4}$ (तीन चौथाई) भाग मूल रंगके तेजस्विता का और $\frac{1}{4}$ (चौथाई) भाग सुपेद रंगका हो तो उस रंगकी संपृक्तताका प्रमाण ७५ प्र. सैकडा समझना चाहिये। अर्थात वर्णपटके किरणों का गुण उस रंगछटाकी लहरियोंकि लम्बाई और संपृक्तताका प्रति सैकडा प्रमाण इन शब्दोंमे होता है।

प्रकाशकी दीप्ति या चमक (ल्युमिनॉसिटी)

सुपेद रंगकी संज्ञाका पृथक्करण उसके दीप्ती या चमकके प्रमाणसे करते हैं। और एक रंगकी छटाका फर्क भी पहँचाना जा सकता है। वर्णपट का चित्र नं. २८९ देखनेसे यह समझमें आजायगा कि उसके भिन्न भिन्न भागोंके चमक में फर्क मालूम होता है। भिन्न भिन्न प्रकारके प्रकाश की संज्ञा सिर्फ प्रकाश तीव्रतापर अवलम्बित नहीं होती, उसमें प्रकाश-लहरियोंकी लम्बाईके अनुसार फर्क होता है। भिन्न भिन्न संज्ञाओंके गुणोंमें फर्क होता है इस लिये उनकी ठीक तुलना करना बहुत कठिन काम है। चमक क्या चीज है इसको ठीक

जानना कठिन होनेसे यह प्रश्न और भी ज्यादा जटिल हो जाता है। इस विचारसे हेल्म होल्टसने यह कल्पना की है कि रंगिन प्रकाशकी दीप्ति यह केवल एक गुणही नहीं है बल्कि वह तेज और रंगकी दीप्ति के संयोगसे बनती है। इस लिये उसकी ठीक शास्त्रीय परिभाषा करना कठिन है।

दीप्ति या चमक—यह रंग संज्ञाका एक भाग है। उसका यह खास लक्षण माना जा सकता है और उसके परिमाणका नाप करना संभव हो जाता है। वर्णपटके भिन्न भिन्न रंगोका स्वतंत्र नाप करके उनको एकत्रित करनेसे भिन्न भिन्न रंगोके प्रकाश पैदा होते हैं, और नये बने हुए रंगका तेज वह अंगभूत घटाकोंके तेजके जोडके बराबर होता है। अॅबनने इससे यह नियम बनाया है कि **एकात्रिक किये हुए वर्णपटकी किरणोंका तेज एकत्रिक किये हुए भागोंके तेजकी जोड होती है।**

विभिन्नरंगी प्रकाश मिति

भिन्न भिन्न रंगोके प्रकाशके दीप्तिकी तुलना करना यह विभिन्न रंगीन—प्रकाश नापनका भाग है। नाप करनेकी अनेक पद्धतिया हैं।

(१) तुलना करनेकी सरल तरह या पद्धति (मेथड आफ डायरेक्ट कंप्यारिझन)

रंगीन और नीरंग प्रकाश की दीप्ति को सुपेद रंगकी मितीमें जो तरतीब की ई थी उसी तोरसे नजदीक के क्षेत्रोंपर प्रक्षेपण करके तुलना करना यह खास सरल पद्धति है। इस की नीव **मैक्सवेल** की रंगमिश्रण की पद्धति पर रची है। इस में वर्णपटके एक या अनेक भागोंको चिर (स्लिट) से अलग करके उनको परीक्षक सामनेके परदेके एकसा क्षेत्र पर केन्द्रित करके उसकी खास प्रतिमाको सन्निध डाली हुई दूसरी प्रतिमासे तुलना करते हैं। क्षेत्र का आधा भाग समावयव या मुवाफिक प्रकाशसे और दूसरा आधा भाग सुपेद प्रकाशसे भरा हुआ होता है, और क्षेत्र के ये दोनों भाग समसमान प्रकाशित होने तक उनके दीप्ति में फरक करते है। इस पद्धतिका **ऍबनेने** ज्यादा इस्तेमाल कीया है। दो भिन्न भिन्न प्रमाण के बिलकूल अलग अलग रंगो की तुलना ठीक करना बहुत मुष्किल की बात होती है और मानासिक कियासे इससे गलती होने का प्रमाण और ज्यादह बढ जाता है इस को ख्यालमें रखना जरूरी है।

(२) तिलमिलाना की पद्धति (दी मेथड आफ फ्लिकर)

तिलमिलाने के दृश्यके वैज्ञानिक नियमोंका पूरा बयान अन्य जगह किया जायेगा। हालमें इतना कहना काफी है कि जब घुमते द्वि त्रिज्ज्य वक्र खंड या पहिये के आराको प्रकाशित करके उसको धीरे धीरे घुमावे तो हरएक आरा क्षणमात्र चमककर स्वतंत्र संज्ञा पैदा करता है। लेकिन पहियेको जोरसे घुमावें तो हरएक आराकी संज्ञा स्वतंत्र और खंडित होनेके बदले एक दूसरेसे मिलनेसे उनकी एक संगीन प्रकाश संज्ञा पैदा होती है। यह प्रमाण इस दीप्ति की चमककी नापन पद्धतीकी नीव होती है। सब बारीबारीसे आनेवाली संज्ञाका एकत्रीकरणके आवर्तनके वेगको एकत्रीभूत आवर्तन (फ्यूजन फ्रीक्वेन्सी) या सन्धि आवर्तन

(क्रिटीकल फ्रीक्वेन्सी) कहते है। एकत्रीकरण आवर्तन यह दीप्ति या चमकको सीमा लक्षण है। उसका रंगछटासे कुछ संबंध नहीं है। दो अलग अलग प्रकाशके क्षणक्षण तिलमिलानेवाले आवर्तन समान प्रमाण पर बंद होनेसे दो रंगोंकी दीप्ति या चमक समान है ऐसा समझना चाहिये।

(अ) **संधि आवर्तनकी पद्धतिः**—दो प्रकाशको, जिनकी तुलना करनी है, घुमते द्वित्रिज्य वक्र खंडसे एकान्तरसे काले रंगसे अलग करते है। जब समगतिमें तिलमिलाना अदृश्य हो जाता है तब दोनो प्रकाश की दीप्ति समसमान है ऐसा समझना।

(ब) **कंपन या तिलमिलाना की प्रकाशमितिः**—दो प्रकाशको जिनकी तुलना करनी हो उनको एकान्तरसे रखकर घुमाना; घुमनेकी खासगति पैदा होनेसे रगीन तिलमिलाने की संज्ञाका लोप हो जाता है। लेकिन दोनों प्रकाश की दीप्ति भिन्न भिन्न हो तो दीप्ति का तिलमिलाना घुमने की गतिका प्रमाण ज्यादा बढाने तक कायम रहता है,लेकिन गति बढानेसे नष्ट हो जाता है। इससे कल्पना कर सकते है कि घुमनेकी गतिका ऐसा एक प्रमाण होता है जब रंग के परिमाणसे दीप्तिया चमक को अलग कर सकते है। यानी इस गतिके परिमाणसे दोनों प्रकाश इस तरहसे एकान्तरित होते है कि सिर्फ दीप्ति का तिलमिलाना कायम रहता है; और उनकी सापेक्ष तीव्रताका इस तरहसे समायोजन होता है कि कोई भी तिलमिलाना नहीं दिखाई पडता,यह समायोजन ऐसा होता है कि प्रकाश की तीव्रतामें कमसेकम भी फरक होनेसे तिलामिलाना वापिस भासमान होता है। इस स्थानमें दोनों प्रकाश की चमक सम होती है।

पहली पद्धतिका यानी संधि आवर्तनकी पद्धतिका इस्तेमाल **पेरी, इकोफ्ट आलन** (१९००–११) आदि संशोधकोंने किया है; दूसरीका **पोर्टर** आदि लोगोने किया है।

चित्र नं. २९१
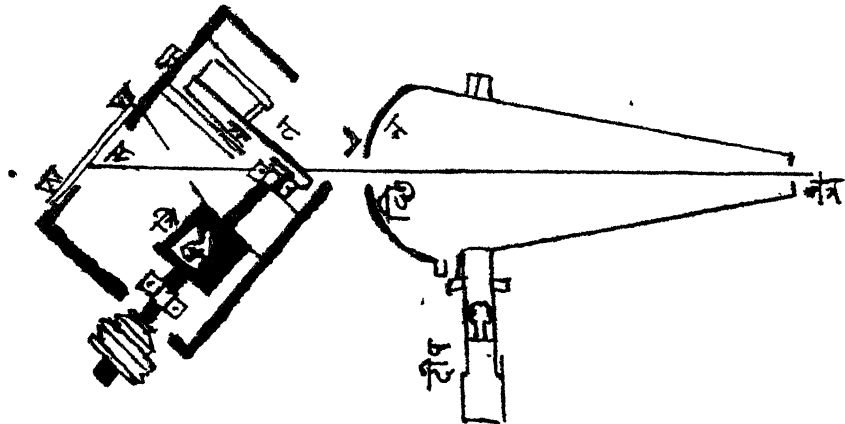
तिलमिलानों से तुलना करनेका प्रकाशनापन यंत्र.

आयव्हिस और **किंगजबरी** इनका मत ऐसा है कि दूसरी पद्धति के निर्णय ज्यादह विश्वसनीय और ज्यादह काबिल होते हैं, यदि फोटामिटर का क्षेत्र बिलकूल मर्यादित (२°)

हो, वह सापेक्षतासे ज्यादह चमकदार (यानी वह २५ मिटर मोमबत्तीसे प्रकाशित किया है ऐसा) और उसके ईर्दगिर्दका क्षेत्र (२५° व्यास) का प्रकाशन फोटोमेट्रिक क्षेत्र के जैसा प्रकाशित हो।

सादे फोटमेट्रिक यंत्र का चित्र नं. २९१ है। इसमें इसका सुपेद पृष्ठभाग (स) पूर्णतया परिवर्तन करनेवाले त्रिपार्श्वसे (त्रि) प्रकाशित होता है। त यह एक सुपेद खंडित तश्तरी है जिसको एक यंत्रसे चाहे जितने वेगसे घुमा सकते है। यह दूसरे प्रकाशसे (दीप) प्रकाशित कीई जाती है। परीक्षक का नेत्र नतोदर पृष्ठमेंके (न) जो दीप से समप्रकाशित किया होता है, छोटे छिद्र मेंसे (छि) देखता है; यहछिद्र नेत्रसे २° डिग्रीका कोण बनाता है। परीक्षक प्रकाशित त का भाग और स पृष्ठ का भाग इस छिद्र मेंसे देखता है। दोनों प्रकाशमे के फासले इस तरहसे रखे हुए होते है कि छि का प्रदीपन समप्रमाण का होता है और इसपिरसे नापन कर सकते है;

(३) **स्पेक्ट्रो फोटोमेट्रीकी पद्धतिः** यह ज्यादह प्रचारमें नहीं है।

(४) **स्टिरीयो पद्धतिः**—इसकी नीव दोनों नेत्रोंसे गहराई जाननेके गुणपर रची है। यदि एक नेत्रके सामने शुभ्र रंगी काच रखकर सामनेके किसी हिलते लंबक की ओर दोनों नेत्रोंसे देखा जाय तो ऐसा भासमान होता है कि लम्बक खडी सरल रेखामें नहीं हिलता बल्कि आडे दीर्घवृत्तमें घुमता है। यदि दाहिना नेत्र, अच्छी तरहसे प्रकाशित हुआ हो तो, और लम्बक की गतिका ऊपरसे निरीक्षण किया जाय तो वह दक्षिणावर्त यानी घडी की सूचीयोंकी घुमने की दिशामें घुमता है ऐसा भासमान होगा। इसके विपरीत अवस्थामें लम्बक उलटी दिशामें घुमता है ऐसा भासमान होगा। यह घटना अंशतः इस सिद्धांत पर अवलम्बित होती है कि एक नेत्र की अर्ध प्रकाशित मिलती जुलती अवस्थामें संज्ञाकी प्रतिक्रिया के समयमें बदल हो जाता है और अंशतः स्नायुओंकी समतुलित अवस्थामें क्षणिक बदल होनेसे ठीक स्थिरता उनमें संभाव्य नहीं होती इस पर अवलम्बित होती है। इससे दोनों प्रकाशकी द्दीप्ति की तुलना कर सकते है। क्यों कि नेत्रोंपर गिरनेवाले दोनों प्रकाशकी चमक एक समान होती है तब घुमते बिन्दुकी दीर्घवृत्तीय गतिका लोप हो कर लम्बक सम पृष्ठ मे ही हिलेगा। इस हालतमें दोनों प्रकाशसे घनदर्शनता बराबर है ऐसा समझना।

सारांश यह निकाल सकते है कि इन तुलना की पद्धतियों में सीधि पद्धति ज्यादह प्रमाण में की जाय, तो उसके अनुमान सापेक्षतासे बिनचुक हो सकते है यदि मानसिक भाग को निकाल दिया जाय।

विषम रंग की भौतिक तोरकी प्रकाशमितिः—विषम रंगी प्रकाशमिति भौतिक पद्धतिसे भी कर सकते है। इसकी नीव इस सिद्ध बात पर रची है कि प्रकाश प्रतिक्रियाओं में इस्तेमाल किये हुए उत्तेजक प्रकाशकी लहरियोंकी लम्बाईके अनुसार फ़रक होता है; अलबत इनका महत्त्व ऐसा होता है कि मानवी नेत्र को ज्ञात होनेवाली सापेक्ष दीप्ति के अनुसार उनकी ग्राहक कार्यक्षमता में फर्क होते है। ये पद्धतिया तीन तरहकी प्रतिक्रियाओं पर अवलम्बित रहती है। (१) **फोटो उतारनेकी प्रकाशमिति पद्धति** (फोटोग्राफिक

फोटोमिट्री): इसमें **प्रकाश रासायनिक क्रिया** पैदा होनेके लिये सापेक्ष तीव्रताका प्रमाण निश्चित किया जाता है। (२) **सेलेनियम घट प्रकाशमिति** पद्धति (सेलेनियम सेल फोटो मेट्री) जिसमे सेलेनियमको प्रकाशित करनेसे उसके **विद्युत प्रवाह के वहनमें फर्क होता है।** (३) **प्रकाश विद्युत प्रकाशमिति** पद्धति जिसमें फोटो इलेक्ट्रिक सेल घट का इस्तेमाल किया जाता है और जिसमें प्रकाश का आघात होतेही **इलेक्ट्रान्स** (ऋणविद्युत) **बाहर गिर जाते है।** इस सेलेनियम घट के साथ पीले निःस्यन्दन का (यलो फिल्टर) इस्तेमाल करनेसे नेत्रके दीप्ति की वक्ररेषा समान वक्ररेषा निकलती है।

वर्णपटकी किरणोंकी दीप्ति के फर्क

वर्णपटकी किरणोंकी दीप्तिमें फर्क होता है यह बतलाया गया है और यह बात चित्र नं. २८९ से ध्यान में आजायेगा। इसका शास्त्रीय तोरसे नीरीक्षण करना, असली

चित्र नं. २९२
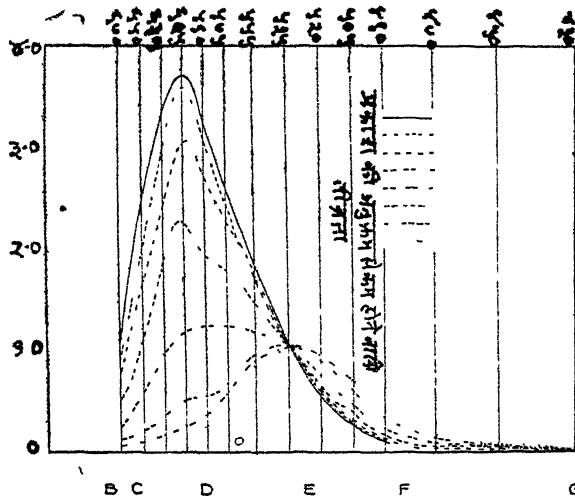
गैसकी दीप्तिकी **कोनिग** की लेखन वक्ररेषा; भुज = त्रिपार्श्वके वर्णपटकी लहारियों की लम्बाई; गैस दीपक के ‿‿ ‿‿में संख्याये चित्रके ऊपरके सीर पर लिखी है। कोटी = अनियात्रित प्रमाण।

बात है। इस विषयका संशोधन सन १८९१ से १९२० तक बहुतसे शास्त्रीय पंडितोंनें किया है। इस निरीक्षण की प्रत्यक्ष कल्पना दीप्तिकी लेखन वक्ररेषा देखनेसे अच्छी तरहसे होती है। यह वक्ररेषा निकालनेमें लहरियोंकी लंबाइको भुजरेषा (खानेदार कागजपर खींची हुई पूर्व पश्चिम रेषा ॲबसीसा) बनाकर तेजके प्रमाणके लेखन के लिये कोटि रेषाको (खानेदार कागज पर खींची हुई उत्तर दक्षिण—उपरसे नीचकी ओर की रेषा आर्डिनेट) ऊंचाई के लिये इस्तेमाल किया है। खास दीपक के प्रकाशका वर्णपट निकालकर इस वर्ण-पटके हर रंगीन किरण घटकोंकी दीप्तिका नापन करनेसे उस खास प्रकाश की **सापेक्ष दीप्ती की लेखन वक्ररेषा** निकालना संभाव्य होता है। अत्यन्त तीव्र प्रकाशकी ज्यादहसे ज्यादह दीप्ति की **फोटापिक अवस्थाकी** लेखन वक्ररेषाकी उंचाईका प्रमाण **कोनिग** के निरीक्षणमें कमसे

कम ६१०० अं. एकं के करीब होता है(चि.न.२९२);ॲबने के निरीक्षणसे (चि. नं. २९३) इस ऊंचाईका प्रमाण ५८०० अं. एकं इतना होता है। इस ऊंचाईके दोनो ओरको यह वक्ररेषा धीरे धीरे उतरती जाती है। लाल भाग का उतार नीललोहित भागकी अपेक्षा ज्यादह सरल होता है।

ख्यालमें रखिये कि इस्तेमाल किये हुए प्रकाशके खास उगमसे फैलनेवाली विसर्जन शक्तिके प्रमाणसे इन नतीजेमें फर्क होता है। तो भी इन नतीजोंको, यदि उनकें विसर्जन शक्तिमें सम तादाद के अनुसार दुरुस्ती की जाय तो, स्वतंत्र बतलाना संभाव्य होता है। इससे हर लहरियोंकी लम्बाईकी सम तादाद की विसर्जन शक्तिकी सापेक्ष दीप्ति की प्रतिक्रिया पायी जाती है। इसीको **समविसर्जन शक्ति** या **दीप्ति की अनुभव सिद्ध लेखन वक्ररेषा** कहते हैं। इन प्रयोग के मिसालों परसे निकाली हुई वक्ररेषाको आन्तरराष्ट्रीय मान्यता मिली है;और मध्यमान नेत्रके लिये यही दीप्ति की वक्ररेषा मानी गयी है,और प्रकाश की ज्यादहसे ज्यादह सापेक्ष तीव्रता और कमसे कम क्षेत्र के लिये विषमरंगी प्रकाश मितिमें यह वक्ररेषा प्रमाणसी समझी है (चित्र न. २९४)।

यह वक्ररेषा६२००°(K)उष्णताकी काली वस्तुके प्रकाश के तेजके फैलाव की वक्ररेषाके समान होती है, और यह प्रकाशउगम की विसर्जन शक्ति की वक्ररेषासे, जिसके साथ इसकी तुलना करते है, भिन्न होती है; विसर्जन शक्ति की वक्ररेषा वर्णपटके नीललोहित से लाल सिरा की ओरको रफ्ते रफ्ते चढती जाती है।ज्यादहसे ज्यादह दीप्तिका स्थान५५००से५६००अं. एकं के बीचमें–पीले–हरेमें–होता है। और इसके दोनो ओरको दीप्ति सममिताकारसे कम होती है। चाक्षुष माध्यमोमें जो इसका शोषण होता है उसकी दुरुस्ती करनेसे निकलनेवाली दृष्टिपटल की दीप्ति की वक्ररेषा बिलकुल सममिताकार होती है और वह संभाव्य समीकरण (प्राबेबिलिटी इकेशन) की सूचक होती है।

प्रदीपन के साथ वर्णपटकी दीप्ति में के फर्कः कम तेजस्विता की (स्कोटापिक) दीप्तिकी लेखन वक्ररेषा

वर्णपटके दोनो चित्रों(२८९-२९०)का निरीक्षण किया जाय तो दोनों मे तेजस्विता का स्थान अलग अलग दिखाई पडेगा। ज्यादह तेजस्विता की फोटापिक दीप्ति की लेखन वक्ररेषा का ज्यादह प्रकाशनमें (२५ मिटर मोमबत्ती दीप्ति) निरीक्षण किया जाता है। महत्व की बात यह होती है कि प्रकाश तीव्रताको कम करनेसे इस वक्ररेषामे फर्क दिखाई देता है। एबने की वक्ररेषाओंसे (चित्र नं. २९३) तीव्र और मंद प्रकाशन की सापेक्ष दीप्ति में के फर्क दिखाई पडते हैं। यद्यपि दोनो वक्ररेषाओंके आकार सम समान दिखाई देते हैं तो भी स्कोटापिक वक्र रेषाका स्थान वर्णपटके नीललोहित सीरे की ओर को हट गया है उसका महत्तम ऊंचाइका भाग पीले रंगके (५८०० अं. एकं) बदले हरे रंगमें (५३०० अं. एकं) दिखाई देगा।

यह निरीक्षण सैद्धान्तिक तोरसे महत्व का है। इस निरीक्षणसे दृष्टिपटलमें दिखाई देनेवाले रासायनिक और विद्युत फर्कोंके दो स्वतंत्र व्यूह होंगे यह कल्पना ठीक हो सकती है। संज्ञाबोध भी भिन्न होता है। मंद प्रकाशमें वर्णपटके सब रंगोके फर्क नष्ट हो जानेसे वह

बेरंग दिखाई देता है(चि. न. २९०)। और एक असल बात यह होती है कि यह वक्ररेषा और नीललोहित पिंग की शोषण की वक्ररेषा दोनों समान दिखाई देती है। हेक्ट और विलियम्स इन्होंने फोटापिक और स्कोटापिक वक्ररेषाओंका आकार पारस्परिकसे मिलता दिखता है इस बात परसे ऐसा सिद्धांत निकाला है कि दोनों दृश्य घटना चाक्षुष नीललोहित पिंग की वजहसे भिन्न भिन्न समाहरण के प्रमाणसे पायी जाती है।

चित्र नं. २९३
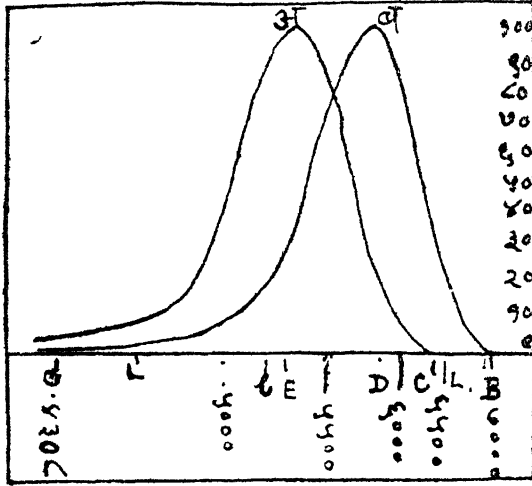
(अ) अंधिदारसे मिलती जुलती नैसर्गिक अवस्थाकी स्कोटापिक और(ब) प्रकाशसे मिलती जुलनी अवस्था फोटापिक दीप्ति की लेखन वक्र रेषा (अॅबने और फेस्टिंग)

वर्णपटकी किरणोंकी दीप्तिमें दृष्टिपटलके भिन्न भिन्न भागोंमें दिखाई देनेवाले फर्क

भिन्न भिन्न प्रकाशकी दीप्तिमें दृष्टिपटल के भिन्न भिन्न भागोंमें फर्क दिखाई देते है, और ये फर्क सापेक्षतासे मंद प्रकाशमें ज्यादह मालूम होते हैं। प्रत्यक्ष स्थैर्यदृष्टिमे वर्णपटके प्रकाश जो समान चकाचौंधके भासमान होते हैं वे अप्रत्यक्ष दृष्टिमे असम चकाचौंधके जैसे मालूम होते हैं। टीशेरमाक के संशोधक के अनुसार ५१६० से ४६६० अ. एकं की लहरियोंके प्रकाशमें दृष्टिपटल के परिधिके भागमें चकाचौंधी सापेक्षतासे बडी है ऐसा मालूम होता है, तो ६९३० से ५२५० के प्रकाशकी चकाचौंधी कम मालूम होती है, और ५२५० से ५१६० प्रकाशकी चकाचौंधी मे कुछ फरक नहीं दिखाई पडता। प्रकाशकी साधारण तीव्रतामें दृष्टिपटल का परिधिभाग बेरंग सा मालूम होनेसे हेरिंग पंडित मानते है कि तीव्रतामें फर्क होवे विना दीप्तिमें फर्क होना यह घटना परकंजी पंडित के घटना जैसी होती है।

फोटापिक (प्रकाशकी ज्यादह तेजस्विताकी) अवस्थाको, स्कोटापिक (कमतेजस्विताकी) अवस्थासे मिलाति जुलति करने के समयके फर्कोंसे भिन्न भिन्न रंगोंकी चमकमें असम फर्क होते हैं जो इन दोनों अवस्थाओंकी दीप्तिकी लेखन वक्र रेषामेंके फर्कोंके समान होते हैं। च्यूंकि रंगीन वर्णपटकी दीप्ति उसके लाल सीरेके नजदीक नीरंग वर्णपटकी अपेक्षा ज्यादह होती है। प्रकाशन कम करनेसे लाल भाग ज्यादह काला और नील भाग सापेक्षतासे ज्यादह चमकदार दिखाई पडता है। लाल रंग के लिये सूक्ष्म सुचेतन के (संज्ञाग्राहकता-हवासदारी) इस लोप को ही **परकंजी पंडित** की घटना कहते हैं।

दृष्टिपटलके परिधिके भागकी दीप्तिकी वक्ररेषा:—दृष्टिपटल के परिधि भागमें यद्यपि सूक्ष्मसुचेतनता कम मालूम होती है तो भी दीप्ति की वक्ररेषा दृष्टिस्थान की वक्ररेषाके समान दिखाई देती है। च्यूं कि दृष्टिपटल के परिधि भागमें रंगज्ञान बराबर न होनेसे, कल्पना करना संभाव्य हैं कि, यहा की दीप्ति की वक्ररेषा स्कोटापिक के जैसी ही होगी। चित्र नं. २९४ से मालूम होगा कि यह वक्ररेषा ज्यादहसे ज्यादह ऊंचाई (६०८० अं. एकं फोटापिक जैसी है)।

चित्र नं. २९४
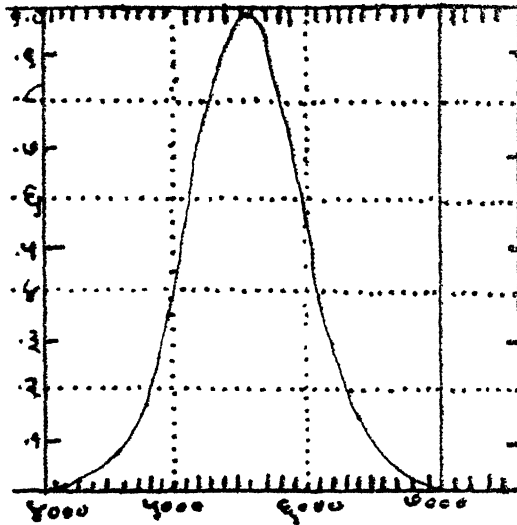
आदर्श नेत्रकी प्रयोगसिद्ध दीप्तिकी लेखन वक्ररेषा
(गिबसन और टिंडाल)

रंगछटा संपृक्तता और दीप्ति इनके पारस्परिक संबंध

प्रकाशके गुणधर्म, उसकी शुद्धता और दीप्ति एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं है बल्कि उनमें पारस्परिक संबंध जुडा रहता है जो सैद्धान्तिक दृष्टिसे महत्व की बात होती है। जब किसी भी रंगीत प्रकाशमें सुपेत प्रकाश की संपृक्तता क्रमसे बढाई जाती है तब रंगछटा का लोप हो जाता है। इस मिश्रण के कार्यमें रंगछटा बदलती जाती है, फकत कुछ कुछ पीले हरे रंगमें फर्क नहीं दिखाई देता है। उसके एक पार्श्वका लाल रंग क्रमसे गुलाबी, नारंगी पीला, और पीला हरा होता जाता है, और दूसरे पार्श्वका हरा रंग पीला दिखाई देता है;

नीले रंग में कुछ फर्क नहीं दिखाई पडता, नील लोहित रंग **सामन मछली** के गुलाबी रंग जैसा होता है। रंगछटा में के इन फर्कोंका ठीक ठीक नापन नहीं हुआ है।

चित्र नं. २९५
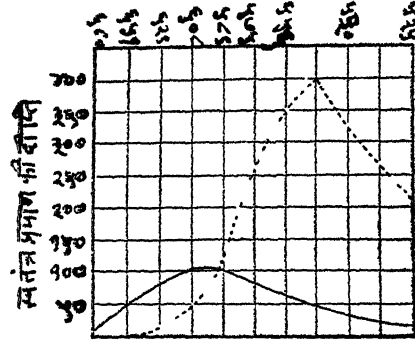
दृष्टिपटलके परिधिभाग की प्रकाशसे मिलती जुलती अवस्थाकी दीप्तिकी लेखन वक्ररेषा। ——दृष्टिपटलके परिभाग की दीप्तिकी फोटापिक वक्ररेषा। ......बिन्द्वाकर स्कोटापिक की दीप्तिकी वक्ररेषा।

दीप्तिमें भी यह पारस्परिक अवलंबन दिखाई पडता है। प्रकाशतीव्रता कम करनेसे वर्णपट की छोटी लहरियोंकी किरणोंके भाग का तेज लम्बी लहरियोंके भागके तेजकी अपेक्षा ज्यादह होता है। दिनके सूर्यप्रकाशमें नीला और लाल रंग, समान तीव्रताके भासमान होते ही मंद प्रकाशमें नीला रंग लाल रंग की अपेक्षा ज्यादह तेजस्वी भासमान होता है। प्रकाशकी तीव्रता बिलकुल कम की जाय तो रंग छटाके फर्क नष्ट होकर वर्णपट भूरे रंग का दिखाई पडता है। जब प्रकाश की तीव्रता खूब बढाई जाती है तब रंग संज्ञा बेरंग जैसी होकर वर्णपटका संपूर्ण भाग कुछ कुछ पीला सुफेद दिखाई देगा। यानी प्रकाशतीव्रता बढानेसे रंगछटा में फर्क होता है इतना ही नहीं बल्कि उसके सपृक्तता में भी फर्क दिखाई पडता है। इससे साफ मालूम होता है कि **रंगछटाके गुणात्मक भेद प्रकाश की माध्यम तीव्रतामें ही पाये जाते हैं। पारसन** के मतानुसार दीप्ति रंग की स्वाभाविक लेकिन अकथ (दुर्बोध) सुपेदी होती है, सिर्फ वर्णपटके भिन्न भिन्न रंगोंमें खास प्रमाण में रद्दाबदल होता है; और रंग की तीव्रता के प्रमाणानुसार उसमें फर्क होता है। रंगछटा और तीव्रताके संबंध सैद्धान्तिक दृष्टिसे महत्त्व के होते हैं।

रंगमिश्रण

सर आयझाक न्यूटन साहबने (१७०४) सूर्यप्रकाशका पृथक्करण करके उसके भिन्न भिन्न रंगों को अलग किया और पृथक्करण किये हुए रंगोंको भिन्न भिन्न प्रमाणमें मिलाके सूर्यप्रकाश पैदा किया। इतनाही नहीं बल्कि इन पृथक्करण किये हुए रंगोंको अनेक तादाद में सुपेद में मिलाकर निश्चित किरणोंकी लहरियोंकी लम्बाईकी अनेक रंगछटाओंको

पैदा करना संभाव्य है यह बात सिद्ध किया । इस रंगमिश्रण शास्त्रको हेल्महोल्टझनें (१८५२–५३) और क्लार्क म्याक्सवेलनें (१८५५–५६) मजबूत नीवपर रचनेकी कोशिश कीई ।

ख्यालमें रखना चाहिये कि ये कल्पनाएँ रंगीन प्रकाशके बारेमें लागू हो सकती है न की रंगीन द्रव्योंको । क्योंकि द्रव्य रंगीन दिखाई पडनेकी वजह यह होती है कि उनसे कुछ लम्बाईकी लहरियोंके प्रकाशका शोषण होता है और वर्णपटके किरणोंमेंसे कुछ परिवर्तित हो जाती है । रंगोका मिश्रण और रंगीन द्रव्योंका मिश्रण इन दोनोंमे कुछ पारस्पारिक संबंध नहीं है । पहलेमें जोड का प्रबंध होता है तो दूसरेमें बाद करनेका प्रबंध पाया जाता है । मसलन नीला और पीला प्रकाशके मिश्रणसे सुपेद प्रकाश पैदा होता है, और नीला और पीला रंजित द्रव्यका मिश्रण करनेसे वर्णपटके दोनों सीरोंका शोषण होकर सिर्फ हरी संज्ञा पैदा होती है ।

रंग या वर्णमिति

रंग प्रमाण का नापन का शास्त्र, सब संज्ञाओंके नापनके अनुसार तुलनात्मक नीव पर रखना जरूरी है । इस शास्त्र का महत्व औद्योदिक और वस्तुओंका आदर्श परिणाम निश्चित करने के लिये है; और इसी लिये अनेक पद्धतियोका इस्तेमाल किया जाता है । ख्यालमे रखिये कि इन सब पद्धतियोंमें परीक्षण क्षेत्रका एक आधा भाग रंगोके प्रकाशसे भरनेकी कोशिश की जाती है; और दूसरे आधे भागमें समवर्णी प्रकाशसे या भिन्न भिन्न प्रकाशके मिश्रण से या (दीप्ति का नापन जैसे) सुपेद प्रकाशसे भरते हैं । इन पद्धतियोंमें बहुतसे सुधार हुए हैं लेकिन सबसे उमदा राईट का यंत्र है जिसका (चित्र नं. २९६) यहा दीया है ।

इस यंत्र में इस तरह की तरकीब होती है कि प्रकाश के उगम स्थानसे प्रकाश की किरणे निकलकर वे (छि) चिर को प्रकाशित करते है । फिर वे (का) कालिमिटर से पार जाकर समानान्तर जैसे (ड) त्रिपार्श्व के ऊपर से रंग विश्लेषण करनेवाले दो (अ, अ) त्रिपार्श्वों मे से पार जाते हैं । इस प्रकाश गुच्छके ऊपरी सीरे के आधे भागका (व) स्थानपर वर्णपट बनता है, और नीचेका आधाभाग त्रिपार्श्व (त्रि १) से परिवर्तित हो कर (व^2) स्थानपर उसका वर्णपट बनता है, व स्थानमे दो काटकोनाकृति त्रिपार्श्व होते हैं । जिनसे प्रकाश का परिवर्तन नीचेके समक्षेत्र मे से होनेसे उनका त्रि २ से कुछ संबंध नहीं होता । व स्थान के दोनो त्रिपार्श्वोंसे जाचनेके वर्णका (जा. व.) और दूसरे रंगीन प्रकाश (र. प्र.), जिसका संपृक्तता कम करनेके लिये इस्तेमाल करते है इन दोनो का परिवर्तन होता है । इसी तोरसे व^2 स्थानके तीनों त्रिपार्श्वोंसे नीला हरा और लाल (नी. ह. ला) रंगोंकी (तीनों) लहरियोंका, जिनकी तुलना करनी हो, परिवर्तन होता है । इस प्रकाश का त्रि २ त्रिपार्श्वसे, जो ठीक त्रि १ के नीचे होता है विलग होता है । ये दोनों प्रकाश गुच्छ अ अ के बराबर नीचेके त्रिपार्श्वों में से पार होकर ड के पास विचलित होकर तुलना के प्रकाश मिति यंत्र के फो सीरे मे जाते है । वहासे दूरदर्शक यंत्र के लै आबजेकटिव्ह के द्विदल क्षेत्र-

मेके केन्द्र (के पर केन्द्रित होंगे) इन गुच्छोके आकार में उप परदेसे नियंत्रण कर सकते है। नी. ह. ला से परिवर्तित होनेवाले प्रकाश गुच्छो की तीव्रतामें उन गुच्छोमे छाया चित्रके

चित्र नं. २९६ राईट का रंग मापन यंत्र
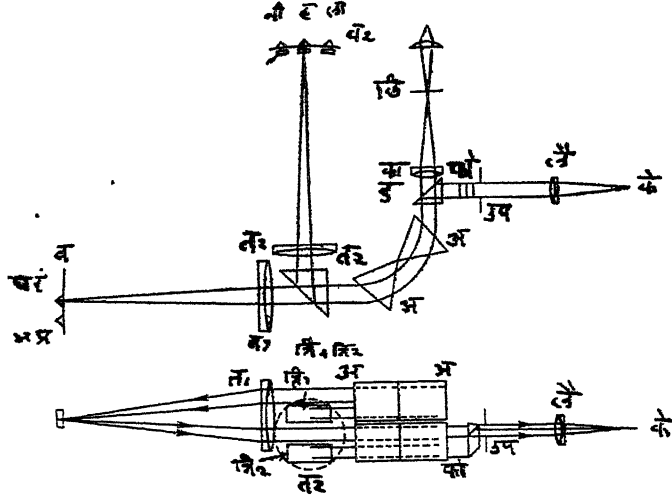
उपर की आकृति यंत्रका स्थूल या मान सकते है। नीचेकी आकृति यत्र उंचाईका है।

छिद्रदार कलों का इस्तेमाल करके फरक कर सकते है और तुलनाके क्षेत्र की तीव्रता में जा. व. और र. प्र. में सामनेके निस्यन्द के इस्तेमालसे फरक कर सकते हैं। इसी तोरसे प्रकाश मिति का आधा क्षेत्र वर्णपटके (ला. ह. नी) किसी तीव्रताके रंगोंसे भरते है और आधा क्षेत्र वर्णपटके रंगोंसे दूसरे रंग का मिश्रण करके भरते हैं।

रंग मिश्रण की नियमावली

वर्णपटकी ऊपरकी सीरा और ५६०० अं. एकं यानी हरे रंगका स्थान इन दोनोंके बचिके फासलेमें की भिन्न भिन्न लम्बाईके दो लहरियोंके प्रकाशका मिश्रण करनेसे पैदा होनेवाले रगका वर्णपटमेका बराबर स्थान चुने हुए दोनों रंगोके बीचमे होता है और इसका निर्णय करना तो वर्णपटमेंके इन दो रंगोका जिस तादादमें हर रंगका मिश्रण किया हो उसके विपरीत प्रमाणकी संख्यासे भाग करनेसे उसका रेषाचित्र निकाल सकते है।

मसलन कोई खास तीव्रताके प्रकाशको (प्र) जिसके लहरियोंकी लम्बाई (अ) है दूसरे खास तीव्रताके प्रकाशसे (प्रा) जिसके लहरियो की लम्बाई (ब) है मिलावें तो पैदा होनेवाला नया प्रकाश जिसके लहरियोंकी लम्बाई (क) होगी उसके जैसा होगा यानी

अ———क—————ब अकः कबः प्राः प्र

ऐसा समझो कि, लाल रग और पीले—हरे रंगका मिश्रण करनेसे नारिंगी रंगकी पैदाईश होती है। इसमे लाल रगकी छटा ज्यादह जोरदार दिखाई पडेगी।

लेकिन जब इन लहरियोंकी लम्बाईसे कम लम्बाईकी लहरियोंके प्रकाशका इस्तेमाल किया जाता है तब जो रंग पैदा होता है वह वर्णपटमेंके बीचमेंके रंग जैसा भासमान होता

है लेकिन उसकी संपृक्तता ठीक बराबर नहीं होती यानी वह फीका होता है। उसको ठीक ठाक मिलता करनेके लिये वर्णपटमेंके रंगमे सुपेद रंग मिलाना जरूरी होती है। वर्णपटके ज्यादह फासलेपरके दो रंगोंका मिश्रण करनेमें जो रंग पैदा होगा उसकी संपृक्तता ज्यादह कमती होती जायेगी और फिर आखिरको सुपेद रगकी संज्ञा पैदा होगी। वर्णपटके ऐसे दो रगोके मिश्रणसे जब सुपेद की संज्ञा होती है तब उन रंगोको अनुपूरक रंग कहते है। अनुपूरक रंगोकी लहरियोंकी लम्बाईका नापन पहले पहल **हेल्म होल्टझ पंडितने** किया (१८६६) और उनके बाद फान **फ्रे** और फान **काईज, कोनिग, एँगलर** आदि शास्त्रज्ञोने भी किया। साधारणतया मालूम हुआ है कि अनुपूरक रंगोकी जोड लाल और हरानीला, नारिंगी और नीला, पीला और निलबर, कुछ पीला हरा और कासनी (या नीललोहित) ये होने है।

आम तोरसे रंगोका विचार करे तो मालूम होता है कि रंजित द्रव्यों में की कुछ वर्ण छटाएँ ऐसी होती हैं कि जो वर्णपटके रंगोके मिश्रणमे काला रंग मिलाने से पैदा हो सकती है जैसे की बादामी या कपिल रंग, आलिव्ह फल का हरा रंग या कुछ तरह के भूरे रंग।

संशोधनसे मालूम हुआ है कि वर्णपटमे ऐसा एक क्षेत्र हरे रंग के दरमियानमें होता है कि (५६०० से ४९२० अंगुस्टियम एकं का क्षेत्र) जिसके लिये वर्णपटके दोनो अनुपूरक रंग (काम्प्लीमेंटरी कलर) नहीं दिखाई पडता, लेकिन यदि वर्णपटके दोनों सीरो का (लाल और कासनी) मिलाया जाय तो बैंगनी (आरगावानी) रंग, जो वर्णपटमें नही होता, पाया जाता है; इस रंग मे हरा रंग मिलानेसे सुपेद रंग पैदा होता है यानी यही न मिला हुआ अनुपूरक रंग समझना चाहिये।

ग्रासमन पंडित ने पहले पहले (१८५४) प्रयोगसे इन सिद्ध हुए बातोंके मूलभूत या बुनयादि नियमोंका बयान किया था उनके बयान से यह बात सिद्ध होती है कि अलग अलग रगोके मिश्रण का रियाझि तोरसे--गणितीय दृष्टिसे--बिचार हो सकता है; और प्रकाशके हर मिश्रण को वर्णपटमें के खास रंगीन प्रकाशके बराबर मिला सकते है, या ठीक बैंगनी मिश्रणसे, जिसमें सुपेद रंग खास तादाद मे मिलाया होना है।

इन नियमोंका इख्तिसार इस तरहसे हो सकता है:—किसी ही रंग की संज्ञा, उस रंगकी औसद विस्तार की तीव्रताके वर्णपटके प्राथमिक तीन ही रंग, ज्यादह नही, एकत्रित मिलानेसे पैदा करना संभाव्य होता है; लेकिन दो बातों को ख्यालमें रखना चाहिये: (१) कई मिसालोमे जिस रंगकी तुलना करनी हो उसमे सुपेद रंग मिलाना जरूरी होती है; जब वर्णपटमेंके रगकी छटा और संपृक्तता बराबर पायी जायेगी; और (२) कई रगोकी संज्ञाएँ इस तरहसे पैदा होती है कि तुलना करनेके रंगमे काला रंग मिलाना जरूरी होती है। प्राथमिक रंग तीन होते हैं ऐसा कहनेका रिवाझ है क्यों कि उसमेके दो रंग मिलानेसे कोनसाही रंग पैदा नहीं हो सकता। दो रगके मिश्रणसे तीसरा प्राथमिक रंग पैदा होता हो तो दोनोही परिवर्तन शील रंग होंगे। अन्य तरहसे यह बात कह

सकते है कि तीन प्राथमिक रंगोंके मिश्रणसे सुपेद रंग पाया जाता है। ये बाते ख्यालमें रखकर किसीभी चुने हुए रंग वर्णपटमेंके या अन्य रग प्राथमिक रग हो सकते हैं। उत्तेजक का विचार करे तो कह सकते है कि नैसर्गिक रंग दृष्टि तीन रंगी होती है।

चित्र नं. २९७
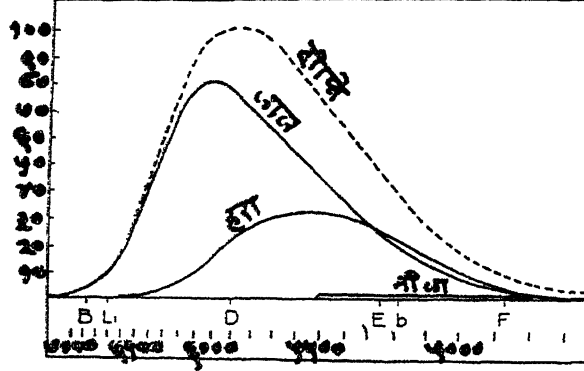
अॅबने की दीप्ति संज्ञाकी वक्र रेषा।
तनि संज्ञा (लाल, हरी, और नीली) ओं की किसी ही बिन्दुपरकी कोटी ओंकी जोड, प्रकाशसे मिलती जुलती अवस्थाकी (फोटापिक) दीप्तिकी वक्ररेषा की (जो बिन्दाकार है) कोटी के बराबर होती हैं।

रंगोंके समीकरण

हर सोचनेके काबिल प्रकाश या प्रकाशका मिश्रण यह तीन तबदिली दारों, परिवर्तन शीलोंका कार्य होता है ऐसा कह सकते है और इनका गणितीय तोरसे दस्तकारी करना संभाव्य होनेसे ऐसी कल्पना कर सकते है कि किसी भी चाक्षुप संज्ञाकी गुणात्मक व्याख्या बीज गणितके तीन रंगी समीकरण रूपमे लिख सकते है। किसी रंगका तीन प्राथमिक रंगोके (लाल, हरा, नीला) तादाद बतलानेवाला समीकरण नीचे मुजब लिख सकते है:—

रग=अ लाल + ब हरा + क नीला

यहा अ, ब, क तीन रंगके, जिनसे वह रंग पैदा होता है, मिश्रणमेंके प्रमाणके गुणक संख्याके बदले लिये है। यह देखा है कि वर्णपटके रंगकी अन्य रंगोके मिश्रण के साथ बराबरी करना हो तो उन रंगोकी संपृक्तता कम करना जरूरी होती है। इसमें ऋण संज्ञाकी कल्पना की जरूरी होती है लेकिन यह कल्पना संभाव्य नहीं। लेकिन यदि वर्णपटके रंगको जरूरी प्राथमिक रंगको मिलानेसे और उसवर्ण पटके रंगकी संपृक्तता कम करनेके लिये इस्तेमाल किये हुए प्राथमिक रंगोके प्रमाणको नापनेसे ऋणात्मक गुणक निकाल सकते है। इस समीकरण की कल्पनाकी व्याख्या इस तरहसे कर सकते है:—यदि समिकरण में ऋणात्मक गुणक पाया जाय तो किसी ही रंग का वर्णन वह रंग वर्ण-

पटका हो,या अन्य कोनसाभी हो तीन प्राथमिक रंगोंके तादादमें करना संभाव्य होता है ।

अब सुवाल यह होता है कि इन तीनो गुणकोंका प्रमाण निश्चित करना यानी रंग संज्ञा पैदा करनेके लिये चुने हुए तीन भागोंका सापेक्ष प्रमाण निश्चित करना । च्युंकि दीप्ति यही तीनो प्राथमिक रंगोका गुण समान होता है, और रंग के भागकी तुलना करनासे दीप्ति की संज्ञा की लेखन वक्ररेषा निकाल सकते है (चित्र नं. २९७) । इसमें उत्तेजक के इकाईसे समान दीप्ति प्रदर्शित होती है, और उनके लहरियों से पैदा हुइ दीप्तिकी संज्ञा का नापन उन वक्ररेषा ओंकी कोटीओ जोडसे हो सकती है । इस तोरसे यदि इन वक्ररेषाओंकी कोटी ओकी जोड करेंसो सुपेद प्रकाश की दीप्ति की लेखन वक्ररेषा निकाल सकते है। वर्णपटमेंके प्राथमिक लाल, हरा, और नीला इन तीनो रंगोंमे नीले रंग की दीप्ति का प्रमाण बिलकुल ही कम होनेसे उसका नापन ठीक नहीं होता और पृथक्करण का प्रमाण मर्यादित होता है । और इसी वजहसे दीप्तिकी नींव की कोटी की जोड की पद्धति के बदले सुपेदकी चमक की संज्ञा के प्राथमिक रंगोका जो भाग होता है उसपर नहीं बल्कि रंगके गुणके इकाईओका इस्तेमाल करते हैं ।

कोनिग और **ऍबने** पंडितोने जो अनियंत्रित प्रमाणोंका इस्तेमाल किया वे ऐसे थे कि प्राथमिक रंग समप्रमाणमें लेनेसे सुपेद रंग पैदा होता था यानी रंगोंके समीकरण के राशियोंमे

सुपेद रंग = ०·३३३ लाल + ०·३३३ हरा + ०·३३३ नीला

यानी रंग का उसके दीप्तिके सिवा, त्रिरंगी इकाईयोमे खुलासा किया है, और जब

अ + ब + क = १ (a b y १)

रंग की इकाई के समीकरणसे रंग = **अ** लाल + **ब** हरा + **क** नीला एक त्रिरंगी इकाइमें रंग के प्रमाण का निदर्शन होता हैं। सुपेद प्रकाश मिश्र स्वरूप का होता है और जब वह छन्नामेंसे, जिसमें कुछ लम्बाईकी लहरिया सोकी जाती है, पार जाता है तब उसके गुणोंमें फर्क होता है । नेत्रके माध्यम असलमें दृष्टिस्थानमेंका (मैकुला) रंजित द्रव्य इस तरहका छन्ना होनेसे भिन्न भिन्न लोगोने किये हुए जुगल की तुलनामे फेर दिखाई पडते हैं। इस लिये **राइट पंडितनें** सुपेद रंग के बदले एक रंगी विसर्जन शक्तिका इस्तेमाल किया; जिसके गुणपर ऐसे छन्नाका असर नहीं होता और, जिसकी संपृक्तता, चुने हुए प्राथमिक रंगोमें के एक रंगसे, कम करना संभाव्य होता है । इस तरकीबमें भिन्न भिन्न संशोधकोंके शोधोंकी तुलना करनेसे मालूम हुआ कि वर्णपटके रंग कायम स्वरूप के रहते हैं सिर्फ सुपेद रंगमे फर्क दिखाई पडते है । पहलेकी पद्धतीमें सुपेद रंग कायम स्वरूपका होता था और रंगोके गुणोंमें फर्क होता था। एक रंगी कल्पनाके नींव पर प्रयोगसे रंगोंके गुणक निकाल कर गणितशास्त्रके अनुसार उनको सुपेद रंग की नींव पर हस्तसाधन और तुलनाके लिये तबदिली करना, ज्यादह काबिल होता है ।

राईट पंडितने नैसर्गिक नेत्रसंबंधी की मूलभूत बातोंको मुकर्रर करनेकी कोशिश की ई (१९२९) । अभितक उनके प्रयोगसे सिद्धांत पूर्णतया जाहिर नहीं हुए हैं ।

लेकिन जो कुछ जाहिर हुए है उनको हालमे मान्य करनेमे कुछ हर्ज नहीं, लेकिन उनपरसे आवर्तनकी वक्ररेषा जैसी पेशवागकी पद्धतियोंका इस्तेमाल करना वाजिब नहीं होगा ।
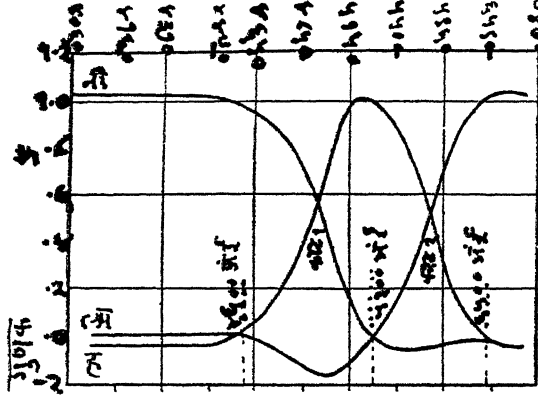
सज्ञा के गुणककी वक्ररेषा (अबने के सिद्धान्त : राईट)
चुने हुए प्राथमिक रंगोकी लंबाई लाल=६५०० अं. एक;
हरा = ५३०० अं. एकं; नीला = ४६०० अं. एक.

उन्होने खास लबाइके लहरियोंके प्राथमिक प्रकाशके, जैसे कि ६५०० अं. एकं का लाल, ५३०० अं. एकं का हरा और ४६०० अं एकं का नीला, इस्तेमालसे वर्णपटकी अनेक लहरिया की लंबाइके निकाले हुए गुणको की लेखन वक्ररेषा खींची है (चित्र नं.२९८देखिये) । इस वक्ररेषासे खास लहरियो की लम्बाई के लिये चुने हुए तीन प्राथमिक रंगोका प्रमाण मालूम हो सकता है । इस वक्ररेषामे चुने हुए हर प्राथमिक रग की लहरियोंकी लम्बाई की कक्ररेषा के उंचाईकास्थान बाजुके गुणक प्रमाणके १ के सामने होता है और दूसरे रंगोंकी वक्ररेषाएँ शून्य के सामने होते है तब मालूम होता है, और जहा लाल और हरेकी वक्ररेषा तथा हरे और नीले रंगकी वक्ररेषाएँ पारस्परिकसे काटते है (काट नं. २ और १) उन बिन्दुओंसे वर्णपटके अन्य दो रंगो की लहरियोंकी लम्बाई:जिन पर प्रमाण की नींव रची होती है मालूम होती है (५८२५–४९३० अं. एकं)।

इन वक्ररेषाओंसे वर्णपटके चुने हुए प्राथमिक रंगोंका त्रिरंगी प्रमाणके इकाईका मान निकाला जाता है ऐसी, ऋण गुणकोंके इस्तेमालसे इनको अलग करना संभाव्य हो तो, कल्पना करना आसान होता है । तीन प्राथमिक रंगोंके धन मिश्रणसे उनकी संपृक्तता कम कीये विना वर्णपटके रंगोका जोड मिलाना समव नही होता; लेकिन जोड मिलानेके लिये रंग की संपृक्तता कम करनेका प्रमाण उलमेसे बाद करनेसे पायोजानेवाले आनुमानिक (हायपायेटिकल) रंगोको प्राथमिक रग जैसे चुन सकते है; और इस तरकीबसे वर्णपटके सब रंगोके धन गुणकोंकी बनी हुई राशि पैदा होगी । प्राथमिक रंगोमे फर्क करनेसे वक्ररेषाओंके आकार बदल जायेंगे लेकिन इसका आनुमानिक तोरसे महत्त्व नहीं; एक राशिके असली प्राथमिक रंगोके गुणक मालूम हो तो उनको दूसरे प्राथमिक आनुमानिक राशिमें बीजगणिती

चि. नं. २९९
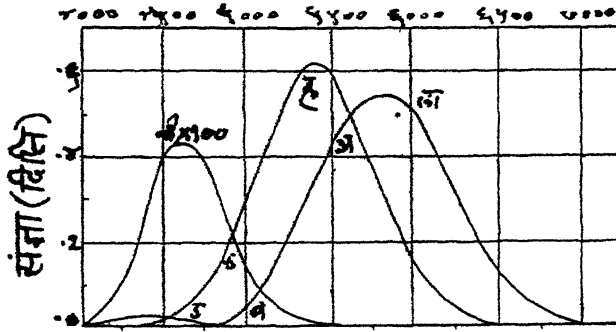
सुपेद वर्णपट की दीप्तिकी संज्ञाकी वक्ररेषाएं (राईट) स्वतंत्रसे चुने हुए प्राथमिकः नीलके प्रमाण को एक सों से गुणा है
(चित्र न. २९७ तुलना करना)

रूपान्तर (बैजरूपान्तर से) से पक्षान्तरनयन (समीकरणके दूसरे बाजूमे) करना सादि बात होती है।

एक राशिसे दूसरे राशिमें स्थानान्तरित करना : प्रयोगसे हर लहरियोंके लंबाईके गुणकोंका मान त्रिरंगी राशिके इकाईमे के प्रमाण मे निकालना; इनको गणिती रूपान्तरसे एकरंगी राशिके नीवसे जिनपर वे निकाले गये थे उनका दूसरे सुपेद प्रकाशके राशिमें स्थानान्तर कर सकते है;५१०० अ. एकंके बदले हुए गुणकोसे वक्ररेषा (चित्र न.२९८) से

५१०० अं. एकं = –२०७ लाल + १·००२ हरा॰ + ०·२०५ नीला॰......(१)

इसमे सिर्फ बदल करनेसे = ०·२४९ लाल'+ ०·५०७ हरा' + ०·२४४ नीला'......(२)

मान निकालने की दोनों पद्धतियोंमेंका (दीप्तिकी और त्रिरंगी की) संबंध आसानीसे जान सकते है, यदि पहले एक राशिके अनेक प्राथमिक रंगोकी सापेक्ष दीप्तिका प्रमाण निकालकर रंग के समीकरण को दीप्ति के समीकरण मे स्थानान्तर करें।

यानी राईटके प्राथमिक रंगोंके इकाईके प्रमाण की सापेक्ष दीप्ति इस तरहकी होती है:–

(प्रला = ०· ६६६, प्र ह = १·, प्र नी = ०·०५२)

यदि ऊपरके मानका पक्षान्तरनयन करे तो आनुमानिक रंगोकी दीप्ति के प्रमाण को जान सकते है और इन संख्याके जोडसे जो कुछ दीप्तिका प्रमाण पाया जायगा वही ५१०० अं. एकं की कुल दीप्ति होगी (अबने की नियम) सुपेदकी दीप्तिकी आदर्श लेखन वक्ररेषा (चि. नं. २९४) से ध्यान मे आ जायेगा कि ५१०० अ. एकं की दीप्ति ०·४८५ होती है : और सापेक्ष दीप्तिओंको साधारण भाजक के (कामन डिना-मिनेटर) प्रमाण में घटाना होगा। दीप्तिका समीकरण त्रिरंगी समीकरण नं. २ के अनुसार इस तरहसे लिख सकते है:—

०·४८५ (५१०० अ. एकं) = ०·०९१५ प्र ला + ०·३९३ प्र ह + ०·०००६३ प्र नी

हर लहरियोंकी लम्बाई के समीकरणको हलकरनेमें अनियंत्रिततासे खास चुने हुए प्राथमिक रंगोके लिये सुपेद प्रकाशके वर्णपटकी दीप्तिकी संज्ञा की वक्ररेषा होती है (चित्र नं२९९)। इस वक्ररेषासे हर लहरियोंकी लम्बाईके लिये चुने हुए तीन प्राथमिक रंगोके प्रमाण दीप्तिके राशिमें मिलते है और वक्ररेषाके व्यापित क्षेत्रसे सुपेद प्रकाशसे उत्तेजित हुए तीन प्राथमिक रंगोके प्रमाण का बोध होता है। इस पद्धतिके प्रयोगसे रंगमिश्रण के कोईबी सवालका रूपातर दीप्तिके मूलभूत राशिमें कर सकते है।

अध्याय १९ वा

चाक्षुष संज्ञा–चाक्षुष एन्द्रियकज्ञान (व्हिज्युअल सेनूसेशन्स)

दृष्टिपटल को उत्तेजित करनेसे पैदा होनेवाले ज्ञान की संवादि प्रतिक्रियाओंका विचार तीन तरहसे करना संभाव्य होता है:—

(१) **प्रकाश संज्ञा या ज्ञान** जिसमें प्रकाश और उसकी तीव्रता के फर्कों के क्रम विन्यास का बोध होता है।

(२) **आकार संज्ञा या ज्ञान** जिसमें उसकी अलग अलग प्रतिमाओंके फर्कोंका बोध होता है।

(३) **रंग संज्ञा या ज्ञान** जिसमें प्रकाशके गुणोंका बोध होता है।

चाक्षुषसंज्ञाओंका विकास

चाक्षुषसंज्ञाओंके विकास का गौर करना बहुतही कठनाई की बात होती है क्योंकि अपने संज्ञाओका तजरबा–अनुभव–के सिवा अन्य लोगोंकी संज्ञा का जो तजरबा–अनुभव मिलता है उसका ठीक ठीक बयान करना मुष्किल की बात होती है। अपनेको मुमकिन इतनाही होता है कि दूसरे लोगोंकी प्रतिक्रिया का निरीक्षण करना और उसपरसे आनुमानिक तजरबाओंका–अनुभवोंका सिद्धान्त निकालना। इन सिद्धान्तो की नींव अलबत अपने खासके सिद्धान्तोंपर रचना जरूरी हैं, लेकिन एक बात को ख्यालमें रखना जरूरी है कि, अपने खुदके तजरबे दूसरे पर मगरूरीसे लगामा, या प्राणियो की चाल के सकत बयान खुदके तजरबे जैसे ही करना यह बिलकुल गैर वाजिब बात है। लेकिन प्राणियों की चाल परसे ही, या आदिलोगोंसे या बालकों के, जिन्होंके चालसे महत्व की खबर चुनना संभाव्य होता है, बहुत सबूत मिला सकते हैं।

प्रकाशसंज्ञा या ज्ञान—चाक्षुष संज्ञाओंका विकास का विचार करनेसे मालूम होता है कि इन तीनों संज्ञाओंमें प्रकाश संज्ञा प्रारंभिक होती है। पहले ही कहा है कि प्राणियों की उत्क्रान्तिमें जैसे कि एक पेशिदार प्राणियोंमें भी प्रकाश मर्यादा की अधूरी संवादि प्रतिक्रिया दिखाई पडती है। प्राणियोंके ऊंचे दर्जेकी अवस्थामें इस संज्ञाका विकास स्वतंत्र रीतिसे भिन्न भिन्न तरहका होता है इतनाही नहीं बल्कि सस्तन प्राणियोंमें उनकी अकल के विकास के साथ साथ प्रकाश संज्ञा मानवी प्राणिसे ही ज्यादह विकसित होती है।

इसबात का सबूत **पावलोव्ह** के प्रयोगोंसे पूरी तोरसे साबित हो सकता है। **पावलोव्हने** कुत्तेपर प्रयोग (१९११–१९२७) किये, जिसमें उन्होंने अन्यावलम्बित प्रतिक्रिया (कन्डीशन्ड रिफ्लेक्स) का विकास का संशोधन करनेकी कोशिश कीई जिसके लिये लालाश्रावको सूचक माना। कुत्ते की लाला प्रणालीको बाहरीसे छेद करके कुत्तेको कुछ खानेको देते ही फौरन इस छिद्रमेंसे लाला के कुछ बून्द बाहर आये। यदि कुत्तेको खाना देनेके समय और दूसरा एक प्रकाश जैसा उत्तेजक उसके नेत्रपर गिराया, तो खाना देना और प्रकाश गिराना ये

दोनों क्रियाये सहचरित होगी। और फिर ऐसी एक अवस्था पैदा होगी कि सिर्फ नेत्रपर प्रकाश गिरानेसेही लाला बहने लगेगी। इस तरहसे उस कुत्तेमें अन्यावलम्बित प्रतिक्रियाकी अवस्था पैदा हो गयी थी। इस प्रतिक्रियाका विकास होनेके बाद खाना देनेके पहले कुत्तेको काला परदा बतलाया; उससे यह क्रिया शुरू होनेके पश्चात काले परदेके बदले उसकी उसी आकार का सुफेद परदा बतलाया। उसका असर होनेके बाद सुपेद रंगमें धीरे धीरे भूरे रंगको मिलाकर काले रंग तक प्रकाश की प्रतिक्रिया देखने की कोशिश की जिससे साबित हुआ कि उस कुत्तेको रंगोंके सूक्ष्म फर्कोंका ज्ञान था; क्योंकि कुछ सुपेद रंगसे लाला श्राव हुआ और काले रंगसे लाला श्राव नहीं पैदा हुआ। लेकिन मनुष्य प्राणिमें ऐसे सूक्ष्म फर्कोंका ज्ञान नही दिखाई पडता। इससे यह बात साबित हो सकती है कि प्रकाश की तीव्रतामे के फर्कोंको जाननेकी शक्ती का विकास कुत्तेके चाक्षुष विश्लेषण यंत्रकी ताकद इतनी बढकर होती है कि उसकी मर्यादा मुकर्रर करना अपनेको मुष्किल होता है।

आकारसंज्ञा—इस संज्ञाका विकास भी प्रारंभिक सा होता है; और ऐसी शहाबत (पुरावा) मिली है कि योग्य और खास तरह का संज्ञाग्राहक व्यूह का विकास होते ही प्रतिमाओंके भिन्न भिन्न फर्क पहचानना संभाव्य होता है। मछलीमें यह मिलता है; और पक्षी वर्गमे भी आकारज्ञानकी तीव्रता बहुत ऊचे दर्जेकी होती है। **पावलोव्हनें** इस बारेमें कुत्तेपर प्रयोग किये है। पहले कुत्तेको अण्डाकार पदार्थ दिखाया; फिर धीरे धीरे उसके आकार और क्षेत्रमे फर्क करके पूर्ण गोलाकार पदार्थ दिखाया तब उसकी अन्यावलम्बित प्रतिक्रिया बढकर उस कुत्तेको ये सूक्ष्म फर्क समझमें आते है ऐसा मालूम हुआ।

रंगसंज्ञा—यह सज्ञा प्राणियोंके विकासमे देरसे पैदा होती है। निर्पृष्ठवंशी—बिना-रीडवाले प्राणियोंमें (इन्व्हर्टीब्रेट्स) प्रकाशमर्यादाकी संवादि प्रतिक्रिया खास चुनाव की रूपकी होती है; और यह छोटी लहरियोंवाली और जिनकी रासायनिक क्रिया ज्यादह जोरदार होती है ऐसी किरणोंपर अवलम्बित होती है। पृष्ठवंशी या रीडवाले प्राणि-योंमें वर्णपट का विश्लेषण दीप्तिसे पहले शुरू होता है। और वह क्रिया प्रायः चाक्षुषनील-लोहित पिंग की खास शोपण क्रियापर अवलम्बित रहती है, जिसकी लेखन वक्ररेषा मनुष्यके दीप्तिकी स्कोटापिक वक्ररेषासे मिलती है यह पहले कहा है (चित्र नं.२७१देखिये)। अर्थात् दीप्तिके शोधक अवकलनमेंसे रंगका अवकलन होना संभव है। और पृष्ठवंशी प्राणियोंके नीचेके वर्गके प्राणि मनुष्य का नीरंग वर्णपटको देख सकते हे और उनका चाक्षुप व्यूह जिस मनुष्यको रंगज्ञान नही होता उसके जैसा ही होता है।

मछली को रंगज्ञान नही होता लेकिन उनके ऊपर वर्णपटकी किरणे डालनेसे वे हरे रंगकी ओर जमा होते है। मछलियाँ आमिषकी तरफ उसके रंगके आकर्षण से नही बल्कि उसकी दीप्तिकी वजहसे जाती है। **मेंढक** वर्गके भूजलचर प्राणि प्रकाशमर्यादा को जान सकते है। कुछ प्राणियोंको नील रंग पसंद होता है और कोईको लाल। पक्षिवर्गके रंगज्ञान संशोधनसे यह मालूम हुआ है कि दिनको फिरनेवाले पक्षिगणको पीला और केशरी रंग पसंद होता है। और रातके पक्षिगणको पीला और हरा रंग पसंद होता है। उनकी कनी-

निका की प्रतिक्रियाये उनके पसंदीके अनुसार होती है। **सस्तन** प्राणियोमे प्रकाश संज्ञा और कनीनिका की प्रतिक्रिया मनुष्यकी इन कियाओंके समान होती हैं। और उनकी वर्णपट की मर्यादा और दीप्ति मनुष्यके सरीखी दिखाई देती है। लेकिन उनकी रंगसंज्ञा बिलकूल प्राथमिक (मूलारंभी) अवस्थाकी होती है। और उसका प्रमाण जातिके सापेक्ष बुद्धिके अनुसार अवलम्बित होता है। रंगज्ञान मस्तिष्क केन्द्रोका कार्य है। मस्तिष्क केन्द्रोका नाश होनेसे यह गुण नष्ट हो जाता है लेकिन दीप्ति कायम रहती है।

मानवी जातिके आदि लोगोमे प्रकाश ज्ञान और आकार ज्ञान तीव्र होता है। लेकिन रंगज्ञान मूल स्वरूपका होता है। इनमें, रंगज्ञानका अभाव है ऐसे लोगोंकी संख्याका प्रमाण ज्यादा दिखाई देता है। ये लोक लाल और पीले रंगसे आकर्षित होते हैं। छोटे बालकोमें रंगज्ञानका विकास बहुत देरसे दिखाई देता है। बच्चा छ महिनेके बाद लाल और पीले रंगसे आकर्षित होता है। इन रंगोकी छाप मनपर ज्यादा रहती है।

उत्तेजक और संज्ञाओंका पारस्परिक संबंध

ऐन्द्रिय प्राकृतिक संज्ञा और भौतिक उत्तेजक ये दोनों भिन्न भिन्न प्रणालीके भिन्न भिन्न धर्म होते हैं। एक दूसरेसे प्रत्यक्ष और पारिमाणि जैसे नहीं पैदा होता। क्यों कि ऐन्द्रिय संवादि क्रिया प्रत्यक्ष उत्तेजकसे पैदा नहीं होती; लेकिन दोनों की क्रिया और प्रतिक्रिया होकर स्वतंत्र रूपसे पैदा होती है और दोनोंमें पाररपरिक संबंध होता है। उत्तेजक खास प्रमाणमे जोरदार हुए विना संज्ञा पैदा नहीं होती, और यह जितना ज्यादह जोरदार होगा उसी प्रमाणमें संज्ञा जोरदार होगी और इतनाही नहीं बल्कि उत्तेजक अति जोरदार हो तो संज्ञाका विशेष गुणधर्म भी बदल जाता है।

(१) जब कमसे कम बल्के उत्तेजक से संज्ञा पैदा होती है तब उस उत्तेजक को **साधारण** प्राथमिक उत्तेजक प्रमाण कहते हैं (जनरल थ्रेशहोल्ड व्हैल्यु—लिमिनल व्हैल्यु)

(२) उत्तेजकके तीव्रताके भेद का ज्ञान होनेके लिये उत्तेजक को जिस प्रमाणमें बढाना जरूरी होती है उस प्रमाणको **भेदकारी प्राथमिक प्रमाण** कहते है (डिफ्रेनशियल थ्रेशहोल्ड व्हेल्यु—लिमिनल थ्रेशहोल्ड व्हैल्यु)।

(३) संज्ञाके गुणधर्म जिस उत्तेजकसे बदलना संभव है उसको **खास प्राथमिक प्रमाण** कहते है (स्पेसिफिक थ्रेशहोल्ड व्हेल्यु—लिमिनल व्हैल्यु)।

संज्ञा और उत्तेजक के पारस्परिक संबंध का शोध पहले पहल भौतिक मानसिक शास्त्रज्ञ **वेबर** पंडितने किया है (१८३४)। उन्होंने इस संबंधमें जो नियम बनाया है वह उन्हींके नामसे जाना जाता है: **वेबरका नियमः—जोरदार संज्ञा पैदा करनेके लिये उत्तेजकमें बढाव करनेकी जरूरी प्रमाण और कुलउत्तेजक इन दोनोंमेंका प्रमाण नित्य स्वरूपका होता है।**

ऐसा समझो कि ९९ और १०० मोमबत्तीके बल्के दो दीप हैं। इन दोनो के तेजोंका फर्क जानना यदि संभव है, तो ९९९ और १००० बलके अन्य दो दीपोंका या ९.९ और १०.० बलके दो अन्य दीपों में के तेज का फर्क जानना संभव होता है।

दो संज्ञाओंमें के कमसे कम भेद साधारणतया अपूर्णांक में लिखनेका रिवाज है।

$$\delta \text{ सं.} = \frac{\text{ऊ}_2 - \text{ऊ}_1}{\text{उ}_2} = \frac{\delta \text{उ}}{\text{उ}} \left(\delta S = \frac{I_1 - f}{I_2} = \frac{\delta I}{I} \right)$$

"सं" (S) संज्ञाका माप है और ऊ (I)उत्तेजक का माप है। जब कमसे कम उत्तेजकका प्रमाण = ० होता है तब अनुपात इकाई होती है और कमसे कम संज्ञाका माप उत्तेजक होता है।

जब कम बल्के उत्तेजकसे नेत्रकी संज्ञाग्राहकता ज्यादह प्रमाण की दिखाई देती है तब ये फल उसके मूल्यके उत्क्रम संख्यामें ही लिखने की प्रथा है और इसीको संज्ञाका गुणक (भेदकारीगुणक) कहते है।

$\therefore \frac{\text{ऊ}_2}{\text{ऊ}_2 - \text{ऊ}_1}$ या $\frac{\text{ऊ}}{\delta \text{ऊ}}$ ऐसा लिख सकते हैं।

सन १८६० में **थीओडर फेक्नर पंडितनें** संज्ञाके कमसे कम भेदमें संज्ञाकी इकाईकी संख्या समसमान होती है ऐसा मानकर संज्ञाके इकाईके संबंधमें ऐसा नियम बनाया कि **संज्ञाओंमें के फर्कोंका बढाव उत्तेजकोंके घातांक गुणकके प्रमाण में होता है,** यानी उत्तेजक का बढाव भूमितिय श्रेणिके प्रमाणमें (जिआमेट्रिकल प्रोग्रेशन) हो तो संज्ञाका बढाव गणित श्रेणिके प्रमाणमें (अरिथमेटिकल प्रोग्रेशन) होगा।

इस ऊपरके नियम की लेखन वक्ररेषा निकाल सकते हैं। उत्तेजकोंके घातांक गुणकोंकी भुजरेषा निकालकर उसके ऊपर भिन्न भिन्न संज्ञाकी कोटी रेषा निकाली जाय और उनके सीरेको बिन्दुओंको अन्य रेषासे जोडे तो जोडनेवाली यह रेषा वक्ररेषाके बदले साधारणतया सरल होती है।

वेबर पंडित का नियम साधारण तोरसे बराबर है: क्योंकि जहांतक उत्तेजक की तीव्रताका प्रमाण मध्यम होता है तबतक संज्ञा और उत्तेजक इनका संबंध नित्य प्रमाणपद रूपका होता है। लेकिन तीव्रताके प्रमाणमें कम या ज्यादह फर्क करनेसे संज्ञा और उत्तेजक के नित्य प्रमाणपद में फर्क होता है।

उत्तेजक की तीव्रता, कार्यक्षेत्रका विस्तार और क्रिया कालमें फर्क करनेसे हर संज्ञाकी तीव्रता तथा व्याप्तिमें परिमाणात्मक फर्क दिखाई देता है।

प्रकाशसंज्ञा (लाईट सेन्स)

जिस गुणसे प्रकाश और उसकी तीव्रताके क्रमविन्यासमें के भेद जान सकते है उसे प्रकाशसंज्ञा कहते हैं। ऐसी प्रकाशसंज्ञाकी परिभाषा हरमन ओबर्टने पहले पहल की। उसके ठीक मापमें दो बातें आवश्यक होती हैं:—

मापनकी रीति

(१) प्रकाशकी कमसे कम तीव्रताका बोध (लाईट मिनिमम या इनटेनासिटी थ्रेशहोल्ड)

(२) उत्तेजकके प्रमाणमे फर्क करनेसे प्रकाशतीव्रताके प्रारंभिक अन्तरमें का कमसे कम बोध (दि लाईट डिफरेंस दि डिफरेंशियल थ्रेशहोल्ड फॉर लाइट) इसके मापनेकी अनेक रीति होती है जैसे कि **फारस्टरका** फोटामिटर, **नागेलका** आपटामिटर, प्रोजेकशन लान्टर्न्स, फोटोमेट्रिक ग्लासेस, रोटेटिंग लेन्सेस।

(१) प्रकाशसंज्ञाका माप सबसे पहले **ओबर्टनें** सन १८६५ मे किया। इस मापके लिये अंधेरेसे मिलती हुई अवस्थाके नेत्रोंपर जलती प्लाटिनम तार का प्रकाश उत्तेजक डालकर जिस विद्युत प्रवाहसे वह तार दिखेगी वह विद्युत प्रवाह सज्ञाका माप होगा। फारेस्टरनें इस प्रयोगमे यह सुधार किया कि फोटोमिटर के परदे (स्क्रीन) पर खास मापका प्रकाश, जिसका नियंत्रण पृथक्करण पट्टके—डायफ्रामके—जिस छिद्र को छोटा या बडा करना संभव, है उससे डालकर किया जाता है।

(२) प्रोजेकशन लानटेन के प्रकाशकिरण परदेपर डालकर उसीके बाजूमें प्रकाशकिरणोंका अन्तर जाननेके लिये थोडी भिन्न तीव्रताकी प्रकाश किरणे डालते हैं। इन दोनों किरणोंका नियंत्रण तारका सदृश डायफ्रामसे कर सकते है।
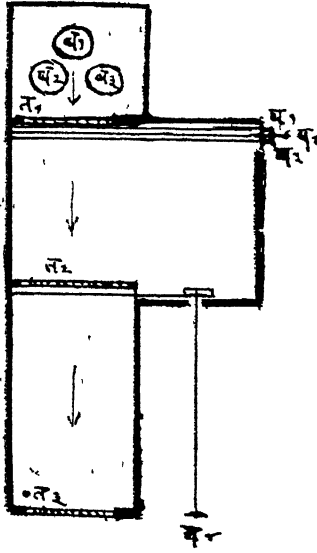
चि. नं. ३००

नागेलका अडापटा मिटरः—तीन बत्तीओंसे (ब. १·२·३) प्रकाश एक ओपल काचकी तश्तरी (त¹) मेंसें पार जाता है; इसके तीव्रताका नियमन तीन अलग अलग परदे के गडगडी से (ग १.२.३) होता है। दूसरी एक तश्तरी (त.²) जिसके परदेकी गडगडी (ग ४) होती है इसका और नियमन होता है। तीसरी ओपल की तश्तरी (त ३) होती है जिसके सामनेसे देखनेसे वह दृश्य पदार्थ होता है।

(३) **घूमती चकरीः**—इसके पीठ पर सुफेद और काले पट्टे खींचकर उसे जोरसे घुमावे तो भूरे रंगकी संज्ञा मालूम होती है। भूरे रंगका प्रमाण पट्टेके आकारपर अवलंबित होता है। सुफेद जमीन (पीठ) पर कमसे कम प्रमाणके भूरे रंगकी संज्ञा होना यह प्रकाशका प्रमाण होगा; और काली जमीनपर कमसे कम प्रमाणके भूरे रंगकी संज्ञा होना यह कमसे कम प्रकाशसंज्ञाका प्रमाण होगा। इस प्रयोगसे कम प्रकाशित किरणोंका अन्तर जाना जाता है।

इन प्रयोगोंमे कनीनिकाके आकारसे परिणाम होता है यह ख्यालमें रखना चाहिये। क्योंकि कनीनिकाका आकार जितना बडा होगा उसके अनुसार दृष्टिपटलपर असर होगा।

(अ) प्रकाशतीव्रताका प्रारंभिक प्रमाण (इन्टेन्सिटी थ्रेशहोल्ड फॉर लाइट–निरंगी प्रारंभिक प्रमाण)

अत्यल्प प्रकाश प्रमाण

किसी मनुष्यको अंधेरेमें बहुत समय तक बिठाया जाय तो उसके नेत्रकी प्रकाशसंज्ञाकी ग्राहकता कई गुणी बढ जाती है । नेत्रकी इस प्रकाशग्राहक शक्तिको प्रकाशसे मिलती जुलती करनेकी अवस्था संयोजन या मेल होने की(अडापटेशन)अवस्था कहते हैं। इस अवस्थाका विवेचन फिर किया जायगा। लेकिन नेत्रकी विशेष अवस्थानुसार उत्तेजकके प्रारंभिक प्रकाशका संज्ञाके प्रमाणका अन्दाजा करनेके लिये अंधेरेसे मिले हुए नेत्रकी अर्थात स्कोटापिक नेत्रकी परीक्षा करनी चाहिये। इसमें प्रारंभिक प्रमाण बहुत कम होता है । (पन्हा ४९७ देखिये) ।

इस परीक्षामें दिखाई देनेवाले परिणामोंमें निम्नलिखित कारणोंसे फर्क होते हैं।

(१) दृष्टिपटलकी बातेः–(अ) दृष्टिपटलका उत्तेजित होनेवाला भाग (ब) उसकी मेल होनेकी अवस्था.

(२) उत्तेजक का स्वरूप: वर्णपटकी किरणोंका धर्म;उनका विस्तार;आकार क्षेत्रका विस्तार।

(३) इर्द गिर्द का क्षेत्र :

दृष्टिपटलकी बातें

दृक्क्षेत्रः–साधारणतया संपूर्ण दृष्टिपटल प्रकाशसे उत्तेजित होता है, तो भी दृष्टिपटलके परिधिभागके ऊपरी, भीतरी और नीचेके भागमें अंधक्षेत्र दिखाई देता है । दृष्टिपटलके उत्तेजित भागके सब बिन्दुओंकी चाक्षुप संज्ञाका प्रक्षेपण बाह्य क्षेत्रमें जब होता है तब उस क्षेत्र को **केवल चाक्षुष क्षेत्र** कहते हैं (ॲबसोल्यूट व्हिज्युअल फील्ड) लेकिन चेहरेके नाक, गाल, और भौं इनके आगे आनेसे दृक्क्षेत्रके ऊपरी, भीतरी और नीचेके भागका क्षेत्र और भी घटता है; इस लिये व्यवहारमें दृक्क्षेत्र इन कारणोंसे और भी संकुचित होता है। इस क्षेत्र को **सापेक्ष दृक्क्षेत्र कहते हैं** (रिलेटिव व्हिजुअल फील्ड) । इन दोनों क्षेत्रोंमे फर्क बहुत कम होता है; और मंगोल लोगोंमे जिनकी नाक चपटी होती है उनके नासिकाकी ओरके दृक् क्षेत्र में बहुतसी वृद्धि नहीं दिखाई देती।

दृक्क्षेत्रका मापन दृक्क्षेत्र मापन यंत्रसे (चि. नं. ३७ प.हा ११७) करते हैं। इस मापन पद्धतिका असली तत्व यह होता है कि दृष्टिस्थान केन्द्रको दृक्क्षेत्र मापन यंत्र के कंसके बीचके बिन्दुपर स्थिर करके इस यंत्र के कंसपर दूसरा पदार्थ दीखनेकी आखिरी मर्यादा का ध्यान लेते हैं। इस तरहसे कंसको ऊपर, बाहर, नीचे और अंदरकी ओरको घुमाके चारों ओर के दृक्क्षेत्र का मर्यादा चित्र खींच सकते हैं। दृक्क्षेत्र मापन का विवेचन सबसे पहले थामस यंगनें सन १८०१ किया था।

दृक्क्षेत्र मापन की दूसरी पद्धति यह है जिसमें संज्ञाका प्रक्षेपण कंसके (कमान) अलावा समतल पृष्ठ पर दृश्य वस्तुको दिखाते हैं। इसे काम्पीमिटर कहते हैं।

समतल पृष्ठपर और कंस या कमान पर प्रक्षेपण किया हुआ दृष्टिपटलका दृक्क्षेत्र चित्र

चित्र नं. ३०१
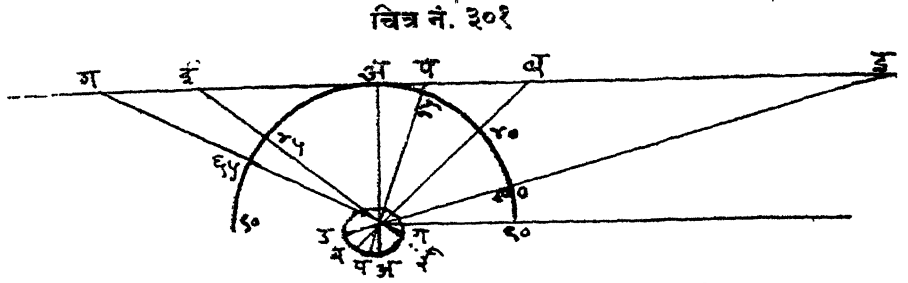
चाक्षुष क्षेत्र समतल पर और वर्तुल-पेरिमिटरके कंस पर किया है

नं.३०१से ध्यानमें आ जायेगा। और उसीसे यह बात भी ख्यालमें आ जायेगी कि दृक्क्षेत्र मापन यंत्र-से दृष्टिपटल के परिधिके भाग की जांच अच्छी तोरसे होती है। और काम्पीमिटर का उपयोग दृष्टिपटलके केन्द्रस्थ भागके प्रक्षेपित दृक्क्षेत्र जाननेमें काफी काबिल होता है। क्षेत्रके नापनमें दृष्टिपटलके विकृत अंध भागोंका (स्कोटोमा) ज्ञान होता है। चाक्षुप-दृक्क्षेत्र नापन से उसकी मर्यादा में उत्तेजक प्रकाशके तीव्रताके अनुसार फर्क होता है। मध्यम प्रमाण के प्रकाशसे दृष्टिपटलका दृष्टिस्थान-केन्द्रका भाग ज्यादह उत्तेजित होता है और परिधिके भाग की ओर संज्ञाग्राहकता का प्रमाण कम होता जाता है ऐसा मालूम होगा। दृक्क्षेत्र मापन यंत्र की पद्धति मे उत्तेजक की प्रखरता का प्रमाण जाननेके लिये दृश्य पदार्थके आकारमें फर्क करना जरूरी होती है। दृष्टिस्थान केन्द्रमें कमसे कम आकारका जो पदार्थ दिखाई देता है वह परिधि भागमें नहीं जाना जाता। जिनका आकार बराबर तरहसे मुकर्रर किया गया हैं, ऐसे पदार्थों की श्रेणी के इस्तेमालसे दृष्टिपटल की, हर रेखांशमें पदार्थोंकी दिखाई देनेकी मर्यादा जाचना संभव है। इन बिन्दुओंकी श्रेणी को जोडनेवाली रेषासे प्रकाश संज्ञाग्राहकता का समलक्ष्य (आयसापटर) नियुक्त किया जा सकता है। और इससे खास उत्तेजक को संवादि होनेवाले दृष्टिपटल के भाग मर्यादित होते है और यह मर्यादित समतल उससे खास बने हुए दृक्कोणसे और उसपरसे खास प्रकाश के परिवर्तनसे जाना जा सकता हैं।

इस पद्धतिसे दृष्टिपटल की प्रकाशग्राहकता के परिमाण का नापन कर सकते है। लेकिन यह बात भी सत्य है कि भिन्न भिन्न परीक्षको के निरीक्षणमे फर्क दिखाई देते है। और इसकी वजह यह है कि दृष्टिपटल के उनके संशोधनमें आदर्श निरूपण का (स्टँडर्ड-डायमेन्शन) अभाव होता है, च्यूंकि जांच के समतलसे परावर्तनकी वजहसे निकाले हुए ज्ञात उत्तेजक का वर्णन केवल विसर्जन शक्तिके इस्तेमाल किये हुए इकाईमें, और अभी भी मूलभूत बातोंका अभाव दिखाई देता है।

इस विषय का **रोन पंडित** का निरीक्षण ज्यादह महत्व का हैं। साधारण प्रमाणके प्रकाश की तीव्रतामें जब दृक्कोण ३४.२'का होता है तब दृक्क्षेत्रकी मर्यादा बाहरकी यानी कनपुटी की ओरको ९३°, भीतरकी यानी नासिकाकी ओरको ६२°, नीचेकी ओरको ७६°, और ऊपरकी ओरको ६९° अंश की होती है। जब निकष (कसौटी) पदार्थसे

बना हुआ दृक्कोण आधीडिग्रीसे बडा होता है तब दृक्क्षेत्रकी सिर्फ बाहरीकी मर्यादा थोडी बढ जाती है, जो ४·५° डिग्री के दृक्कोणसे १०४ डिग्रीतक थोडी बढ जाती है; दृक्कोण ९° का हो तो दृक्क्षेत्रकी बाह्य मर्यादा १०७° डिग्रीतक जा पहुँचती है और मर्यादा का ज्यादहसे ज्यादा प्रमाण यहि माना गया है। ९०° डिग्रीसे ज्यादा मर्यादाका कारण तारकापिधान की विशेष ऊँचाई होती है। जब दृक्कोण आधी डिग्रीसे (२७' मिनिट) कम प्रमाण का होता है तब दृक्क्षेत्र इतना संकुचित होता है कि पदार्थ सिर्फ दृक्स्थैर्य बिन्दुमें हि दिखाई पडता है। लेकिन यह संकुचता समकेन्द्रिक नहीं होती, और कोनका प्रमाण जितना कम होता है उसी प्रमाणमें दृक्क्षेत्र संकुचित होकर गोल (चि.नं. ३०२) होता जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दृक्क्षेत्र सापेक्ष रूपका होता है। और यह उत्तेजकके प्रमाणपर अवलम्बित होता है; और इसके आकारके स्थैर्य बिन्दुके इर्दगिर्द क्षेत्र छोटा गोल होगा या संपूर्ण दृष्टिपटलके प्रक्षेपणका क्षेत्र होगा।

चित्र नं. ३०२ चाक्षुष क्षेत्रके समलक्ष (आयसापटर) का नकशा (ट्रकेअर-रुग्णविषयक क्षेत्रनापन)
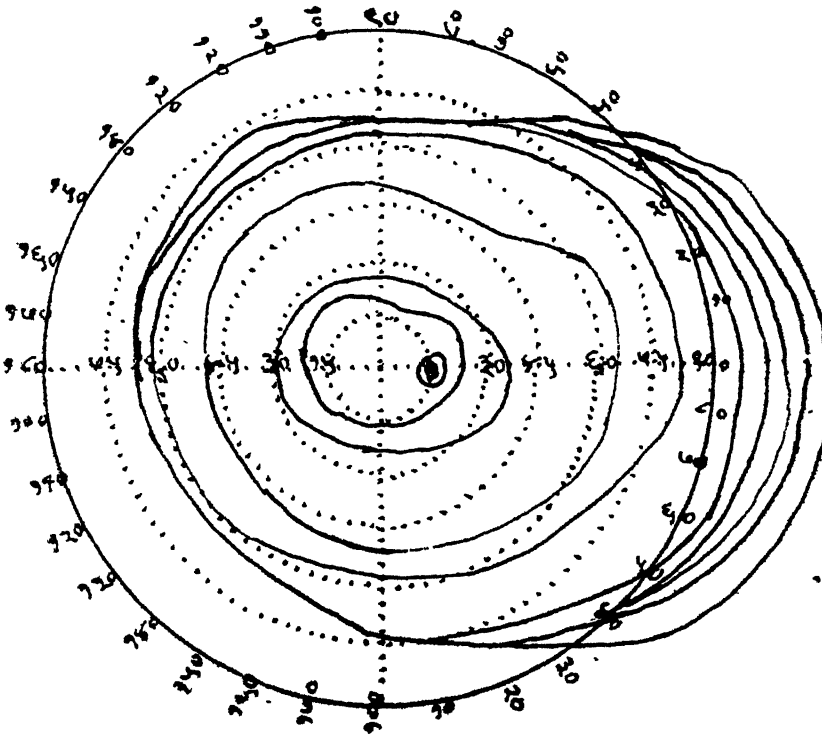
चाक्षुष क्षेत्रका रोगेके नापन के अनुसार निकाला हुआ नकशा जिसने संज्ञाग्राहकताके प्रमाण में चाक्षुष क्षेत्रकी चारो ओरकी मर्यादा जान सकते हैं पार पहले नापनका दृष्टिकोण ९°था, फिर वह कोण आधा करके नापन किया हर नापनके समय पूर्वका कोण आधा करके नापन किया है। अंधतिलक नकशे मे काले बिन्दुसे बतलाया है।

३४·२' प्रमाणके कोणसे चाक्षुष क्षेत्र की मर्यादा कनपटीकी ओर ९३°, नालिकाकी ओर ६२° नीचे ७६° और ऊपर ६९°

अंधतिलक (ब्लाइन्ड स्पॉट)

दृष्टिरज्जुशीर्ष और उसके चारो ओरके कुछ भागमे विषय ग्राहक घटकोंका अभाव,

चित्र नं. ३०३

अंधतिलक जिसका प्रक्षेपण दाहिनेसे ६ इंच पर किया है।

होनेसे दृक्क्षेत्रमे उनका प्रक्षेपण नहीं दिखाई देता। इसको अध भाग कहते है और इसका प्रक्षेपण दृक्क्षेत्रमे कर सकते है। सबसे पहले **म्यारिओटने** सन: १६६८ मे शोध किया कि जब किसी पदार्थपर दृष्टि स्थिर करनेसे उस भागपर दूसरे पदार्थकी प्रतिमा गिरनेसे वह नहीं दिखाई देता।

चित्र नं.३०४ मे एक स्वास्तिक और एक **वृत्त** है।बांये नेत्रको ढाक कर दाहिने नेत्रसे स्वस्तिककी तरफ देखे और चित्रको को दस इच नजदीक

चित्र नं. ३०४

स्वास्तिक के ओर बाया नेत्र बंद करके दाहिने नेत्रसे ९ इच फासले परसे देखनेसे वर्तुल नही दिखाई देता।

तक लावे तो गोल नहीं दिखाई देता। सचेतन अवस्थामे इससे कुछ तकलीफ नहीं होती इसके कारण यह .है:—अंशतः (१) अपनेकी आदत, (२) नेत्रका रिक्तभाग दूसरे नेत्रके कार्यसे भरजाना, (३) एकाक्ष अवस्था,(४) स्थैर्य बिन्दुका कभी स्थिर न होना; ((५) मुख्यतः इन्द्रियगोचर क्रियाके नैसर्गिक धर्मसे सचेतन अवस्थामे नमूनाका संपूर्ण बन जाना।

दृष्टिपटलका दृष्टिस्थानकेन्द्र प्रकाशसे मिली हुई अवस्थामे सबसे ज्यादा संज्ञाग्राहक होता है लेकिन उलटी अवस्थामे यानी अंधेरेसे मिली हुई अवस्थामे उसकी ग्राहकता कम होती है। दृष्टिस्थानके बाहरका भाग इन अवस्थाओंमें बहुतही संज्ञाग्राहक होता है; दृष्टि-स्थान केन्द्र की अपेक्षा १००० गुना ज्यादा संज्ञाग्राहक होता है जहा कम प्रकाशमे सापेक्ष अंधतिलक होता है। दृष्टिस्थान केन्द्रमें प्राकृतिक अंधतिलक होता है यह बात पहलेसेही ज्योतिषी लोगोंको विदित है क्योंकि कृत्तिका नक्षत्रके छोटे तारापुंज मेके चार या पाच तारका दृष्टिस्थानकेन्द्रके भागसे दिखाई देते है लेकिन उसके बाहरके भागसे देखनेसे उनकी संख्या ज्यादा दिखाई देती है ऐसा उनको ज्ञात हुआ था। भिन्न भिन्न लोगोमे यह ज्ञान भिन्न-प्रमाणका होता है। और इसमें स्नायुओंकी समतोल अवस्था और वक्रीभवन व्यूह की अवस्था इनका परिणाम होता हैं ऐसा मानते हैं।

इस विषय पर बहुतसे संशोधकोंने काम किया है। **कारपेन्टर** के मतानुसार दृष्टि-स्थानसे २° या ३° बाहरका भाग ज्यादह संज्ञाग्राहक होता है। लेकिन **बुअर** और **पर्टझ**

के संशोधनसे मालूम होता है कि सुपेद की संज्ञाग्राहकता दृष्टिस्थान से २° तक बिल्कुल कम होती है, उसके पश्चाद जल्दसे बढकर १०° से २०° तक जा पहुँचती है जहा उसका प्रमाण दृष्टिस्थान की अपेक्षा १००० गुना बढना संभव है, परिधि भाग की ओर यह प्रमाण कम होता है (चि. नं. ३०६ देखिये)।

चित्र नं. ३०५
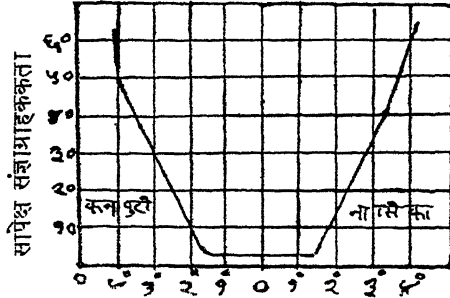
दृष्टिपटलके दृष्टिस्थानके प्रादेशिक संज्ञाग्राहकता का मिश्र सुपेद–नीले प्रकाश की दृष्टिस्थानसे केन्द्रच्युत डीग्री.(बुअर पर्टस)

इससे यह माना जा सकता है कि अंधेरेसे मिले हुए नेत्रमें (स्कोटापिक अवस्थामें) दृष्टिस्थान केन्द्र सबसे कम संज्ञाग्राहक होता है और उसका प्रारंभिक प्रकाश प्रमाण सबसे ज्यादा होता है; वहासे ५° डिग्री बाहरतक संज्ञाग्राहताका प्रमाण जल्द बढ़ जाता है, फिर ३०° से ५०° तक धीरे धीरे बढता जाता है और फिर वहाँसे परिधिभागमें कम होता जाता है। और यह भी माना गया है कि भिन्न भिन्न लम्बाईकी लहरियोंके प्रकाशकी वक्ररेषाएँ भिन्न भिन्न होती है: हरे रंगकी वक्ररेषा सबसे ऊँची होती है, और पीले, नीले और लाल रंगकी वक्ररेषाएँ अनुक्रमसे कम होती जाती है। कमसे कम केवल प्रमाणके प्रकाशका नापन अंधियारेसे बिलकुल मिले हुए नेत्रमें हरे रंगीन प्रकाशसे, दृष्टिपटलके ज्यादह संज्ञाग्राहक भागमें (नासिकाकी ओरको ४०° का भाग) करना। **वेन्टवर्थ** के शोधसे जो बिलकूल काफी और अर्वाचीन है (चित्र.नं. ३०६) यह प्रारंभिक प्रमाण ०.८१ वॅट $\times$ १०$^{-१६}$ था।

उत्तेजकों के परिर्वतन-वर्णपटके फर्क

नेत्रकी अंधेरेसे मिली हुई अवस्थामें वर्णपट एकरंगी अर्थात भूरे रंग का दिखाई देता है और इसमे ज्यादहसे ज्यादा तेज हरे रंगके भागमें होता है यह कह चुके है पन्हा ५०७देखिये। यदि प्रकाशतीव्रता कम की जाय तो वर्णपटके सीरेके भागके रंग सबसे पहले नहीं दिखाई देते, और इसमें लाल सीराका नीले सीरे की अपेक्षा पहिले लोप होता है। और हरे भागका जिसका प्रारंभिक प्रमाण सबसे कम होता है, आखिरमें लोप होता है।

कालवाचक परिवर्तन (टेम्पोरल व्हेरिएशन)

दृष्टिपटलके उत्तेजित होनेवाले क्षेत्रका प्रमाण कायम रखा जाय,तो सबसे ज्यादा तीव्रताके प्रकाशका क्रियाकाल कम तीव्रताके प्रकाशके क्रिया काल की अपेक्षा बहुत कम प्रमाणमें होता है। **रीव्हज पंडित** ने ऐसा शोध किया है कि (१९१८) ०.००५ सेकन्द (५ ळ) के लिये जो

प्रकाशतीव्रता की जरूरी होती है वह(दो)२सेकन्द के लिये की प्रकाशकी तीव्रतासे ४७०गुना बढकर होती है। प्रकाशका प्रमाण (यानी कालमर्यादा और प्रारंभिक प्रकाशतीव्रता इनका

चित्र नं, ३०६ चाक्षुष क्षेत्रोंमें के केन्द्रच्युतता के अंश
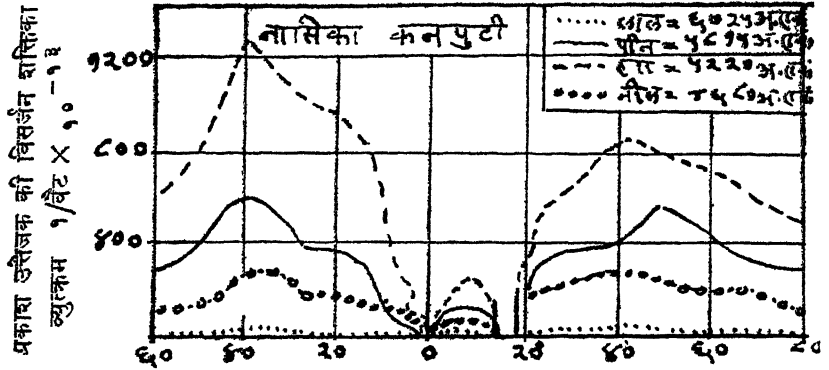
दृष्टिपटलकी आडे रेखांशमें का केन्द्रसे परिधिभाग तक वर्णपटके रंगोकी अवर्णक सूक्ष्म सुचेनत का किरण विसर्जन शक्तिके प्रमाणमेंका नापन
(अंधियारेंसे मिलती अवस्था) (वेल्टवर्थ)

गुणनफल) तीव्र प्रकाशका क्रियाकाल कम हो या मंद प्रकाशका क्रिया काल ज्यादा हो, छपा चित्रण के नियमानुसार वस्तु छोटी और अनावृत्ति कम हो तो हमेशा कायम स्वरूपका होता है। दृष्टिपटलके विवक्षित भागके उद्दीपन की कालमर्यादा उत्तेजक की तीव्रताके व्यस्त (उलटी) प्रमाणमें होती है। और कालमर्यादाके अन्तरका विचार करें तो यह मालूम होता है कि उत्तेजक की तीव्रता प्रकाशकी क्रियाके प्रत्यक्ष कालके अनुसार होती है। यद्यपि इन बातोंपर उत्तेजक की कार्यक्षमतामें फर्क होता है तब भी पूर्ण काल मर्यादाका प्रमाण ठहराना संभव नहीं है।

क्यों कि कार्यक्षम उत्तेजक की अवधि इन बातोंपर अवलम्बित होनेसे केवल कम काल की मर्यादा ठहराना मुष्किल होता है; क्योंकि जोरदार उत्तेजक यदि क्षणिक हो तो भी उसको जान सकते है। इसके अलावा अंधियारे से मिली हुई अवस्थामें (स्कोटापिक) बिलकुल कम तेजदार प्रकाश के ज्ञान की कालमर्यादा $\frac{1}{5}$ सेकन्द होती है, और च्यूं कि उत्तेजक की क्रिया इतने काल तक हुअे विना केवल प्रारंभिक प्रमाण का काल जानना संभव नहीं होता, इस कालके अन्तर का दीपस्तंभ (लाईट हाऊस) परसे प्रकाश आलोक (फ्लैशलाईट) की रचना करनेमे महत्व होता है।

आकारक्षेत्रके परिवर्तन

विशेष आकारके पदार्थ दिखाई देनेके लिये खास तीव्रताके प्रकाशकी आवश्यकता होती है। प्रकाशतीव्रताका प्रमाण कायम रखाजाय और प्रकाश देनेवाले ऐसे पदार्थका आकार कम किया जाय तो एक समय आयेगा कि जब वह प्रकाश नहीं दिखाई देगा और इस समय उसका आकार और प्रकाश तीव्रताका माप किया जाय तो दोनोंमें नित्य प्रमाण दिखाई देगा। जो प्रकाश बहुत मुष्किलसे दिखाई देता है उसका तेज दस गुना किया

जाय लेकिन उसको देखनेका छिद्र ½ किया जाय तो वह प्रकाश अदृश्य हो जाता है। उत्ते-जककी तीव्रता और उत्तेजित क्षेत्र का संबंध दृष्टिपटल के उत्तेजित क्षेत्रमेंके संज्ञाग्राहक घटको की संख्या पर अवलम्बित होता है, न की उसके खास तोरके राड या कोन जैसे घटकोंपर अवलम्बित होती है ऐसा मालूम होता है।

दृश्य–दिखाई देनेवाले–क्षेत्रका कमसे कम प्रमाण (दि मिनिमम व्हिजिबल)

क्षेत्रका विचार करनेमें कमसे कम आकारके क्षेत्रका माप यानी कमसे कम आकारके प्रकाशकी कल्पना करना आवश्यक है। स्थानका बोध कमसे कम दृश्यकोणसे होता है लेकिन कोई खास प्रमाण मुकर्रर नहीं है। यद्यपि उत्तेजककी कार्यक्षमता दृष्टिपटलके खास आकार पर, उसकी मिलती जुलती अवस्था और उसकी कालमर्यादापर अवलम्बित होती है तो भी उसकी तीव्रतानुसार उसमें फरक होता है; इसका परिणाम यह होता है कि ज्यादा प्रमाणके प्रकाशसे गणित शास्त्र के बिन्दु के आकारका क्षेत्र भी दिखाई देता है। लेकिन दृष्टिपटल की रचना इस तरहकी है कि अपायनकी वजहसे बाह्य पदार्थकी प्रतिमा बिन्दुके सदृश नहीं बल्कि फैली हुई गोलाकार होती है और जब वह कोन घटकपर गिरती है तब उसके केन्द्रभागका उद्दीपन कमसे कम कार्यक्षम प्रारंभिक प्रकाशके प्रमाणसे(लिमिनल स्टिम्युलस) बढ़कर होता है; और जब प्रतिमा दो कोन घटकोंके बीच गिरती है तब बाह्य पदार्थपर दृष्टि स्थिर करनेके लिये नेत्रमें जो हलचल होती है उसके कारणसे भी यह परिणाम होता है। चाक्षुषसंज्ञाका आकार प्रकाशके भौतिक फैलनेके आकारकी अपेक्षा ज्यादा मर्यादित होता है क्योंकि प्रकाशकके प्रारंभिक परिमाणसे फैले हुए वृत्तके मध्यभागमें कार्यक्षम प्रारंभिक प्रमाण पैदा होता है परिधि भागमें नहीं होता और उस भागकी संज्ञाग्राहकता स्थानीय उपपादन को परिणामकी वजहसे और भी कम होती है। इससे **संज्ञाग्राहक क्षेत्र प्रकाश क्षेत्रसे छोटा और स्पष्ट होता है;** और दृश्य तेज बढ़ जाता है। विरोधी अवस्थाओंका विचार करे तो मालूम होगा कि काली और बडी पार्श्वभूमीसे दृक्कोण छोटा होता है।

बिन्दुसदृश पदार्थोंके कमसे कम प्रमाणके दृक्कोणका प्रमाण साधारण प्रकाशमें यह होता है:—काली पार्श्वभूमी परका सुपेद समचौकोन सूर्यप्रकाशसे प्रकाशित किया जाय तो उसके दृक्कोण की मर्यादा १० से. १२ सेकंद होती है। सुपेद पार्श्वभूमी परके काले धब्बेका कोन २५ से. ३० सेकंद बडा होता है। दृक्कोण ३५ सेकंद का हो तो दृष्टिपटल की प्रतिमाका आकार २.५ मायक्रान (μ) होता है और १० सेदंक के कोणसे प्रतिमाके आकार से ०.७ मायक्रान (μ) होता है यह ख्यालमें रखना चाहिये।

रेषा सदृश पदार्थोंको देखनेसे उनका प्रारंभिक प्रमाण और भी कम होता है क्योंकि रेषाके बिन्दुओंकी प्रतिमाओं दृष्टिपटलके कोणके जडाव कामपर या रंगसाजी के काम के **(मोझेक)** जैसे एक दूसरीपर गिरनेसे, उत्तेजकोंका प्रमाण, औसत होनेसे और उपपादन पैदा होनेसे, होता है और इसी कारणसे जो बिन्दु दिखाते नहीं उनकी माला बनावें तो वह दिखाई देती है। चमकदार क्षेत्रपर दिखाई देनेवाली काली रेषाके कोणका औसत—मध्यमान-प्रमाण ४ सेकन्द इतना समझा गया है, जिससे दृष्टिपटल परकी ०.२९ मायक्राम आकारकी प्रतिमाका बोध होगा।

(ब) भेदकारी प्राथमिक प्रकाशका प्रमाण (डिफरेंशियल थ्रेशहोल्ड)

प्रकाशका भेद (दि लाइट डिफरेंस)

भिन्न भिन्न प्रकाशोंके भेदको जानना प्रायः रातके समयमें व्यावहारिक रूपसे बहुत महत्वपूर्ण है; क्योंकि इसी शक्तिसे मंद प्रकाशमें पदार्थ अलग अलग पहँचाने जा सकते हैं। इस कार्यमें दृक् शक्तिकी तीव्रताका सापेक्षतासे बहुत महत्व नहीं माना गया। यह गुण **भेदकारी प्रारंभिक प्रकाशके प्रमाणपर** अवलम्बित होता है। फोटामिटरके प्रकाशकी तीव्रतामें फरक करनेसे होनेवाले इन्द्रियगोचर भेदको जाननेके धर्मसे इस शक्तिको माप कर सकते हैं; लेकिन जब दो प्रकाशित पदार्थ एक दूसरे से मिला कर रखनेसे और एकके प्रकाशमें फर्क करके दोनों की तुलना करे तो उनके भेदका माप बराबर होता है।

साधारण प्रकाशमें जब कुछ नजदीक के दो पदार्थोंके प्रकाशके तीव्रताके भेद (क्षेत्रका आकार आदि) के प्रमाण और प्रयोग के सब उपकरण नित्य प्रमाण के होते हैं तब उनके सिद्धांत **वेबर** के नियमानुसार होते हैं–(यानी संपूर्ण उत्तेजक, और संज्ञाका भेद जाननेके लिये आवश्यक उत्तेजक की वृद्धि इन दोनों के गुणोत्तर में नित्य प्रमाण होता है)। उत्तेजकका भेद, जो जाना जा सकता है, बतलानेवाला गुणक अकका प्रमाण (ऽ ऊ) यह तुलना करनेके साधारणतः दोनों प्रकाशका औसत $\frac{1}{100}$ माना गया है (यानी ९९ से १०० मोमबत्तीके दो दीपोंके प्रकाश या ९९९ से १००० मोमबत्तीके दो दीपोंके प्रकाशके भेद पहँचाननेकी शक्ति)। लेकिन प्रकाशके अति तीव्र या मंद हो जानेसे यह भेदकारी शक्तिकी संज्ञा ग्राहकता कम प्रमाणमें होती है।

> **हेक्टने** अन्य संशोधकोंके अनुसंधानसे प्रकाशश्रेणीके भेदकी कोमलता की वक्र-रेषा निकाली है। उन्होंने यह सिद्ध किया है कि इन वक्र रेषा के ५७२ सिडिया होती हैं और ज्यादा तीव्र प्रकाशप्रमाणका रूप बदल जाता है। अवस्थान्तर के औसत की तीव्रताका प्रमाण ०.० १३४ मिलि आम्बर्टस होता है, इसके नीचे संपूर्ण सिडियोंकी संख्याका $\frac{1}{3}$ और उसके ऊपर $\frac{2}{3}$ दिखाई देता है। चाक्षुष व्यूहके स्कोटापिक-और फोटापिक दो भिन्न भिन्न कार्योंके दो भिन्न व्यूह होते हैं इसका यह भी एक प्रमाण है। प्रकाश रासायनिक क्रियाके–निरीक्षणसे यह सिद्धात निकाल सकते हैं कि भेद के हरएक(पदके)सिडियोंके नये प्रकाश रासायनिक पदार्थ का नित्यप्रमाणमें पृथ-करण होता है। स्कोटापिक व्यूह (राडघटक) का पृथक्करण व्यूह फोटापिक (कोन-घटक) से ज्यादा होता है। इससे यह निश्चित है कि कोनघटकोंमें चकाचौंधेका भेद जाननेकी क्रिया राड घटकोंकी अपेक्षा ज्यादह प्रमाणमें होती है।

प्रकाशके भेदपर असर करनेवाली बातें

प्रकाश तीव्रताके भेद जाननेकी नेत्रकी सूक्ष्म क्रियामें, प्रकाशने प्रमाण के अनुसार फरक होता है। (१) अंधेरेसे मिलती होनेवाली अवस्थामें, प्रायः मंद प्रकाशकी अवस्थामें, यह बढ जाता है और प्रकाश प्रमाण बढानेसे संज्ञाग्राहकता कम होती है।

(२) यह फरक **दृष्टिपटलके खास भागके** अनुसार बदलता है–दृष्टिस्थान केन्द्र सापेक्षतासे असंज्ञाग्राहक होता है। (३) दृष्टिपटलका क्षेत्र ही महत्वपूर्ण है। दृक्क्षेत्रके आकारमें (कुछ मर्यादातक) अन्तर करनेके लिये संपूर्ण प्रकाशका अन्तर नित्य रूपका (⁄ ऊ × क्षेत्र) होता है। एक अंशके ऊपरकी कोण के लिये अन्तर्भेद दृश्यमान होनेके लिये जो पूर्ण प्रकाशकी आवश्यकता होती है उसका घाताक गुणक दृक्कोणके प्रमाणसे परस्पर उलटे प्रमाण मे होता है। चकाचौंधता पहँचानी जा सकती है ऐसे दृश्यभेद का प्रमाण प्रकाशित हुए दृष्टिपटलके भागसे बने हुए कोणके वर्ग मूलके उलट प्रमाण के बराबर होता है। जबतक कोण ४·२ मिनिटसे कम होता है तब तक चकाचौंधताका भेद नहीं जान सकता यह **फ्रेंच** का मत है।

दृष्टिपटलकी संज्ञाग्राहक शक्तिपर दृक्क्षेत्रका प्रकाश विस्तार और उसके इर्दगिर्दके प्रकाशका असर होता है। निकपक्षेत्र और इर्दगिर्द क्षेत्र इन दोनोंके सापेक्ष चकाचौंधताके प्रमाणका ज्यादा महत्व है। इर्दगिर्द क्षेत्रका असर दृष्टिपटलके संज्ञाग्राहकतापर दो रीतिसे होता है; एकतो दृष्टिपटलकी मिलती जुलती अवस्थामें फर्क होता है (कालमर्यादेमे होनेवाला अप्रत्यक्ष परिणाम) और दूसरे तोरसे उसकी संज्ञाग्राहकतामें फरक होता है (स्थानवाचक अप्रत्यक्ष परिणाम)। जब निकपक्षेत्र और इर्दगिर्द क्षेत्र दोनों समान धर्मके होते है तब दृष्टिपटलकी संज्ञाग्राहकता बढकर होती है और भेदकारी प्रारंभिक प्रमाण सबसे कम होते हैं। इर्दगिर्द क्षेत्रका प्रकाश कम करनेसे संज्ञाग्राहकता धीरे धीरे कम होती है। और उसके प्रकाशका प्रमाण निकपक्षेत्र से बढाया जाय तो संज्ञाग्राहकता जल्द कम हो जाती है। इर्दगिर्द क्षेत्रकी चकाचौंधताका प्रमाण की सापेक्ष वृद्धिसे दृष्टिपटलकी संज्ञाग्राहकता इतनी कम नही होती जितनी कि निकप क्षेत्रके चकाचौंधताके प्रमाण बढानेसे होती है।

रंगसंज्ञा (कलर–सेंस)

वर्णपटकी कम तेज की किरणे नेत्रको बेरंग दिखाई देती है। प्रकाशकी तीव्रताको धीरे धीरे बढ़ानेसे उसके रंग दिखाई पडने लगते है यह पहले ही कह चुके है। प्रकाश ज्ञान (अर्थात् साधारण प्रारंभिक प्रकाश ज्ञान)होना और फिर रंगका ज्ञान(अर्थात विशेष प्रारंभिक) रंगज्ञान) होना इन दोनों कार्योंमे बीचमें कुछ समय व्यतीत होता है जिसमे वे पदार्थ बेरंग दिखाई देते है; इस समय को प्रकाश वर्णघटित क्रिया काल कहते है (फोटो क्रोम्पाटिक)

(अ) रंगसंज्ञाका विशेष प्रारंभिक प्रमाण (स्पेसिफिक थ्रेशहोल्ड फॉर कलर)

रंगसंज्ञाके विशेष प्रारंभिक प्रमाणमें अन्तर करनेवाली बाते यह होती है:—

(१) दृष्टिपटलकी बातें:—(अ) दृष्टिपटलका उत्तेजित होनेवाला भाग; (ब)उसकी मिलती हुई अवस्था :

(२) उत्तेजकके प्रकार:—(अ)उसके प्रकाशलहरियोंकी लम्बाई,(ब)प्रकाशका उद्गमका आकार (क) प्रकाश उत्तेजक का विस्तार

(३) इर्दगिर्द क्षेत्रकी अवस्था

(१) दृष्टिपटलकी बातें

संपूर्ण दृष्टिपटलमें सब जगह की रंगसंज्ञा एक समान नहीं होती यह शोध सबसे पहले **ट्राक्सलर**(१८०४) और **परकंजी** (१८१९) पंडितोंने किया। नेत्र जब प्रकाशसे मिली हुई अवस्थामें (फोटापिक अवस्थामें) होते हैं और मध्यम और समान प्रमाणके उत्तेजकों का उपयोग किया जाता है तब दृष्टिपटलके परिधिभागमें रंगसंज्ञा नहीं पायी जाती। इस अवस्थामें साधारणतया रंगके क्षेत्र सुपेद रंग के क्षेत्रसे समकेन्द्रित होते हैं और इनका

चित्र नं. ३०७
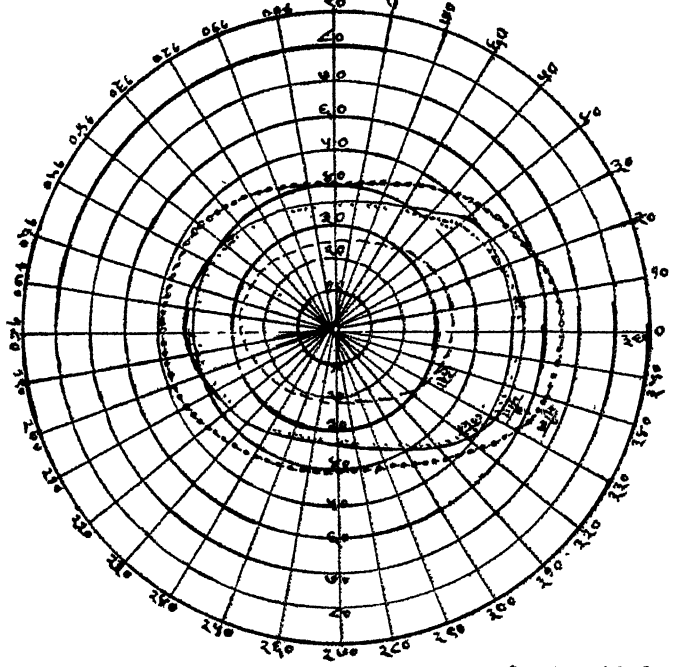
मध्यम तोरके प्रकाशनमें प्रकाशकी सम अन्तः तीव्रतामें वर्णपटके रंगोंके दिखाई देनेवाले क्षेत्र (दाहिना नेत्र)

परदेपर इस्तेमाल किया हुआ प्रकाश D=३·९५ फूट मोमबत्तीके प्रकाशके बराबर। वर्णपटके शुद्ध-रंगोंका इस्तेमाल किया था।

लाल=६७०५ अं. एकं, हरा=५०८५ अं. एकं; पीला=५८९२ अं.एकं; नीला=४६०२ **(एँबने)**

पीला——; लाल......, हरा- - - -नीला ००००;

अनुक्रम सुपेद रंग क्षेत्र के भीतर, नीला, पीला, लाल और हरा होता है; नीललोहित रंगका क्षेत्र सबसे छोटा होता है (चि.नं.३०७)। अंध तिलक की मर्यादा के बाहर भी यही अनुक्रम दिखाई देता है।

इससे यह अनुमान कर सकते हैं कि कम दीप्तिका रंगिन प्रकाश दृष्टिस्थान केन्द्रसे परिधिभागको ले जावे तो धीरे धीरे बेरंग होकर आखिरको भूरे रंगका दिखाई देता है: और प्रकाशलहरियोंकी लम्बाईके अनुसार दृष्टिपटलमें प्रकाश वर्णघटित कियाके भिन्न भिन्न स्थान होते हैं। बहुतसे रंगोंकी संज्ञाका लोप होनेके पहले उनकी छटाओंमें फरक होता है, सिर्फ चार रंग जो प्राकृतिक तोरसेही मिश्रित नहीं हैं यकायक भूरे दिखाई देते हैं।

समान होती हे। इससे यह साफ मालूम होगा की रंगकी संवादिक्रियामें फोटापिक अवस्थामें परिधि दृष्टि, मध्यभागकी दृष्टिसे कम संज्ञाग्राहक प्रमाणकी होती है। यह **परिवर्तन** पारिमाणिक स्वरूपका है गुणात्मक स्वरूपका नही है; यह बदरंगी स्वरूपका होता है नीरंगी स्वरूप का नहीं होता। दृष्टिपटलके सब भागोमे यही धर्म दिखाई देता है क्योंकि रंग पहॅचाननेके लिये आवश्यक प्रारंभिक प्रमाण परिधिभागसे दृष्टिस्थान केन्द्र की तरफ प्रागतिक प्रमाणमें कम हो जाते हैं और संज्ञाग्राहकता सबसे ज्यादा होती है। रंगक्षेत्र का यह विस्तार उत्तेजककी तीव्रताका कार्य है।

चि. नं. ३०९

नीला·····, पीला ———, लाल ·········; हरा – – – – –
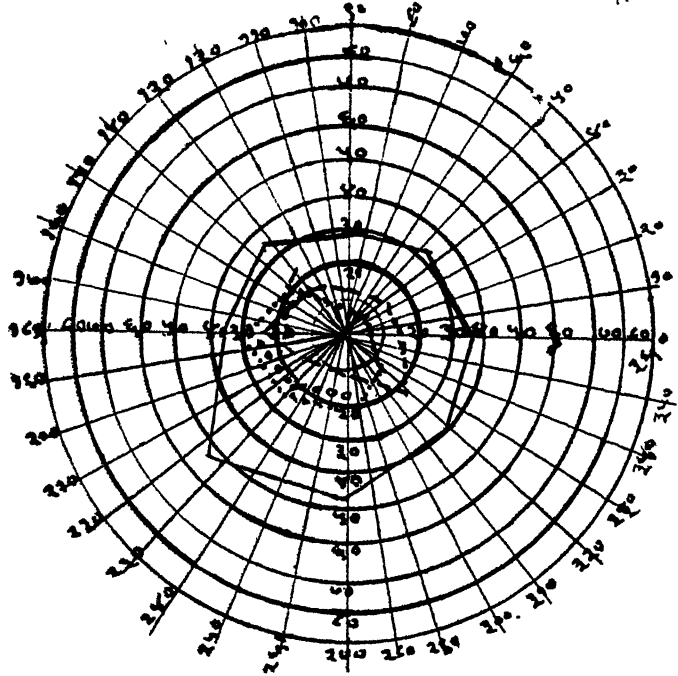
प्रकाशन की समबलकी विसर्जन शक्ति की तीव्रतामें वर्णपटके रंगोके क्षेत्र (बांया नेत्र) १२·५ × १०⁻¹² वैट्स बलकी उत्तेजक की तीव्रतासे लाल, पीला, हरा और नीले रंगोकी संज्ञाग्राहताकी मर्यादा। सापेक्ष तीव्रताके प्रमाण की नीव परकी समबल की अन्तःतीव्रता के क्षेत्र (चि. नं. ३०७) और समबल की विसर्जन शक्तिके क्षेत्र (चि. न. ३०८) मेंके भेद साफ दिखाई पडते है यह ध्यानमें रखना। **(वेन्टवर्थ)**

एबने शोध लगाया कि प्रकाशके दीप्ति में फर्क करनेसे दृक्क्षेत्रमें भी उसी तरहका फर्क दिखाई पडता है : और उनका संबंध बतलानेवाली लेखन रेषा समानान्तर होती है। (चित्र नं. ३०९) इस बातसे निर्दशित होता है कि जब तीव्रता भूमितीय श्रेणीसे बढती है तब क्षेत्र का कोण गणित श्रेणीसे बढता है। ध्यानमे रखनेकी महत्वकी बात (यानी लेखन रेषाओंकी समान्तरता) यह होती है कि यह बढत का क्रम किसी खास रंग पर अवलम्बित नहीं होता।

यह भी ख्यालमे रखना चाहिये कि अंध तिलक के चारों ओर रंगक्षेत्र सापेक्षतासे परिधि भागके जैसा मर्यादित होता है। साधारण प्रकाशकी तीव्रतासे, जिसका क्षेत्र नापन मे इस्तेमाल किया जाता है, वर्णांध के क्षेत्रका विस्तार सुपेद प्रकाश संबंधीकी दृष्टिहीनता के समन्वित क्षेत्रसे वडा होता है। सापेक्षतासे हरे रंगका अंधक्षेत्रका विस्तार सबसे बडा होता है, और लाल और नील रंगका क्षेत्र अनुक्रमसे कम होता जाता है। लेकिन उत्तेजककी तीव्रताका प्रमाण बढानेसे इन का क्षेत्र विस्तार सुपेद रंग के जैसाही होता हैं।

चित्र नं. ३१०
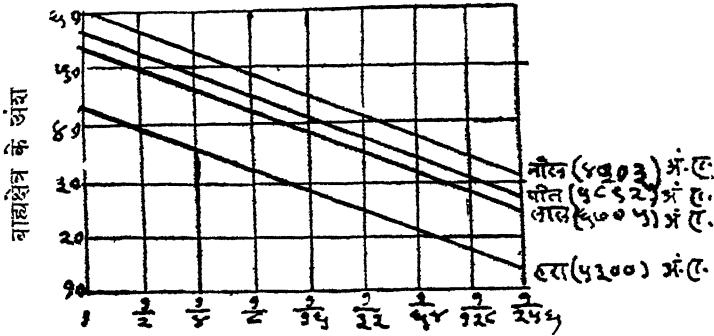
प्रकाशन की भिन्न भिन्न अन्तःतीव्रतासे वर्णपट के भिन्न भिन्न रंगोके दृक्क्षेत्र की दिखाई देनेवाली बाह्य मर्यादा। भूज रेषा के नीचे के अंकोसे प्रकाशकी सापेक्ष तीव्रता बतलायी है।

वेन्टवर्थ पंडित के प्रयोगसे (१९३०) यह मालूम हुआ है की दृष्टिस्थान केन्द्रमें रंग की सज्ञाग्राहकता सबसे ज्यादा होती है; बेरंग संज्ञाग्राहकता की अवस्थासे यह सिद्धांत बिलकुल ही उलटा है। पीले रंगकी संज्ञाग्राहकता सबसे ज्यादा होती है फिर अनुक्रमसे नीले हरे और लाल रंगोकी ग्राहकता कम होती है। दृष्टिस्थान केन्द्रके बाहरकी ओर इसका प्रमाण भी जल्द कम हो जाता है और दृष्टिपटलके भिन्न भिन्न द्विवृत्त खंडीय भागोंमे अनियमितता भी दिखाई देती है। उत्तेजक सबसे ज्यादा तीव्र हो तो पीला दृक्क्षेत्र सुपेदकी बराबर होता है; और लाल और नीले दृक्क्षेत्र जैसे की वैसे होते है (कनपट्टीके याने बाहरकी ओर ९०° डिग्री लाल रंग, पीला तथा नीला, सुपेद समान होता है हरे रंगका क्षेत्र कुछ मर्यादित होता है (चित्र नं. ३०८ और ३०९ देखिये)। समान विसर्जन शक्तिके उत्तेजकोंके इस्तेमालसे लाल,नील और हरे रंग के क्षेत्र परस्परसे मिलते है और पीलेका क्षेत्र सबसे बाहर होता है।

नेत्र जब अंधेरेसे मिली हुई अवस्थामे होते हैं तब रंगग्राहकता दृष्टिस्थान केन्द्र में सबसे ज्यादा होती है तो भी उसके बाहर जल्दी ही कम और मर्यादित होती जाती है। लाल रंगकी संज्ञाग्राहकता सिर्फ परिधि भागतक दिखाई देती है, पीले रंगकी संज्ञाग्राहकता नासिकाकी ओर चतुर्थ भागमें पूरी तौरसे लेकिन कनपट्टीकी ओर ८०° डिग्री तक ही दिखाई देती है; नीले और हरे रंग की संज्ञाग्राहकता दृष्टिस्थान केन्द्रसे ३०° से ४०° डिग्रीतक पहुँचती है। उसके बाहर रंगकी तीव्रता, कितनी भी बढाई जाय, बेरंग संज्ञा दिखाई देती है।

प्रारंभिक रंग के गुणात्मक प्रमाण पर इस (स्कोटापिक) अवस्थाका पारिमाणिक रूपसे फरक होता है। दृष्टिस्थान केन्द्रसे ३०° डिग्रीतक के व्यासार्ध (त्रिज्या) भागमे इसका परिणाम कई गुना (अर्थात ७ से ४०) तक बढता है । रंगोका अनुक्रम भी बदल जाता है, हरे रंग की संज्ञाग्राहकता सबसे बढकर होती है फिर नीले पीले और लाल रंग अनुक्रमसे आते हैं। अंधेरेसे मिली हुई अवस्थामे ३०° डिग्रीके बाहर नीले और हरे रंगकी संज्ञाग्राहकता का लोप होता जाता है, और पीले और लाल रंग की संज्ञाग्राहकता की मर्यादा दोनों अवस्थाओंमें समान होती है।

ख्यालमें रखना चाहिये कि रंग की संज्ञाग्राहताकी वृद्धि, यद्यपि इसका प्रमाण ज्यादह बढकर होता है, अंधियारेसे मिली हुई अवस्था मे की निरंग संज्ञाग्राहकता की वृद्धि की अपेक्षा हजारोंके तादाद में कम होती है। लेकिन यह प्रमाण कम होते ही इस वृद्धि के प्रमाण का संशोधन बहुतसे पंडितोंने किया है (**वुईन १८७० : बाहन १८७४: कारपेन्टर १८९८ : मेयर १९०३ : लूझर १९०४–औबने–बाटसन १९१६ : वेस्ट १९१७ : वेन्टवर्थ १९३० और अन्य संशोधक**)। **कोहलरुस्क** के मतानुसार संज्ञाग्राहताकी वृद्धि दृष्टिस्थान से १° से बाहर की ओर सब जगह दिखाई देती है। दृष्टिस्थानपर अंधियारेसे मिलती अवस्थाका असर कम होता है, दृष्टिस्थानसे १८° मे वह प्रमाण महत्तम होता है **(रोईलाफ झमिन १९१९)**। **व्होजेल सांग ने (१९२४)** बतलाया कि दृष्टिस्थानके सिवा अन्य क्षेत्रोंमें प्रारंभिक प्रमाण की कमतरता लाल रंगो के लिये कम न्यूनतावस्था और नीले रंग की लिये ज्यादह कम थी (न्यूनतम)। रंग की संज्ञाग्राहकता के प्रमाण की वृद्धि यद्यपि जल्द से पायी जाती है, कम समय तक रहती है और यह सुपेद प्रकाशमें दिखाई देनेवाली दीर्घकालिक और मंद क्रियासे पूर्णतया भिन्न होती है **(गोल्डमन १९२७ होफ १९२७)**। इससे मालूम हो सकता है कि दोनो क्रियाओं भिन्न स्वरूपकी होती है; पहलेमे प्रकाशसे मिलती होने की अवस्थाका–फोटापिक व्यूह कार्यक्षम रहता है; दूसरेमें अंधियारेसे मिलती होने की अवस्थाका–स्फोटापिक व्यूह पूर्णतया स्थापित हुआ होता है और दोनोंके बीचमें अन्तर्मध्यामिक अवस्था दिखाई देती है।

(२) उत्तेजकके परिवर्तन

(अ) प्रकाशका वर्णपटीय धर्म

वर्णपटकी किरणोंके हर रंग का ज्ञान होनेके लिये प्रकाशकी तीव्रता जोरदार होना आवश्यक है। इन रंगोंके विषयमें **परकंजी** पंडितने बहुत प्रयोग किये हैं। उन्होंसे यह मालूम हुआ कि सूर्योदयके संधि प्रकाशसमयमें वर्णपटकी किरणोंके जो रंग दिखाई देते हैं वे भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न प्रकारके होते है। उनका दिखाई पडनेका अनुक्रम पहले नीला फिर हरा फिर पीला फिर आखिरमे लाल होता है। इसके विपरीत सायंकालके संधिप्रकाशमें लाल रंग पहले और छोटी लहरियोंके रंग पीछे नष्ट होते हैं।

प्रकाशसे मिली हुई (फोटापिक) अवस्थामें भिन्न भिन्न रंगोंकी सापेक्ष संज्ञा ग्राहकताकी शक्तिके एक के (इकाई) प्रमाण में उल्लेख करें तो उनका साधारण अनुक्रम पीला, नीला, हरा और लाल होता है। अंधेरेसे मिली हुई अवस्थामें (स्कोटापिक) यह अनुक्रम

हरा, नीला, पीला और लाल होता है। इस अवस्थामें दृष्टिस्थानकेन्द्र के ४° डिग्री बाहर नीले रंगकी ग्राहकता कम होती है और पीले की बढती है यह ख्यालमें रखना चाहिये।

(ब) प्रकाश वर्णघटित क्रिया का कालः—

प्रारंभिक प्रकाश प्रमाण और प्रारंभिक रंग प्रमाण इन दोनों की तुलनामे वर्णपटकी किरणोंकी भिन्न भिन्न रंगोंकी लहरियोंके समयमें प्रकाश वर्णघटित क्रिया का काल होता है। और इस समयमें रंग कुछ नीला भूरा एक रंगके दिखाई देते हैं (चि.नं. ३०६ देखिये)। अंतःतंत्रिताकी दृष्टिसे विचार करें तो यह मालूम होगा कि प्रकाश वर्णघटित क्रियाका काल छोटी लम्बाईकी लहरियोंमें सबसे ज्यादा और दीर्घ लम्बाईकी लहरियोंमें सबसे कम होता है यह स्पष्ट है। प्रातः-कालके संधि प्रकाशमें नीला रंग पहले दिखाई देता है और सायंकालके संधिप्रकाशमें लाल रंग प्रथम काला होता है,हरे तथा नीले रंग ऐश्री भूरे होते हैं। विसर्जन शक्तिके मापामें अनुवाद करें तो यह अनुक्रम अलग यानी पीला नीला हरा और लाल होता है। साधारणतया यद्यपि प्रकाश की संज्ञाग्राहकता नित्य रूपकी होती है, और रंग संज्ञाग्राहक शक्तिका प्रमाण दृष्टिस्थान केन्द्रसे परिधिभाग की तरफ जलदी कम होता जाता है। तथापि प्रकाश वर्णघटित क्रिया का काल दृष्टिस्थानकेन्द्रके बाहरकी ओरको प्रागतिक रूपसे बढता जाता है; लेकिन भिन्न भिन्न रंगके बढनेका प्रमाण भिन्न भिन्न होता है।

वेन्टवर्थ की मूलभूत बातें जिससे **वैट** विसर्जनशक्तिके प्रमाण × $१०^{-१३}$ का अनुवाद होता है नीचेके सारिणीमें दिये हैः—

सारिणी १४

	दृष्टिस्थान	परिधिभाग
लाल......	०.०३९	१०७.७०—२८८.४०
पीला......	०.१२७	३५.००— ७७.८७
हरा......	०.०४३	७.८४— ११.४७
नीला......	०.०६५	१.०३— २.१६

रंगदृष्टि यह असलमें फोटापिक व्यूहका कार्य है और प्रकाश वर्णघटित क्रिया काल यह मंद प्रकाशमें सिर्फ स्कोटापिक व्यूहके कार्यका दिग्दर्शन है। जब इस व्यूहके कार्यारंभ होनेके लिये कुछ अवधि लगति है तब अंधेरेसे मिलती हुई अवस्थामे इस कालमर्यादाको कुछ मिनटतक स्पष्ट नहीं कर सकते। इसी वजहसे नेत्र अंधेरेसे विना मिले हुए, अति उष्णतासे ताजदीप्तिसे चकाचौंध होनेवाले पदार्थकी भूरे रंगकी चमक जबतक वह पदार्थ ऊष्णतासे लाल नहीं होता तबतक दिखाई नहीं देती।

अंधियारेसे मिले हुए नेत्रमें होनेवाली नीली संज्ञाः—

प्रकाशवर्णघटित के दरमियान का काल बिल्कूल रंगहीन होता है ऐसा नहीं, यह मालूम हुआ है कि दीप्ति के राशिमें नीले रंग का प्रारंभिक प्रमाण सब रंगोंसे कम होता है, लेकिन दृष्टिस्थान का भाग अंधियारेसे मिले हुए नेत्रमें अपवाद जैसा होता है; यद्यपि यह कल्पना भूल की होगी तो भी अनेक संशोधकोंके मतानुसार (व्हान **क्राइज कोनिंग** आदि) दृष्टिस्थानमें नीला रंग नहीं दिखाई देता। अन्तःचमकमें नीले

रंग की प्रारंभिक प्रमाणकी वक्ररेषाका आकार रंगहीन प्रकाश की वक्ररेषाके आकार जैसा होता है (चि. नं. ३०५ देखिये) संज्ञाग्राहकता १० ° पर दृष्टिस्थान की अपेक्षा १४०० गुना बढकर होती है। परिधिके क्षेत्रमें नीले रंगकी संज्ञाग्राहकता ज्यादह होनेसे मंद प्रकाशनमे उदासीन बत्तीयोंमे इस रंगकी छटा दिखाई पडती है । नीरंग स्कोटापिक वर्णपटका कुछ नीला-भूरा प्रकाश फोटापिक नेत्रके नीरंग सुपेदसे भिन्न होता है। नीला रंग प्रकाश स्कोटापिक व्यूह का खास लक्षण मालूम होता है, इस बातका अंधियारेसे मिले हुए नेत्रके दृष्टिस्थानको नीला रंग जाननेमें जो खतरे सापेक्ष तोरसे पैदा होते है उसके साथ विचार करनेसे कई संशोधक मानते हैं कि यह कार्य राड घटकोंसे ही होता है उसको राड घटकोंकी नीलीसंज्ञा ऐसा मानते हैं।

(क) **उत्तेजकका विस्तार** (एक्सटेन्सिटी)

प्रकाशित पदार्थके आकार क्षेत्रका विचार करे तों यह मालूम होता है कि सुपेद और रंगीन प्रकाशके क्षेत्र के संबंध एक समान होते है। तीव्रता कायम रखकर उसके आकार क्षेत्रको कम करनेसे पदार्थके रंगकी तीव्रता पहले कम होती है ऐसा भास होता है फिर बिलकुल नहीं दिखाई देती। आकारक्षेत्रके कम होनेके व्यापार मे प्रकाश वर्णघटित क्रिया-कालके पश्चात प्रारंभिक बेरंग प्रमाणकी अवस्था आती है (एक्रोमेटिक लाइट थ्रेशहोल्ड) फिर रंग नष्ट हो जाता है। प्रत्येक रंगके आकारक्षेत्र अलग अलग होते हैं।

कारपेन्टियर शास्त्रज्ञके शोध यहा दीये है, ये नापन के प्रमाण फोटामिटर के परदेके व्यास के है।

सूर्यप्रकाशके वर्णपटके रंगोके केवल और वर्णघटित प्रारंभिक प्रमाण संबंधी की सारिणी।

सारिणी १५

	केवल प्रारंभिक प्रमाण	वर्णघटित प्रारंभिक प्रमाण	अनुपात (रेशिया)
	मि. मि.	मि. मि.	
लाल	०.५	१.०	४.०
नारंगी	०.९	२.१	५.५
पीला	१.०	३.१	९.६
हरा	०.३	४.२	१९६
नीला	०.३	७.५	६२५

(ड) **प्रकाश उत्तेजक की क्रिया की कालमर्यादा** (ड्यूरेशन ऑफ दि स्टिम्युलस)

प्रकाशकी क्रियाकालकी मर्यादाका संबंध इसी तोरका होता है। रंगीन प्रकाशकी क्रिया अल्पकालिक होवें तो परिणाम बेरंग रूपका होता है। **वेबर** पंडितके नियमानुसार प्रकाशके रंग अलग अलग दिखाई पडने के लिये कम से कम समयमें दृष्टिपटल के उत्तेजित होनेमें रंगके चकाचौंध होनेके प्रमाणके अनुसार फर्क होता है। प्रकाशके वर्णपटकी किर-णोंके धर्म का असर होता है। दृष्टिपटल की प्रकाशसे मिलती जुलती अवस्थामे सबसे ज्यादा उत्तेजकका काल लाल रंग के लिये आवश्यक होता है, 'पीले और हरे रंगको उससे कम और नीले रंगको सबसे कम काल लगता है।'

(ई) पार्श्वभूमी और इर्दगिर्द क्षेत्रकी प्रकाशकी अवस्था

प्रकाशित पदार्थ जो दिखाई पडता है उसकी रंग संज्ञा पर प्रत्यक्ष पार्श्वभूमि का प्रकाश और उसकी इर्दगिर्द प्रकाशके परिणाम का महत्व होता है। साधारणतया प्रारंभिक रंग प्रमाण और प्रारंभिक बेरंग प्रमाण इन दोनों पर इन अवस्थाओंका समान परिणाम होता है। इर्दगिर्दका क्षेत्र उत्तेजकके अनुरूप भूरे रंगके चकाचौंधके समान दिखाई पड़ता है यानी सबसे ज्यादा संज्ञाग्राहकता (अर्थात् कमसेकम प्रारंभिक प्रमाण) उत्पन्न होती है। प्रकाशित पदार्थके नज़दीक कम तीव्र प्रकाश रखनेसे किसीभी रंग की संज्ञा जल्दी होती है। भिन्न भिन्न रंगोंकी ज्यादासे ज्यादा चकाचौंध की पार्श्वभूमि अलग अलग होती है। लाल और पीले रंग की पार्श्वभूमि कालेके बदले सुपेद हो तो वे रंग जलद पहचाने जाते है, हरा रंग इसके विपरीत अवस्थामें दिखाई पडता है।

इन परिवर्तनोका सारांश यह होगा कि प्रकाशसंज्ञाके समान रंग संज्ञा मे, उत्तेजक प्रकाश की तीव्रता मे और काल या क्षेत्रके विस्तार में प्रत्यक्ष परिवर्तन होता है, जिनमेंका सारिणिक गुणक दृष्टिपटल पर गिरनेवाले प्रकाश का प्रमाण होता है, और फिर भी भिन्न भिन्न लहरियों की लम्बाई के लिये कम से कम क्षेत्र की दीप्तियां और कम से कम काल की दीप्तिया ये दोनों, दीप्तिकी लेखन वक्र रेषासें मिलती है।

(ब) रंगज्ञानका भेदकारी प्रारंभिक प्रमाण

रंगोका पृथक्करण उनकी छटा, संपृक्तता और दीप्तिसे कर सकते है यह पहले कह चुके है; नेत्रकी संज्ञाग्राहकता की व्याख्या इन तीनों गुणोमें प्रत्येकके प्रमाणमे दिखाई देनेवाले जो अन्तर इसके विपरीत प्रमाणमे होता है, ऐसी कर सकते हैं।

(१) **रंगछटाके भेदका ज्ञानः**—रंगछटाके भेद जाननेके विषय पर अनेक लोगोंने संशोधन किये है। पहँचाननेके योग्य छटाओंकी संख्या संशोधकोंके उपयोग किये हुए यंत्र-पर अवलम्बित होती है। इन छटाओंकी संख्या १६५ से २०७ तक मानी गई है। इनके भिन्न भिन्न भेद वर्णपट के अलग अलग भागोंमें अलग अलग होते है। प्रकाशलहरियोंकी लम्बाईके सूक्ष्म भेद जिनका अवकलन कर सकते हैं वे पीले और नीले-हरे रंगमे दिखाई देते हैं। वर्णपटकी दोनो सीरोंको असलमें लाल भागमें संज्ञाग्राहताका प्रमाण बहुत कम होता है। जब छटाकी वक्रेरेषा अनन्त तक असंपात रेषाके समान जाती है (एसिम्टाटिकली) तब छटा नित्य स्वरूपकी होती है।

(२) **संपृक्तताके भेद का ज्ञानः**—(डिस्क्रिमिनेशन आफ सेच्युरेशन)

इस प्रश्नपर संशोधकोंका लक्ष्य बहुत नहीं है यह मालूम होता है। इस विषयका संशोधन **ओबर्ट** (१८६६) **व्हीरोडट** (१८५९) और **ड्रेपरके** (१८७९) मे किया है **ड्रेपरके** संशोधनसे मालूम हुआ कि **अपभवन** (डिफ्रैक्शन) हुये वर्ण पटकी किरणों के सब भाग समान होते है और त्रिपार्श्विय किरणोंमे ज्यादासे ज्यादा भेदलाल रंगमें दिखाई देता है। **हापट** पंडितने सूक्ष्म संशोधनसे संपृक्तताके निकाले हुए क्रम १६ नंबरके सारिणीमें दिये है।

सारिणी १६

	अंधियारी परिधि	प्रकाशित परिधि
लाल.........	४०	८०
पीला.........	२१	४६
हरा.........	३२	७०
नीला.........	३५	७१

यह बात पहले ही कह चुके है कि जब सुपेद प्रकाश मिलाकर संपृक्तता कम की जाती है तब पीले–हरे रंग के सिवा अन्य रंगोका लोप हो जानेके पहले उनकी रंगछटामें फर्क होता हैं (पन्हा ५०२ देखिये)।

दीप्तिके भेद:—ज्यादासे ज्यादा प्रकाशनमे कमसेकम इन्द्रियगोचर प्रमाणकी वृद्धि सब रंगोमें सुपेद रंगके समान होती है। मध्यम प्रकाशनमें इन्द्रियगोचर वृद्धि **वेबरके** नियमांनुसार होती है। तेजस्विताका प्रमाण जिस प्रमाणमें कम होता है उसी प्रमाणमे इन्द्रियगोचर भेदकी वृद्धि घाताक गुणकके प्रमाणमे होती है। कमसे कम प्रकाशमें इन्द्रियगोचरता भी कम होती है।

आकारसंज्ञा (फॉर्म सेंस)

आकारसंज्ञासे पृथक् पृथक् प्रकाश उत्तेजक जाने जाते है। इसकी मूलभूत बातोंका विचार करनेसे यह मालुम होता है कि प्रकाश इन्द्रियसे प्रकाश जाना जाता है और आकारज्ञानेन्द्रियसे उत्तेजित और अनुत्तेजित इन दोनों के भेद जानना संभव होता है। आकारज्ञान यह दृष्टिकार्यकी असली बात या प्रधान लक्षण है क्यो कि पदार्थोंके भिन्न भिन्न आकार जाननेकी यह नीव होती है; इससे यह ख्यालमें आ जायगा कि यह संज्ञा मिश्र या संयुक्त स्वरूप की हैं। **पहली बात** यह है कि **पृथक् पृथक् या वैयक्तिक प्रकाश उत्तेजकोंकी संज्ञाग्राहकता** उसकी नीव है और इस कारणसे कमसेकम दृश्य भागके नापनसे पैदा होनेवाली स्थान संज्ञापर यह संज्ञा अवलम्बित होती है। **दूसरी बात** यह है कि पृथक् पृथक् प्रकाश उत्तेजकोंके भेद पहॅचानने पर यह संज्ञा अवलम्बित होती है। इसका अर्थ यह होता है कि यह संज्ञा पृथक्करण करनेवाली है। उसकी सहायतासे कमसेकम दो दृष्टिगोचर पदार्थोंका अन्तर जाना जा सकता है। ये दो बातें प्राकृतिक स्वरूप की हैं। लेकिन अक्षरों के समान संयुक्त आकारोंका–जिसकी सहायतासे इस संज्ञाका नाप करते हैं यह मानसिक क्रिया है ऐसा कह सकते है और उसीसे भिन्न भिन्न अक्षरोंका बोध होता है। इस सज्ञासे केवल प्राकृतिक लक्षण नहीं है बल्कि यह इन्द्रियगोचर क्रिया है। पूर्ण इन्द्रिय गोचर क्रिया का नापन कमसेकम आकार पहॅचाननें के लक्षण से करते है।

प्रकाशसंज्ञा और इन्द्रियगोचर क्रिया इन दोनों शक्तिके भागोमें **आकारसंज्ञा,**दो विरोधी देशोंमेंका प्रदेश या **बफर स्टेट** के समान कार्य करती है। ज्यादह तोरसे प्रकाशसंज्ञा और आकारसंज्ञा इनमें भेद करनेमें भूल हो जाती है। असल में उनके प्रारंभिक प्रमाण के आसपास

आकारसंज्ञासे सूक्ष्म भेद का विस्तार जाना जाता है। यह ज्ञान पदार्थोंकी प्रतिमायें दृष्टि-पटलपर स्पष्ट गिरनेपर अवलम्बित होता है। प्रकाश (संज्ञा) सिर्फ दृष्टिपटलकी संज्ञाग्राहक शक्ति पर अवलम्बित होती है। प्रतिमा स्पष्ट है या अस्पष्ट है इससे कुछ संबंध नहीं रहता। यद्यपि दोनों संज्ञाओंका संबंध बहुत जगह दिखाई देता है तो भी उनके फर्कोंका निर्णय भिन्न भिन्न नियामकोंसे जुडा होता है। केवल प्राकृतिक दृष्टिसे विचार करनेसे आकारज्ञानका नाप कमसेकम प्रमाण के **दृक् कोणसे** करते हैं। दृक्कोणसे दृक्शक्ति तीव्रताका नाप होता है। **बाह्य पदार्थके दोनों सिरोंसे पातबिन्दु को जोडनेवाली दो रेषाओंसे पातबिन्दुसे बने हुए कोण को दृक्कोण कहते हैं।**

दृक्शक्ति तीव्रताका नाप सूक्ष्म विन्दु या रेषाओंको अलग अलग पहँचाननेसे करते हैं। दो बिन्दुओंके पृथक् पृथक् पहँचाननेका क्रमका प्रचार पहले पहले ज्योतिर्विद लोगोंने किया। प्राचीन आर्य लोगोंके वैदिक विवाहपद्धति में यह परिपाठ है कि वधू और वर वर आनेके समयमें उनको ध्रुव तारा या सप्तर्षिमेंके अरुन्धति ताराको पहँचाननेको कहा जाता है। उसका उद्देश शायद यही होता है कि उनकी दृक्शक्ति तीव्र है या नहीं इसका अन्दाज हो जाय। सन् १९१४ में **पारसनने** एक जगह लिखा है कि परशियामें दृक्शक्ति तीव्रता बराबर है या नहीं इसका माप करनेके लिये **ग्रेट बेअर** तारका पुंजके अल्कार ताराको मिझार तारासे अलग पहँचान करवा तेथे।

विन्दुओंकी कसौटीके (निकष) समान रेषाओंकी भी कसौटी होती हैं। इसमें रेषाएँ अलग अलग दिखाई देती है या नहीं यह देखा जाता है। हालमें साधारणतया दृक्शक्ति की तीव्रताका नाप करनेके लिये निकष अक्षरोंका उपयोग करते हैं। इन अक्षरोंकी रचना इस तत्त्वपर की गई है कि अक्षरके दोनों सिरोंसे पात विन्दुतक दो सरल रेषाएँ निकाली जॉय तो पातविन्दु और रेषाओंसे बननेवाले कोणका प्रमाण ५' होता है (पहली किताब चित्र नं. ३३ देखिये)। अक्षरकी खडी या पडी रेषासे पातविन्दुसे होनेवाले कोणका प्रमाण अक्षरके $\frac{1}{5}$ यानि १' होता है। **स्नेलनने** इसी तत्व का उपयोग कसौटी अक्षरोंके तक्ते बनानेमें किया है। इन तक्तोंमें एक के नीचे एक नौ (अक्षर) पंक्तियां लिखी होती है। पहली पंक्तीके प्रत्येक अक्षर ६० मिटर (१८० फीट) फासेल परसे, दूसरी (३६ मि) तीसरी (२४), चौथी (१८), पांचवी १२, छटी ९, सातवी ६, आठवी ५ और नौवी मिटरसे; इन पंक्तियोंके प्रत्येक अक्षर पाताविन्दुसे ५' का कोण बनाता है, और अक्षरोंकी मोटाई

चित्र नं. ३११
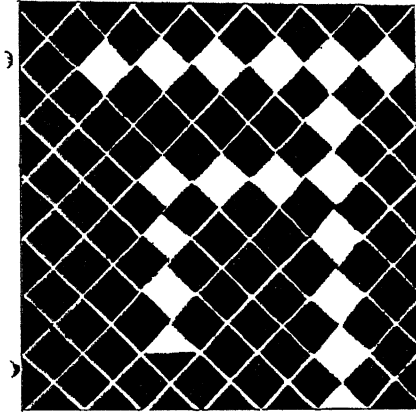
यह लफज ३६ मिटर के फासले पर से देखनेसे वह पात विन्दुसे ५' प्रमाण का कोण बनाता है।

१' का कोण बनाती है। निकष अक्षरोंके बदले अंग्रेजी सी के आकारके टूटे वृत्तका (C) भी उपयोग लान्डोने किया है। रोगीको ६ मिटर अन्तर पर बिठाकर नापन किया जाता है क्यों कि इस अन्तर परकी किरणें समान्तर होती है ऐसा माना गया है।

दृक्शक्ति तीव्रताका नाप करनेमें कनीनिकाके आकारका भी महत्व है (पन्हा ४२७ देखिये)। लेकिन यह भूल जाता है कनीनिकाका ज्यादेसे ज्यादा आकार २ से ३ मि. मि. नहीं होना चाहिये। कनीनिका का आकार कमसेकम प्रमाणका हो और प्रकाश प्रमाण अक्षरेषामें हो तो दृक्शास्त्रीय अनियमित बातोका असर नहीं होता लेकिन इसके विपरीत अवस्थामें असर होता है।

सारिणी १७ मे के प्रमाण अंक काब के संशोधन के है, जिन्होंने कृत्रिम कनीनिकाके आकारमे फर्क करके इनका संशोधन किया है:—

सारिणी १७

कृत्रिम कनीनिकाके व्यास का मि. मि. प्रमाण	दृष्टिपटलकी समान चमकदार प्रतिमाओके लिये समायोजित चमक की दृक्शक्तिकी तीव्रता	निकषपृष्ठकी नित्य स्वरूप की चमक की दृक्शक्तिकी तीव्रता	
		हर वर्ग मिटर पर १८९ मोमबत्ती का प्रकाश प्रमाण	हर वर्ग मिटर पर ५.९ मोमबत्ती का प्रकाश प्रमाण
१.०	३.९८	४.०३	३.५२
१.४	५.०३	५.३२	४.४४
२.०	६.०५	६.६३	५.२४
२.८	६.०४	७.०७	६.००
४.०	६.०६	७.१८	६.०९
५.६	५.७९	६.८७	५.७३

दृक्शक्तिकी तीव्रताके पाये हुए प्रारंभिक प्रमाण, इस्तेमाल किये हुए कसोटीपर और उनसे जिस तरहकी दृष्टिपटलकी रचना उत्तेजित होती है, इन बातोंपर अवलम्बित होता है। इसमें नेत्रसे पायी जानेवाली स्पष्ट प्रतिरूप संज्ञाग्राहक घटको के सूक्ष्म कणोपर, जैसे कि छायाचित्रण के प्लेट के कण, अवलम्बित होती है।

दो बिन्दु बिलकुल अलग दिखाई देनेके लिये दृष्टिपटलके केवल दो कोन घटक उत्तेजित होकर उनके बीचका एक कोन अनुत्तेजित रहना चाहिये।

पदार्थकी प्रतिमा लम्बी रेषाके समान हो तो जडाऊकी रचनाके समान कोन घटकोंकी रचनापर फैलकर गिरनेसे उसके चारो ओरके कोन घटकोंमें अप्रत्यक्ष परिणाम दिखाई देता है। इन दोनोंके कार्यसे पदार्थोंके आकारके भेद जाने जाकर दृक्शक्ति तीव्रताका प्रमाण बढ़ जाता है। दृक्शक्ति तीव्रताका नाप (१) पदार्थको अलग अलग पहँचानना, और (२) उनके आकारके फरक जानना इन दो बातोंपर अवलम्बित होता है।

(१) पदार्थोंके कमसेकम अन्तरका प्रमाणः—

इस विषयका विवेचन हुके ने सन् १७०९ में किया। उसका शोध यह था कि आकाशके दो तारोंको अलग अलग दिखाई देने के लिये उनके बीचके कंस का नाप का कोण एक मिनट होना चाहिये। पदार्थका एक नेत्रका दृक्‌कोण दूसरे नेत्रके दृक्‌कोणके बराबर होता है। रेषाओंसे बना हुआ कमसेकम प्रमाणका कोण बिन्दुओंसे बना हुआ कमसेकम प्रमाणके कोणके समान होता है। अनेक संशोधकोंके दृक्‌कोणका औसत प्रमाण एक मिनट होता है। अर्थात यह आकार दृष्टिपटलके ·००४ मायक्रान (μ) आकारकी प्रतिमाके बराबर होता है।

हेरिंगने सन १८९९ मे शोध किया कि दो बिन्दुओंसे बना हुआ कोण वास्तविक दृक्‌शक्तिके कमसेकम कोणसे दुगना होना है क्योंकि दो बिन्दुओंके बीचका अन्तर, बिना स्पष्ट दिखे, दो बिन्दु स्वतंत्र नहीं दिखाई देते।

(२) पदार्थोंके आकार रेखा जाननेका कमसेकम प्रमाणः—

पदार्थोंके आकारके फरक जाननेका धर्म बहुत महत्वपूर्ण है; क्योंकि आकारोंके फर्कोंके भेद पहँचानना यही दृष्टिका असली कार्य है, चाहे वे आकार प्रकाश या अंधेरे रूपके हो या भिन्न भिन्न रंगीन स्वरूपके। दो आकारके कमसे कम अन्तर का प्रमाण दो रेषाओंके अन्तरके प्रमाण के समान होता है। नेत्रकी यह स्वाभाविक शक्ति अन्य ज्ञानेन्द्रियों की पूर्ण विकसित भेदसूचक शक्तियोंके समान होती है।

आकारसंज्ञापर परिणाम करनेवाली बातें

नेत्रकी मिलती जुलती होनेकी अवस्था, प्रकाशविसर्जनका भौतिक परिणाम तथा कनीनिका का आकार इन बातोंकी सिवा और भी आकारसंज्ञापर परिणाम करनेवाली बातें होती हैं जैसीकी (१) दृष्टिपटलका खास उत्तेजित होनेवाला भाग, (२) प्रकाशकी तीव्रता, (३) प्रकाशका वर्णपटीय धर्म (४) प्रकाशका फैलाव (५) और इर्दगिर्द क्षेत्रके प्रकाशका प्रमाण।

(१) दृष्टिपटलके खास उत्तेजित भागके अनुसार दिखाई देनेवाले परिवर्तन—

साधारण प्रकाशमें दृक्‌शक्ति तीव्रता परिधि भागकी अपेक्षा दृष्टिस्थान केन्द्रमें ज्यादा होती है। वेरादिएमने इनकी वक्ररेषा तयार की उससे अनुमान किया कि दृष्टिस्थान केन्द्रके ५° बाहर दृक्‌शक्ति तीव्रताका प्रमाण साधारणतया ०·३ होता है और २०° के अन्तर के बाहर यह प्रमाण ०·१ होता है। लेकिन मंद प्रकाशमें दृष्टिस्थान केन्द्रका प्रारंभिक प्रकाश प्रमाण परिधि भागके प्रमाणसे बहुत ज्यादा बढ जाता है; इस कारणसे यद्यपि फोटापिक तथा स्कोटोपिक अवस्थामे परिधि भाग की दृक्‌शक्ति नित्य स्वरूपकी होती है तो भी स्कोटापिक अवस्थामें दृष्टिस्थानकेन्द्र की दृक्‌शक्ति परिधि भागसे बहुत कम होती है। इसका अर्थ यह होता है कि मंद प्रकाशमे इन दोनों भागोंकी संज्ञाग्राहकता सापेक्षसे उलटी होती है। दृक्‌शक्ति तीव्रताका अर्थ दृष्टिस्थान केन्द्र की शक्ति माना गया है। आकारके फर्कोंमें भी यही प्रमाण माना जाता है।

(२) **प्रकाशतीव्रताके परिवर्तनः**—प्रकाशका प्रमाण बढ़नेसे दृष्टिस्थान केन्द्रकी दृक्शक्ति तीव्रताका प्रमाण बढ़ता है यह सिद्धांत सर्वमान्य है। दृक्शक्ति तीव्रता (द या S) प्रकाशनके (प्र I) घातांक गुणक का सीधा स्वाभाविक धर्म है, द=का. घात × प्र (या S = Klog I यहां **का-K** = प्रकाशक प्रमाणमें बदलनेवाला **कायम** प्रमाण)। जब प्रकाश-तीव्रताका प्रमाण कम होता है तब उसका **कायम प्रमाण** इतना ज्यादा कम होता है कि दृक्-शक्ति तीव्रताकी वक्ररेषा की उंचाई धीरे धीरे बढती जाती है। लेकिन ०·१ मिटरके मोमबत्तीके प्रकाशकी वक्ररेषा झुककर सीधी ऊपर चढ जाती है क्योंकि कायम प्रमाण दस गुना बढ जाता है। इससे यह अनुमान कर सकते है कि तेजस्विताके अनुसार स्कोटापिक तथा फोटापिक के दो स्वतंत्र व्यूह होते होंगे। पांच फीट प्रमाणकी ज्यादा तेजस्वी मोमबत्तीके प्रकाशसे दृक्शक्तिकी तीव्रता कम होती है,और२० फीट की मोमबत्ती के प्रमाण से यह प्रमाण बिलकुल कम होता है। मंद प्रकाशमें दृक्शक्ति और आकार ज्ञान का कमसे कम प्रमाण १ : ४ होता है। दिनके प्रखर प्रकाशमें तथा मंद प्रकाशमे दिखाई देनेवाली दृक्शक्ति की तीव्रता का प्रमाण इन दोनोंके फरक में हमेशा कुछ नियामित प्रमाण रहता है। लेकिन नेत्रका वक्रीभवन व्यूह सदोष हो तो स्कोटापिक नेत्र मे इन फर्कोका असर ज्यादा परिणामकारक होता है।

(३) **वर्णपटकी किरणोंके परिवर्तन**

दृक्शक्ति की तीव्रतामे प्रकाशलहरियोंकी लम्बाईके परिणामसे भेद होते हैं। और यह भेद वर्णपटकी विशेषस्थानकी दीप्तिपर अवलम्बित होता है। सुपेद प्रकाश जो सब रंगोकी लहरियोंके मिश्रण से बना है उसमे दृक्शक्तितीव्रता किसी भी रंगीन प्रकाशकी तीव्र-तासे ज्यादा होती है। लेकिन वर्णपटके शुद्ध रंगीन प्रकाश, रंगकी छटा, सपृक्तता और दीप्ति इनसे मिश्रित हुए प्रकाशसे वे ज्यादा कार्यक्षम होते हैं। वर्णपटके मध्य भागके रंगीन प्रकाशमें दीप्ति ज्यादा होनेसे वे ज्यादा कार्यक्षम होते हैं और उनकी कार्यक्षमताका अनुक्रम सबसे ज्यादा पीला फिर नारंगी, हरा, लाल और नीला होता है।

सुपेद मिश्रित प्रकाशसे दृक्शक्ति तीव्रता तथा चमक ज्यादा होती है तो भी कम तीव्र एकरंगी प्रकाशसे पदार्थकी रचनाके सूक्ष्म भेद ज्यादा दिखाई देते है। इसका कारण यह है कि इस रंगीन प्रकाशके किरणोंका रंगविक्षेप नहीं होता जैसे कि मरक्युरी आर्क प्रकाश।

प्रकाशप्रसरणके परिणामः—

यह साधारण अनुभव है कि दृक्क्षेत्र का बिखरा हुआ प्रखर प्रकाश नेत्रमे— परिधि की ओर जानेसे तकलीफ होकर दृक्शक्ति तीव्रता पर परिणाम होता है इसलिये उसका महत्व है। इसमें अन्य बातें भी सम्मिलित है जैसे नेत्रके—वक्रीभवन मार्गका बिखुरे हुए प्रकाशसे भर जाना, कनीनिकाके परिवर्तन, काल तथा स्थान संबंधी होनेवाले अप्रत्यक्ष परिणाम और थकावट इत्यादि होती हैं लेकिन प्रत्येक के कार्यका ठीक माप नहीं कर सकते है। इन सब बातोंका मोटर आदि चलानेके कार्योमें महत्व है। आकाशके बिखरे हुए प्रकाशका दृक्शक्ति तीव्रतापर ठीक परिणाम होता है। कनीनिका कार्यक्षम हो तो मंद प्रकाशमें यह क्रिया विप-रीत होती है। और कनिनीकाके परिवर्तनके परिणाम नष्ट करनेकेलिये संकुचन या प्रसरण करनेवाली औषधियोंके उपयोगसे दृक्शक्ति तीव्रता कम होती है।

नेत्रमें परिधि भागसे प्रकाश अन्दर जाता हो, या निकप मंद प्रकाशित हो, या तिरछा प्रकाश तीव्र हो, या प्रकाश प्रत्यक्ष नेत्रपर गिरता हो, या दृष्टिपटलका उत्तेजित भाग बहुत बडा हो तो दृक्शक्ति तीव्रता कम मालूम होती हैं। लेकिन निकप अच्छी तरहसे प्रकाशित हो तो दृक्शक्तिकी तीव्रता बढ़ी हुई मालूम होती है। परिधिका प्रकाश अंध तिलक पर गिरनेसे यहि परिणाम दिखाई देता है। इससे यह कहा जा सकता है कि दृष्टिपटलपर अनेक प्रतिमा-ओंका गिरना यह तकलीफ का मुख्य कारण नहीं हैं।

चकाचौंध—जब नेत्रपर प्रकाश इस प्रकारसे गिरता है कि प्रतिमाये स्पष्ट नहीं दिखाई देती तब चकाचौंध (Glare) की अवस्था पैदा होती है। चकाचौंध के तीन प्रकार होते हैः—

(१) **आच्छादन चकाचौंधः**—जब दृष्टिपटल की प्रतिमापर प्रकाश गिरनेसे विरोधी परिणाम कम होकर कुछ दिखाई नही देता तब उस अवस्थाको आच्छादन चकाचौंध कहते हैं। (२) जब नेत्रके वक्रीभवन मार्ग में ज्यादा प्रकाश फैलनेसे प्रतिमाये स्पष्ट नहीं दिखाई देती तब उस प्रकाशकी अवस्थाको **संधि चकाचौंध** कहते हैं। (३) जब ज्यादा प्रखर प्रकाशसे दृष्टिपटलकी संज्ञाग्राहकता कम होती है तब **अंधत्वजनक चकाचौंध** होती है।

यदि नेत्र अंधेरेसे मिली हुई अवस्थामें हो, या दृष्टिपटल की अवस्था तीव्र प्रकाशसे न मिलती हो तो चकाचौंध का परिणाम ज्यादा मालूम होता है। मोटर के प्रखर दीप (Head light) का परिणाम दिनसे रात को ज्याद भासमान होता है। इसमें तीव्र प्रकाशका प्रतिकार करनेकेलिये कनीनिका तुरंत संकुचित ना होनेसे उसके कार्यक्षमताका असर होता है।

क्षेत्रके आसपासके प्रकाशके परिणामके भेद

पदार्थ और उसकी पार्श्वभूमि इनके तुलनात्मक विरोध का दृक्शक्ति तीव्रतापर परिणाम होता है। अर्थात् यह परिणाम अंशतः स्थानसंबंधी अप्रत्यक्ष परिणाम के कारणसे होता है, और अंशतः इर्दगिर्द क्षेत्रके कम या ज्यादा प्रकाश तीव्रतासे नेत्रकी मिलती जुलती अवस्थामें भेद होता है। लेकिन यह परिणाम प्रकाशसंज्ञापर होनेवाले परिणाम के समान नहीं होता। साधारणतया विरोधी परिणाम का प्रमाण जितना ज्यादा होता है उसी प्रमाणमे दृक्शक्ति तीव्रता भी ज्यादा होती है।

पदार्थ कम प्रकाशित हो और इर्दगिर्द क्षेत्र ज्यादा प्रकाशित हो तो दृक्शक्ति की तीव्रता का प्रमाण बढता है। लेकिन इर्दगिर्द क्षेत्र के प्रकाशका प्रमाण बहुत ज्यादा हो तो पदार्थकी सूक्ष्म रचना स्पष्ट नहीं दिखाई देती और भेद जाननेकी चाक्षुप क्रिया कमजोर होती है।

अध्याय २०

उत्तेजकोंके प्राकृतिक परिणाम

(१) संवेदनात्मक संवादि प्रतिक्रिया

जब दृष्टिपटलपर भौतिक कार्यक्षम उत्तेजककी क्रिया होती है तब उसकी प्राकृतिक संवादि प्रतिक्रिया क्षणिक रूपकी नहीं होती बल्कि उसमें उत्तेजकके अनुरूप अनेक मिश्र बातें हुआ करती हैं। कम बलके लेकिन कार्यक्षम एकके पश्चात् दूसरे तीसरे तथा ऐसे ही उत्तेजकोंकी कालमर्यादाके योगसे (समाहारसे) पैदा हुए उत्तेजकोंके परिणामसे दृष्टिपटलकी कार्यक्षमता खास समयतक चालू रहाति है ऐसा अनुभव होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दृष्टिपटल उत्तेजित होनेके बाद वह क्रिया कुछ समयतक चालु रहती है। यदि दृष्टिपटलपर नियमित कालमर्यादामें कार्यक्षम उत्तेजकसे कमबलके दो प्रकाश उत्तेजक डाले जाय तो दूसरे उत्तेजकसे प्रारंभिक संज्ञाका बोध होता है। इसका अर्थ यह होता है कि पहले उत्तेजक की क्रिया दूसरे उत्तेजकसे इतनी बढ़ जाती है कि प्रारंभिक प्रकाश उत्तेजककी अवस्था पैदा होती है। इन दोनों उत्तेजकोंके बीचका समय बढाया जाय तो दूसरे उत्तेजक की शक्ति इतनी बढाना आवश्यक होती है कि जिससे प्रारंभिक उत्तेजकका कार्य दिखाई देता है। लेकिन इन दोनों उत्तेजकोंके कार्योंका समाहार (योग) होनेके लिये, उनके अवशेष उत्तेजित अवस्थाकी ज्यादासे ज्यादा कालमर्यादा अभितक निश्चित नहीं हुई है।

(अ) एक उत्तेजकके परिणाम

कम बलका इन्द्रियगोचर उत्तेजक तथा क्षणिक काल क्रिया करनेवाले उत्तेजककी क्रियासे कुछ अप्रकटित कालके बाद स्पन्दन जैसी गतिकी समान संज्ञा पायी होती है। लेकिन उसकी तेजस्विताका प्रमाण थोडा ज्यादा हो और उसका परिणाम साधारण प्रकाश तीव्रतासे इतना बढ़ जाय तो पैदा होनेवाली संज्ञामें उत्तेजककी क्रियाकी कालमर्यादानुसार फर्क होगा। फर्क होना यह उत्तेजक क्रियाकी कालमर्यादापर अवलम्बित होता है इसका यह अर्थ होता है कि **विशेष प्रखर प्रकाशकी क्रिया दृष्टिपटलपर कमसे-कम कालतक होकर ज्यादासे ज्यादा संवादि प्रतिक्रिया पैदा होती है**। यह कालमर्यादा प्रकाश उत्तेजकके बलके अनुसार बदलती रहती है। ज्यादहसे ज्यादह प्रमाण तक संवादि क्रिया होगी तबतक प्रकाश उत्तेजकका कार्य होता रहेगा तो उसकी संज्ञा कुछ अप्रकटित कालमर्यादा के बाद ज्यादासे ज्यादा प्रमाणकी होगी इसे **प्राथमिक प्रतिमा** कहते है। फिर उसमें उतार चढाव होकर आखिर उस क्रियाका लोप हो जायगा। किन्तु यदि उत्तेजक वास्तविक आवश्यक कालमर्यादासे ज्यादा काल तक कार्य करता रहेगा तो फिर उसकी स्पंदन जैसी गतिके सदृश का परिणाम बंद हो जायगा। प्राथमिक प्रतिमा नष्ट होनेके बाद दूसरी दुय्यम **पश्चात प्रतिमा** कुछ अनुरूप अवस्थामें दिखाई पडती है। इनका दृश्य स्पन्दन जैसी गतिके समान भास मान होता है।

अप्रकटित कालमर्यादाः—

प्रकाश उत्तेजक का प्रारंभ काल और प्रत्यक्ष संवेदना भासमान होने का काल इन दोनो के बीचमे जो समय जाता है उसको **अप्रकटित काल** कहते हैं। यह कालमर्यादा का स्वरूप भौतिक विवेचन मे दृष्टिपटल की विद्युत संवादि क्रियामे दिखाई देनेवाली अप्रकटित कालमर्यादाके समान होता है। उसका रूप प्रकाश रासायनिक क्रियाके अप्रत्यक्ष परिणाम के समान होता है(४५९पन्हा देखिये)।साधारण तीव्रताके प्रकाशमे उसका औसत प्रमाण ०.०५ से ०.२सेकन्द तक होता है। इस कालमर्यादा के परिवर्तन फर्क दो बातोंपर अवलम्बित होते हैं।

(१) दृष्टिपटलका उत्तेजित भाग और उसकी संज्ञाग्राहक अवस्था (२) उत्तेजकके गुणधर्म।

दृष्टिपटलके परिधि भाग की अपेक्षा दृष्टिस्थान केन्द्रमे अप्रकटित कालमर्यादा का प्रमाण ज्यादा होता है। दृष्टिपटलकी अंधेरेसे मिली हुई—स्कोटापिक अवस्थामें जब उसकी संज्ञाग्राहकता बढी हुई होती है, यह कालमर्यादा कम होती है (कोई कोई यह सिद्धात नहीं मानते)। लेकिन यह ख्यालमे रखना चाहिये कि दृष्टिस्थान केन्द्र की संवादि क्रिया परिधि भाग की सवादि क्रिया से भिन्न होती है औरप्रकाशसे मिली हुई फोटापिक अवस्थाकी क्रिया स्कोटापिक अवस्थाकी क्रियासे भिन्न होती है।

उत्तेजक के गुणधर्म के विचार करनेसे यह मालूम होता है कि अप्रकटित काल की मर्यादामे प्रकाशकी अत्यन्त तीव्रता और उसके गुण के अनुसार फर्क होता है। प्रकाश-तीव्रता का प्रमाण ज्यादह हो तो यह मर्यादा कम होती है। **उत्तेजक प्रकाश की तीव्रताका प्रमाण भूमितीय श्रेणीके प्रमाणसे वढाया जाये तो अप्रकटित कालमर्यादाका प्रमाण गणितश्रेणीके प्रमाण में कम होता जायगा**। उत्तेजक प्रकाशके गुणधर्मका विचार करे तो यह मालूम होता है कि प्रकाशलहरियोंकी लम्बाई के अनुसार अप्रकटित कालमर्यादामें फर्क होता है, लाल रंगमें यह कालमर्यादा सबसे कम हरे रंगमें मध्यम और नीले रंगमें सबसे ज्यादा, प्रमाण की होती है।

प्राथमिक प्रतिमा मुख्य प्रतिमा

दृष्टिपटल क्षणिक उत्तेजित होनेसे प्राथमिक प्रतिमा की संज्ञाकी लेखन वक्ररेषा लह-रियोंके रूपमे उत्पन्न होती है; यह वक्ररेषाएँ खीची जाय तो यह मालूम होगा है कि इसकी उंचाई शीघ्र वढ जाती है लेकिन उसका उतार धीरे धीरे होता है। इस वक्ररेषाका पृथक्करण संवेदनाकी तीव्रता और उसकी कालमर्यादा इन दो रूप मे हो सकता है।

संवेदनाकी तीव्रताः—इस वक्ररेषा की उँचाई मुख्यतः तीन बातोपर अवलम्बित होती है (१) उत्तेजककी तीव्रता, (२) उसकी क्रियाकालकी मर्यादा, (३) प्रकाशका प्रकार। इस वक्ररेषाकी उँचाईमे (कुछ मर्यादा तक) प्रकाश उत्तेजक के प्रत्यक्ष तीव्रता के प्रमाणा-नुसार तथा उसकी क्रियाकालके प्रमाणानुसार फर्क होता है। और प्रकाशलहरियोंकी लम्बा-ईके अनुसार भी फर्क होता है। लालप्रकाशमे वक्ररेषाकी उँचाई सबसे जल्दी, हरे प्रकाशमें उससे कम और नीले प्रकाशमें सबसे कम समयमे होती है। लेकिन रेषाके उंचाईका प्रमाण नीले प्रकाशमे सबसे ज्यादा,लाल प्रकाशसे उससे कम और हरे प्रकाशसे सबसे छोटा होता है

बहुतसी बातोंसे मालूम हो सकता है कि भिन्न भिन्न रंगोकी संज्ञाओंकी क्रिया एक साथ घटित नहीं होती। ज्यादह दिलचस्पी की बात यह होती है कि शुद्ध काले या सुपेद उत्तेजकसे वर्णघटित प्रतिक्रियायें या एक रंगी प्रकाशसे भिन्न रंगीय प्रतिक्रियायें पायी जाती हैं। मसलन ये प्रतिक्रियायें पायी जायेंगी यदि **बेनाहिम** की फिरकी परके काले और सुपेद वृत्तखंड के जैसे (चित्र नं. ३११) उत्तेजक जल्दी जल्दी घुमाकर लगाये जाय तो सुपेद वृत्तखंड की अगले भागमे लाल और पिछले भागमे नीला रंग भासमान होता है। इस दृक् प्रत्यक्ष की वजह यह होती है कि, प्रकाश की तीव्रता साधारण प्रमाण की हो तो, रंग का भास असम शीघ्र गति से पैदा होनेवाली संज्ञा होती है। यदि उत्तेजक की तिव्रताका प्रमाण बढाया जाय तो, प्रकाशनके फर्क, फिरनेकी गतिका क्रम, वृत्तखंडोका आकार, उसपरकी लकेरियोंका वितरण इनके अनुसार संज्ञाओंकी ज्यादहसे ज्यादह क्रमावस्थाकी (Phase) वक्ररेषा मिलती है एकरंगी प्रकाशसे भासमान होनेवाली अनेक रंगके दृश्यसे मालूम होता है कि यह संज्ञा विरोधाभासात्मक नहीं है; वर्णपटके एक क्षेत्रसे असली रंगके अंगभूत घटकोंका उत्तेजन होता है।
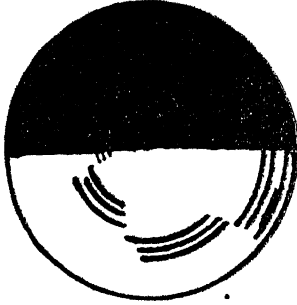
चित्र नं. ३१२

बेनाहमकी फिरकी

संवेदनकी वक्ररेषामेंका उतार चढाव

यदि ज्यादह तीव्रताका उत्तेजक, उसके क्रियाकालसे(०.०४सेकन्द से बढकर नहीं ऐसे) बढकर नहीं इतने समयतक कार्य करता हो तो संज्ञाकी लेखन वक्ररेषामें, उसकी ऊंचाई पूर्ण होनेके बाद लेकिन उसका लोप होनेके पहले उसमे स्पन्दन की अवस्था दिखाई पडती है।

म्याक डूगलके मतानुसार $\frac{६१}{१०००}$ सेकन्द (६१ß) के क्रियाकाल के उत्तेजकसे प्रतिक्रियामें उतार चढाव दिखाई पडता है। यदि उत्तेजक उसके क्रियाकालसे $\frac{१६}{१०००}$ सेकन्द (१६ß) ज्यादह लगाया जाय और यदि उसके क्रिया कालसे $\frac{४०}{१०००}$ सकंद (४०ß) समय तक उत्तेजक रह गया तो ये उतार चढाव नहीं पाये जाते। उत्तेजक की तीव्रताके अनुसार स्पन्दन की संख्यामे फर्क होते है, और यह परिणाम अंधियारेसे मिलती जुलती अवस्थामें दृष्टिपटल के परिधि भागमें दिखाई पडता है। यदि उत्तेजक घुमती तश्तरीमें की त्रिज्जीय चिरमेंसे लगाया जाय तो प्रतिमा वृत्तखंड के आकार जैसी फैली होगी और उसमें एकान्तरीतसे सुपेद और काले पट्टे दिखाई पडेंगे (चित्र नं. ३१२)।

चित्र नं. ३१३

कारपेन्टर के पट्टे

प्राथमिक संज्ञा धीरे धीरे लम्बोत्तर हो जाती है और उसका लोप होनेके पहले इसमे स्पन्दन दिखाई पडता है। प्रतिमाके आखिरीकी क्रमावस्थाके फर्क मंद प्रकाशमें अच्छी तरहसे नजरमें आते है, और यह परिणाम संपृक्त नीले रंगके इस्तेमालसे ज्यादह अच्छे दिखाई पडते है। च्यूं कि यह क्रमावस्था दृष्टिपटल के केंद्रस्थानमें नहीं पायी जाती, या लाल प्रकाशसे नही दिखाई पडती, और च्यूं कि यह निरंग होनेसे और स्कोटापिक वर्णपटके नीलेभूरे रंग जैसी होती है, और यह अंधियारेसे मिलती जुलती अवस्थामें पायी जाती है,
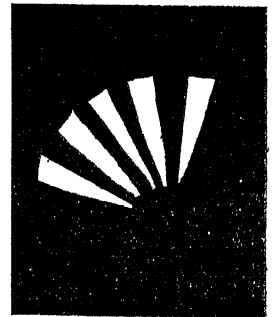
और रतौंधो में नही दिखाई पडती इससे यह कल्पना कर सकते है कि यह कार्य स्कोटापिक व्यूहकाही है और प्राथमिक प्रतिमाका पहला भाग फोटापिक व्यूहसे होता है। इससे कल्पना कर सकते है कि संध्याकालीन ज्योती का तंत्र दिनके तत्र के बाद खास रुकावट होनेसे पाया जाता है; यह रुकावट $\frac{१}{८}$ सेकन्द इतनी होती है ऐसा म्याकडूगलने शोध लगाया है।

संवेदनाकी कालमर्यादा:—

मुख्य प्रतिमाका अस्तित्वकाल साधारणतया ०.०५ से ०.२ सेकन्द माना गया है। अप्रकटित कालमर्यादाके समान संवेदनाकी कालमर्यादा में भी फरक होता है और यह दो बातो पर अवलम्बित होता है (१) दृष्टिपटलका उत्तेजिते भाग, और उसकी संज्ञाग्राहकता: (२) उत्तेजक प्रकाश के गुण।

दृष्टिपटल की अवस्याका विचार करनेसे यह मालूम हुआ है कि उत्तेजक समान संज्ञोत्पादक तीव्रताके हो तो उनकी संवेदन कालमर्यादा दृष्टिस्थान केन्द्र की अपेक्षा परिधिभागमें कम होती है। दृष्टिपटलकी अंधेरेसे मिली हुई अवस्थाकी वजहसे उसकी प्रकाशग्राहकता बढ जाती है और अप्रकटित कालमर्यादा कम हो जानेसे संवेदना का प्रत्यक्ष क्रियाकाल (कुछ मर्यादा तक) बढ जाता है। इससे यह अनुमान कर सकते है कि कदाचित् दृष्टिकार्यका द्विदल व्यूह होगा।

उत्तेजकोंके गुणधर्मोका विचार करनेसे यह मालूम होता है कि संवादि क्रियामें संज्ञोत्पादक इन्द्रियगोचरकी तिव्रता और प्रकाशलहरियोंकी लम्बाईके अनुसार फरक होते हैं। साधारणतया **संवेदनाकी अवधिकी कालमर्यादा उत्तेजक प्रकाशकी दीप्तिके विपरीत प्रमाण में होती है;** तीव्रताका प्रमाण बढानेसे अवधिकी काल मर्यादा काम होती है। इनका पारस्परिक संबंध बतलाने वाली वक्ररेषा निकाली जाय तो यह मालूम होगा कि कम तीव्र प्रकाश से ज्यादा तीव्र प्रकाशमे जानेके समयमें उसमें भग दिखाई पडता है और पहली संज्ञा ज्यादा कालतक रहती है।

इसी सिद्धांत के अनुसार उत्तेजक प्रकाश की लहरियोकी लम्बाई के परिवर्तनोंका स्पष्टीकरण हो सकता है। क्यों कि जब संवेदना का अवधि काल उत्तेजक प्रकाशकी दीप्तिके विपरित प्रमाणमे होता है तब वर्णपटके भिन्न भिन्न भागों की क्रिया अलग होगी यह स्पष्ट है। इन दोनो के संवेदना काल को लम्ब रेषा जैसे चित्रित किया जाय और लहरियों की लम्बाई से भुज रेषा जैसी चित्रित की जाय तो निकाली हुई वक्ररेषा को **स्थिर वक्ररेषा**(परसिसटन्सी कर्व्ह) कहते है। यह वक्ररेषा तेजस्विताकी वक्ररेषासे विपरीत जैसी होती है (चित्र नं२९४ देखिये)। यद्यपि यह संबंध विपरीत होता है तो भी कम से कम कालदर्शन, सबसे ज्यादा तेजस्विताके सामने, यानी पीले प्रकाशके सामने (५९०० अ. एं) दिखाई देता है और मंद प्रकाशकी तेजस्वितासे कालमर्यादामें वृद्धि होकर हरे प्रकाशके (५६७० अं. ए.) सामने दिखाई देता है।

(ब) आवर्त उत्तेजकोंके परिणाम (इफेक्टस ऑफ पिरिआडिक स्टिम्युलस)

दृष्टिपटलके आवर्त उत्तेजको की संवेदनामें बहुत फर्क दिखाई देता है। उत्तरोत्तर आवर्त उत्तेजक जल्दी जल्दी गिरानेसे उनकी क्रियायोंका एकत्रीकरण होकर एकही क्रियाका परिणाम दिखाई देता है। अनेक प्रकाश उत्तेजक समबलके और आवर्तक हो तो उनकी पैदा होनेवाली संवेदना अलग अलग नहीं होती बल्कि यह सवेदना अखंडित रूपकी होती है। एक उत्तेजक क्रियाको पूर्ण होने को जितनी काल की आवश्यकता होती है उससे कम कालके आवर्त उत्तेजक डाले जाय तो उनकी संवेदना हिलते लोलक की समान, या कम्पित होनेवाली दीप-ज्योति के समान तिलमिलाने की सवेदना भासमान होती है। उत्तेजक इससे ही धीरे धीरे डाले जाय तो हर उत्तेजककी संवेदना स्वतंत्र भासमान होगी आवर्त उत्तेजको की काल-मर्यादा के क्रमानुसार सवेदनाके दो प्रकार होते हैं।

(१) आवर्त प्रकाश उत्तेजकों की एकत्रीभूत संवेदना

(२) हर उत्तेजक की स्वतंत्र संवेदना।

(१) आवर्त प्रकाश उत्तेजकों की एकत्रीभूत संवेदना : तिलमिलाना

आवर्त प्रकाश उत्तेजक हो और जल्दी डाले जाय तो भासमान होनेवाली संवेदनामें समान तेज भासमान होता है। उपलब्धी या इस तरहसे पैदा होनेवाली संवेदनाकी चमक का प्रमाण प्रकाश उत्तेजक के तेजके प्रमाणानुसार होता है। परिणामी प्रेरणा आवर्त उत्ते-जित संवेदनाके मध्य मान-औसत के बराबर होती है।

यह सिद्धात मध्यममान के तीव्रताके उत्तेजकोंके काबिल होता है। तीव्रताका प्रमाण इससे भी कम किया जाय तो संपूर्ण सवेदना की चमक का प्रमाण मध्यममान तीव्रताके प्रमाणसे ज्यादा भासमान होता है। और तीव्रताका प्रमाण ज्यादा हो तो परिणामी प्रेर-णाकी चमक कम मालूम होती है।

तिलमिलानेवाले क्षणिक प्रकाशकी संधि आवृत्ति

उत्तरोत्तर प्रकाश उत्तेजकोंके जिस कालमर्यादाके प्रमाणसे संवेदनाका एकत्रीकरण हो सकता है उस प्रमाणको **तिलमिलानेवाली प्रकाश संवेदनाको संधि आवृत्ति या सूक्ष्म एकत्री-करणका आवर्तनकाल** कहा जाता है (क्रिटिकल फ्रिक्वेन्सी फ्यूजन फ्रिक्वेन्सी ऑफ फ्लिकर) इससे यह स्पष्ट होता है कि यही प्रमाण संवेदनकाल का माप होगा। इन दोनोंका पारस्प-रिक विपरीत (व्युत्क्रम) सबंध होता है। इस कालमर्यादाका प्रमाण भौतिक तथा प्राकृ-तिक बातोंपर अवलम्बित होता है। इसकी तीन तरह होती है:—

१ उत्तेजक प्रकाशके गुणधर्मः—(अ) इन्द्रियगोचरतीव्रता उसकी अन्तर्तीव्रता (सबजेक्टिव्ह इनटेनसिटी) (ब) प्रकाशलहरियोंकी लम्बाई.

२ दृष्टिपटलका उत्तेजित भाग—(अ) उसका आकार, (ब) उसकास्थान—दृष्टि-पटलका मध्य या परिधिभाग, (क) उसकी संज्ञाग्राहकता.

(३) इर्दगिर्द क्षेत्रका प्रकाशन

(१) उत्तेजक प्रकाशके गुणधर्मोंका परिणाम

(अ) संधि आवृत्तिसे मालूम हो सकता है कि प्रकाशकी इन्द्रियगोचरतामें प्रत्यक्ष परिवर्तन दिखाई पडते है। प्रकाशदीतिका प्रमाण जितना ज्यादा हो उतनाही ज्यादा प्रमाणमें यदि उत्तेजक जल्दी डाले जाय तो आवर्तनोंका एकत्रीकरण हो सकता है। उत्तेजक की कालमर्यादा गणित के श्रेणी के प्रमाणसे बढाई जाय तो तीव्रताकी वृद्धिका प्रमाण भूमितीय श्रेणीके प्रमाण का होता है। यह **वेबरके** नियमानुसार है। लेकिन ख्यालमें रखना कि यह नियम दृष्टिस्थानसे १०° अंशके कोणको, जहा इर्दगिर्द के क्षेत्र का तेज निकपाक्षर जैसा होता है, उसीको ही दृढतासे लागू होता है।

यह संबंध **फेरी पोस्टर** के सूत्र में लिख सकते है।—

$$F = K. \log I = K'$$ यानी सं आ = प्र ल ग दी + प्रा

इस सूत्रमें F (क्रिटिकल फ्रिकेन्सी) यानी सं आ संधि आवृत्तीके लिये रखा है (यानी द्विवृत्तखंड की जिसका आधा भाग सुपेद और आधा भाग काले रंग का होता है, परिभ्रमण संख्या), (I) दीप्ति प्रकाशकी तीव्रता के लिये लिया है लग लघुगणक (log) के लिये है, प्र और प्रा नित्य प्रमाण के लिये रखे है, प्र से संधि आवृत्ती और हर देखे हुए नेत्र की प्रकाश प्रसरण की तीव्रता और उसके क्षेत्र का विस्तार मेंका संबंध सूचित होता है, और प्रा से औजार की विसर्जन शक्तिका प्रमाण और परीक्षक के नेत्रकी संज्ञाग्राहकता सूचित होती है। संधि आवृत्ती का प्रमाण कोटिके लिये और लघुगणक का प्रमाण भूज के लिये लेकर वक्र निकाले तो वह सरल लेकिन तिरछी रेषा होती है। यह नियम ०·२५ मिटर मोमबत्ती के प्रकाश की तीव्रता के प्रमाण तक लागू होता है लेकिन प्रकाश का प्रमाण इससे कम किया जाय तो प्र का प्रमाण यकायक कम जैसा ५ : ३ होता है।

(ब) **प्रकाशलहरियोंकी लम्बाई:**—भिन्न भिन्न लहरियोंके प्रकाश उत्तेजकोंका इस्तेमाल किया जाय तो यह मालूम होगा कि प्रकाश संवेदनाका एकत्रीकरण यानी संधि आवृत्ति लहरियोंकी लम्बाईपर अवलम्बित नहीं होती बल्कि खास रंगीन प्रकाशकी सापेक्ष दीप्तिपर होती है। हर रंगकी संज्ञाकी कालमर्यादा की तेजी और उनकी तीव्रता इनमेंका गणित तथा भूमितीय (समानान्तर तथा गुणोत्तर) श्रेणीका प्रमाण सुपेद रंगके समान कायम रहता है।

(२) दृष्टिपटल संबंधी बातो का असर

दृष्टिपटलके उत्तेजित भागोंके आकारक्षेत्र संबंधी परिणामः—

दृष्टिपटल के उत्तेजित भागका आकार बढानेसे एकत्रीकरणके आवृत्तीका परिणाम ज्यादा होता है। **आकारक्षेत्र भूमितीय श्रेणीसे बढाया जाय तो एकत्रीकरणके आवृत्तीका प्रमाण गणित श्रेणिके प्रमाणसे बढ जाता है।** दृष्टिपटलके भिन्न भिन्न भागोंको पृथक् पृथक् उत्तेजित करनेसे जो असर होता है उससे सब भाग एकहीसमय उत्तेजित करनेसे एकत्रीकरण के आवृत्तीका प्रमाण ज्यादा होता है। यह प्रमाण दृष्टिस्थान केन्द्रकी अपेक्षा परिधिभागमें जल्दी स्पष्ट होता है।और इससे यह स्पष्ट होता है कि दृष्टिपटलके भिन्न भिन्न भागोंकी

पारस्परिक क्रियाओंका संयोग होता होगा। दृष्टिपटल के भिन्न भिन्न भागोंकी तुलनासे यह मालूम होता है कि प्रकाशकी तीव्रताका सापेक्ष प्रमाण बढ़ानेसे दृष्टिस्थान केन्द्रमें तिलमिलानाका प्रकाश पहले नष्ट होता है। लेकिन परिधि भागके भीतरी भागमें ज्यादा समयतक रहता है और परिधि भागमे जल्दी नष्ट होता है। यह सापेक्षता दिखाई देनेका कारण परिधि भागमे गतिरोध ज्यादा प्रमाणमे होता है ऐसा माना जाता है। किन्तु प्रकाशतीव्रताका प्रमाण कम हो तो तिलमिलाना (प्रकाश) परिधि भागमें पहलेसेही नष्ट हो जाता है। आखिर दृष्टिपटलकी संज्ञाग्राहकता उसकी अंधियारेसे मिलती हुई अवस्थामें बढ़नेसे एकत्रीकरण की आवृत्ति कम होती है। और प्रकाशसे मिली हुई अवस्थामें विपरीत होती हैं क्योंकि इस अवस्थामें तिलमिलाना परिधि भागमे पहले नष्ट हो जाता है।

(३) उत्तेजित भागके आसपासके (इर्दगिर्द) भागके प्रकाशका परिणाम

उत्तेजित भागमें ज्यादा प्रकाश डालकर फिर उसके इर्दगिर्दका प्रकाशका प्रमाण कम किया जाय तो संधि आवृत्ती का प्रमाण कम होता है। यह प्रमाण परिधि भागकी अपेक्षा दृष्टिस्थान केन्द्रमें धीरे धीरे कम होता जाता है। उत्तेजित भागका प्रकाश का प्रमाण कम हो तो दृष्टिस्थान केन्द्रके आवर्तन और भी कम प्रमाणमे होते हैं। लेकिन इसके साथ साथ परिधि भागमे संज्ञाग्राहताका प्रमाण प्रगति करता रहता है। इससे यह अनुमान कर सकते हैं कि यह कार्य अन्य व्यूहसे–स्कोटापिक–होता होगा। किन्तु उत्तेजित भागके इर्दगिर्दका भाग ज्यादा प्रकाशित होता है तब उससे अनिष्ट परिणाम होता है लेकिन वह इतना ज्यादा नहीं होता। जब इर्दगिर्द के भागका प्रकाश कम होता है तब यह मालूम होता है कि यह अवस्था अंधेरेसे मिलती हुई अवस्थाके समान है।

इससे यह मानना आवश्यक होता है कि दृष्टिपटलके कार्यके दो स्वतंत्र व्यूह होते हैं। एक व्यूहका कार्य तीव्र प्रकाशमें और दूसरेका कार्य मंद प्रकाशमें होता है। तीव्र प्रकाशका कार्य दृष्टिस्थान केन्द्रमें और मंद प्रकाशका कार्य परिधि भागमें होता है; मध्यम प्रकाशनमे पैदा होनेवाली संधि आवृत्ति में दोनोंका समाहार दिखाई पडता है। **दृष्टिपटलकी अंधेरेसे मिली हुई अवस्थामें दृष्टिस्थान केन्द्रकी कार्यशक्ति बढती है और परिधि भागकी कम होती है। इसके विपरीत प्रकाशसे मिली हुई अवस्थामें परिधि भागकी कम होती है, इसके विपरीत प्रकाशसे मिली हुई अवस्थामें परिधि भागकी शक्ति बढती जाती है और दृष्टिस्थान केन्द्रकी शक्ति घटती जाती है।**

आवर्त उत्तेजकोंके हर उत्तेजकका स्वतंत्र बोध

यद्यपि आवर्त उत्तेजकोंके हर उत्तेजकका स्वतंत्र रीतीसे बोध होना एकत्रीकृत संज्ञाकी अपेक्षा इतना महत्वपूर्ण नहीं है तोभी सांकेतिक संदेश भेजनमें (Signaling सिग्नलिंग) व्यावहारिक दृष्टिसे उसका महत्त्व है। १ इस संबंधमें चाक्षुष व्यूह की उपयोगितामें दो बातें साफ साफ दिखाई देती हैं:–कमसेकम प्रतीयमान काल जो प्रकाशके दो स्फुरनके बीचमें होता है, और (२) अविरत प्रकाशमेंकी कमसेकम प्रतीयमान रुकावट हेनिवाली बात। इस कालमर्यादा को **प्रारंभिक विराम काल** (थ्रेशहोल्ड पाज) कहते है। पहली अवस्थाका माप संभव नहीं है क्योंकि दृष्टिके निरीक्षण में वारबार व्यत्यय–अडचण–होता है। तोभी प्रारंभिक

विराम कालका प्रमाण पहले तिलमिलानेके कालमर्यादाके प्रमाणानुसार बढता जाता है और तीव्रता बढ़ानेसे यह प्रमाण कम होता है। लेकिन यह प्रारंभिक विराम काल जब संपूर्ण (अखंडित) प्रकाशमें खंडसा रुकावट जैसा भासमान होता है तब वह प्रकाशकी वृद्धिके साथ कम होता है।अंधेरीसे मिली हुई दृष्टिपटलकी अवस्थाका इसपर कुछ असर होता है या नहीं यह समझा नहीं जाता। दृष्टिपटलकी संज्ञाग्राहकता—उसके ऊपर गिरनेवाले प्रकाशकी गतिका विचार करें तो, वह बढ़ती हुई मालूम पडती है। लेकिन यदि प्रकाशका प्रमाण ज्यादा किया जाय तो पश्चात् प्रतिमाओंके मिश्रणसे बहुत (परेशानिइ दिमाख) असुविधा हो जाती है। यह बात ख्यालमें रखने लायक तथा अति उपयोगी है। चाक्षुष व्यूहकी इस अवस्थाकी कार्यक्षमता और दृक्शक्तिकी तीव्रताकी कार्यक्षमता इन दोनोंमें कुछ संबंध नहीं है।

(२) उपपादन उत्तेजकोंके प्राकृतिक अप्रत्यक्ष परिणाम (इन्डक्शन):—

दृष्टिपटलके उत्तेजन के नतीजोंके प्राकृतिक फर्कोंका स्पष्टीकरण सिर्फ एक उत्तेजकसे नहीं होता, और न उसके उत्तेजित भागसे स्थाननिर्णय होता है, न कि उत्तेजनकालसे मर्यादित होता है। उसकी हर बात पारस्परिक कालमर्यादाकी परंपराकी एक श्रेणी होती है। और हर बातपर उसके पूर्वभूत बातोंका असर होता है। दृष्टिपटलके एक भागकी कार्यक्षमताका असर उसके अन्य भागपर होता है। इतनाही नहीं बल्कि दूसरे नेत्रके दृष्टिपटल परभी होता है। इस प्रकारसे चाक्षुषक्रिया का **काल तथा स्थल की व्याप्तिका अप्रत्यक्ष परिणाम** इस शब्द-प्रयोगसे करना संभव है। भिन्न भिन्न समयमें उत्तेजित भागके कार्योंपर इन बातोंके परिणामका विस्तार स्वतंत्र रीतिसे (अ) **कालमर्यादाके उपपादन—अप्रत्यक्ष परिणाम—** (टेम्पोरल इन्डक्शन) या दृष्टिपटलके अन्य भागके परिणामका (ब) **स्थलवाचक उपपादन अप्रत्यक्ष परिणाम** (सक्सेसिव्ह इन्डक्शन) ऐसा कर सकते हैं।

(अ) कालमर्यादित उपपादन कालमर्यादाके अप्रत्यक्ष परिणाम

दृष्टिपटलके किसी भी भागके परिवर्तनका (जिनका संबंध उत्तेजककार्यके कालमर्यादित उपपादनमें पश्चात परिणामसे जोड सकते हे) कालमर्यादाके अप्रत्यक्ष परिणाममें समावेश कर सकते हैं। उत्तेजककी प्रत्येक संवादि प्रतिक्रियाका निर्णय दृष्टिपटलकी अवस्थासे और उत्तेजकके प्रकारसे कर सकते है। इसलिये दृष्टिपटलके कार्यका उल्लेख पूर्वभूत उत्तेजकोंके पश्चातके परिणाम, और प्रचलित उत्तेजकके परिणाम इन दोनोंका जोड परिणाम इस शब्दप्रयोगसे कर सकते है। (१) **पूर्वभूत अवस्थासे पैदा हुई अवस्थाको मिलती अवस्था संयोजन** (अॅडाप्टेशन) नाम दिया है। उत्तेजनसे संवेदनात्मक संवादि प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है;इस क्रियाका काल पश्चादकी संवादि क्रियासे ज्यादा बढ जायगा। और चाक्षुष व्यूहपर यह परिणाम होगा कि कुछ समयके बाद मूल संवेदनाके विपरीत संवेदना उत्पन्न होगी इस घटनाको (२) **उत्तरोत्तर उपपादन** (सक्सेसिव्ह इन्डक्शन) कहते है।

१ मिलती अवस्था

दृष्टिपटलकी संज्ञाग्राहकता उसकी मिलती अवस्थाके धर्मसे प्रकाश तीव्रतासे आपी आप मिल जाती है। अंधेरेमे बहुत समयतक रहे हुए नेत्रपर यकायक प्रकाश

डालनेसे दृष्टिपटल अति उत्तेजित होनेसे चकाचौंध की संज्ञा होकर उस नेत्रको स्पष्ट नहीं दिखाई देता, लेकिन धीरे धीरे प्रकाशसहनता बढकर नेत्र प्रकाशको मिल जाता है (ऐसा अनुभव है) । और इसके विपरीत तीव्र प्रकाशमेंसे अंधेरी कोठरीमें प्रवेश किया जाय तो कुछ समयतक कुछ नहीं दिखाई देता; लेकिन दृष्टिपटलके अंधेरेसे मिलनेके साथ साथ संवेदनाकी प्रारंभिक संज्ञाग्राहकताका प्रमाण बढनेसे फिर दिखाई पडना लगता है । इन दोनों अवस्थाओंमें दृक्‌शक्तिमें मूलभूत परिवर्तन होते हैं । इसलिये उनको अलग अलग जाननेके लिये **प्रकाशसे मिलनेकी अवस्थाको फोटापिक अवस्था और अंधेरेसे मिलनेकी अवस्थाको स्कोटापिक अवस्था** कहते है । फोटापिक दृष्टि साधारणतया मध्यम तीव्रताके प्रकाशमें दिखाई देती है, और स्कोटापिक दृष्टि, जब अंधेरेका प्रमाण ज्यादासे ज्यादा होता है तब दिखाई देती है । स्कोटापिक अवस्थामें चाक्षुष व्यूहका संज्ञाग्राहक प्रमाण ज्यादा प्रमाणमें मिलता है । इस प्रमाणको मिलती जुलती होनेकी मर्यादा संयोजनताका विस्तार (ॲम्पलीट्यूड ऑफ ॲडाप्टेशन) कहते है ।

इन बातोंका संशोधन पहले ओबर्टने (इ. १८६५ में) किया । नेत्रको कुछ समयतक अंधेरेमें रखकर प्लाटिनम तारकी चमक पहँचाननेके लिये आवश्यक विद्युत प्रवाहके प्रमाणसे नेत्रके प्रारंभिक उत्तेजक प्रमाण नापा तो उनको मालूम हुआ कि दृष्टिपटलकी संज्ञाग्राहकता ३५ गुना बढ गई थी । अडाप्टेशन शब्दप्रयोग उन्होंने जारी किया ।

मिलती अवस्था-संयोजन अवस्था और प्रकाशसंज्ञा (ॲडाप्टेशन एन्ड लाइट सेन्स)

सुपेद प्रकाशकी अंधियारेसे मिलती हुई संयोजन अवस्था (स्कोटापिक)

अंधेरेसे मिली अवस्था की प्रगति अनेक प्रकारसे पहँचाने जाती है। यह बात महत्वपूर्ण है कि अंधेरी कोठरीमें प्रवेश करनेके बाद प्रकाशकी संज्ञाग्राहताका निर्णय नियमित समयके अन्तरसे प्रकाशके केवल प्रारंभिक प्रमाण का माप करके निश्चित कर सकते है। साधारणतया यह निश्चित हुआ है कि मिलनेकी क्रियामें दृष्टिपटलके स्थानानुसार भेद दिखाई देते है । दृष्टिपटलके परिधि भागमें यदि यह मर्यादा बहुत ज्यादा होती है, तो दृष्टिस्थान केन्द्रमें सापेक्षतासे बहुत कम फर्क दिखाई पडता है। पहले दृष्टिपटलके परिधि भागका विचार करेंगे ।

(१) दृष्टिपटलकी परिधि भागकी अंधेरेसे मिली हुई संयोजन अवस्था(स्कोटापिक)

अंधेरी कोठरीमें प्रवेश करते ही पहले दस मिनटतक संज्ञाग्राहकता बहुत जल्दी बढती है, फिर ४० मिनट तक धीरे धीरे बढती रहती है; उसकेबाद धीरे धीरे होती है। एक घंटेमें संज्ञाग्राहकताका प्रमाण ५०००० से १००००० गुना बढ जाता है, एक घंटेके बाद यह प्रमाण और भी ज्यादा बढता जाता है । व्यावहारिक दृष्टिसे विचार करें तो यह वृद्धि बहुत कम होती है । संज्ञाग्राहकताकी अंधेरेसे मिलती हुई अवस्थाके फरकका माप उसके अप्रकटित काल की मर्यादासे कर सकते हैं ।

प्रकाशसे मिली हुई संयोजन अवस्था (फोटापिक अवस्था):—इस अवस्थाका ठीक माप करना बहुत कठीण है और माप करनेमें अक्सर भूल होती है।अंधेरेसे मिलती हुई अवस्थाका प्रारंभिक प्रकाशका प्रमाण निकालकर फिर नेत्रपर निश्चित रूपके नियमित समयतक प्रकाश

डालकर फिर निकाल लेना और अंधेरेसे मिलती अवस्थाका असर होनेके पहले फिरसे प्रारंभिक प्रकाश प्रमाण का माप करना।

लोहमनने इसकी वक्र रेखायें निकाली है, उससे यह मालूम होता है कि प्रकाशसे मिली हुई अवस्थाका विकास अति शीघ्र होता है, संज्ञाग्राहताका प्रमाण २७ सेंकदमे बहुत कम होता है, फिर दो तीन मिनटतक धीरे धीरे उतरता है उसके बाद यह क्रिया आधे घंटे तक चालू रहके फिर नित्य प्रमाणकी होती है।

(२) दृष्टिस्थान की संयोजनता मिलती जुलती अवस्था

अंधेरेसे मिलती जुलती स्कोटापिक अवस्थामें दृष्टिस्थान केन्द्रकी संज्ञाग्राहताकी वृद्धि होती है। लेकिन यह प्रमाण परिधि भागसे बहुत कम होता है। प्रकाशसे मिलती जुलती फोटापिक अवस्थाका प्रमाण बहुत ज्यादा हो तो दृष्टिस्थान केन्द्र में संज्ञाग्राहकता दिखाई देती है। लेकिन उसकी वृद्धि ५ से १० गुनासे ज्यादा नहीं होती और वह अवस्था ५।८ मिनटसे ज्यादा नहीं ठहरती। दृष्टिस्थान केन्द्र की इस अवस्थाकी प्रगति परिधिभागके समान होती रहती है।

उसके मिलती जुलती अवस्थाका विस्तार, दृष्टिस्थानमें प्रकाशके प्रारंभिक प्रमाण की जरूरत सापेक्षतासे ज्यादा होनेसे, और मंद प्रकाशनमें केन्द्रस्थ अंधतिलक होनेसे कम ही होना चाहिये। पहलेके संशोधकोंका मत था कि इस स्थानमें संयोजनता नहीं दिखाई पडती। लेकिन पश्चाद के संशोधकोंके मतानुसार यह कम समयतक रहती है और कम प्रमाण की होती है। हेक्ट पंडित के अचूक शोधनसे (१९२१) मालूम होता है कि दृष्टिस्थानकी संज्ञाग्राहताका प्रमाण, पहले कुछ सेकन्दतक अंधियारेसे मिली हुइ अवस्थामें, इतना बढ जाता है कि उसका नापन नहीं कर सकने।

दृष्टिस्थान केन्द्रमें रंगीन प्रकाशका प्रारंभिक प्रमाण बढ जाता है। सब रंगोंकी संज्ञा-ग्राहकता की वृद्धि पहले जल्दी और समान होती है। लेकिन एक मिनट के बाद इनकी वक्र रेखाए ज्यादा फैल जाती है। केन्द्रीय संज्ञाग्राहकता लम्बि लहरियों के प्रकाशमें (लाल) और छोटी लहरियोंके प्रकाशमें (नीले) ज्यादा दिखाई देती है। मध्यम लहरियोंके (हरे) प्रकाशमें या सुपेद प्रकाशमें कम होती है।

संयोजनता मिलती जुलती अवस्था और रंगसंज्ञा (अॅडाप्टेशन अॅंड कलर सेन्स)

अंधेरेकी संयोजनता अवस्थामें रंग संज्ञाके फर्कः—स्कोटाफिक अवस्थामें रंग की छटा, संपृक्तता और दीप्तीमें फरक होता है। इस अवस्थामे नीले रंग का प्रारंभिक प्रमाण बहुत कम होता है और इससे सिर्फ नीले रंग की संज्ञा मालूम होती है यानी अंधेरेसे मिलती हुई अवस्थाका प्रमाण बढ जानेसे अन्य सब रंगोंमें नीले रंग का ही प्रमाण ज्यादा मालूम होता है।

परकंजीके दृश्य (फिनॉमिना) दृक्प्रत्यक्ष-प्राकृतिक घटना.

फोटापिकसे स्कोटापिक की अवस्थाके परिवर्तन के समय भिन्न भिन्न रंगोंकी चमकीकी अवस्थामें दोनों अवस्थाओंकी तेजस्विताकी वक्ररेखाकी अनुसार भिन्न भिन्न परिवर्तन होते हैं। तेजस्विता, बेरंग वर्णपटीय-विच्छिन्न-किरण की अपेक्षा रंगीन वर्णपटीय किरण के लाल सिरोंकी

ओरको ज्यादा दिखाई देती है, और तीव्रताका प्रमाण कम करनेमे लाल रंग ज्यादा गहरा और नीला रंग ज्यादा चमकदार मालूम होता है । **लाल रंगकी संज्ञाकी कमीको परकंजी दृश्य कहते हैं** । इसके खुलासेमें दो बातें आवश्यक होती है:—एक अंधेरेसे मिलती हुई स्कोटापिक अवस्था और दूसरी कम तीव्र प्रकाश उत्तेजक की अवस्था। उत्तेजक की तीव्रताका प्रमाण बढानेसे (० २५ मिटर मोमबत्ती) **उत्क्रमणीय परकंजी दृश्य** होता है लाल रंग ज्यादा चमकदार, और नीला ज्यादा गहरा मालूम होता है ।

यह दृश्य दृष्टिस्थान केन्द्रमें दिखाई देता है या नहीं इस प्रश्नका निर्णय नहीं हुआ है। लेकिन इस विषयमे अनुभूत प्रयोग से यह मालूम हो सकता है कि समान रंग जो फोटापिक नेत्रमे दिखाई देते है वह स्फोटापिक अवस्थाके नेत्रमें नही दिखाई देते । लेकिन कोई कोई ऐसा मत प्रदर्शित करते हैं कि विना दृष्टिस्थान केन्द्र की संयोजकता (मिली हुई अवस्थासे) समान रंग का ज्ञान हो सकता है ।

दृष्टिपटलके परिधिकी ओरको रंगीन प्रकाशसंज्ञाग्राहकता सुपेद रंगके समान मालूम होती है तो भी उसमें मूलतः फरक होता है । इस भागमें क्रिया जल्दी १०।१५ मिनटमें पूर्ण हो जाती है और सुपेद प्रकाशसे मिली हुई अवस्थासे तुलना करनेसे इसकी (७ से ४० गुना) मर्यादा कम होती है । इसकी व्याप्ति और कालमर्यादा की तुलना दृष्टिस्थान केन्द्रके प्रकाशसे मिली हुई अवस्थाके साथ कर सकते है ।

भिन्न भिन्न लम्बाई की लहरियों के प्रकाशकी वक्र रेषाओंमें फर्क दिखाई देते है । तेजस्विताकी तुलना करनेसे यह मालूम होता है कि रंगीन प्रकाशकी प्रारंभिक प्रमाण की घटती और संज्ञाग्राहकताकी वृद्धि १०।१५ मिनिटमें पूर्ण हो जाती है । यह अवस्थायें नीले रंगमें सबसे ज्यादा और लाल रंगमें सबसे कम दिखाई देती है । विसर्जन शक्तिका विचार करें तो यह मालूम होता है कि मिलती जुलती अवस्था सबसे ज्यादा लाल रंगमें होती है और इसके बाद नीले हरे और पीले रंगका अनुक्रम होता है। रंगीन प्रकाशकी संवेदनात्मक संवादि प्रतिक्रिया का अप्रकटित कालमर्यादा का मापन और संवेदनाकी कालमर्यादाकी व्याप्ति इनके मिलती अवस्थाके फर्क सुपेद प्रकाशके फर्क समान दिखाई देते हैं ।

संयोजनता या मिलती होनेकी अवस्था और आकार संज्ञा (ॲडाप्टेशन ॲंड फॉर्म सेन्स):—

संयोजनता के साथ दृक्शक्ति तीव्रता, संज्ञाग्राहकता के समान प्रमाण इतनी बढती नहीं। इस कार्यमें दृष्टिस्थान केन्द्र की शक्ति बहुत कम होती है । दृक्शक्ति तीव्रताका सबसे ज्यादा प्रमाण दृष्टिस्थान केन्द्रके बाहरकी ओर होता है । संयोजनता मिलती जुलती अवस्था यदि ४० मिनटसे ज्यादा समय रहे तो संज्ञाग्राहकता ज्यादा नहीं बढती. यह सब संशोधकों का मत है ।

संयोजनता की या मिलती जुलती अवस्था की परिणामकारक बातें:—

संयोजनतापर अनेक बातोंका असर होता है । हर व्यक्तिमें भी फरक दिखाई देते हैं। उसके पोषण और उसका परिणाम इस अवस्थाके प्रमाण और व्याप्ति विस्तारपर होता है । फोटापिक अवस्था यदि पहलेसेही हो तो संज्ञाग्राहताकी वृद्धि कम होती है । इसकी प्रगति

धीरे धीरे होती है। नीललोहितातीत किरणोंका असर नेत्रपर पहलेही हुआ हो तो उसका असर इस अवस्थापर कुछ नहीं दिखाई देता।

स्कोटापिक–अंधेरेसे मिली हुई अवस्थामें प्रकाश क्रिया क्षणिक हो या प्रकाश तीव्र हो तो भी संज्ञाग्राहकतामें फर्क नहीं होता। लेकिन यदि प्रकाश उत्तेजकका प्रारंभिक प्रमाण बढकर हो तो फर्क दिखाई देता है। संयोजनता बहुत समय की हो तो उत्तेजक की अप्रकटित कालमर्यादा और संवादी प्रतिक्रियाकी कालव्याप्ति दोनों अवस्थायें ठीक दिखाई देती है। एक नेत्रकी अवस्थाका परिणाम दूसरे नेत्रपर होता है। अंधेरेसे मिली हुई स्कोटापिक अवस्था दोनों नेत्रोंमें स्वतंत्र रूपसे होती है। यह बहुत संशोधकोंका मत है। इसके विपरीत प्रकाशसे मिलती जुलती एक नेत्रकी संयोजन अवस्थाका दूसरे नेत्रपर विरोधन–रोकनेवाला–परिणाम होता है। एक नेत्र को ढाके तो दूसरे नेत्रकी संज्ञाग्राहकता कम होती है इतनाही नहीं बल्कि उस नेत्रके दृष्टिपटलके आच्छादित भाग पर परिणाम होता है। सबसे ज्यादा परिणाम पूर्ण अंधेरेमें नहीं बल्कि मंद प्रकाशमें ज्यादा दिखाई देता है।

(२) उत्तरोत्तर आनुक्रमिक उपपादनके अप्रत्यक्ष प्रतिक्रियायोंके परिणाम (सक्सेसिव्ह इंडक्शन)

पश्चात प्रतिमा (आफ्टर इमेजेस)

दृष्टिपटलकी प्रकाश प्रतिक्रिया बंद होनेके बाद भी उत्तेजित अवस्था कुछ समयतक चालू रहती है और पदार्थोंकी पश्चात प्रतिमाओंका बोध होता है। पश्चात प्रतिमाये दो प्रकारकी होती है। दृष्टिपटल उत्तेजित होनेके बाद उत्तेजक बंद हो जावें तो भी प्राकृतिक प्रतिक्रियाका परिणाम चालू रहनेसे **व्यक्त अनुलोम समधर्मी घनात्मक** (पॉझिटिव्ह) **पश्चात प्रतिमा** भासमान होती है। और जब प्राकृतिक प्रतिक्रिया विपरीत होती है तब **अव्यक्त असमधर्मी प्रतिलोम ऋणात्मक पश्चात प्रतिमा** (निगेटिव्ह) भासमान होती है। उत्तेजक सुपेद और काले रंग का हो तो घनात्मक पश्चात प्रतिमा पदार्थके उसी रंगके सुपेद और काले रंग की दिखाई देगी। लेकिन घनात्मक पश्चात प्रतिमामें, फोटाग्राफिक तयार हुई काच की प्रतिमाके समान, पदार्थका सुपेद रंग काला और काला रंग सुपेद दिखाई देता है। प्रकाश रंगीन हो और पश्चात प्रतिमाका रंग पदार्थके मूल रंगके समान हो तो उस प्रतिमाको **सम रंगी पश्चात प्रतिमा** कहते है। लेकिन प्रतिमाका रंग पदार्थके रंगका पूरक हो तो उस प्रतिमाको पूरक **रंगी पश्चात प्रतिमा** कहते हैं। यदि घनात्मक और ऋणात्मक पश्चात प्रतिमा भिन्न भिन्न मालूम होती हो तो भी मूल प्राकृतिक प्रतिक्रिया अखंडित होती है। इतनाही नहीं किन्तु घनात्मक क्रिया ऋणात्मक बनती है यह प्रतिक्रिया निम्न लिखित बातोंपर अवलम्बित होती है। (१) प्राथमिक उत्तेजक का धर्म; (२) सामयिक उत्तेजकों की क्रिया; (३) दृष्टिपटलका उत्तेजित भाग; (४) उसकी संयोजनता मिलती जुलती अवस्थाः यानी साधारणतया यह कह सकते हैं कि दृष्टिपटल मध्यम बलके एक प्रकाशसे उत्तेजित हुआ हो तो पश्चात प्रतिमा अनुलोम स्वरूपकी होती है। लेकिन उसीके साथ उसकी समचाक्षुप क्रियाओंका निरोधन होकर निरुद्ध क्रियाका उत्तेजन होता है। और चाक्षुष व्यूहमें भी परिवर्तन इस तरहसे होता है कि उसी भाग पर दूसरा प्रकाश उत्तेजक गिरनेसे **ऋणात्मक पश्चात**

प्रतिमाका बोध होता है। उसको **उत्तरोत्तर अनुक्रमिक विरोधात्मक** (सकसेसिव्ह कानट्रास्ट) **दृश्य** कहते है। पहली प्रकारकी प्रतिमा अंधेरेमे दिखाई देती है उसको मुख्य पश्चात प्रतिमा कहते है और दूसरे उत्तेजकसे उत्पन्न हुई प्रतिमाको **अप्रत्यक्ष उपपादित पश्चात प्रतिमा** कहते हैं।

दोनो नेत्रको थोडे समय तक बंद कर के दीप की तरफ देखें और बंद करें तो किंचित समयमें ग्लोब भूरे रंगका और दीपकी ज्योति पीली मालूम होती है। इसको **अनुरूप घनात्मक पश्चात प्रतिमा** कहते है। फिर पीली ज्योतिमें लाल रंगका परिवर्तन होकर आखिर ज्योतिमें हरे रंगका परिवर्तन दिखाई देता है। यह **ऋणात्मक पश्चात प्रतिमा** होती है। नेत्रको खोलकर एकदम सुपेद दिवालकी तरफ या सुपेद कागज की तरफ देखें तो उसपर अप्रत्यक्ष उपपादन हुई हरे रंगकी जोतिकी प्रतिमा दिखाई देती है। पदार्थ यदि सुपेद हो तो उसकी प्रतिमा भूरी या काली और पदार्थ रंगीन हो तो उसकी प्रतिमा मूल रंगके पूरक रंक की दिखाई देती हैं।

(अ) मध्यम बलके क्षणिक उत्तेजकके (अप्रत्यक्ष) उपपादनके परिणाम

(१) मूल पश्चात प्रतिमा (ओरीजिनल आफ्टर इमेजेस)

मध्यम बलके एक उत्तेजक की क्रियासे थोडी समयमें पैदा हुई पश्चात प्रतिमाका दृश्य मिश्र रूप का होता है। इस दृश्य का उल्लेख पहले **परकंजीनें** सन १८२५ में क्षणिक उत्तेजकसे जल्दी पैदा होनेवाली पश्चात प्रतिमाके नामसे किया। इस लिये इस प्रतिमाको **परकंजी**

चि. नं. ३१४
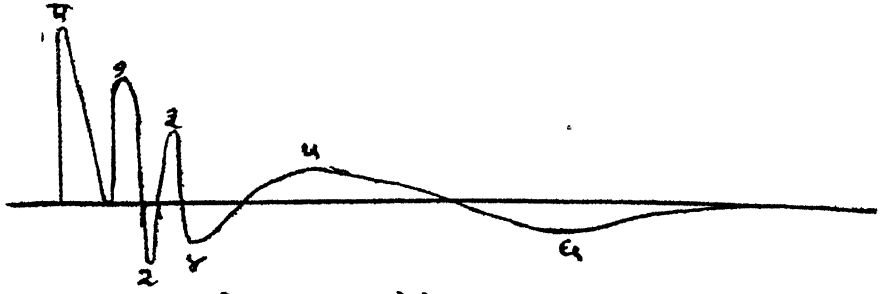
क्षणिक प्रकाश स्पन्दन से पैदा हुई पश्चात प्रतिमाएँ

की पश्चात प्रतिमा कहते है। मध्यम बलके क्षणिक प्रकाश उत्तेजक की मुख्य प्रतिमाके पश्चाद होनेवाली बातोंका(चि.नं.३१४)अनुक्रमः—(१) मुख्य प्रतिमाके बाद बिलकूल अंधेरा होता है; फिर पहली **अनुलोम घनात्मक पश्चात प्रतिमा दिखाई देती है**;यह प्रतिमा चमकदार लेकिन मूल प्रतिमासे कम तेजकी और उसी रंगकी होती है। (२) फिर दूसरा अंधेरा का समय होता है और फिर प्रतिलोमता ऋणात्मक क्रमावस्था दिखाई देती है। (३)उसके बाद दूसरी घनात्मक पश्चात प्रतिमा **परकंजी पश्चात प्रतिमा** दिखाई देती है; इस प्रतिमाकी चमक पहले घनात्मक प्रतिमासे कम होती है। प्रकाश उत्तेजक ज्यादा तीव्र हो तो प्रतिमा किंचित भूरे-सुपेद रंग की होकर उसका परिवर्तन प्राथमिक रंग के पूरक रंगमें होता है। नेत्रकी फोटापिक अवस्थामें प्रतिमा नहीं दिखाई देती। लेकिन स्कोटापिक अवस्थामें वह ज्यादा समय तक दिखाई पडती है।

यह प्रतिमा लम्बी लहरियोंके प्रकाशमें क्वचित दिखाई पडती है; और दृष्टिस्थान केन्द्रमें बिलकूल नहीं दिखाई पडती। यह कार्य साधारणतया स्कोटापिक व्यूहसे होता है ऐसा सब विशेषज्ञोंका मत है। यही **परकंजी की पश्चात प्रतिमा** है। (४) इसके बाद तीसरा अंधेरा होता है। इसमें प्रतिलोम ऋणात्मक क्रमावस्था दिखाई पडनेके बाद,(५)तीसरी घनात्मक पश्चात प्रतिमा दिखाई पडती है। यह प्रतिमा दूसरी घनात्मक प्रतिमासे कम चमकदार होती है और इसका रंग मूल प्रतिमाके समान होता है। यह प्रतिमा प्रकाशसे मिली हुई अवस्थामें जल्दी देख पडती है और लाल प्रकाशसे अच्छी दिखाई देती है। लेकिन मंद प्रकाशमें रंग का प्रमाण कम होता है। यह प्रतिमा फोटापिक अवस्थामें पैदा होती है ऐसा कुछ लोगोंका मत है।(६) इसके बाद आखिर बहुत लम्बी प्रतिलोम अवस्थाका ऋणात्मक समय होकर चौथी अनुलोम अवस्था पैदा होती है। इसमें अंधेरेसे मिली हुई अवस्थामें उत्तेजक की तीव्रताका स्कोटापिक प्रमाण ज्यादा होता है।

पश्चात प्रतिमाके उत्पत्तीके संबंधमें अनेक कल्पनायें की गई हैं लेकिन किसीभी कल्पनासे समाधान नहीं होता। इन पश्चात प्रतिमाओंकी उत्पत्तीमें राड तथा कोन घटकोंका कार्य होता होगा यह कोई कोई मानते है। **परकंजी** की प्रतिमाओंमे स्कोटापिक व्यूह के लक्षण मालूम होते हैं इससे यह कार्य राड घटकोंसे होता है ऐसा कुछ लोग मानते हैं। यह रंगीन होती है इससे इस कार्यमें कोन घटकोंका भाग होता है। दृष्टिपटल के मज्जातन्तु तहोंकी पेशियोंमे से अनुषंगीन प्रकाश विसर्जन होकर यह प्रतिमा पैदा होती होगी यह कल्पना **जूडने** सन १९२७ में कीई। उसका मत है कि उत्तेजक क्रियासे मूलप्रतिमा दिखाई देनेमें चाक्षुप नीललोहित पिंग के बचे हुए भागपर अनुषंगिक प्रकाश की क्रिया होती है। प्रकाश कम तीव्र हो तो राड घटक उत्तेजित होकर स्कोटापिक लक्षण दिखाई देंगे, और प्रकाश ज्यादा तीव्र हो तो कोन घटक उत्तेजित होंगे और रंगका बोध होगा। **फ्रूहलिक** की कल्पना यह थी कि चाक्षुप दृक्प्रत्यक्ष की सब बातें नियमित कालमें होनेवाली नियमित संज्ञाओंकी प्रतिक्रिया समान होती है। इसलिये यह मस्तिष्क मंडलके कालावधीमें होनेवाले बोधकी प्रतिक्रियामें होती होगी।

(२)·उपपादित—अप्रत्यक्ष पश्चात प्रतिमा (इन्‌ड्यूस्‌ड आफ्टर इमेजेस)

मध्यम तीव्र प्रकाशके एक उत्तेजक की दृष्टिपटल की प्रतिक्रिया बंद होने के बाद कुछ समयतक चाक्षुप व्यूह कार्यक्षम रहनेसे अनुलोम(धनात्मक)पश्चात–प्रतिमा दिखाई देती है यह ऊपर कह चुके हैं। जबतक दृष्टिपटलकी यह कार्यक्षमता कायम रहती है उतनेही बलके दूसरे उत्तेजक की क्रिया नहीं हो सकती किन्तु इसकी विषयग्रहणता बढ जाती है। और इस अवस्थामें उसके ऊपर पहले उत्तेजक के विरुद्ध की क्रिया हो तो उसकी संज्ञाग्राहकता बढती है और प्रतिलोम ऋणात्मक पश्चात प्रतिमा दिखाई देती है। यह प्रतिमा पहले उत्तेजककी पूरक होती है। उत्तेजनसे आनुक्रमिक समान प्रतिक्रिया का रुकाव होकर कुछ परिणाम होता है लेकिन विरुद्ध प्रकारके उत्तेजक की क्रियाके लिये ग्राहकता बढ जाती है इसीको **उत्तरोत्तर विरोधाभास** कहते हैं।

ऋणात्मक अप्रत्यक्ष पश्चात प्रतिमा उत्पन्न होनेके लिये जो बातें आवश्यक होती हैं उनके पहले प्रकाश उत्तेजक को **मिलानेवाला उत्तेजक** और दूसरे को **प्रातिक्रियाकारक उत्तेजक** कहते है। दोनो उत्तेजक यदि समबलके हो तो तेजस्वितामें फर्क मालूम होता है। सुपेद पदार्थकी तरफ देखकर फिर दृष्टि सुपेद पृष्ठपर घुमाई जाय तो उस पदार्थकी ऋणात्मक अप्रत्यक्ष प्रतिमा काले रंगकी और चारों ओर सुपेद चमकीदार प्रभा मालूम होती है। यदि दोनों प्रकाश समान रंगके हो तो उनकी तेजस्वितामें फर्क होता है, संपृक्तता कम होती है और छटामें भी फरक होता है। पहला प्रकाश उत्तेजक रंगीन और दूसरा सुपेद हो तो पश्चात प्रतिमाके चारों ओर पहले रंगके पूरक रंग की प्रभा दिखाई पडती है। यदि दृष्टि-पटलपर गिरा हुआ पहला प्रकाश हरे रंगका हो और दूसरा सुपेद हो तो उस भागकी संवादिक प्रतिक्रिया कुछ लाल रंगकी होती है। दूसरे उत्तेजकसे उत्तेजित हुआ भाग पहले भागसे बड़ा हो तो मूल घनात्मक पश्चात प्रतिमामें ऋणात्मक पश्चात प्रतिमा दिखाई देती है। इससे यह समझना चाहिये कि ऋणात्मक पश्चात प्रतिमाके चारों ओरको उसके पूरक रंग की प्रभा दिखाई देती है। किसी रंगीन पदार्थ यानी लाल रंगके पदार्थकी तरफ कुछ समय देखकर फिर दृष्टि भूरे रंग की तरफ घुमावें तो भूरे रंगकी चारों ओर लाल रंगका पूरक रंग (जो हरा रंग होता है) की प्रभा दिखाई देती है। हरा रंग मूल रंगसे ज्यादा चमकदार और लाल रंग ज्यादा हलका दिखाई पडेगा।

इससे यह कल्पना कर सकते है कि इससे मिश्र रूपकी प्रतिक्रिया होती है। क्यों कि इस कार्यमें भिन्न प्रकार तथा भिन्न तीव्रता के प्रकाशकी संवादि क्रिया होती है। यह कार्य भिन्न अप्रकटित कालमर्यादाके तथा भिन्न कार्यक्षमता के दोनो स्वतंत्र व्यूहोंसे होना संभव है। पश्चात् प्रतिमाकी वृद्धि या क्षय नियमित रूपसे घटती या बढ़ती है। लेकिन उनकी संवादि क्रिया विवक्षित कालमर्यादामें नियमित तालबद्ध होती रहती है। घनात्मक पश्चात् प्रतिमा के बाद ऋणात्मक पश्चात् प्रतिमा इस प्रकारका अनुक्रम होता है। उत्तरोत्तर आनुक्रमिक प्रतिमामें बहुत, अति सुंदर और संपृक्त रंग अनुक्रमसे दिखाई देते है। इनमें लाल, हरे और नीले रंग मुख्यतः दिख पडते हैं लेकिन उनके बदले नीललोहित, गुलाबी, नारंगी, और अन्य रंग भी दिखाई पडते हैं।

दृष्टिपटल सुपेद रंगसे उत्तेजित हो, तो रंगीन संवादि प्रतिकिया हमेशा दिखाई पड़ती है यह नित्यकी बात है; पहले लाल रंग फिर हरा और नीला अनुक्रम से आते हैं। यह दृश्य संज्ञा उत्पन्न होनेके प्रमाणमें दिखाई देता है। पहला उत्तेजक कम बलका हो और उसके बाद दूसरे उत्तेजक का कार्य न हो तो मूल घनात्मक पश्चात् प्रतिमा दिखाई देती है। और पहले जोरदार उत्तेजक के साथ दूसरे उत्तेजक की क्रिया होनेसे ऋणात्मक पश्चात प्रतिमा भासमान होती है। लेकिन यदि दूसरा उत्तेजक ठीक बलका हो, तो पश्चात् प्रतिमाका लोप होता है। आखिर दूसरे उत्तेजककी तीव्रतामें फर्क करनेसे नष्ट होनेवाली पश्चात प्रतिमा फिरसे दिखाने लगती है। और इस अवस्थाका परिणाम ज्यादा समय यानी दो घंटे तक रहता है। इन कार्यसंबंधी बहुत संशोधकों ने बहुत कल्पनायें की है इसमें आश्चर्य नहीं है लेकिन इस मिश्र कार्यका पूरे तोरसे निर्णय नहीं हुआ।

पूर्व उत्तेजकसे संवेदनामें परिवर्तन होता है। इससे भिन्न भिन्न रंगोंकी तुलनामें उनके समान रंग पहचानने में बहुत मदत मिलती है। यह निश्चित है कि फोटापिक नेत्रके दृष्टिस्थान केन्द्र-की, दृष्टि पटलका उत्तेजन पहले किसी भी रंगसे हो, उसकी रंगकी मिलानेकी शक्ति कायम रहती है। पूर्व उत्तेजन किसी भी प्रकारका हो पश्चात उत्तेजककी तीव्रताके प्रमाणनुसार संवेदनाका परिवर्तन का प्रमाण कुछ मर्यादामें कायम रहता है, यह नियम सत्य है ऐसा मालूम होता है। लेकिन स्कोटापिक नेत्रको या मुख्यतः परिधि भाग को यह नहीं लागू होता।

द्विनेत्रीय पश्चात प्रतिमाः—

एक नेत्रको प्रथम उत्तेजित करके ढाकलिया जाय और दूसरे नेत्रसे प्रकाशित पदार्थको देखा जाय तो अप्रत्यक्ष पश्चात प्रतिमाका दिखाई पडना संभव है। एक नेत्रपर प्रकाश डालनेसे उसका परिणाम दूसरे नेत्रकी पश्चात प्रतिमापर होता है। इसके संबंधमें पेरिनोका यह मत था कि यह क्रिया मस्तिष्क मे होती है। तुलना करनेके लिये एक नेत्रके बदले दोनों नेत्रोंका उपयोग किया जाय तो पश्चात प्रतिमाकी अप्रकटित कालमर्यादा कम होती है और तीव्रताका प्रमाण थोडा बढता है। एक नेत्रको पहले उत्तेजित करके दूसरे नेत्रको दूसरा उत्तेजन लगाया जाय तो उसकी पश्चात प्रतिमा पहले नेत्रके समान होती है। सिर्फ दोनों उत्तेजकोंकी क्रिया एक नेत्रपरही होनेसे पश्चात प्रतिमाको जो समय लगता है उससे इस प्रतिमाको ज्यादा समय लगता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दोनो चाक्षुप व्यूह पारस्परिक कार्य शक्तिको बढाते हैं।

(ब) तीव्र उत्तेजकोंके उपपादित या अप्रत्यक्ष परिणाम

तीव्र उत्तेजकोंके परिणाम मिश्र होते हैं और उनका ठीक माप नही होता। तीव्र सुपेद प्रकाश नेत्रपर डालनेसे चकाचौंधी पैदा होती है और कुछ दिखाई नहीं पडता। चकाचौंधी नष्ट होनेके बाद नेत्रोंको ढाक कर अन्य संस्कार रोक दिये जाय तो मुख्य रंगीन प्रतिमाकी परंपरा पहले नीले फिर पीले, हरे और लाल अनुक्रमसे दिखाई पडती है। प्रखर उत्तेजक की क्रिया अल्पकालिक हो तो इन प्रतिमाओंके कारण अन्य संस्कारोका परिणाम नहीं होता और उसका असर जानेके बाद नेत्रकी नैसर्गिक अवस्था तुरंत नहीं दिखाती। सुपेद रंगके बदले तीव्र रंगीन प्रकाशका उपयोग किया जाय मसलन विद्युत बत्ती के बल्ब की और जो प्रकाश साधारणतया पीला होता है तो रंगीन प्रतिमाओंका अनुक्रम सुपेद रंग के समान यानी नीला, पीला, हरा, लाल और मिश्रित कुछ नीला–हरा होता है।

पीले प्रकाशके बादः—नीला, पीला, हरा, और लाल

नीले प्रकाशके बादः—नीला, लाल और कुछ पीला–हरा

लाल प्रकाशके बादः—हरा, लाल और कुछ नीला–हरा

हरे प्रकाशके बादः—पीला, हरा और लाल अनुक्रम होता है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि लाल रंग सब अवस्थामें और प्रामुख्यतासे दिखाई देता है और लाल रंगमें उसके पूरक रंगकी प्रतिमा स्पष्ट होती है। यदि नेत्रको न ढाकें और उसपर अन्य संस्कारोंकी क्रियाअें हो तो परिणाम मिश्रित होता है।

(क) ज्यादा समयतक के उत्तेजकोंके उपपादित परिणाम

सामान्य तीव्र उत्तेजक की क्रिया बहुत समयतक होनेसे जैसे की एकाद पदार्थ पर नजर स्थिर करनेसे उसके उपपादित अप्रत्यक्ष परिणामोंकी पारस्परिक क्रिया होकर उनकी मूल संज्ञा हमेशा कायम नहीं रहती । पदार्थ पर ज्यादा समय दृष्टि रखे तो उसके मंद प्रकाशित भाग एकदम या धीरे धीरे नष्ट हो जाते है या एकान्तरितसे बडे या छोटे होते हैं। और इसी अवस्थामे दृक् क्षेत्रके परिधिभागके पदार्थोंके आकारमें परिवर्तन शुरू होता है। पदार्थ तथा उसकी पार्श्व भूमिकी चमक मे फरक होते है। पदार्थ और उन की पार्श्व भूमी की चमकका फर्क समान जैसा होता है यानी प्रकाश छायामें विलीन होता है । और अन्तमें दृश्य पदार्थ के साथ दृक्क्षेत्र के अन्य पदार्थ अदृश्य हो जाते है और क्षेत्र रिक्त दिखाई देता है। दृश्य बिन्दु आखिर अदृश्य हो जाता है। पदार्थपर विना निमेष नेत्र स्थिर करना संभव न होनेसे और दृश्य बिन्दु भी न दिखाई पडनेसे नेत्र अनैच्छिकतासे घुम जाते हैं और दृक्क्षेत्र फिरसे भरा दिखाई पडता हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि बहुत समय तक कार्य करते हुए उत्तेजक की पश्चात प्रतिमाओं को रोक नहीं सकते और सचेतन अवस्थापर परिणाम होकर पहले ही समान उत्तेजकोका परिणाम नहीं हो सकता लेकिन यदि उत्तेजक भिन्न प्रकारका हो तो उसका असर होता है। साधारण दृष्टिकार्यमें अप्रत्यक्ष क्रियाओंके परिणाम स्पष्ट नहीं होते क्यों कि स्थैर्यबिन्दु क्षण क्षण में बदलते रहनेसे पश्चात प्रतिमा नूतन उत्तेजकके कारणसे नष्ट हो जाती है और नेत्रमें फिरसे पूर्व संस्कारिक अवस्था दिखाई पडती है।

रंगीन प्रकाश उत्तेजकों के अप्रत्यक्ष परिणाम ज्यादह दिल चस्पी के होते हैं। यदि सुपेद प्रकाशकी क्रिया ज्यादा कालतक होती हो तो दीप्तिका प्रमाण कम होता है यह बात तिलमिलाते हुए प्रकाशकी संधि आवर्तन का प्रमाण कम होनेसे स्पष्ट होती है। वर्णपटकी किरणोंके प्रकाशका उपयोग करनेसे उनके रंगोकी छटा, दीप्ति तथा संपृक्ततामें फर्क होता है। उपयोग किये हुए प्रकाशकी क्रिया ज्यादा समयतक होनेसे इसमें संज्ञाग्राहकता कम होती हैं; भिन्न भिन्न रंगोंको मिलानेके लिये ज्यादा तीव्र प्रकाशकी आवश्यकता होती है यह इसका प्रमाण है। रंगीन प्रकाशपर ज्यादा समयतक दृष्टि रोकनेसे उनकी छटामें फर्क होकर संपृक्तता कम होती है फिर आखिर वे अदृश्य हो जाते है । लेकिन उनके पूरक रंगोंमे फर्क नहीं दिखाई देता। रंगीन चष्मा ज्यादा समयतक लगाकर निकाला जाय तो दृश्य पदार्थमें चष्मेके रंगके पूरक रंगोकी छटा दिखाई देती है।

वर्णपटकी किरणोके खास भागके रंगोपर कुछ ज्यादा समयतक दृष्टि रोकनेसे रंगोका संज्ञाग्रहण कम होता है अन्य रंगोपर कुछ असर नहीं होता, वे स्पष्ट दिखाई पडते हैं।

अन्य भागके रंगोपर दृष्टि रोकनेसे उनके संबंधमे दृष्टिपटलके उत्तेजित भागकी संज्ञाग्राहकता कम और उनके पूरक रंगोका ग्रहण ज्यादा होता है। इतनाही नहीं लेकिन वर्णपटकी किरणोके अन्य भागके रंगसंबंधी कम या ज्यादा होनेकी संवादि क्रिया उत्पन्न होती है। इससे यह अनुमान कर सकते हैं कि जिन रंगोपर अप्रत्यक्ष परिणाम नहीं दिखाई देता वे मुख्य महत्वके रंग है क्योंकि अन्य रंग तयार होनेमें उनका भी भाग रहता है।

ॲलन आदिने इस विषयका संशोधन किया है। इन संशोधनका निष्कर्ष यह होता है कि लाल, हरा और नीललोहित रंग इनका प्राकृतिक मूलभूत या मुख्य रंग होना संभव है। ॲलनने वर्णपटके किरणोंके रंगोंपर प्रयोग किये। ये प्रयोग वर्णपटके अनेक प्रकाश खास लहरियों की लम्बाइके प्रकाशको दीर्घकालतक लगानेसे पैदा हुई तिलमिलानेकी संधि आवर्तन के नापन के रूपके थे। आवर्तनकी वृद्धि या क्षय संज्ञाग्राहकताके कम होनेका लक्षण है। इन प्रयोगसे यह स्पष्ट होता है कि नेत्रकी अंधेरेसे मिली हुई अवस्थामें वर्णपटकी किरणोंकी खास लम्बाई की लहरियोंके प्रकाशकी क्रिया (लाल, हरे और नीललोहित) होनेसे चाक्षुष व्यूहकी संज्ञाग्राहकता कम होती है। लेकिन वर्णपटके अन्य भागके रंगोंपर कुछ परिणाम नहीं होता। इससे यह अनुमान कर सकते है कि ये रंग मुख्य मूलभूत स्वरूप के हैं। इसके विपरीत दूसरे नेत्रके प्रकाशसे मिली हुई अवस्थामें प्राथमिक रंगोंकी क्रिया की जाय तो वर्णपटके उस भागकी रंग संबंधी संज्ञाग्राहकता कम होती है और उनके पूरक रंगोंकी ग्राहकता ज्यादा होती है। किसीभी खास लम्बाई की लहरियोंकी प्रकाशकी संज्ञाग्राहकता कम या ज्यादा हो, तो उसकी अवस्था लाल हरे और नीललोहित रंगोंपर लागू पडती है। इन बातोंका रंग और रंग दृष्टिकी कल्पना संबंधी औपपत्तिक दृष्टिसे ज्यादा महत्व है।

पश्चात प्रतिमाओंके धर्म और उनका महत्व (नेचर ॲंड सिगनिफिकन्स ऑफ आफ्टर इमेजिस)

पश्चात प्रतिमाका व्यूह मस्तिष्कमें नहीं होता बल्कि उसके बाहरके दृष्टिपटल के मज्जाव्यूह में होता है यह बात सप्रमाण सिद्ध की जा सकती है। जिन उत्तेजकोंका चैतन्यावस्थापर कुछ परिणाम नहीं होता और उनसे पश्चात प्रतिमा पैदा हो सकती है,—यह इसका प्रमाण है। **बिडवेल** की घुमती तश्तरीसे यह सिद्ध होता है।

चि. नं. ३१५
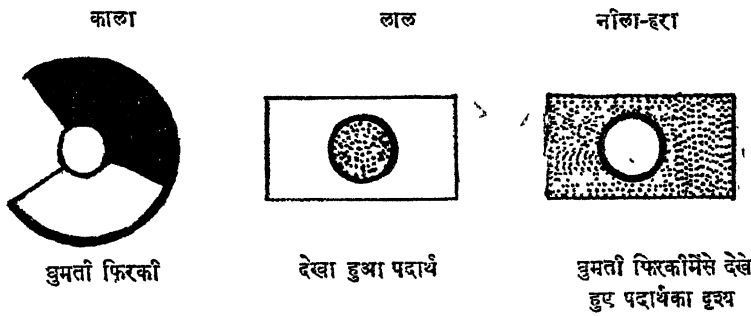
कालवाचक उपपादन बतलाने वाला बिडवेल का प्रयोग

चक्राकार सपाट पदार्थ के पृष्ठके कुछ भागको सुपेद और कुछ भागको काला करके शेषभाग बेरंग रखना। फिर इस पदार्थको अंशतः लाल और अंशतः नीललोहित पार्श्वभूमिपर रखकर जोरसे घुमावें तो दृष्टिपटल पर प्रतिमाओंका बननेका अनुक्रम पहले रंगीन पार्श्वभूमि, फिर सुपेद खंड और फिर काले खंड की ऐसा होगा। यह चक्राकार

पदार्थ नियमित गतिके प्रमाणसे घुमाया जाय तो पार्श्वभूमिके पूरक रंग दिखाई पडते है यानी लाल रंग कुछ नीला हरा और कुछ नीललोहित हरा लाल दिखाई पडता है। इसके यान्त्रिक व्यूहका विवरण इस तरहका होता है। पहले लाल प्रकाश उत्तेजक से पश्चातका सुपेद रग, लाल रंगके पूरक रंगके कुछ नीले–हरे रंगके समान दिखाई पडता है। दूसरा लाल उत्तेजक, पश्चात प्रतिमाके समयमे गिरनेसे दब जाता है लेकिन उसके पश्चातका सुपेद क्षेत्र कुछ नीले–हरे रंगका दिखाई पडता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यदि लाल संस्कार चैतन्य अवस्थासे नहीं मिलता तो भी उसका परिणाम दृष्टिपटलपर रहता है।

पश्चात प्रतिमाओंका प्राकृतिक महत्व

दो समान उत्तेजकोंके कार्यका ग्रहण दृष्टिपटलके जिस व्यूहसे कम होता है और जिसमें उत्तेजकोंके कार्यका ग्रहण ज्यादा होता है उस व्यूहका प्राकृतिक महत्व ज्यादा है। कार्यको सरल करना या रोकना इसका स्पष्टीकरण–ॲलनके प्रयोगसे होता है। एक स्नायुके कार्यका शिथील होना और उसके विरुद्ध स्नायूका आकुंचन कार्य होना इनका पश्चात प्रतिमाके कार्यसे साम्य है। इस संबंधमे **म्याकडुगलके** मतानुसार चाक्षुष संज्ञाओंको लेजानेवाले मज्जापथमे परिवर्तन होता है। नियमित कालमे होनेवाले प्रमाणबद्ध परिवर्तनका हूबेहूब नमुना इन मज्जापथोंके भौतिक कार्यमे दिखाई पडता है। जीवन शास्त्र दृष्टिसे विचार करें तो मालूम होता है कि यह क्रियाका रूप पूर्वसंस्कारोंका लोप करके नये संस्कार को ग्रहण करता है। और इससे नेत्रको नये समयमें ज्यादासे ज्यादा संस्कारोंका ग्रहण करना संभव होता है। इस कार्यका महत्व नित्य व्यवहारमे अच्छी तरहसे दिखाई पडता है। क्योंकि जब पुस्तक पढते है तब एक सेकन्दमे ४० से ८० अक्षरोंकी प्रतिमाओंके संस्कार मस्तिष्कमें जाते है। इस कार्यको अच्छी तरहसे होनेके लिये नव संस्कारोको ग्रहण करनेके लिये दृष्टिपटलको तैयार होना आवश्यक है।

(ब) स्थानवाचक उपपादन या अप्रत्यक्ष परिणाम (स्पेटियल इन्डक्शन)

कालमर्यादामेके आनुक्रमिक उत्तेजकोंके अप्रत्यक्ष परिणाम का विचार कर चुके हैं। उत्तेजकोंकी हमसार एकसमय, तथा क्रियाका चाक्षुष व्यूह परके अप्रत्यक्ष परिणामोंका विचार संक्षेप में करेंगे। **एक समयके भासित विरोधी परिणाम** इन दोनों क्रियाओंका अवकलन पहले पहल १८३२ में **शेवलनें उत्तरोत्तर और एक साथ घटित होनेवाले विरोधी परिणाम** ऐसा किया था। दो रंग नजदीक रखनेसे उनका पारस्परिक परिणाम होता है। यह निरीक्षण सन १५१९ मे **चित्रकार लिओनारडो** डा **विन्सी** ने किया था। हमसार या एकसाथ घटित विरोधी परिणाम का स्पष्टीकरण सुपेद काले तथा रंगीन उत्तेजकोंके कार्यसे हो सकता है। सुपेद पार्श्वभूमिपर भूरे रंगका पदार्थ रखा जाय और उसके समान पदार्थ काले पार्श्वभूमिपर रखा जाय तो पहले पार्श्वभूमिका पदार्थ दूसरे की अपेक्षा ज्यादा काला भासमान होता है। रंगोंमें भी आसपासकी परिस्थितिके अनुसार उसकी छटा दीप्ति तथा संपृक्ततामें फर्क दिखाई पडते हैं। समान छटाके दो रंग एक दूसरे के पास रखनेसे उनकी दीप्ति और संपृक्तताके फर्क स्पष्ट दिखाई पड़ते है। भिन्न भिन्न छटाके दो रंगके फर्क उनके पूरक रंगके समान दिखाई पडते हैं। भूरे रंगकी तुलना उसके समान तिव्रताकी

पार्श्वभूमिके दूसरे रंगसे करनेसे भूरे रंगमें पार्श्वभूमिके रंगके पूरक रंगकी छटा दिखाई पड़ती है। यह तुलनात्मक विरोधी छटा सिर्फ परिधि भागमें दिखाई पड़ती है ।

रंगोंके तुलनात्मक विरोधका विकास तथा व्याप्ति अनेक बातोंपर अवलम्बित होती है। दोनों रंगोकी दीप्तिके प्रमाणका फर्क कम हो और उनकी संपृक्तताका प्रमाण भी ज्यादा हो, तो रंगोका तुलनात्मक विरोध ठीक दिखाई पड़ता है। जब सिर्फ दीप्तिके विरोधकी तुलना की जाती है (जैसे सुपेद-काले रंगकी तुलना) तब काले रंगके बिन्दुओंकी चमक की वृद्धि दोनों रंगोंकी तीव्रताके फर्कपर अवलम्बित होती है, रंगके केवल मूल्यपर नहीं होती। उत्तेजक प्रकाशकी तीव्रता तथा उसकी स्थान व्याप्ति इन दोनोका संबंध पारस्परिक स्वरूपका होता है। तुलनात्मक विरोधका प्रमाण उत्तेजित स्थानके प्रमाणके वर्गमूल के प्रमाणमे बदल जाता है।

तिलमिलानेकी संधि आवर्तके कार्यसे संज्ञाग्राहकताका माप करनेसे ॲलनको मालूम हुआ कि जब एक नेत्र दिनके प्रकाशसे मिला हुआ होता है इस अवस्थामे दूसरे नेत्रके दृष्टिपटलके किसीभी भागको सुपेद प्रकाशसे उत्तेजित किया जाय तो उसके संपूर्ण भागकी संज्ञाग्राहकता वर्णपटकी किरणोंके सब भागोंके लिये बढ़ जाती है, और वर्णपटके किसीभी एक भागके प्रकाशसे (छ समस्थित रंगके सिवा ६६००, ५७००, ५२००, ५०५०, ४८००, ४३५० अं. एकं के जिससे कुछ परिणाम नहीं होता) उत्तेजित करनेसे दृष्टिपटलके सब भागोंकी संज्ञाग्राहकता वर्णपटके सब रंगोंके संबंधमें बढ जाती है। और यह वृद्धि लाल हरे तथा नीललोहित रंगोंके संबंधमें प्रायः उनके पूरक रंगोंके संबंधमें सबसे ज्यादा होती है। सैद्धांतिक दृष्टिसे इसका महत्व है। उत्तेजक रंगकी क्रियासे अप्रत्यक्ष परिणामसे भासमान होनेवाले इनके पूरक रंगमें फर्क दिखाई देता है। इस अवस्थाके अनेक कारण है (१) दृष्टिस्थान या स्फटिक भागमें रंजित द्रव्योका एकत्रित होना (भौतिक अवस्था) (२) नेत्रकी मिलती अवस्थामें फर्क होना (प्राकृतिक अवस्था) और मानसिक अवस्था।

स्थानवाचक उपपादन-या अप्रत्यक्ष परिणाम का महत्व और धर्म

स्थानवाचक उपपादन की क्रियाके धर्म संबंधी बहुत वाद मच रहा है। **ज्यूरीन और ब्रान्डीस** के मतानुसार दोनों घटनाऐं-समकालिक और उत्तरोत्तर होनेवाले विरोध-अभिन्न होती है;पहली घटना स्थैर्य बिन्दुके इर्दगिर्द जल्द उत्तरोत्तर होनेवाले विरोध की मिसाल होती है। लेकिन यह नहीं होताः समकालीक विरोध क्षणिक उत्तेजनसे पैदा होता है इतनाही नहीं बल्कि वह तात्कालिक दिखाई देता है और जिसकी पश्चाद प्रतिमा नहीं हो सकती ऐसे संपृक्तताके निर्बल रंगोंसे पायी जाती है। **ब्रेटोके** मतानुसार यह असलमे संज्ञाको तेजस्वी करनेकी घटना होती है जिससे संज्ञा दृष्टिपटलके संलग्न क्षेत्र को फैलती है, यह कल्पना **हेआरिंग** पंडित को मान्य थी। **हेल्महोल्डस** ने ऐसा मतप्रचार किया कि यह निर्णय लेनेकी गलतियोंसे होता है। और भी कल्पनाऐं प्रचलित हुई थीं। लेकिन यह क्रिया **हेआरिंगके** मतानुसार प्राकृतिक तोरकी है इसमें मानसिक क्रिया का संबद्ध नहीं है, यह बात, **शेरिंगटन, बिडवेल, बुर्क हेस** के प्रयोगोंसे सिद्ध हो सकता है।

इस संबंधमें बुर्क ने जो प्रयोग किया उसका वर्णन देते हैः—

एक सन्दुकमे (चित्र न. ३१६) दो खाने बनाये होते हैं : और जिनमें निरीक्षक का नेत्र ब और ड मे से देखता है। सन्दुक का एक खाना लाल काचकी तस्तरी अ से

चित्र नं. ३१६
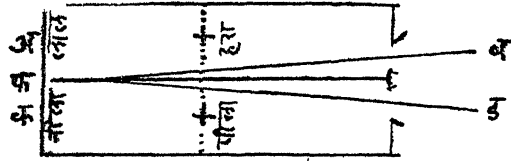
अवकाश का उपपादन बतलानेवाला ब्रुक का प्रयोग

और दूसरा खाना नीले काचकी तस्तरी क से बंद किया है। सन्दुकके बीचमें रखी हुई पारदर्शक कांच पर भूरे रंगके दो क्रूस होते हैं। सन्दुकमेके फ बिन्दुपर दृष्टि रोखनेमे निरीक्षकको सुरख पार्श्वभूमि दिखाई पडेगी जो लाल और नीले रंग की मिश्रण से बनती है। यदि समकालिक विरोध निर्णय लेनेकी बात होती तो भूरे क्रूस सूरख रंग के पूरक रंगके दिखाई देना चाहिये। लेकिन यह निश्चित तौरसे मालूम हुआ है कि वे पूर्णतया साफ दिखाई देते हैः—नीले पार्श्वभूमी परका क्रूस पीला और लाल पार्श्वभूमी परका क्रूस हरे रंगका दिखाई देता है। यह घटना निर्णय लेनेपर अवलम्बित नहीं बल्कि दृष्टिपटलीय मज्जाव्यूहसे निश्चित होती है।

स्थानवाचक अप्रत्यक्ष परिणामके प्रकारोंकी क्रियाअें किस प्रकारसे होती हैं इस संबंधमें पूर्ण निर्णय नहीं हुआ। साधारणतया यह क्रियाअें मानासिक रूपकी होती होंगी ऐसा माना जाता है। एक समय भासमान होनेवाली तुलनात्मक विरोधी क्रियाअें साधारण-तया पश्चात प्रतिमाकी क्रियाके समान होती है।

कालवाचक तथा स्थानवाचक अप्रत्यक्ष परिणाम और दृष्टिपटलकी कार्यक्षमता इन-दोनों में पारस्परीक विपरीत संबंध होता है। पूर्व उत्तेजकसे नये समान उत्तेजक की क्रिया का निरोधन होता है लेकिन विरोधी क्रियाके लिये दृष्टिपटलकी क्षुव्यता बढ़ जाती है। दोनों क्रियाएँ एक समय में होती हैं और रोधन तथा क्षुब्धताकी संयुक्त क्रियासे गडबड नहीं होती।

प्रकाश चमकाका विसर्जन (दृष्टिभ्रम ईरेडिएशन)

विशेष स्थानकी अप्रत्यक्ष क्रियाके कारणसे चमकदार आकारका पदार्थ काली पार्श्व-भूमिपर रखाजाय तो वह नैसर्गिक आकारसे बड़ा भास मान होता है। इस दृश्य को प्रका-शकी चमक विसर्जन कहते है। इसी कारण प्रकाशमान तारोंका आकार बड़ा मालूम होता है। इस दृश्याभास के कारण सुपेद चौकोर उसी आकारके काले चौकोरसे बड़ा भासमान होता है चित्र नं. ३१७। इससे यह कल्पना कर सकते हैं कि आसपासके चमकवाले भाग एक दूसरे में

मिल जाते है। प्रकाशतीव्रता ज्यादा हो तो यह परिणाम ज्यादा भासमान होता है। आकृति बडी दिखनेका प्रमाण प्रत्यक्ष तीव्रताके प्रमाणानुसार नहीं होता। दृक्संधान शक्ति शिथिल करनेसे यह प्रमाण ज्यादा दिखाई देता है। दृष्टिपटलके उत्तेजित भागसे चारों ओर उत्तेजक फैल जानेसे यह दृश्य दिखाई देता है। डेकार्टने इस संबंधमें यह प्राकृतिक कारण बतलाया है कि दृष्टिपटलके एक मज्जातन्तु उत्तेजित होनेसे नज़दीक के तन्तुमें अप्रत्यक्ष उत्तेजित अवस्था पैदा होकर वस्तुगत संवेदनाके सिवा प्रकाशकी प्रत्यक्ष संवेदना उत्पन्न होती है।

चित्र नं. ३१७
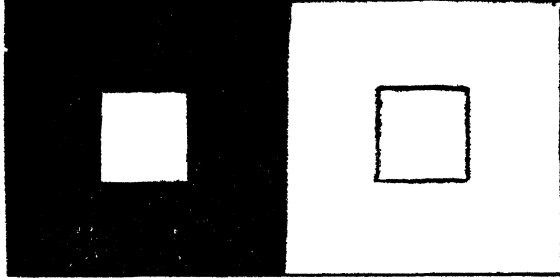
दृष्टिभ्रम

दृष्टिपटलकी थकावट (फटिग ऑफ दी रेटायना)

साधारणतया शरीरके स्नायुओंमें कुछ कार्य के बाद जैसी थकावट दिखाई देती है उस तरह की थकावट दृष्टिपटलमें नहीं दिखाई देती। यदि कभी थकावट होती हो तो इतनी कम होती है कि वह स्पष्ट मालूम नहीं होती। दृष्टिपटलमें पैदा होनेवाली रासायनिक क्रिया की विरुद्ध प्रतिक्रियासे दृष्टिपटलकी कार्यक्षमता फिरसे प्रस्थापित होती है। नेत्र की प्रकाश-क्रियासे नये प्रकाशसंबंधी ग्राहकता चलती रहती है, उसकी कार्यक्षमतामें अवरोध नहीं दिखाई पडता। जो थकावट दिखाई देती है उसके कारण तारकातीत पिंडीय स्नायुके कार्यका लोप, या नेत्रकी बाह्य चालनी स्नायुओंके परस्परानुकूल व्यापार का बिगाड, या अवधान तथा आस्थाका बिगाड ये होते है। दृष्टिपटलकी प्रत्यक्ष थकावट उसकी विकृत अवस्था बिना नहीं दिखाई देती।

अध्याय २१

चाक्षुष संज्ञाकी अनियमित बातें (व्यंग) (ॲनॉमलिज ऑफ व्हिजुअल सेन्स)

अब तीनों चाक्षुष संवेदनाजन्य अनुभवकी अनियमित बातोंका प्राकृतिक दृष्टिसे विचार करेंगे ।

(अ) प्रकाशसंज्ञाकी अनियमित बातें (ॲनॉमलिज ऑफ लाइट सेन्स)

रतौंधी–नकुलांध (नाइट ब्लाइंडनेस):—रतौंधी की अवस्थामें साधारण प्रकाशमें दृष्टिकार्य ठीक होता है । लेकिन मंद प्रकाशमें ठीक नहीं होता । रतौंधी में स्कोटापिक व्यूहमें कुछ बिगाड होता है । इसमे नेत्रकी संयोजनता–मिलती हुई अवस्था–की शक्ति कम होनेसे अंधेरेमें संज्ञाग्राहकता का प्रमाण कम होता है । रतौंधी यह स्वतंत्र रोग नही है लेकीन अन्य रोगोका एक लक्षण होता है ।

रतौंधी यह एक अंधेरेसे मिली हुई अवस्थाका बिगाड का लक्षण है । प्रारंभिक प्रकाश उत्तेजन पहले नैसर्गिक होता है लेकिन मिली हुई अवस्थाकी वृद्धि के साथ संज्ञाग्राहताकी आवश्यक वृद्धि नहीं होती; या प्रारंभिक प्रकाश के उत्तेजक का प्रमाण पहलेसे ही ज्यादा होता होगा; या मिली अवस्था नैसर्गिक से कम होगी या बिलकूल अविकासित होगी । लम्बे लहरियोंके प्रकाशके प्रारंभिक उत्तेजकके प्रमाण पर इसका असर ज्यादा होता है । भिन्न भिन्न प्रकाशके भेद पहँचाननेकी दृष्टिपटलकी संज्ञाग्राहक शक्तिमे फर्क होता है । रंगज्ञानकी दुर्बलतामें नीले रंग की संज्ञाग्राहकता पर परिणाम होता है ।

रतौंधीमें स्कोटापिक व्यूहका विकास नहीं होता । और यदि विकास हुआ हो तो पूर्ण नहीं होता । लेकिन उससे पैदा होनेवाले प्रश्न सैद्धान्तिक दृष्टिसे महत्व पूर्ण होते हैं । राड घटकोंका महत्वका कार्य जिस दृष्टिकार्यमें होता है वहा राड घटकोंके कार्य को प्रतिकार होनेसे यह अवस्था मुख्यतः दिखाई देती है । इससे यह कल्पना कर सकते है कि रतौंधीकी हर निश्चित अवस्थामें राड घटकोंकी उत्पत्तिमें अनियमितता होती होगी या उनका नाश होता होगा । यकृत विकृती या पित्तज अनिष्ट परिणाम और रतौंधी इनका पारस्परिक संबंध दिखाई देता है । अनाथाश्रम या जेल जैसे संस्थाओंमें, रतौंधी के रोगीका प्रमाण ज्यादा दिखाई पडता है ऐसा हमने जेलमे देखा है । इन रोगीको यकृत खानेको देनेसे रतौंधी का लोप होता है ऐसा हमारा अनुभव है । इससे यह अनुमान होता है कि रतौंधी और चाक्षुष नीललोहित पिंगकी उत्पत्ति इनमें कार्यकारण संबंध होता होगा; इनके कारणोंमें तीव्र प्रकाशके कार्यका संबंध जुडा होता है । राडघटकोंके रचनेकी अनियमितता या नीललोहित पिंगकी कार्यक्षमताकी न्यूनता रतौंधीके सर्वसम्मत कारण माने गये है ।

नीललोहित पिंगके कार्यके संबंधी सुपेद चूँहे पर के प्रयोगसे बहुत कुछ जान चुका है ।

रतौंधी के कारणपरत्वे छे प्रकारः—

(१) प्रत्यक्ष नेत्र की विकृत अवस्थोद्भूत रतौंधीः—यदि नेत्रकी मिलती हुई शक्ति दृष्टिपटलके परिधि भागकी अपेक्षा दृष्टिस्थान केन्द्रमें सापेक्षतासे कम हो तो या

परिधि भाग की कार्यक्षमता किसी कारणसे कम हो जाय तो रतौंधी की अवस्था पैदा होती है। वक्रीभवन मार्गकी (तारकापिधान तथा स्फटिकमणि) परिधि भाग की अपारदर्शकता, जिसमें परिधि भाग मे विकृतिका प्रारंभ होता है ऐसी अवस्था, दृष्टिपटल का **रंजित दृष्टिपटल** दाह (रेटिनायटीज पिगमेन्टोझा), प्रागतिक निकट दृष्टित्व,तथा कृष्ण पटल-—दृष्टिपटल दाह, दृष्टिपटल की स्थानभ्रष्टता, दृष्टिरज्जू दाह तथा कांचबिन्दु इन विकृत अवस्थाओमे नेत्रकी मिलती जुलती होनेकी शक्ति कम होती है और रतौंधी लक्षण के स्वरूप में दिखाई देती है।

(२) हमजात तथा मौरूसी (जन्मजात तथा परंपरा प्राप्त) रतौंधी

(अ) हमजात रतौंधी अन्य किसीभी विकृतिके विना स्वयमेव दिखाई देती है। **मौरसी रतौंधी** के तीन प्रकार होते हैं:—

(i) **प्रबल प्रवृत्ति प्रकार** (डामिनंट फॉर्म पन्हा ३४५ अध्याय ९ देखिये) इसमे पुरुष या स्त्री (नर या मादी) कोई भी एक प्रवल प्रवृत्ति का और दूसरा नैसर्गिक वृत्तिका हो तो प्रवल के बीज गुण सब पीढीयोमे आते है।

(ii) **परिवर्तित सुप्ताअवस्था प्रकार** (रिसेसिव्ह फॉर्म):—इस अवस्थामें पुरुष या स्त्री के बीज गुण एक पीढी छोडके दूसरी पीढीमे दिखाई देते हैं। इस अवस्थाके लोगोंमें निकट दृष्टित्व का प्रमाण ज्यादा दिखाई पडता है।

(iii) **लैंगिकान्वित परिवर्तित सुप्तावस्था का प्रकार** (ए रिसेसिव्ह सेक्स लिंकृड फॉर्म) इस अवस्थामें बापको रतौंधी हो तो उसकी कन्या को रतौंधी नहीं होती उसमे से सिर्फ रतौंधी का बहन होकर उसके पुत्र को रतौंधी होती है लडकियों मे नही होती। लडकीयों में परिवर्तित सुप्तावस्था होती है और इसका संचारण एक्सक्रोमोझोमसे होता है। इसके साथ महाबली निकटदृष्टित्व दिखाई देता है।

(ब) हमजात तथा मौरूसी (जन्मजात तथा परंपरा प्राप्त) रतौंधी दृष्टिपटलकी रंजित गुण-ह्रास-जन्य-अवनत अवस्थामें दिखाई पड़ती है।

(३) खुराकमें पौष्टिक द्रव्योंका (जीवन सत्वोका, व्हिटॅमिन्स) अभाव होनेसे पोषण हीनता पैदा होकर रतौंधी एक लक्षण दिखाई पडता है।

ख्यालमें रखना चाहिये कि यह अवस्था चिरकालिक हो तो इसके साथ शुक्लास्तरानार्द्रता या अनार्द्र तारकापिधान दाह तथा शुक्लास्तर की रंजकता ये लक्षण दिखाई पडते हैं। इस अवस्थामें सुश्रुतमें यकृत—कलीजा—का उपचार लिखा है।

(४) यकृतकी विकृत अवस्थामें रतौंधी होती है।

(५) नेत्रपर प्रखर प्रकाश का असर होनेसे रतौंधी होती है।

(६) अन्य विकृत अवस्थाका अभाव होतेही नसक्षीणता या मज्जामंडल क्रिया दौर्बल्य में भी यह लक्षण दिखाई पडता है।

दिनांधत्व (निकटालोपिया डे ब्लाइन्डनेस)

यह अवस्था रतौंधीकी अवस्थासे विपरीत होती है। इस अवस्थामे रातके समयमें या मंद प्रकाशमें ठीक दिखाई पडता है; प्रखर प्रकाशमें ठीक नहीं दिखाई पडता। यह अवस्था दृष्टिस्थानके केन्द्रकी विकृतिमें–फोटापिक विकृत अवस्थामें दिखाई पडती है, परिधि दृष्टिमें–स्कोटापिक दृष्टि की विकृतीमें नहीं दिखाई देती। दृष्टिमार्गके तारकापिधान या स्फटिक मणिकी केन्द्रकी अपारदर्शकतामें, और दृष्टिस्थानकी विषजन्य अंधत्व की अवस्थामें दिखाई पडती है। यह अवस्था परंपरा प्राप्त सुप्तावस्थाके प्रकारकी होती है इसमे कौनघटक विकृत होते हैं।

(ब) रंगसंज्ञाकी अनियमित बातें

रंगसंज्ञाकी अनियमित बातों के दो प्रकार होते हैं:—

(१) **रंगज्ञान दुर्बलता** (अ) हमजात रंगज्ञानांधता; (ब) संपादित रंगज्ञानांधता। (२) **विपर्यस्त रंगज्ञान**। **१ हमजात रंगज्ञान दुर्बलता:**—जन्मजात रंगज्ञान दुर्बलता की अवस्था प्राचीन कालसे ज्ञात थी। लेकिन इस अवस्थाका शास्त्रीय रीतिसे संशोधन रसायन शास्त्रज्ञ **डाल्टनके** समय सन १७९८ से शुरू हुआ। इस अवस्थाके संशोधनकी तरफ डाल्टनका ध्यान जानेका कारण खुद डाल्टनमें यह दोष था। और इसी कारणसे इस अवस्थाको **डाल्टनैझिम** कहते है। इस दोषके संशोधनमें बहुतसे प्रयोग हुए है। और अभी भी हो रहे हैं। लेकिन इसकी शास्त्रीय कारणमीमांसा अभी भी निश्चित नहीं हुई है। यह ख्यालमें रखना चाहिये, लेकिन भूल जाते है कि, रंगज्ञानमें मानसिक क्रियाका भाग होता है। क्योंकि किसी मनुष्यको दूसरेके रंगज्ञान का प्रमाण ठीक नहीं हो सकता। एक ही उत्तेजकसे खुदकी तथा दूसरेकी संज्ञाकी पारस्परिक तुलनासे अन्यान्य भेद की कल्पनासे हो सकती है। लेकिन उनके नेत्र की प्राकृतिक संज्ञा तथा उसके मानसिक पूरक भाग के संबंधमें ठीक कल्पना नहीं हो सकती। मनुष्यके रंगज्ञानमें दोष है ऐसी उसको कुछ कल्पना नहीं होती; उसके व्यवहार ठीक होते रहते हैं। पदार्थका क्षेत्र,आकार तथा उसकी दीप्ति और पूर्व संचित अनुभवसे, नैसर्गिक रंगसंज्ञावाले मनुष्यके समान, पदार्थ तथा बेरंग अवस्था संबंधी प्रचलित शब्दोका उपयोग करके रंगोकी छटा की कल्पना उस मनुष्यको बिनाचुके हो सकती है। रंगज्ञानसे अज्ञात मनुष्य जिन बाह्य बातों की सहायतासे रंगोकी छटाओका निर्णय कर सकता है उन बातोको छोडनेपर ही रंगज्ञान दुर्बलता पहचाननेकी कसौटी बन गई है।

रंगज्ञान दुर्बलताका वर्गीकरण

रंगज्ञान दुर्बल लोगोंमें यह विशेष होता है कि उन्हे नैसर्गिक रंगज्ञानवाले लोगोंसे कम रंग पहचाने जाते हैं। इस अवस्थाका वर्गीकरण अज्ञात रंगोकी संख्यासे करना सुभीतेका होता है। **एल्डरीज ग्रीनने** वर्गीकरणकी नियमित पद्धतीके अनुसार वर्णपटकी किरण की रंगसंख्यासे वर्गीकरण किया है। उसके वर्गीकरणके अनुसार जिस मनुष्यको छरंग (लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला और नीललोहित) दिखाई देते है उसको रंगकी संख्याके अनुसार षड् रंग ज्ञानी, पंच रंग ज्ञानी, चतुरंग ज्ञानी आदि आदि कहते हैं।

रंग दृष्टि ज्ञानमें तीन मूलभूत रंग माने गये हैं।उनकी संवेदना के भिन्न भिन्न प्रमाणके

यह अवस्था दिखाई पडती है, होमोझायगोमस माके नैसर्गिक सब लडकोंमें और आधी लडकियोंमें यह दोष दिखाई पडता है; शेष नैसर्गिक लडकियाँ सिर्फ यह दोषिक अवस्थाका प्रेशण करती हैं। लेकिन रंगज्ञान दुर्बल पिता और संकरवर्ग माके संयोगके संततीमें के ५०% लडकियोंमें रंगज्ञान दुर्बलता दिखाई पडती है; शेष लडकियाँ नैसर्गिक होती है लेकिन वे यह अवस्था प्रेशण करती है; और ५०% लडके यह अवस्था प्रेशण करते है।

तिरंगी दृष्टिकी अनियमित बातें

नैसर्गिक तिरंगी दृष्टिकी अनियमितता दृष्टिस्थान या स्फटिक मणिमें रंजित द्रव्योका रोपण की भौतिक अवस्थासें पैदा होती है; लेकिन कुछ उदाहरण ऐसे दिखाई देते हैं कि जिनकी कारणमीमासाका स्पष्टीकरण संवेदनाकी अनियमिततासे कर सकते हैं। इस समुदायमे तिरंगी-दृष्टि और दुरंगी दृष्टि की अवस्थाके संक्रमण अवस्थाके उदाहरण होते है। दुरंगी अवस्थामे मूलरंगोंमें के एक रंगका ज्ञान नहीं होता : इस अवस्थामें अंशिक ज्ञान होता है; और नैसर्गिक दृष्टि और पूर्ण दुरंगी दृष्टि इन दोनों अवस्थाओंके बीचके सब प्रमाणके पूर्ण लाल या पूर्ण हरे रंगोंकी न्यूनताके उदाहरण मिले हैं। यदि एक जातीय पीले रंगकी एक जातीय लाल या हरे रंगोके मिश्रण से तुलना करना हो तो कुछ लोगोंको लाल और कुछ लोगोंको हरे रंगका प्रमाण नैसर्गिक अवस्थासे ज्यादा हुअे बिना करना संभव नहीं होता। पहली लाल अवस्था-वाले को अंशिक प्रोटानोप और दूसरीको यानी हरे अवस्थावालेको अंशिक ड्युटरानोप कहते हैं। दूसरी अवस्था का प्रमाण ज्यादा दिखाई देता है।

इन अवस्थाओका शोध पहले **लार्ड राले** ने १८३२ मे किया। साधारणतया यह कह सकते हैं कि तिरंगी दृष्टि की अनियमितता जिन लोगोंमें होती है उनको नैसर्गिक लोगोंकी अपेक्षा खास रंगकी दीप्तिका प्रमाण ज्यादा हुअे बिगर उनके भेद पहचानना संभव नहीं होता। और यह भेद पहचानने के लिये उसे समय भी ज्यादा लगता है। यह बात महत्वपूर्ण है। उनको बडा दृक्‌कोण और ज्यादा प्रकाश तीव्रताके सिवा रंगछटा पहचान-नेका कार्य करना संभव नहीं होता। उनमें चाक्षुष थकावट तुरन्त दिखाई देती है।

दुरंगी दृष्टि (कार्य)

नैसर्गिक तिरंगी दृष्टिमें वर्णपटके सब रंग तथा सुपेद रंग की, तीन रंग प्रकाशके (लाल हरे और नीले, विविध प्रमाणके मिश्रणसे तुलना कर सकते हैं। दुरंगी दृष्टिके मनुष्यको जिस प्रकारसे वर्णपटकी किरणें दिखाई पड़ती है उनके सब रंग तथा सुपेद रंग का, दो प्रकाशके रंग भिन्न भिन्न प्रमाण के मिश्रण से तुलना कर सकते हैं। यह दो रंग हरे–नीले (**प्रोटानो-पिया**), लाल–नीले (**ड्युटारानोपिया**) और लाल–हरे (**ट्रिटानोपिया**) होते हैं। यदि वर्णपटके सब रंगोंकी तुलना दो रंगोंके प्रकाशके विविध मिश्रण से हो सकती है और यही दो रंगोंके अन्य प्रकारकें मिश्रणसे सुपेद रंगकी संज्ञा हो सकती है तब दुरंगी वर्णपटमें ऐसा एक भाग होता होगा जो सुपेद यानी निर्विकार बिन्दुके (न्यूट्रल पाइन्ट) समान है।

लाल रंग दुर्बल (प्रोटानोप) और हरे रंग दुर्बल (ड्युटरानोप) लोगोंमें निर्विकार बिन्दु नैसर्गिक मनुष्यके समान भासमान होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ये दोनों समूहोंको लाल–हरे रग पहचाननेमे क्या तकलीफ होती है। लाल हरे रंग दुर्बल लोग कुछ नीले–लाल रंगकी गहरे हरे रंगके बराबर तुलना करते हैं। और हरे रंग दुर्बल लोक नीले लाल रंगकी तुलना शुद्ध हरे रंगके बराबर करते हैं। इसके विपरीत ट्रिटानोपको निर्विकार बिन्दु पीले रंगमें दिखाई पडता है। वर्णपटके नीललोहित सिरे को यह हरा या नीला समझता है,नीले–हरे की जगह नीला–हलका हरा भ्रम होता है, हलके पीले को भूरा और गुलाबी, हलके पीले–हरेको हलका नीला–नीललोहित, और नारंगीको हलका लाल–नीललोहित का भ्रम होता है। लाल और हरे रंगोंमें विभ्रम नहीं होता यह बात महत्वपूर्ण नहीं है।

वर्णपटके रंगोंकी छटाके भेद अर्थात लम्बी लहरियो के रंगोंके भेदको दुरंगी दृष्टिवाले लोग (डायक्रोमेट)नहीं पहचान सकते।इसलिये इन लोगोंको रंगकी दीप्तिपर अवलम्बित रहना पडता है। वर्णपटकी किरणोंकी छटाके फर्क पहचाननेके संबंधमें संशोधनसे मालूम होता है कि वर्णपटके भिन्न भिन्न भागोंके रंगोंके फर्क पहचाननेकी शक्तिमें फर्क दिखाई देता है। पीले या हरे भाग के भिन्न भिन्न लम्बाईके लहरियोंके कमसे कम फर्क पहचाने जाते हैं। ज्यादासे ज्यादा फर्क के भाग नैसर्गिक तिरंगी दृष्टिके लोगोंमें (ट्रायक्रोमेट) चार जगहमें दिखाई देते हैं। दो भागोंकी रंगछटाकी संज्ञाग्राहकता सापेक्षतासे सबसे ज्यादा होती है। और शेष दो भागोंमें इतनी तीव्र होती है कि लहरियोंकी लम्बाइमे १०।१५ अंगुस्ट्रीयन एक का फर्क होनेसे भी पहचान सकते हैं। लाल दुर्बलताके मनुष्यको सिर्फ दो भागके फर्क के रंग पहचाननेमें आते हैं। हरे दुर्बलताके मनुष्यको सिर्फ एक भागमे फर्क दिखाई पडते हैं। लेकिन इन लोगोको नैसर्गिक की अपेक्षा सापेक्षतासे रंग छटा ज्यादा पहचाननेमें आती है। इसका कारण यह है कि नीले–हरे भागके निर्विकार बिन्दुके भागके दीप्तिके फर्क आसानीसे पहचान सकते है।

फोटापिक अवस्थाकी दीप्ति की वक्ररेषा नैसर्गिक की अपेक्षा भिन्न दिखाई पडती है। हरे रंगकी दुर्बलताके मनुष्य की (ड्युटरानोप) वक्ररेषा लाल रंग दुर्बलताके वक्ररेषासे (प्रोटानोप) नैसर्गिक मनुष्यके वक्ररेषासे ज्यादा मिलती जुलती होती है। दोनों वक्ररेषाओंकी ऊँचाई नैसर्गिक मनुष्यकी अपेक्षा बहुत कम होती है। लेकिन लाल रंग दुर्बलता के मनुष्यकी (प्रोटानोपकी) वक्ररेषाकी ऊँचाई वर्णपटके नील लोहित सिरेकी तरफ और हरे रंग दुर्बलताके मनुष्यकी (ड्युटरानोपकी) वक्ररेषाकी ऊँचाई लाल सिरे की तरफ होती है। (ट्रिटानोपकी) नीले रंग दुर्बलताके मनुष्यकी वक्ररेषाकी सबसे ज्यादा ऊँचाई ५५८०।५६५० अंगुस्ट्रीयन एक के बीचमें होती है। लेकिन यह असल बात ख्यालमें रखने लायक है कि बेरंग स्कोटापिक अवस्थाकी दीप्तिकी वक्ररेषाके धर्म हमेशा नैसर्गिकके समान होते है।

एक रंगदृष्टि (मोनोक्रोमॅटिक व्हिजन), रंगज्ञान दुर्बलता (ॲक्रोमाटॉपसिआ) एकरंगी दृष्टि दुरंगी दृष्टिसे भिन्न वर्गकी होती है। दुरंगी दृष्टि में विकृत शारीर के

परिवर्तन नहीं दिखाई पडते लेकिन पूर्ण रंगज्ञानके अभाव की अवस्थामें विकृत शारीरके परिवर्तन दिखाई पडते हैं। दृष्टिस्थानका कार्य बहुत कम दर्जेका होता है, अनैच्छिक नेत्र-विभ्रम (निसटागमस) हमेशा दिखाई देता है; प्रखर प्रकाशसे यदि तकलीफ नहीं होती तो भी असुखदायक-संज्ञा होकर कुछ समयतक अंधत्वका लक्षण होता है।

रंगज्ञान के पुरे अभाव के लोगोंका दृष्टिकार्य मंद प्रकाशमे ठीक तरहसे होता है। इनमें साधारणतया वक्रीभवन दोष होते हैं, और नेत्रान्तरंग दर्शक यंत्रसे इनके नेत्रतलका दृश्य नैसर्गिक के समान दिखाई पड़ता है। लेकिन कुछ थोडे उदाहरणोंमें दृष्टिस्थान के फरक यानी दृष्टिस्थान केन्द्र का पीत रंजित द्रव्य का अभाव, नेत्रबिंब की पाडुरता और साधारणतः दृष्टिपटल के नैसर्गिक रंजितताका अभाव यह विकृत शारीर परिवर्तन दिखाई पडते हैं।

इस व्यंगका प्राकृतिक कारण कोन वटकोंका अभाव माना गया है, लेकिन इसके विकृत शारीरका प्रमाण नहीं मिलता। दृष्टिस्थान केन्द्र की शक्ति कम होनेसे दृष्टिस्थान और परिधि भाग की कार्यक्षमता समान होती है। दृष्टिस्थानमे विकृत अवस्था न होनेसे ही केन्द्रस्थ अंधतिलक दिखाई पड़ता है। नैसर्गिक अवस्थामें स्कोटापिकसे फोटापिक अवस्थाके संक्रमण मे दृक्शक्ति तीव्रताकी वक्ररेषामे खंड नही दिखाई पड़ता।

एक रंगी दृष्टिमें (या पूर्ण रंगज्ञान का पूरा अभाव की अवस्थामें)वर्णपट एक रंगी भूरे रंगके दिखाई पडते हैं, रंगोंके भेद नहीं दिखाई पड़ते। लेकिन नैसर्गिक स्कोटापिक वर्णपटके (चि.पट नं.२९०) समान दीप्ति में फर्क दिखाई पड़ते हैं। संज्ञाग्राहकता की वक्र रेषामें सिर्फ एक अस्थिर भाग होता है। दीप्तिकी वक्ररेषा महत्व की होती है। इस वक्र रेषाकी उँचाई हरे भागमें होती है। वर्णपटका लाल सिरा छोटा दिखाई देता है। इसका आकार नैसर्गिक स्कोटा-पिक अवस्थाकी दीप्तिकी वक्ररेषा तथा धवलीकृत चाक्षुप नीललोहित पिंग की वक्र रेषाके समान होती है (पन्हा ४५५ चि. नं. २७० -२७१ देखिये)। उसकी मिलती जुलती अवस्थासे कुछ संबंध नहीं होता। क्षणिक तिलमिलाने की प्रकाशके संधि आवर्तन के कार्य का प्रमाण, नैसर्गिक स्कोटापिक नेत्रके प्रमाणसे कम होता है। अंधेरेसे मिली हुई (स्कोटापिक) अवस्थाकी शक्ति नैसर्गिक मर्यादामें होती है लेकिन दृष्टिस्यानकी नैसर्गिक कमजोरी हमेशा नहीं दिखाई पडती। इससे यह हमेशा स्पष्ट होता है कि यदि दुरंगी दृष्टिके गुण नैसर्गिक दृष्टिके कम दर्जेके गुणके समान हो तो एक रंगी दृष्टि बिलकूल भिन्न स्वरूपकी होती है। ऐसा मालूम होता है कि स्कोटापिक दृष्टि नष्ट होती है और रंगज्ञानके पूर्ण अभाव मे हमेशा स्कोटापिक दृष्टिके लक्षण दिखाई पडते है।

रंगज्ञान दुर्बलताकी कसौटी

रंगज्ञानसे अज्ञात मनुष्यको व्यवहारमें तकलीफ न होनेके कारणका विवेचन पहले हो चुका है। अधिक विवेचन तात्विक रूपके है। लेकिन व्यवहारमें उसका महत्व है। क्योंकि रेलवै, जहाज और विमान मार्गोमें रंगीन चिन्होंका उपयोग किया जाता है। और इन मार्गोके कर्मचारी वर्गके लोगोंको रंगोंका बराबर ज्ञान है या नहीं यह जानना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लाल या हरे रंगोका यदि इन लोगोंको ठीक ठीक ज्ञान न हो तो बहुत अपघात

होकर प्राणहानी और नुकसान होनेकी संभवता है। इसलिये रंगज्ञानके अभाव की अवस्था पहचाननेकी असली कसौटीका वर्णन नीचे दिया गया है।

(१) वर्णपटकी कसौटी

किसीभी मनुष्यके रंगज्ञान के अभाव का ठीक ठीक पृथक्करण करनेके लिये वर्णपट-दर्शक यंत्र के सिवा दूसरी अच्छी सशास्त्र कसौटी नहीं है। किसीभी मनुष्यकी वर्णपटके भिन्न भिन्न भागोंके रंगोको पहचानना और उनकी छटाकी संज्ञाग्राहताका प्रमाण जानना, उसके निर्विकार मध्यबिन्दुकी धारियाँ और उनका विस्तार जानना, तथा न पहचानें जानेवाले रंग इत्यादि बातोंका ज्ञान इस कसौटीसे हो सकता है। लेकिन इस यंत्रमें विशेष तकलीफ होती है और समय भी ज्यादा लगता है।

जिस मनुष्यके रंगज्ञानकी दुर्बलताकी परीक्षा करना है उसको पहले वर्णपटके भागके कुछ रंग दिखलाते हैं फिर दूसरा वर्णपट दिखाकर,उसे पहले दिखे हुअे रंग के समान रंग पहचाननेके लिये कहते है। इसलिये **होल्म होल्टझके** वर्णपटके रंगोंके मिश्रण करनेका यंत्र या **एल्डरीज ग्रीनके** यंत्रका उपयोग करते है।

तिरंगी दृष्टिकी अनियमित बातों की परीक्षा करनेके लिये **लार्ड राले** के प्रमाण का उपयोग अच्छी तरहसे होता है। पीले रंग की दीप्ति और छटा से लाल और हरे रंगो के विविध प्रमाणों के मिश्रण से तुलना करके हर एक मनुष्य का प्रमाण निश्चित किया जाता है। **लार्ड रालेने** जिससे दोबार परिवर्तन होगा ऐसे त्रिकोणाकार भिंग का उपयोग अपने यंत्र में किया है।

नागेलने इसी कल्पना पर अपना यंत्र बनाया है। जिस मनुष्यकी रंगज्ञानकी परीक्षा करनी होती है उसे यंत्र के गोल क्षेत्र की तरफ देखनेको कहते है। इस गोल क्षेत्रका नीचेका भाग पीले प्रकाशसे प्रकाशित और ऊपरका भाग लाल और हरे प्रकाशसे प्रकाशित किया जाता है। इस मिश्रण का प्रमाण परदे के दो छिद्रोंकी सहायतासे अवश्यकता के अनुसार कम या ज्यादा कर सकते है।

वर्णपटदर्शक यंत्र की कसौटी गुंतागुत की है इस लिये नित्य व्यवहार के लिये अन्य कसौटी नीचे दी गई है जिसमें सिर्फ तीन कसौटी ज्यादा प्रचलित है-(१) रंगीन पदार्थोंकी पारस्परिक तुलना करना: (२) मिथ्या सवर्णिक आकारकी कसौटी: (३) लानटेन की कसौटी।

(२) रंगोकी पारस्परिक तुलनाकी कसौटी:—इसकी मध्यवर्ती कल्पना यह है कि जिस मनुष्य की परीक्षा करनी है उसको अनेक रंगोंके एकत्रित मिलाये हुए पदार्थोंमेंसे समान दिखाई देनेवाले रंगोको चुनकर अलग अलग करने को कहते हैं। सबसे पुरानी कसौटी **होसग्रीन** की **ऊन की लडी** की है। जिस मनुष्य की परीक्षा करनी है उसको रंगीन लडीओंमेंसे खास रंगोंकी लडी उठानेको कहते है।

(३) मिथ्या सवर्णी आकारोंकी कसौटी:—यह कसौटी ऊन की कसौटीके समान है। रंगज्ञान दुर्बल मनुष्य कुछ रंग और उनके अनेक छटाओंको अलग अलग नहीं पहचान सकता

इस लिये इस कसौटीका उपयोग होता है। इसमें भिन्न भिन्न रंगोके बिन्दुओंसे चित्रित किये हुए कागजके पार्श्वभूमिपर रंगो के छोटे छोटे अक्षर या अंक लिखे हुए होते हैं। सब प्रकारकी रंगज्ञान दुर्बलताके मनुष्योंको उपयोगी होंगे ऐसी इन अक्षरोंकी रचना की गई है। इन अक्षरोंकी कसौटी प्रथम स्टिलिंगनें सन १८८३ में निकाली (चि. नं. ४० पन्हा १२६ देखिये) इसमे अनेक लोगोंने सुधारा किया हैं। सन १९१७ मे इशीहारा ने और सुधार किया। उनकी इस कार्डों की कसौटी ज्यादा आसानी की होती है।

(४) **लालटेन की कसौटी** (चित्र नं. ३९ पन्हा १२४) कुछ लोग ऊन की लडी नहीं उठा सकते और कुछ लोगोंको अक्षर ज्ञान भी नहीं होता। इसलिये लालटेनसे परीक्षा की जाती है और यही लोकप्रिय है। इस लालटेनमे भिन्न भिन्न रंगोके शीशे रखे हुए होते हैं। जिसकी परीक्षा करनी है उसे शीशेके रंग बतलाना जरूरी होता है। या शीशे के रंगके समान रंगकी ऊन की लडींको उठाना पडता है। इसलिये ग्रेटबिटनके बोर्ड आफ ट्रेड की पसंद की हुई लालटेन का उपयोग करते हैं। इस लालटेन में सात प्रकारके रंगीन शीशे–दो लाल, एक पीला, दो हरे, एक नीला और एक बैंगणी रंगके होते हैं और एक साधा स्वच्छ शीशा होता है; कुहरा और बरसात का परिणाम बतलाने के लिये घिसा हुआ शीशा और जिसके ऊपर लकीरिया होती है ऐसे दो शीशे होते हैं।

(५) **तुलनात्मक विरोधकी कसौटीः**—इस कसौटीका उपयोग ज्यादह तौरसे नहीं होता। रंगीन पदार्थ पर तेली या कागज रखनेसे पदार्थ उसके पूरक रंगका दिखाई देता है। इस तत्वपर यह कसौटी रची गई है। भूरे रंग के अक्षरों को रंगीन पार्श्वभूमिपर रखकर उसके ऊपर तेलीया कागज रखकर देखे तो अक्षरोंमे पार्श्वभूमिके रंगके पूरक रंगोकी छटा दिखाई देती है। लेकिन रंगज्ञान दुर्बल मनुष्य को ये फर्क नहीं दिखाई देते।

(६) कनीनिकापर भिन्न भिन्न तेजस्विताके रंग डालनेसे कनीनिकाका आकुंचन भिन्न भिन्न तरहका होता है। लेकिन यह कसौटी व्यावहारिक नहीं है।

(७) **परिमाण कसौटीः**—प्रकाशकी तीव्रता, संपृक्तता, दृक्कोण और उसके कार्य की कालमर्यादाके परिमाणसे रंगज्ञान जान सकते है।

इन कसौटीयोंमेंसे एक भी कसौटी पूर्ण कार्यक्षम नहीं होती। उसका कार्य भिन्न लोगोंमें भिन्न प्रमाणमे होता है। होमग्रीनकी रंगीन उन की कसौटीका उपयोग पहले अवस्थामे ज्यादा होता है। इशी हाराकी कसौटी भी ठीक है। इनके साथ लालटेन कसौटी रेलवे आदिके कर्मचारीयोंके लिये ज्यादा उपयुक्त है। लेकिन सूक्ष्म भेद पहचाननेके लिये वर्णपट दर्शक यंत्र का ज्यादा महत्व है।

(२) विपर्यस्त रंगसंज्ञा

लाल, हरा, या पीला दिखाना इन लक्षणोंका विचार योग्य स्थानमें किया जायगा।

(क) आकारसंज्ञाकी अनियमितताः—

पदार्थ के आकारमें फर्क दिखाना यह विकृत अवस्थाका लक्षण है। यह लक्षण वक्रीभवन व्यूहके दोष या दृष्टिपटल की अनियमित अवस्थामें दिखाई देता है। दृष्टिपटलका दाह,

द्रवोत्सर्गिक अवस्था, सिध्मिभूत वटकोंका आकुंचन, अर्बुद और उसकी स्थानभ्रष्टता आदि अवस्थामें दृष्टिपटलके घटक स्थानच्युत होनेसे उनका कार्य बदलता है। और उससे पदार्थ विपर्यस्त दिखाई पडता है। इसका परिणाम सरल रेषासे मर्यादित पदार्थोंपर ज्यादा दृष्टिगत होता है।

पदार्थ स्थूलाभास (मॅक्रापसिआ):—इस अवस्थामे दृष्टिपटलके घटक एकत्रित होनेसे ज्यादा घटक उत्तेजित होते हैं; इससे पदार्थ नैसर्गिक से बडे दिखाई देते हैं।

पदार्थ लघुत्वाभासः—(मायक्रापसिया) इस अवस्थामें दृष्टिपटलके घटक अलग अलग होनेसे कम घटक उत्तेजित होते हैं और पदार्थ छोटे भासमान होते हैं।

अध्याय २२

दृष्टिकार्यसंबंधी कल्पनाएँ

नेत्रका दृष्टिकार्य किस तरहसे होता है इस बारेमें आजतक बहुतसे शास्त्रज्ञोने विविध प्रकारकी कल्पनाओका प्रचार किया है, और उनके ऊपर बहुत बहस और लिखा पढी हुई है। किन्तु यह बहुतही अस्पष्ट है। इससे यह बात निश्चित है कि एक ही कल्पनासे दृष्टिकार्यका ठीक ठीक ज्ञान नहीं होता। जितनी बातें समझी हैं उन सब बातोंकी शृंखला बनावें तो एक सीरेको भौतिक क्रिया और दूसरी सीरेको अनुभूत बातों के ज्ञान की मानसिक क्रिया रखी जायेगी। लेकिन इन दोनो बातोंसे इन्द्रियाक्रिया किस तरहसे होती है इसका अभी भी पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ है, यद्यपि इन में कुछ मूलभूत ऐसी बाते हैं, जिनसे दृष्टिकार्यकी कल्पना कर सकते हैं। किन्तु यह बात भी स्पष्ट है कि यदि इन कल्पनाओंका विश्लेषण करें तो दृष्टिकार्यसंबंधी स्थिर कल्पना निरर्थक हो जायेगी। यह बात भी सच है कि इन बातोंको इकठा करनेसे अन्य संशोधकोंको कुछ फायदा होगा।

दृष्टिकार्यकी प्राचीन कल्पनाएँ

चरक सुश्रुतीय कल्पना

इस जगतकी पंचभौतिक रचना का ज्ञान मनुष्यको उसकी इन्द्रियोंद्वारा, जिनको ज्ञानेन्द्रियां कहते हैं, होता है। ये ज्ञानेन्द्रियें पांच होती हैं: दृष्टि, श्रवण, घ्राण, रसन और स्पर्शन; और इन पांच इन्द्रियोंके पांच प्रधान द्रव्य अनुक्रमसे ज्योति या तेज, आकाश, पृथ्वी, जल और वायु होते हैं। इन पाच इन्द्रियोंका अधिष्ठान क्रमसे नेत्र, कर्ण, नासिका, जिव्हा और त्वचा में होता है। इन पाच इन्द्रियोंके विषय अनुक्रमसे रूप, शब्द, गंध, रस और स्पर्श हैं। यानी अनुक्रमसे नेत्रेन्द्रियसे बाह्य पदार्थका रूप या रंग, कर्णसे शब्द, नाकसे गंध, जिव्हासे रस, और त्वचासे स्पर्श विषयका ज्ञान होता है। बाह्य पदार्थका ज्ञान उसके रूप, शब्द, गंध, रस और स्पर्श गुणोंका ज्ञान इस रूपमें होता है। इन पाचो इन्द्रियों की पाच बुद्धियां अनुक्रमसे दर्शनबुद्धि, श्रवणबुद्धि, गंधबुद्धि, स्वादबुद्धि और स्पर्शबुद्धि होती हैं। यह बुद्धि इन्द्रिय, इन्द्रियार्थमन और आत्मा (सुचेतन अवस्था) इन तीनों के संयोगसे पैदा होती है। सब इन्द्रियां पंच महाभूतो की बनी हुई है लेकिन हर इन्द्रियका एक प्रधान द्रव्य होता है। तेज द्रव्य नेत्रमें, आकाशद्रव्य कानमें, पृथ्वीद्रव्य नाकमें, जलद्रव्य जिव्हामें और वायुद्रव्य त्वक् में प्रधान होता है। और यह भी माना गया है कि जो द्रव्य जिस इन्द्रिय में प्रधान है उसी महाभूत के विषय को वह इन्द्रिय ग्रहण कर सकती है क्योंकि दोनोंका स्वभाव-धर्म एक ही है और दोनों पारस्परिकसे मिले हैं। इन्द्रिय के प्रमुख—प्रधान द्रव्य का कार्य ही इन्द्रिय कार्य समझा गया है।

द्रव्याश्रितं कर्म यदुच्युते क्रियेति (चरक ८ अ ॥)

तदात्मकविषयग्रहणम् विशेषता तत्र यद्यदात्मकमिन्द्रियं, विशेषात्तदात्मकमेवार्थ-मनुधावति ॥ तत्स्वभावाद्विभुत्वाच्च ॥ (चरक ८ अ)

दृष्टिमें यानें नेत्र के दृष्टिपटलमें उसका प्रधान द्रव्य जो ज्योति या तेज समजा जाता है वह पित्त मानी आलोचकाग्नि रूप है। और यह द्रव्य बाह्य पदार्थोंका रूपग्रहण कर सकता है। क्योंकि रूप ज्योतिका गुण है, दृष्टि और रूप इन दोनोंमें ज्योति या तेजका स्वभाव है, (इसी तोरसे अन्य इन्द्रियों का कार्य होता हैं ऐसा समझना चाहिये)

प्रकाशित पदार्थोंकी किरणोंको दृष्टिपटलमें के आलोचनाग्निद्वारा ग्रहण करनेके बाद मनुष्य या प्राणियोंकी आत्माको ज्ञातवाहिनी तन्तुद्वारा उस पदार्थ की संज्ञा होकर उस इन्द्रिय को ज्ञान होता है । लेकिन उस ज्ञानेन्द्रिय को कार्य का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता । ज्ञानेन्द्रियके कार्यका संस्कार मनपर (यानी आधुनिक मानसिक मज्जातन्तु मंडलपर) होता है। और मन इस ज्ञानका अन्तिम निर्णय देता है । मन अपने स्थानपर न हो तो नेत्र खुले रहें तो भी कुछ दीखता नहीं यह साधारण अनुभव है (चक्षु पश्यति रूपाणि मनसा न तु चक्षुषा–महाभारत) ।

ज्ञानेन्द्रियद्वारा मन पर जितने संस्कार होते हे, उन सब संस्कारोंको इकठ्ठा करके निश्चित किया जाता है कि उनमेंसे ग्राह्य या अग्राह्य संस्कार कौन कौनसे हे और यह निश्चय करने के बाद आत्मा ग्राह्य वस्तु को प्राप्त करनेके लिये प्रवृत्त होता है। साधारण व्यवहार है कि:(१)ज्ञानेन्द्रियद्वारा बाह्य वस्तूकी मिली हुई संज्ञा या ज्ञान के संस्कार को जमा करना, (२) जमा हुए ज्ञानमेंसे ग्राह्य या अग्राह्य का निर्णय करना, (३) और फिर निर्णय होने के बाद वस्तु प्राप्त करनेका प्रयत्न करना (भौतिक–फिजिकल, प्राकृतिक, फिजिऑलॉजिकल, मानसिक, सायकॉलॉजिकल) । ये आधुनिक क्रिया मनोव्यापार के तीन विभाग होते हैं । इन मे से अच्छे या बूरे संस्कारों का निर्णय करने का कार्य बुद्धीन्द्रियसे होता है । इस लिये इस भाग को **व्यवसायात्मिका बुद्धि** ऐसा नाम दिया है । बाकी दो भागोंका व्यापार जिस इन्द्रियसे होता है उसको **मन** यह संज्ञा वेदान्ती और सांख्यवादी देते हैं ।

बुद्धि इंद्रियद्वारा कौनसी वस्तु ग्राह्य या अग्राह्य है इसका निर्णय होने के बाद उस वस्तुको प्राप्त करनेका कार्य मन को नेत्र हाथ पाव आदि कर्मेन्द्रियद्वारा करना पडता है। इसलिये मनको **व्याकरणात्मक** मन व्याकरण अर्थात विस्तार करण–प्रवर्तक इन्द्रिय ऐसी संज्ञा दी गयी है । मनुष्य जब किसी कार्य करनेके लिये प्रवृत्त होता है तब यह जरूरी होती है कि बुद्धि यह निर्णय करे कि यह कार्य अच्छा या बूरा है, मन बुद्धि के तंत्रसे जले और कर्मेन्द्रियां मन के काबू मे रहें ।

मन को दो किस्म का कार्य करना पडता है । एक. ज्ञानेन्द्रियद्वारा प्राप्त हुए संस्कारोको जमा करके बुद्धि इन्द्रिय के सामने निर्णय करनेके लिये रखना; इस निर्णय के बाद कर्मेन्द्रियद्वारा उस कार्य को क्रियामें लाना । मसलन अपनेको किसी मित्रके दर्शन हुए और उसको पुकारने की इच्छा हुई और उसको **रामा** इस नामसे पुकारा । यह सीधीसी बात है। लेकिन इसके दरमियान में कितनी क्रियाएँ होती हे यह देखना चाहिये । प्रथम अपने नेत्रद्वारा दोस्तके अस्तित्वका संस्कार मन को हुआ, और मनद्वारा बुद्धिको मिला । फिर बुद्धिद्वारा उसका ज्ञान अपने आत्माको मिला । वहा मित्र को पुकारनेकी क्रिया का यानी ज्ञानप्राप्तीके कार्यका प्रथम भाग खतम हुआ । इसके पश्चाद मित्र को उसके नामसे पुकार-

ने की क्रिया को आत्मा बुद्धिके द्वारा मुकर्रर करता है। बुद्धिकी इच्छा सफल होने के लिये मन कर्मेन्द्रियद्वारा नाम को पुकारता है। **पाणिनीके** शिक्षणग्रंथमें शब्दोच्चारण क्रिया का क्रम इस तरहसे लिखा है।। आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युंक्ते विवक्षया। मनःकायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्। मारुतःउरसिचरन् मन्द्रं जनयति स्वरम्॥ आत्मा बुद्धि इन्द्रियद्वारा सब बातोंका प्रथम आकलन करके मनमें शब्दोच्चारण की इच्छा उत्पन्न करता है। उसके बाद मन कायाग्नि को मज्जातन्तु को उत्तेजित करता है। फिर वायु छातीमें प्रवेश करके मन्द्र स्वरको उत्पन्न करता है। यह स्वर तालव्य ओष्ठ्यादि वर्ण भेदोंसे मुख के बाहर आनेसे रामा ऐसा शब्दोच्चारण होता है।

आयुर्वेदीय कल्पनानुसार बाह्य पदार्थका तेज दृष्टिपटल की आलोचकाग्नि ग्रहण करता है। यह संज्ञा वातवाहिनी तन्तुओंद्वारा मनको प्राप्त होती है। इस रीतिसे आत्माको बाह्य पदार्थका ज्ञान होता है। आलोचकाग्नि यह एक पित्त का प्रकार है, और उसका स्थान दृष्टिपटलमें होता है। यह बाह्य तेजसे उत्तेजित हो सकता है। इस कल्पनाके दो भाग हैं: (१) प्रकाशग्रहण करनेकी भौतिक क्रिया जो दृष्टिपटल में होती है; (२) मानसिक क्रिया जो मस्तिष्क में होती है।आधुनिक दृष्टिकार्यकी द्विदल कल्पना (ड्युप्लिसिटी थिअरी ऑफ व्हिजन) चरक सुश्रुतीय दृष्टिकार्यसंबंधीकी कल्पना जैसी ही है। ख्यालमें रखना कि सुश्रुतीय कल्पनानुसार नेत्र बाह्य पदार्थोंका तेज यानी किरणोंको ग्रहण करता है, नेत्रमेंसे किरणें बाह्य पदार्थोंकी ओर नहीं जाती। [और दूसरी एक बात ख्यालमें रखना कि आधुनिक प्रकाशप्रतिक्रिया का भी ज्ञान उस कालमें था। नेत्रपर प्रकाश डालनेसे नेत्रमेंका दैवकृतछिद्र (यानी कनीनिका प्युपिल) संकुचित होता है और प्रकाशको हटा लेनेसे यह छिद्र विस्तृत होता है "संकुचत्यातपेऽत्यर्थं छायायाम् विस्तृतो भवेत्"। और इसी वजहसे श्लेष्मिकलिंग नाश मोतीबिन्दु के आकारमें फर्क होता है ऐसा आभास होता है ऐसा वे मानते थे।]

ग्रीशीयन कल्पनाः—हिपोक्रेटिझ (क्रि. पू. ४६०–३५०) जिनको पाश्चात्य वैद्यक के जनक मानते हैं उनको दृष्टिकार्यसंबंधी की कल्पना का बराबर ज्ञान नहीं था। **आरिस्टाटल** (क्रि. पू. ३८४–३२१) के पूर्व के पंडित (अल्कमेनान, अनाक्झागोरस, और डिमाक्रिटिझ) तथा उनके पश्चात के पंडित (एम्पीडाक्लीझ, डायोजिनस और प्लेटो) इन सब, **डिमाक्रिटिझ** आदि, पंडितोंकी कल्पनासे **आरिस्टाटली** कल्पना बढकर थी। ये सब पंडित समझते थे कि बाह्य पदार्थकी रंगित प्रतिमायें पदार्थसे निकल कर उनका आघात कनीनिकापर होनेसे आत्माको ज्ञान होता है। **प्लेटो** आदि पंडितोंकी कल्पना यह थी कि नेत्रमेंसे बाहर आनेवाली किरणोंका और बाह्य पदार्थकी किरणोंका बीचमें किसी स्थानपर संयोग होता है। फिर दोनोंके संयोग से नयी किरणें बनकर जब नेत्रमें जाती हैं तब आत्माको पदार्थका ज्ञान होता है। **आरिस्टाटल** की कल्पना इन दोनों कल्पनासे भिन्न थी। वह यह थीः— मनुष्यको पदार्थ दिखाई पडता है वह उसके रंग गुणसे दिखाई पडता है। यदि प्रकाशका अभाव हो तो रंग नहीं मालूम होगा और पदार्थका ज्ञान भी नहीं होगा। उनका यह भी ख्याल था कि प्रकाश कोई जड वस्तू नहीं, या जड वस्तुसे पैदा होनेवाला द्रव्य नहीं है। प्रकाश स्वयंभूभी नहीं है। जब प्राणी किसी पदार्थपर **नझर लगाता** है तब उस पदार्थमें

एक किस्म की गति पैदा होती है। उसका परिणाम ज्ञानेन्द्रियपर होनेसे पदार्थका ज्ञान आत्माको होता है। नेत्रमेंसे किरण विसर्जन नहीं होता किन्तु पदार्थपरसे किरण विसर्जन होता है, और नेत्र उन किरणोंको ग्रहण करता है। इस पैदा हुई गतिके परिणामसे ज्ञानेन्द्रिय में फर्क होनेसे दृष्टिकार्यका दृक् प्रत्यक्ष होता है।

आधुनिक दृष्टिकार्यसंबंधी की कल्पना की नीव पहले **सुश्रुत** पंडितनें रची; उसके पश्चाद पंडित **अरिस्टाटलने** मान्य कीयी लेकिन इनके इस कल्पनाका प्रसार नहीं हुआ यह बात भी सत्य है।

गणितज्ञ पंडित **यूक्लीड** (क्रि. पू. २८०) ने दृष्टिकार्यका दृक्प्रत्यक्ष प्राकृतिक घटना-भूमितीय आकृति परसे स्पष्ट करनेकी कोशिश कीई। उनकी कल्पनाः—नेत्रके किसी एक बिन्दुपरसे फैलनेवाली किरणें बाह्य पदार्थोंको लपेटती हैं। इन किरणोंका आकार सूच्यग्र स्तंभ जैसा होता है। यह स्तंभाग्रकोण कनीनिकामें और उसकी नीव बाह्य पदार्थपर होती है। पदार्थ नेत्रसे जितना दूर हटेगा उतनाही नीव का आकार बढ जायेगा।

अरबी पंडित **अलहासन** ने (९६०-१०३८) प्राचीन ग्रीक पंडितोंकी इस कल्पना का खंडन किया। इन्होंने सूचित किया कि नेत्रमेंसे किरणें बाहर नहीं जाती बल्कि बाह्य वस्तुके हरएक बिन्दुपरसे अनेक किरणें चारों ओर फैलती हैं उनमेंकी कुछ किरणै नेत्रमें प्रवेश करनेसे वस्तुका ज्ञान होता है।

आधुनिक कल्पनाएँ

उत्तेजक क्रियाका स्थान

दृष्टिपटलका कोनसा भाग उत्तेजित होता है इस संबंधीका विचार अनेक लोगोंने किया है। पाश्चात्य शास्त्रज्ञ **केपलर पंडितनें** पहले पहल (१६११ में) और उनके पश्चात **स्किनर पंडितनें** (१६१९) माना की चाक्षुष ज्ञान दृष्टिपटल में ही होता है। **मेरियट** ने (१६८८) अनुमान किया, दृष्टि रज्जु शीर्षमें—नेत्रबिम्बमें—अंधतिलक दिखाई देनेसे, संज्ञाग्राहक घटक कृष्ण पटल ही होता है क्योकि नेत्रबिम्बमें इस घटक का अभाव होता है। लेकिन आखिरी निर्णय **परकंजी पंडित** के (१८१९) प्रयोगसे हुआ। इन्होंने नेत्रमें तारकापिधान के परिधी भागसे शुक्लपटल मेंसे प्रकाश डाल कर दृष्टिपटल की रक्तवाहिनियों की छायाकी प्रतिमाको रोगी को देखता संभाव्य है यह अनुमान किया। इसी को **परकंजी घटना** या चित्र कहते हैं। **एच मूलर** पंडितने (१८५५) इन छाया ओंके चलन का नापन करके सिद्धांत निकाला कि संज्ञाग्राहक घटक रक्तवाहिनियों के पीछे करीब ०.१७ से ०.३६ मि. मि. होते होंगे; यानी संज्ञाग्राहक तह दृष्टिपटल के **राड** और **कोन** या दृष्टिपटल का बाह्य जीवनबीज तह इन तीन तहों मेंसे कोनसा भी एक होता होगा। **कोलिकर** और **मूलर** पंडितने (१८५२) में बतलाया कि इन दोनों तहों का संबंध दृष्टिरज्जू के तन्तुओंसे होता है और इन्होने कल्पना कीई कि राड और कोन दोनों संज्ञाग्राहक घटक होते है।

कोलिकर के (१८५२) संशोधनसे मालूम हुआ था कि दृष्टिपटलके कोन-घटकों का व्यास ०.००४५ मि. मि. है। उनके पश्चात **श्कुल्टझ** और **मूलर** ने दृष्टिस्थानमें के कोन घटको (०.००२० से .००२५) का दृक्कोन का प्रमाण २४.०५ दिया है। असली बात यह होती है कि श्कुल्टझ ने ऐसा अनुमान किया कि दृष्टिस्थान के केन्द्र के भागमें कोन घटको के गाव–दुम अन्तिम भाग इतने भीड मे जमे हुए होते है कि उनका तिरछा नाप ०.०००६६ मि. मि. इतना ही होता है। यह क्षेत्र विवर्तन या अपभवन क्षेत्र की अपेक्षा संकुचित होता है और उपपादन की बातोंका विचार करनेसे यह संज्ञाग्राहता के क्षेत्रसे अनुरूप होती है।

दृष्टिकार्य की आम कल्पनाएँ

दृष्टिकार्य की द्विदल कल्पना (ड्युप्लीसिटी थिअरी ऑफ व्हिजन)

दृष्टिपटल के प्राकृतिक कार्य का और संज्ञाओंके प्राकृतिक कार्य का जो बहस पिछले अध्यायोंमे किया गया है उस परसे ख्यालमे आ जायेगा कि इनमे दो भिन्न क्रियायें होती हैं : एक फोटापिक–प्रकाशसे मिलती होनेकी अवस्था और दूसरी स्कोटापिक–अंधियारेसे मिलती हुई अवस्था।

बहुत समयतक अंधेरी कोठडीमे रहे हुए मनुष्य के नेत्रपर यकायक से तीव्र प्रकाश डालनेसे उसके नेत्र प्रकाश को पहले नहीं सहा सकते,उसको अस्पष्ट सा दिखाई देता है। लेकिन क्रमशः प्रकाश असहिष्णुता नष्ट होने पर उसको प्रकाश सह जाता है और फिर अच्छी तरहसे दीखने लगता है यानी अब उसके नेत्रकी प्रकाश ग्रहण शक्ति तीव्र प्रकाशसे मिलती होती है। इसी को **फोटापिक** अवस्था कहते हैं किन्तु कोई मनुष्य तीव्र प्रकाशमेसे अंधेरी कोठरीमें प्रवेश करता है तब उसको पहले कुछ भी नहीं दिखाई पडता। लेकिन दृक्शक्तिद्वारा अंधेरेको ग्रहण करनेपर फिरसे दिखाई लगता है। यही **स्कोटापिक** अवस्था होती है।

दृष्टिपटलकी राड और कोन तहोंसें संज्ञाग्रहण होता है। ये दोनों तहे भिन्न भिन्न है। **मॅक्सश्कुल्टझनें** (१८६६) शारीरशास्त्रीय निरीक्षणसे बतलाया कि राड और कोन ये दो घटक भिन्न भिन्न होते है। इन दोनों तहोंके अस्तित्वपर प्रकाश की द्विदल कल्पना की नीव है। इस द्विदल कल्पनाके प्रसारके लिये **कारपेंटियर** (१८७७--७८), **कुन्हे** (१८७८), **पेरिनो** (१८९१-९४) आदि संशोधको ने बहुत कार्य किया है। लेकिन इस कल्पनाके सार्वत्रिक प्रचारका श्रेय **क्राईज पंडित** को ही (१८९८) है। इस कल्पनाके अनुसार दृष्टिपटल में दो भिन्न भिन्न क्रियाये होती हैः–एक प्रकाशग्रहण और चलन संज्ञा-ग्रहण की क्रिया और दूसरी क्रिया आकारज्ञान और रंगज्ञान की क्रिया। पहली क्रिया राडघटक तह और उनके चारो ओरके चाक्षुपनील लोहितपिंग व्यूहमें(व्हिज्युअल पर्पल) होती है,और यही **स्कोटापिक व्यूह** होता है। यह क्रिया नीरंग स्वरूपकी होती है; और यह क्रिया **अत्यल्प मूलारंभी प्रकाश तीव्रता** की अवस्थामे पायी जाती है। और इसी वजहसे दृष्टि-पटल की **स्कोटापिक**--अंधेरेसे मिलाप होनेकी-अवस्थामेंही इस व्यूह की यह क्रिया प्रमुख हो जाती है। दूसरी क्रिया कोन तह व्यूह की प्रमुख क्रिया होती है और यही **फोटापिक**

व्यूह होता है; इसका कार्य ज्यादह मूलारंभी प्रकाश तीव्रताकी अवस्थामें होता है। यह दृष्टिपटल की फोटापिक–प्रकाशसे मिलाप होनेकी–अवस्थामे प्रमुख होती है।

एलडरीजग्रीन पंडित ने सन १९१४ में **हन्टेरियन** व्याख्यानमालामें दृष्टिकार्यकी कल्पना संबंधमें एक व्याख्यान दिया था। उनके मतानुसार दृष्टिपटल की कोन तह ही प्रकाश संज्ञाग्रहण की अन्तिम इन्द्रिय होती है। राड तहमें यह संज्ञाग्राहक शक्ति नहीं होती, इस तह का प्रधानकार्य, प्रकाशतीव्रताके प्रमाणानुसार नीललोहितपिंग की पैदाईश और उसका विभाजन करना यह होता है। इनके मतानुसार जब कोन तह उत्तेजित होती है तभी दृष्टि-कार्य होता है; और कोन तह तब उत्तेजित होती है जब उसके इर्दगिर्द फैले हुएँ द्रव-पदार्थमें प्रकाशकार्यसे रासायनिक क्रिया होकर उसका पृथक्करण होता है। इस कार्यमें राड तह भी हिस्सा लेता है, और प्रकाशलहरियोकी लम्बाईके अनुसार उत्तेजक कार्यमें फर्क होता है। इस उत्तेजक कार्यमे प्रकाशज्ञानके प्राकृतिक कार्य की नींव होती है, और प्रकाश उत्तेजक के धर्ममें रंगज्ञान के प्राकृतिक कार्य की शुरूआत होती है।

दृष्टिकार्यकी द्विदल कल्पनाके विकासमें मस्तिष्क मज्जामंडल व्यूहका प्रधान भाग होता है। इस कल्पनाका प्रसार **पारसन पंडितने** (१९२७) किया था। प्राकृतिक संज्ञाओंका अव-कलन और उनके अन्योन्य प्रतियोगसे आत्माको ज्ञान होता है; और इस विकास कार्यमें मिश्र क्रिया की एक के बाद दूसरी ऐसी हालतोंका (अवस्थाओंका) अनुक्रम दिखाई पडता है। इस श्रेणीकी प्राथमिक और अन्तिम अवस्थाएँ जीवनोपयोगी होती हैं। और इन हालतोंपर प्राणीका जीवन अवलम्बित रहता है और इन्ही हालतोमें महत्व की क्रिया होती है। इस हालतोंको **पारसन** ने **डिसिक्रिटिक अवस्था** नाम दिया है। इस हालतमें उत्तेजक संज्ञाके ग्रहणसे प्राथमिक देहभान की अवस्थाकी संभाव्य शक्ति प्रदीत होती है और सार्वत्रिक कार्य करनेके लिये अच्छी या बूरी परिणामकारक अवस्था पैदा होनेपर क्रिया व्यूह उत्तेजित होकर प्रिय या अप्रिय क्रिया होती है। हमने इसके लिये **व्यवसायात्मिक अवस्था कि बुद्धि** अलग अलग जाननेकी संज्ञा इस शब्दप्रयोग का उपयोग किया है।

संवेदना ग्रहणकार्यमें स्कोटाफिक दृष्टि **डिसक्रिटिक–व्यवसायात्मक रूपकी** होती है ऐसा **पारसन** का मत है। क्यों कि दृगिन्द्रिय विकास मे इसका पहले विकास होता है, इस अवस्थामें प्रकाश ग्रहण और चलन क्रिया का ज्ञान जल्दी प्राप्त होने लगता है। लेकिन इस अवस्थामें वर्गीकरण और सूक्ष्म भेद जानने के धर्मका सापेक्ष अभाव होता है। इस डिस-क्रिटिक व्यूहमेंसे ही नाजुक **एपिक्रिटिक** व्यूह पैदा होता है। इस एपिक्रिटिक व्यूह की अव-स्थामें सूक्ष्म क्रमिक गति ग्रहण, शक्ति, और अचुक सूक्ष्म भेद जाननेका धर्म दिखाई पडता है। फोटापिक दृष्टि में जिसका विकास देरसे होता है. ये धर्म दिखाई पडते हैं, और इसमें रंगके गुण मान परसे उसमें सूक्ष्म वर्गीकरण करने का धर्म दिखाई देता है।

इस श्रेणीके ऊपर के समतलमे कम दर्जे की क्रियाओंका अवकलन–व्याख्या करना और उनको समतोल करने की क्रिया होती है। इस अवस्थाको **देहभान अवस्थाका**

समतुलित व्यूह-सिनक्रिटिक मेक्यानिझम ऑफ कानशसनेस कहते है। इस संबंधका ज्यादह विवेचन दूसरी जगह करेंगे।

स्कोटापिक दृष्टिका कार्य राड तहसे होता है और संभव है कि इसका संबंध बाह्य

चित्र नं. ३१८
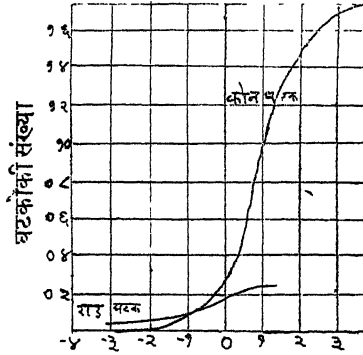
घातांक गणक की तीव्रता

दो भिन्न व्यूहसे पैदा हुअे प्रकाशनसे चाक्षुप तीव्रता के परिवर्तनकी वक्र रेषा(**हेक्ट**)

जेनिक्युलेट पिंड के अगले भागसे होता होगा। ख्यालमे रखना चाहिये कि यह भाग उत्पत्ती शास्त्र दृष्टिसे बहुत पहले का है क्योंकि निचले वर्ग प्राणियोंमे इतना ही भाग होता है, और इसका मस्तिष्कसे प्रत्यक्ष संबंध नहीं होता यह एक परिवर्तक जैसा(रिले)है। इसके अलावा कोन घटकोंसे फोटापिक दृष्टिका कार्य होता है और इसका परिवर्तन बाह्य जेनिक्युलेट पिंडके पिछले भागमेंके केन्द्रों से होता है; इसकी उत्पत्ति देरसे होती है और मनुष्य-प्राणिमें यही असली भाग होता है और इसीसे, दृष्टि रज्जुकें-चाक्षुप विकिरण पैदा होते हैं।

दृष्टिकार्य का द्विदल व्यूह संबधमें अभितक जो कुछ संशोधन हुआ है वह इस कल्पना को अनुकूल ही पडता है। इसमेंका एक व्यूह प्रकाशनकी कम तीव्रतामें संवेदनाकी प्रतिक्रियामें कामयाद होता है और दूसरा व्यूह जब जोरदार तीव्रताका इस्तेमाल किया होता है तब कमयाद होता है; दृष्टिपटल की रासायनिक और विद्युत संवादि क्रियाओंमे के फर्क (प. ४५५–४५७ देखना), दीप्तिकी दो अलग अलग लेखन वक्ररेषाएँ; दृष्टिपटल की भिन्न भिन्न प्रकाश तीव्रतासे मिलाप की संयोजन–की अवस्था, प्रकाश चमक के भेद जानना, दृक्शक्तिकी लेखन वक्ररेषा, तिलमिलाने प्रकाश की संधि आवृत्ति, अप्रकटित कालमर्यादाका फर्क, प्रकाशक्रिया बंद होनेके बाद दिखाई देनेवाली पश्चात प्रतिमाएँ आदि बाते इस कल्पनाको ही अनुकूल है। रंगांधता–रंगज्ञान दुर्बलता–रंगज्ञानांधता भी दृष्टिकार्यकी इस कल्पना एक सबूत होता है। **पूर्ण रंगज्ञानांधताका फोटापिक व्यूहके कार्यकी रुकावट और स्कोटापिक व्यूह की कार्यक्षमता ऐसा वर्णन कर सकते हैं।** इसके खास लक्षण:–इसकी दीप्तिकी वक्ररेषा पूर्णतया नैसर्गिक स्कोटापिक नेत्रकी जैसी होती है, दृक्शक्ति की वक्ररेषामें स्कोटापिक वक्रमेंके जैसे फर्क दिखाई देते है। तिलमिलाना का दृश्य स्कोटापिक नियमोंके अनुसार होता है, अंधियारेसे मिलापकी अवस्था कायम रहती है। दृष्टिस्थानके दृक्कार्यमे पूर्ण अंध-

तिलक दिखाई पडता है। इसके अलावा रतौंधीमें इस अवस्थाके विपरीत क्रिया होती है। इसमें स्कोटापिक व्यूहका कार्य बिलकुल नहीं होता या होता होगा तो बहुत कम होता है। इस अवस्थामें दृष्टिपटल की केन्द्रस्थ दृष्टि कायम रहाति है लेकिन दृक्क्षेत्र मर्यादित होता है, अंधेरेसे मिलापकी अवस्थामें बिगाड होता है, और **परकंजी की घटका** का लोप होता है या वह व्युत्क्रम दिखाई देती है।

दृष्टिकार्यके अलग अलग दो व्यूह होते हैं ऐसी कल्पना मान्य करनेके बाद इन दो राड और कोन घटक व्यूहोंके अलग अलग कार्य क्या होते हैं इसका विचार करना जरूरी है। पहले इन दोनो घटकोंका शारीर शास्त्र दृष्टिसे विचार करना असल बात होती है। हर एक कोन घटक का स्वतंत्र मज्जातन्तुसे संबंध होनेसे हर उत्तेजनके सूक्ष्म भेदका ज्ञान हर एक घटकको होता है। किन्तु अनेक राडघटकोंका एक ही मज्जातन्तूसे संबंध होनेकी वजहसे उनको संवादि क्रियाओंके सूक्ष्म भेदका ज्ञान बराबर नहीं होता। लेकिन अनेक राडघटकोंके अनेक कमजोर उत्तेजकोंके समाहारसे राडघटकोंकी संज्ञाग्राहकता बढ जाती है तो साधारण मूलारंभी प्रकाश प्रमाण कम हो जाता है। दृष्टिपटल और दृष्टिरज्जु इन दोनोंकी विद्युत क्रिया की समाहारसे संज्ञाकी संज्ञाकी संवादि क्रिया का जो ज्ञान होगा उसका समर्थन होता है। दृष्टिपटल की प्रकाशग्राहकता और उसके उत्तेजित भागकी क्षेत्रमर्यादामेंके पारस्परिक भेदसे तीव्र प्रकाशमें कार्यक्षम न होनेवाली दृक्शक्ति संधिप्रकाशमें कार्यक्षम होती है जिससे उसका समाहारका व्यूह होता होगा ऐसी कल्पना कर सकते हैं। हरएक कोन घटकको स्वतंत्र रूपसे जिस भेदकारक कार्यको करना संभाव्य होता है वही कार्य उत्तेजकोंके समाहारसे राडघटकोंको करना संभाव्य होता है।

दृष्टिपटलमें राड और कोन घटकोंका निश्चित स्थान मालूम होना महत्व की बात है। दृष्टिस्थान केन्द्रमें केवल कोन घटकही होते हैं, और इसी स्थानमें असलमें फोटापिक दृष्टिकार्य होता है। यहासे दृष्टिपटल की परिधिकी तरफ उनकी सख्या क्रमशः कम होती जाती है। किन्तु राडघटकोंकी संख्या परिधिकी तरफ बढती जाती है, और यही स्कोटापिक दृष्टिकार्यका प्रमुख स्थान है। दृष्टिकार्यकी द्विदल कल्पना की नीव केन्द्रस्थ और परिधी दृष्टि इन दोनोंकी तुलना पर रची गयी है ऐसा कहनेमें कोई संकोच नही है। क्योंकि दृष्टिपटल की प्रकाशसे मिलाप की अवस्थामेंसे अंधेरेसे मिलती हुई अवस्थामें जानेके समय दृष्टिपटलके नैसर्गिक कार्यमें जो मूलभूत फर्क दिखाई देते हैं वही इस कल्पनाकी नींव होती है। ख्यालमें रखना चाहिये कि इस कार्यमें दृष्टिस्थान केन्द्र भाग नहीं लेता। साधारणतया दृष्टिस्थानके संज्ञाग्रहण धर्ममें कुछ संयुक्त वृद्धि होती है यह बात सत्य है। किन्तु पारिमाणिक तौरसे विचार करें तो दृष्टिपटलके परिधि भागमें होनेवाले फर्कोंके लक्ष्यांशसे भी कम प्रमाणके फर्क दृष्टिस्थानमें होते हैं। और गुणधर्मोंके दृष्टिसे विचार करे तो मालूम होता है कि दोनो भागोंमें होनेवाली संयुक्त अवस्थायें भिन्न भिन्न होती है। दृष्टिस्थानमें मंद और तीव्र प्रकाशमें दृष्टिकार्य सम-समान होता है, किन्तु परिधि भागमें मंद और तीव्र प्रकाशमें दृष्टिकार्य भिन्न भिन्न होता है। दृष्टिस्थानके दृष्टिकार्यके असली गुण कोनघटकोंसे आकारज्ञान, ऊंचे दर्जेका रंगज्ञान, **परकंजी** की घटनाका अभाव (यदि दृष्टिपटल का बिलकुल छोटासा भाग उत्तेजित क्रिया हो) और प्रकाश वर्णघटित काल का अभाव ये होते हैं। और यही फोटापिक दृष्टिके

लक्षण होते है। इसके अलावा परिधिके राडघटकोंके दृष्टिकार्यमे प्रकाशसे मिलाप होने का धर्म ज्यादह जोरदार होता है, और मंद प्रकाशसे उनका उत्तेजन कार्य होता है और ये दो स्कोटापिक दृष्टि के लक्षण होते हैं।

लेकिन इन बातों परसे यह नहीं सिद्ध होता कि दृष्टिस्थानका दृष्टिकार्य केवल फोटापिक और परिधी का दृष्टिकार्य केवल स्कोटापिक ही होता है। इन दोनोंमें असली गुणवाचक मूलभूत फर्क उनकी दीप्तिकी वक्ररेषाओंमे दिखाई देती है, और परिधीकी दीप्तिकी वक्ररेषा यद्यपि उसकी प्रकाश ग्रहणशक्ति कम ही क्यों न हो, तो भी दृष्टिस्थानकी फोटापिक लेखन वक्ररेषाओंके आकार जैसी होती है स्कोटापिक लेखन वक्ररेषा जैसी नहीं होती। (चि. नं. २९३–२९५देखिये)। और यह भी देखा है कि प्रकाश उत्तेजक तीव्रतर होनेसे रंगज्ञान का प्रमाण दृष्टिपटलकी परिधी तक फैल जाता है, और यदि प्रकाशकी तीव्रता कम हो तो दृष्टिस्थानमें आकार और रंग के फर्कके वर्गीकरण करना संभाव्य नहीं होता। और दृष्टिपटलकी प्रकाशसे मिलती हुई अवस्था (संयोजन अवस्था) पूर्ण हो, और यदि दृष्टिस्थानके रंजित घटकोंके कार्यका परिणाम छोड दिया तो भी, दृष्टिस्थानमेंका रंगज्ञान, परिधीस्थित और दृष्टिस्थानके बाहरी भाग इन दोनोंके समान होता है। तो भी दृष्टिस्थानके रंगज्ञानके प्रमाणमें फर्क दिखाई देता है और दृष्टिस्थानके बाहरसे परिधी तक के भागमें नीरंग अवस्था दिखाई देती है। यद्यपि दृष्टिपटलके परिधी भागमे उत्तेजकोंका समाहार दिखाई देता है तो भी, प्रयोगोंकी कसोटीया पूर्ण सूक्ष्मभेददर्शक होवें तो, दृष्टिस्थानमें भी उत्तेजकोका समाहार दिखाई देगा। ये प्राकृतिक क्रमिक फर्क राड और कोन घटकोंके शारीरिक रचनामें परिवर्तित होते है; इसकी वजह यह होती है कि दृष्टिस्थान में के कोन घटकोंकी रचना अन्यत्र राड घटकोंकी रचना जैसी ही दिखाई देती है यद्यपि उनका मज्जातन्तु संबंध राडघटकोंके मज्जातन्तु संबंधसे भिन्न होता है।

नेत्रकी फोटापिक अवस्थामे परिधीके दृष्टिकार्यमे और दृष्टिस्थानके दृष्टिकार्यमें इतनाही फर्क दिखाई देता है कि पहलेमे विषयग्रहण शक्ति कम होती है लेकिन इन दोनों की संज्ञामें फर्क नहीं होता, किन्तु नेत्रकी स्कोटापिक अवस्थामे दृष्टिकार्य ही भिन्न रूपका होता है। दृष्टिस्थानकी दृष्टि और परिधी दृष्टि इन दोनोंमें असली परिमाण रूप फर्क होता है; फोटापिक दृष्टि और स्कोटापिक दृष्टि इन दोनो मे गुणधर्म रूप फर्क होता है। इससे यह कल्पना संभवनीय समझ सकते है कि राड घटक यदि अल्प प्रमाण के हो तो भी दिनके दृष्टिकार्यमे भाग लेते होंगे और कोन घटक रातके दृष्टिकार्यमें भाग लेते होंगे। दृष्टिस्थान के कोन घटकोंकी रचना और उनका नैसर्गिक कार्य परिधीके कोन घटकोंसे भिन्न होता होगा। इन दोनों व्यूहके गुणोमें इस क्रमिक फर्कका प्रदर्शन आश्चर्यजनक नहीं है किन्तु संभाव्य है। और यह विकास की उत्तरोत्तर होनेवाली अवस्थाये है। ये दोनों अपने कार्यमें भिन्न भिन्न होते हैं लेकिन पूर्ण समान नहीं होते।

ऊपर किये हुए विवेचन का सार यह है कि दृष्टिकार्यकी द्विदल कल्पना मान्यसी होगी। नैसर्गिक कार्यमे फोटापिक और स्कोटापिक व्यूह स्वतंत्र हैं। लेकिन उनके शारीरिक रचनाके निरीक्षणसे यह बात स्पष्ट नहीं होती कि फोटापिक क्रिया सिर्फ कोन

घटकोंसे ही होती है और राड घटकोंसे रंगज्ञान नहीं होता। और यह भी संभव मालूम होता है कि नीललोहित पिंगका कोन घटक के कार्यसे और प्रखर प्रकाशके दृष्टिकार्यसे संबंध है।

रंगज्ञान की कल्पनाएँ

न्यूटन पडित के पहले रंगज्ञान संबंधी की कल्पनाएँ केवल तर्करूप की थी और पंडित लोगोंके विचार **आरिस्टाटल** के मतानुसार बन गये थे। और उनकी शिक्षा इस तरहकी थी की प्रकाश और अंधियारा दो तत्त्व थे, और इन दोनोंके पारस्परिक में मिलनेसे रंगकी पैदाईश होती थी। प्रख्यात चित्रकार **लिओनारडो डा व्हिन्सी ने** (१६३५) इसी तरहकी कल्पनाका प्रचार किया था। लेकिन **न्यूटन पंडित** के समयसे (१७०४) प्राकृतिक दृक्शास्त्र शास्त्र है ऐसा माननेका रिवाज जारी हुआ, और उनके पश्चाद दो भिन्न भिन्न कल्पनाएँ प्रचलित हुई। **न्यूटन** की भौतिक कल्पनाओंको **थामस यंग** पंडितने मणिभ बनाया (क्रिस्टलाईस किया), और उनके पश्चाद **हेल्महोल्टझ** ने सुडौल बनाया; इनके पश्चाद इस विषयपर जर्मनी और इंग्लंड में अनेक लोगोंने काम किया है। शास्त्रीय विकास के प्राथमिक अवस्थामे जिस तत्वज्ञानसे प्राकृतिक और मानसिक तत्वज्ञानो का मिलाप हालमें हुवा है वैसा नहीं था। **गेटे** की ऐसी कल्पना थी कि गणित और भौतिक शास्त्र दोनो भी गैर वाजिब है; उनका कहना ऐसा था कि सत्य और सौंदर्य संज्ञाग्राहकता का प्रत्यक्ष स्वरूप था। उनके मतसे **न्यूटन** की अपेक्षा **आरिस्टाटल** की कल्पना ज्यादह सत्यरूप की थी। **हेजेल** पंडित को भी नैसर्गिक घटनाओंको भौतिक सिद्धान्तोंके बदले, प्रत्यक्ष कल्पना और विचार जैसे मानना पसंद था। **हेरिंग** के कार्यसे मानसिक कल्पनाकी विचारप्रणाली जारी हुई, और कई बरसोतक **भौतिक** और **मानसिक कल्पनाओंका प्रचार समसमान चालू** रहा है; लेकिन दोनोंकी एक संघटित कल्पना अभितक प्रचलित नहीं हुई है।

त्रिवर्णघटित कल्पनाएँ

(१) **यंग हेल्महोल्टझ की तीन मूलभूत घटकोंकी कल्पनाः**—सब वर्णछटाएँ तीन प्राथमिक रंगोंके मिश्रणसे (जिसको कुछ थोडे अपवाद भी होते है) पायी जाती हैं इस **न्यूटन** की कल्पनासे **थामस यंग** ने ऐसा सिद्धान्त किया कि दृष्टिपटलमे तीन तरहके कोन घटक होते हैं जिनका प्रकाशसे उत्तेजन होनेसे लाल, हरा और नीली ऐसी तीन संज्ञाएँ पैदा होती हैं इसमेंसें हर कोन खास लम्बाईकी लहरियोंसे (लम्बी, मध्यम और छोटी अनुक्रमसे) उत्तेजित होता है और इनपर बीचके लहरियोंका असर भिन्न भिन्न होता है। और सापेक्ष प्रमाणके उद्दीपनसे कोनसा भी एक रंग का अनुभव पाया जाता है; और उन सबको सम प्रमाणमें उत्तेजित करनेसे सुपेद की संज्ञा पैदा होती है। च्यूं कि चाक्षुप तीव्रताके लिये तीन कोन घटकोंसे छोटे इकाईकी जरूरी होती है **हेल्महोल्टझने** कल्पना कीयी थी कि तीन अलग अलग कोन के बदले हर एक कोनमें तीन भिन्न भिन्न रूपकी क्रियाये (रासायनिक, विद्युत और अन्य तरहकी) होती हैं और जिसमे तीन असली प्राथमिक रंगोंमें कोई भी एक रंगसे फर्क होता है, और यह फर्क दृश्य प्रकाशके प्रमाणानुसार होता है। ये तीन भिन्न और

स्वतंत्र क्रियायें मस्तिष्क में जाकर वहां उनकी नयी घटना होती है। इस कल्पनाका असली तत्व यह होता है कि भौतिक उत्तेजकोका परिधिकी ओरको तीन मुख्य भागोमे पृथक्करण होता है; इनके तीन स्वतंत्र प्राकृतिक पूरक घटक होते हैं जो संवादि घटक जैसे कार्य करते हैं जिनसे मज्जामय क्रिया बनकर मस्तिष्कमें पुनर्घटना होती है। ख्यालमें रखना कि पैदा होनेवाली आखिरी सज्ञाकी, यद्यपि प्राकृतिक क्रियायें, जिससे वे पैदा होती हैं, भिन्न स्वरूप की होती हैं, एक रूप जैसा अनुभव पैदा होता है और इसका मानसिक तोरसे विभाजन नहीं होता। यानी यह कल्पना प्रयोग और निरीक्षण इस सिद्ध बात का अनुवाद है; और प्रकाशके कुल उत्तेजकोका आखिरी परिणाम, जहातक संज्ञाका विचार करना संभव है, तीन परिवर्तनोका असली कार्य हो सकता है।

तीन प्राथमिक रंगोकी संज्ञाओंका वर्णपटघटित स्वरूपसंबंधीका अनेक संशोधकोने नापन किया है। इन सब कल्पनाओका सार यह होता है कि लाल रंगमे बेंगनी या किरमजी रंगका मिश्रण होता है और वह वर्णपटके थोडे बाहरकी ओरको होता है : हरा रंग साधारणतया कुछ पीला—हरा ५४०० से५७०० अं.एकंके दरमियान का होता है। **एलन** पंडितके संशोधनसे यह बात साफ साफ साबित हुई है कि कासनी यह तीसरा प्राथमिक रंग है न कि नीला रंग। यदि नेत्रपर ज्यादह समयतक वर्णपटके रंगोंकी क्रिया कीयी जाय तो ख्यालमे आजायेगा किं कुछ रंग असली रंगके तोरके होते हैं और उनकी प्रतिक्रिया स्वतंत्र जैसी होती है और दूसरे रंग मिश्रतौरके होते हैं। क्योकि उनकी प्रतिक्रिया वर्णपटके अन्य भागमें दिखाई देती है। उनके इन नतीजोका समज चित्र नं. से ख्यालमे आजायेगा।

चि. नं. ३१९
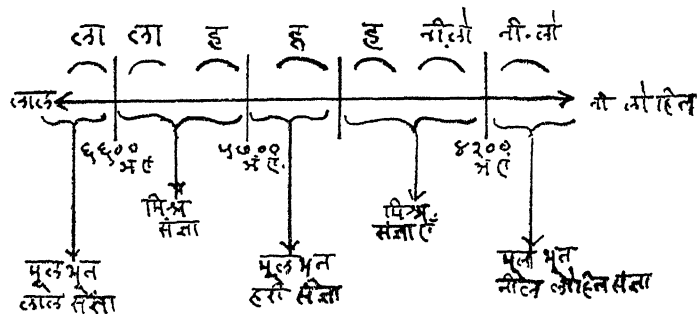
असली और मिश्र रंगोकी संज्ञाये

तीन रंगी संज्ञाओका प्राथमिक स्वरूप और अन्य रंगोका मिश्र स्वरूप यह बात **एलनके** प्रयोगसे साबित हो सकता है और यह बात तीन रंगी कल्पनाका पुरावा हो सकता है। यही बात **कोनिग एबने** और अन्य संशोधकोने निकाली हुए वक्ररेषाओंसे सिद्ध होती है; और किसी भी रंगीन संज्ञा तीन मिश्रव्यूहके कार्यसे पैदा हुई संज्ञाओकी जोडके बराबर होती है इसका अनुवाद हो सकता है (चित्र नं. २९७)। इन वक्ररेषाओंसे (चित्र नं. ३२०) वर्णपटके उत्तेजित किये हुए खास भागोकी संज्ञाओंकी तीव्रताका प्रमाण का नापन करना संभाव्य है; इन प्रमाणोंमें जब जल्द

फर्क होते है तब रंगोकी घटकोंमे भी फर्क होंगे। छटाओंकी संज्ञाओंमे के फर्क बदलानेवाली वक्ररेषाओंसे ये परिणाम बराबर तौरसे मिलते होते है। नैसर्गिक नेत्रमें रंगोके मिश्रणसे पैदा होनेवाली संज्ञाओंका अनुवाद तीन घटकोंकी कल्पनासे ठीक ठीक हो सकता है; और इस

चित्र नं. ३२०
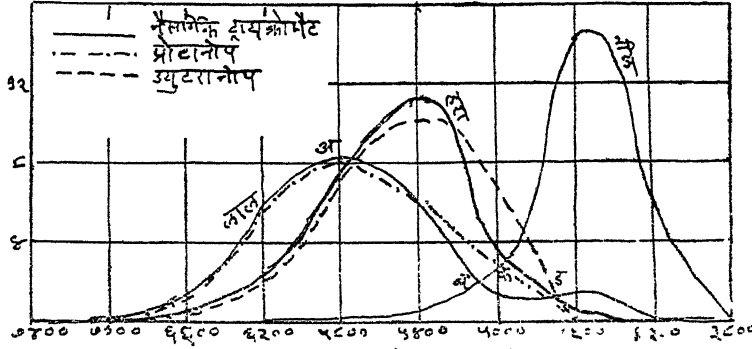
कोनिग की संज्ञाओंकी वक्ररेषाएँ

कल्पनासे रंगांधता की बहुतसी बातोका, तीन रंगोमे से कोईभी एक रंगका पूर्ण अभाव या कमी होता होगा ऐसी कल्पना कर सकते है।

रंग और रंगसंज्ञामेंका त्रिगुना संबध इतना साफ साफ दिखाई देता है कि उसके प्राकृतिक व्यूहमे ऐसे तीन घटक जरूर होते है यह कल्पना कर सकते है लेकिन **हेल्म-होल्टझ** की इस कल्पनासे सब बाते साबित नहीं होती यह बात ख्यालमें रखना जरूरी है और इसी वजहसे अन्य कल्पनाएँ प्रचलित हुई है।

(२) **व्हानक्राईज की झोनकी-मंडल की कल्पनाः**—नैसर्गिक नेत्रकी स्कोटापिक और कम उत्तेजक की फोटापिक अवस्थामे तथा रंगके फर्क के ज्ञान का लोप हुआ है ऐसे विकृत अवस्थाके नेत्रमे रंग के अभाव की संज्ञाके संबंधके खतरोका **हेल्महोल्टझकी** कल्पनासे बराबर अनुवाद न होनेसे **व्हान क्राईज** ने मडल (झोन की) की कल्पना कीयी। उन्होने ऐसी कल्पना कीयी कि **हेलमहोल्टझ** के तीन घटकोंकी कल्पना दृगेन्द्रियको नहीं लगा सकने, लेकिन द्विदल कल्पनाके अनुसार उन्होने ऐसी कल्पना कीयी कि त्रिदल रंग-व्यूह और एक रंगको संवादि इकाईका ऐकिक व्यूह ऐसे दो स्वतंत्र व्यूह होते है। त्रिदल रंग व्यूह दृष्टिपटलमें और चाक्षुष पथके परिधि भागमे होता है और इस पथके कोई भागमे उत्तेजकोंके तिन स्वतत्र नतीजोका भिन्न तरह और रूपकी प्रवृत्तियांमे बदल होता है।

(३) **मैकडूगलकी कल्पनाः**—इन्होने और सुधारा इस कल्पनामें किया, इन्होने **यंग** पंडितके रंग संबंधीके मतोका द्विदल कल्पनासे मिलाप करके उसमे उपपादन घटना का खुलासा करनेके लिये जिसके लिये हेल्महोल्टझकी कल्पना काफी नहीं थी, भौतिक–मानसिक कल्पना की जोड दियी। इस कल्पना की असली बात यह थी कि संज्ञाओंका पुनर्बटाव और संघटना मस्तिष्क मज्जामे होता है, यह क्रिया ऐसी होती है कि इसमे रुकावट और संघ-टना होना महत्वकी बात होती है। इनकी कल्पना ऐसी थी कि कोन घटकोमे तिरंगी व्यूह (लाल, हरा और नीला) होना है और राड घटकोमें सुपेद रंगका स्वतंत्र व्यूह होता है। इस तरहसे मस्तिष्कमें हर नेत्रके लिये चार स्वतंत्र केन्द्र होते है। ख्यालमे रखना कि इसमे

काले रंगके लिये कुछ भी योजना नहीं दिखाई देती, यह संज्ञा मस्तिष्कके विश्रामकी अवस्थामें पैदा होती है। दृष्टिपटलमें शुरूमें खास द्रव्य (लाल, हरा, नीला, और सुपेद) अलग अलग होकर उनसे मज्जातन्तुओंके सीरे उत्तेजित होते है और मानसिक भौतिक क्रिया का स्थान मस्तिष्कमें होता है। मस्तिष्कमेंके आठ केन्द्रोमें पारस्परिक विरोध होता है; मसलन एक नेत्रका लाल केन्द्र दूसरे नेत्रके हरे और नीले केन्द्रसे और अपने के भी इन केन्द्रोसे विरोधी होता है। इस तरहसे मस्तिष्कीय केन्द्रोकी पारस्परिक क्रिया और साथ समय होनेवाली दृष्टिपटलमें के पदार्थोंकी क्रिया की कल्पनासे काल और स्थानके उपपादन और साथ साथ दोनो नेत्रोंकी पारस्परिक होनेवाली प्रतिक्रियाओका नुमाइशी बयान हो सकता है।

(४) **रोफकी कल्पनाः**—त्रिरंगी कल्पनामे **रोफ पंडित** ने और एक सुधार किया। संज्ञाग्राहक घटक तीन तरहके होते हैं ऐसा इन्होने माना; एक घटक पूरे दृश्य वर्णपटसे उत्तेजित होता है, एक लम्बी और मध्यम लम्बाईकी लहरियोकी किरणोंसे (लाल रंगसे ४९०० अं. एक तक) उत्तेजित होता है, और एक सिर्फ लम्बी लहरियोंकी किरणोसे (लालसे ५८०० अं. एक तक की) उत्तेजित होता है। यानी लम्बी लहरियोकी किरणोसे तीनो प्राथमिक रंगोका, मध्यम लहरियोकी किरणोंसे दो प्राथमिक रंगोका और छोटी लहरियोंकी किरणोसे एक प्राथमिक रंग का उत्तेजन होता है। और ऐसा सूचित किया कि ग्राहक घटकोंके सामने जो निस्यन्दक–छन्ना–होता है (जैसेकी भूजलचर प्राणि, सर्पवर्ग, पक्षीवर्ग जैसे प्राणियोंके कोन घटकोके सामनेका रंगीन बूद) उससे अवकलन होता है। और ऐसी भी कल्पना की यी है कि दृष्टिपटलके परिधि भागमेके राड घटक पूर्ण वर्णपटसे और छोटी लम्बाईकी लहरियोकी किरणोसे उत्तेजित होते हैं।

इस कल्पनासे राड घटकोंकी नीली संज्ञा किसीभी लम्बाईकी लहरियोकी किरणोंको तिरछे तोरसे–केन्द्रच्युत स्थानसे–लगानेसे नीली संज्ञाका बोध होना, वर्णपटकी लम्बी लहरियोंमेंका फर्क जाननेमें दूरंगी ज्ञानवाले लोगोसे होनेवाली भूल, रंजित दृष्टिपटल दाह, जिसमें राडघटकोका कार्य नाश होनेसे दिखाई देनेवाली नीलांधता, आदि विकृतिकी मीमांसा की कल्पना कर सकते है।

चतुर्वर्णघटित कल्पनाएँ

रंगज्ञान दृष्टि की त्रिवर्णघटित कल्पनाएँ असलमें भौतिक तोरकी होती हैं; इनका मानसिक तोरसे बिचार करनेमें कुछ खतरें पैदा होते है। यह खुली बात है कि वर्णपटके चार रंगोकी संज्ञा ऐकिकि और प्राथमिक तोरकी प्रतीत होती है; और यह अनुभव प्राचीन कालके अजन्टाके चित्रकार और **लिओनार्डडा व्हिन्सी** जैसे लोगोंको ज्ञात थी, इन्होंनेः**न्यूटन** की त्रिरंगी त्रिकोण की कल्पनाकेही पहले मानसिक चतुष्कोण की कल्पना जिसमें चतुष्कोण के हरएक कोणमें एक में लाल एक मे हरा एक मे पीला और एक में नीला रंग अनुक्रमसे होते हैं ऐसी कल्पना कीयी थी। और इसी तरह अन्य तत्व ज्ञानीयोने भी चतुर्वर्णघटित कल्पनाका प्रचार किया था। इस कल्पनामें चार प्राथमिक रंग संज्ञा (भौतिक वर्णघटित

कल्पना के विरुद्ध मानसिक प्राथमिक रंगोकी कल्पना) लाल, हरी, पीली और नीली संज्ञा ऐसी कल्पना थी । इस कल्पनाका पुरस्कार करनेवालोको पीला रंग लाल और हरेका मिश्रण है और सुपेद रंग लाल, हरे, और नीले रंग के मिश्रणसे पैदा होता है यह कल्पना मान्य नहीं थी । मानसिक तौरकी गैरवाजिब बातोको मान्य करनेके बदले ये लोक रंगमिश्रणकी और संज्ञाओकी संघटना की बातों को कम मानते हैं । दोनो मतोसे भिन्न भिन्न घटनाका अनुवाद होता है और ये दोनो कल्पनाएँ भिन्न समतलमें समानान्तर जैसी वहनेसे दोनोंका मिलाप नहीं होता । लेकिन जितना माना गया है उतना उसमे विरोध नहीं है ।

मानसिक तौरसे विचार करें तो यह संज्ञा लाल या हरे संज्ञाकी जैसी ऐकिकि (युनिटरी) है । लेकिन प्राकृतिक दृष्टिसे विचार करें तो दूसरी बात होती है । यद्यपि पीली रंगता लाल–हरी रगता है ऐसा नहीं मान सकते तो भी स्वतंत्र तत्वोंसे बनी हुई मिश्र प्राकृतिक क्रियासे पैदा होनेवाली संज्ञा जिसका मानसिक अशाश (सायकालाजिकल सब-डिव्हिजन) नहीं हो सकता ऐसी ऐकिकि क्यंय नहीं होगी ।

इन मानसिक कल्पनासे पैदा होनेवाले स्वतरोकी वजहसे अनेक कल्पनाएँ प्रचलित हुई थी । पहले पहल **डान्डर्स** पंडितनें (१८८१) कल्पना की थी; इन्होने मस्तिष्कीय क्रियाओंको दृष्टिपटलमेकी क्रियाओसे अलग किया, जिससे प्रचलित दोनो विचार की प्रणालीमे कुछ मिलाप हुआ । दृष्टिपटल संवधी की **यंग** की त्रिरंगी कल्पना मान्य करके सूचित किया की तीनों असली कार्योंमेकी हरएक क्रिया स्वतंत्र तत्व की क्रिया जैसी होती है । लेकिन मस्तिष्कमें चार अलग अलग रंग सज्ञा (लाल, पीली, हरी और नीली) पैदा होती हैं । नयी संज्ञा (पीली) मस्तिष्कमे के परिधि संबंधी के लाल और हरे केन्द्रोके पारस्परिक क्रियाओसे पैदा होती है । इन सब कल्पनाओंमे हेरिंग पंडितकी कल्पना महत्वकी है, और इस कल्पनामें इन्होंने काले सुपेद रंग का भी विचार किया है ।

हेरिंग की विरोधी रंगोकी कल्पना (हेरिंगज आपोनन्ट कलर्स–थिअरी)

हेरिंग ने ऐसी कल्पना कीथी की दृष्टिपटलमे तीन प्राथमिक तोरके द्रव्य या पदार्थ होते हैं जिनमे पारस्परिक (से) पृथक्करण और पुनर्संघटन की क्रिया होती रहती है । पदार्थोंका अनुक्रमसे लाल, पीला और सुपेद रंगोसे पृथक्करण होता है और हरा, नीला और काले प्रकाशसे पुनर्घटना होती है । यानी इसमे छ प्राथमिक रंग संज्ञा होती है जिनकी विरोधी जोडी नीचे मुजब होती है:—
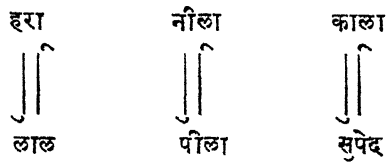
जब दृष्टिपटलपर प्रकाश गिरता है तब उनका पृथक्करण होकर अलग अलग प्रमाणमें उनकी संघटना होकर उसकी खास संज्ञा मस्तिष्क को जाती है । जब दृष्टिपटलपर कुछ भी

प्रकाश नहीं गिरता तब उसमे आपीआप चयापचय क्रियाके बदल होकर व आपसका निराकरण करनेसे समतुलन की अवस्था पैदा होती है ।

इस कल्पनासे **रंगमिश्रण** संबधीका, भूरे रंग के सिवा, वर्णन हो सकता है, लेकिन वर्णांधताके संबधमे इसका काफी उपयोग नहीं हो सकता, इसकी वजह यह मानते है कि एक या अनेक इन प्राथमिक पदार्थोंका अभाव होता होगा; **दोरंगी या द्विवर्णक दृष्टिमें** लाल–हरे द्रव्योंके अभावसे लाल–हरा अंधत्व पाया जाता है । **पूर्ण रंगाधतामें** काला–सुपेद पदार्थ ही सिर्फ कार्यक्षम होता है; इस कल्पनासे स्कोटापिक और फोटापिक व्यूहोका कार्य भिन्न तोरका होता है यह बातको मानना जरूरी होती है । इस कल्पनासे उपपादन का वर्णन जो **यंग हेल्महोल्टझ** की कल्पनासे पूर्णतया नहीं हो सकता इस कल्पनासे होनेसे इस कल्पनाका शास्त्रीय जगतमें महत्व है ।

लाड्ड–फ्रांकलिन की कल्पना

पहले की यग **हेल्महोल्टझ** त्रिरंगी और **हेरिंग** की चतुरंगी कल्पनाएँ पारस्पारिक से विरोधी जैसी मालूम होती है । इन दोनों कल्पनाओंका द्विदल कल्पनाके साथ मेल करनेकी कोशिश लाड्ड–फ्राकलिनकी कल्पनामें दिखाई देता है; और इसी वजहसे इसमें दिलचस्पीकी बातें दिखाई देती है । असलमे यह कल्पना उत्क्राति की तौरकी है । इसमे ऐसा माना गया है कि राडघटकोंमे प्रकाशको सुचेतन पदार्थ होता है जिसपर प्रकाशका प्रभाव होनेसे एक नया पदार्थ बनकर वह **सुपेद संज्ञाकी नीव** होती हैं । यह प्राथमिक अवस्था नीचेकी श्रेणीयोंके प्राणिवर्ग मे दिखाई देती है और यह अवस्था मानवी श्रेणीके राडघटकोंमे कायम रहती है । इसकी दूसरी प्रागतिक अवस्थामे अणुओंकी पुनर्घटना बनकर नये पदार्थ बनते हे जो प्रकाश को ज्यादह विशिष्ट तौरसे सुचेतन होनेसे **पीली और नीली** संज्ञा होती हैं ये पदार्थ मनुष्यके परिधीके कोन धटकोंमे होते हैं । ये पदार्थ एक समय पैदा होवें तो पारस्परिकसे उनका रासायनिक मिश्रण होकर फिरसे सुपेद की संज्ञा होती है । इसके **तीसरी याने आखिरकी** अवस्थामे मध्यभागके कोन घटकोंमें अवकलन–वर्गीकरण होता है जिससे यह पीला पदार्थ वर्णपटके दोनो सीरोंकी लहरियोंकी लम्बाई को खास तरहसे सुचेतन होकर **लाल और हरे** पदार्थ बनकर लाल और हरी दृष्टी पैदा होती है । इन लाल और हरे पदार्योंकी आपसमें क्रिया होकर फिरसे पीली संज्ञा होती है ।
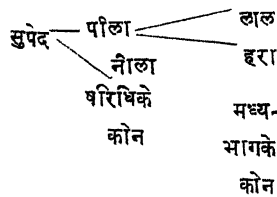
इस कल्पनासे त्रिरगी कल्पनाकी सब बातोंका काफी समाधान होता हैं तोभी पाच संज्ञा मान्य होती है, लाल–हरे और पीले–नीले का अदृश्य होना और पीले–सुपेद का

प्रादुर्भाव किस तरहसे होता है इसकी व्याख्या हो सकती है । यह कल्पना **हेक्टकी** रासायनिक संशोधनके पदार्थोंकी कल्पनासे मिलती होती है। हेक्टकी यह कल्पना ऐसी थी कि कोनघटकोंमेंके प्रकाश रासायनिक पदार्थोंका स्वरूप राडघटकोंके पदार्थोंके जैसा ही होता है।

इस कल्पनानुसार वर्णांधता वंशपरंपरा प्राप्त होती है । लम्बी लहरियोंके संज्ञाग्राहक घटकोंका अभाव होनेसे **प्राटानोपिया** की अवस्था होती है, विकासमेंकी दूसरी अवस्थाका विकास ठीक न होनेसे **ड्युटरानोपिया** दिखाई देती है ।

जी. ई. मूलर ने ऐसी कल्पना की थी जो **हेरिंग** की कल्पनामे सुधार जैसी है । इसमे दृष्टिपटलकी चार रंगोंकी लाल, पीला, हरा और नीला क्रियाये होती है और उत्तेजनसे परिधिभागमें क्रियाएँ शुरू होती है उनका मस्तिष्कमें मिश्र मानसिक व्यूह चेतना और रुकावटकी क्रियासे छ प्रमाण माने गये हैं: लाल, पीला, हरा, नीला, काला और सुपेद ।

दृष्टिपटलके कार्यसंबंधींकी कल्पनाएँ

दृष्टिपटलपर होनेवाली प्रकाशकी क्रिया की नीव भौतिक तरह की मानी गयी थी; इन भौतिक उत्तेजकोंका चाक्षुप संज्ञाओंमें किस तरहसे रूपान्तर होता है इस संबंधमें हालमें अनेक कल्पनाएँ प्रचलित है । लेकिन ये सब अनुमान ही होते है । और हालमे जो खबर मिली है उन परसे कह सकते है कि इनका गहन विचार करनेकी जरूरी नहीं इस कल्पनाओंकी नीव प्रकाश रासायनिक तौरकी होती है'। (१) **सर आलिव्हरलाज** पंडितने (१९१९)प्रकाशशक्तिका शोषण और विसर्जनका परमाणूओंके रचनापर असर होता है ऐसी **राशिपुंज की विसर्जन की कल्पना** की थी और इसी सबधमे **जोली** पडितने १९२१ मे विशेष कार्य किया । इस कल्पनाके अनुसार प्रकाशसे उद्दीपन होनेवाले **चाक्षुपनीललोहित पिंग** द्रव्य पर, जो राडघटकोंके भीतर और कोनघटकोंके इर्दगिर्द होता है ऐसा माना है, प्रकाशका आघात होनेसे प्रकाश इलेक्ट्रान्स (ऋणविद्युत कण) का बाहर गिर जाना यह पहली अवस्था होती है। ये राड घटकोंके भीतरसे बाहर गिरनेसे राड घटक बिगर चुनाव आसानीसे उत्तेजित होते हैं और इसी वजहसे संज्ञा एक ही तरहकी होती है और यह मंद प्रकाशनमे गोचर होती है । लेकिन कोनघटकोंके बाहर के ये कण कोनघटकोंके भीतर मुष्कीलीसे जा सकते है । च्यूं कि इलेक्ट्रान्स का चलन का वेग आघात करनेवाली लहरियों की लम्बाईका कार्य होता है। इनका कोन घटकोमेंके स्थानमे फर्क दिखाई देगा, और इसी वजहसे संज्ञाकी संवादि क्रिया होनेके लिये तीव्रतर प्रकाश की जरूरी होगी और रंगोंका फर्क जानना संभव होगा । कोन घटकोंका संबध नौ मज्जातन्तुओंसे और राड घटकोंका एक मज्जातन्तु से होता है ऐसा माना है । इलेक्ट्रान्ससे उत्तेजित होनेवाले तन्तुओंकी संख्या के अनुसार संज्ञा होगीः—दो तन्तुओसे लाल, तीन तन्तुओसे हरी, चारसे नीली और सब तन्तुओंके उत्तेजनसे सुपेद की संज्ञा होगी । राड घटक का एक मज्जातन्तु की संवादि क्रिया और कोन घटको के मज्जातन्तु बलके हर तन्तु की सवादि क्रिया का कार्य सब कुछ या एक भी नही इस तत्व के अनुसार खास मज्जातन्तु की विसर्जन शक्ति के सिद्धान्त पर होता है ।

(२) **क्लार्ककी कल्पना** (१९२२) यह कल्पना ऐसी थी कि इलेक्ट्रान्स राड और कोन घटकोंके बाहर फेंके जानेके बाद वे अलग अलग फासलेपर इकट्ठा होते हैं और यह फासला विसर्जन शक्तिके राशिपुंजपर यानी उत्तेजक प्रकाशके आवर्तन पर अवलम्बित होता है। इलेक्ट्रान्सकी राड और कोन घटकोंके, इर्द गिर्द ऋण विद्युत संचारित तह जमति है जो धन विद्युत संचारित होते हैं । इन दोनोंका विद्युत संग्राहक (इलेक्ट्रिक कनडेन्सर) बनकर उनसे विद्युत निवृत्ति निकल कर द्रुतकम्प विद्युत प्रत्यावर्तक प्रहार (हाय फ्रिक्वेन्सी आल्टर नेटिंगकरन्ट) मस्तिष्क को जायेगा।

(३) **इकांझ की कल्पना** के अनुसार प्रकाश की क्रिया रंजित कला तह पर होती है (१९२१-२२) और दृष्टिपटलमे प्रकाश रासायनिक और प्रकाश प्रतिदीप्तिके फर्क होते है।

(४) **व्हेनेबल** ने (१९२४-२५) गणितीय पृथक्करण से शोध लगाया कि रंग संज्ञा एक समय होनेवाले प्रवाह की संख्या पर अवलम्बित होती है, जब दो, तीन या छे अलग होते है या एक समय शोषित होते है ।

(५) **फ्राहलिक** की (१९२१) कल्पना दृष्टिपटल की विद्युत अवस्थाके फर्कोंपर रची है। .

(६) **आयव्हिस** की कल्पनाके अनुसार चाक्षुष व्यूहमे तीन अवस्थाएँ होती है; पहलीमे प्रकाशविद्युत उत्क्रमणीय प्रतिक्रिया (फोटो इलेक्ट्रिक रिव्हर्सिबल रिएक्शन) होती है जो प्रकाश विद्युत घटके (फोटो इलेकट्रिक सेल) द्रव विद्युत निच्छेद्य (लिक्विड इलेक्ट्रो लाइट्स) जैसे होते हैं। दृष्टिपटलके कार्यसंबंधी **यांत्रिक कल्पनाएँ** भी प्रचलित है। इन कल्पनाओ के अनुसार रंगमिश्रण की घटनाको **लटकन के दोलन** की क्रिया परसे गणितीय पद्धतीसे निकाल सकते हैं।

इन सब कल्पनाओंके संबंधमें इतना कह सकते है कि ये सब केवल सैद्धान्तिक है उनका शास्त्रीय महत्व कम है। काफी पुरावा मिलता है कि दृष्टिपटलमें होनेवाला प्राथमिक फर्क प्रकाश रासायनिक प्रतिक्रिया तौरका होता है और इसका संबंध नीललोहितरंग से होता है। इस प्रतिक्रिया के पहले मज्जातन्तुकी क्रिया पैदा होती है ये संज्ञाएं पहले दृष्टिपटल के भीतरी मज्जातन्तु के तहमें होकर वहासे एक या अनेक मज्जाकंद पेशियोंमे प्रतिक्रियाकी तीव्रताके अनुसार फैलती है, फिर वहासे दृष्टिरज्जुमेंसे बहती है। प्राकृतिक क्रियाओंका मानसिक संज्ञाओंमें रूपान्तर किस तरहसे होता है यह अभी भी नहीं जानते।

दृष्टिपटलमें होनेवाली प्रकाश रासायनिक और प्रकाश विद्युत प्रतिक्रिया और देहभान की संज्ञाओंके पृथक्करण से निकलने वाला महत्वका सिद्धान्त यह होता है कि इस क्रियामें दो व्यूह होते हैं:—एक प्राथमिक राडघटक वाला अन्तिम इन्द्रिय का स्कोटापिक व्यूह जिससे अवकलन नहीं हो सकता दूसरा जिसका विकास ज्यादह हुआ है और जिसमें सूक्ष्म भेद जाननेकी शक्ति होती है ऐसा कोन घटक वाला फोटापिक।

रंगोके सूक्ष्म भेदोंका विचार करें तो इसकी मध्यवर्ती कल्पना त्रिदल रूपकी होती है ऐसा मान सकते है। और इस संबंधमें जो प्रयोग किये गये है उनके पुरावाओंसे भी यह बात साबित हो सकती है।

खंड ९

दृष्टिकार्य का मनोविज्ञान चाक्षुषप्रतीति

प्रकाश, रंग और आकार की प्रतीति

द्विनेत्रीय प्रतीति

अवकाशकी और अन्तरकी प्रतीति

चाक्षुषप्रतीतिका स्वरूप

खंड ९

दृष्टिकार्यका मनोविज्ञान

अध्याय २३

चाक्षुषप्रतीति (व्हिज्युअल पारसेपशन्स)

प्रतीतिके नमूने (परसेपटयुअल पैटर्न्स)

इसके पूर्व खंडमें भौतिक उत्तेजकोंसे पाये जानेवाली संवेदनाके संस्कारोंका विचार किया: अब प्राकृतिक शास्त्र छोड़कर मानसिक शास्त्रके (चिच्छक्ति शास्त्रके) प्रश्नोंका, जो अस्पष्ट तौरके होते है, विचार करेंगें; और, जहांतक मुमकिन हो, संज्ञाओंका देहभानकी प्रतीतिमें किस क्रियासे उत्क्षेपण (सबलिमेटेड) होता है उसको देखेंगे। यह क्रिया अति जटिल होती है क्यो कि शुद्ध और पृथक् संज्ञाका अनुभव होना गैर मुमकिन बात होती है। अथ च बिलकुल सरल और प्रारंभिक प्रतीयमान क्रिया (इन्द्रियगोचर क्रिया) में भी भिन्न भिन्न संस्कारोंका संश्लेषण होता है, और उसकी जटिलता और भी बढनेका कारण यह होता है कि संश्लेषित फलका, पूर्वके अनुभव और वंशपरंपरा प्राप्त गुणोंसे बनी हुई तह के अनुसार नमूना बनता है। और इसी वजहसे इसका प्रमाण ठहराना मुश्किल होता है क्यों कि इसके गुणोंमे जिनपर ऊपरके (मस्तिष्कमेंके) केन्द्रोंका, असलमें ध्यान और बुद्धिका वर्गीकरण, संबंधी (व्यक्ति) के मानसिक घटकोंका असर होनेसे सतत बदल होता रहता हैं। इसमें काफी जटिलता होते ही इसमेंका अन्तिम फल, जो सतत बदलनेवाला और मुलायम गुण का होता है, हमेशा निकालता है और वह एकात्मक जैसा माना जाता है; और इसीको पारसनके मतानुसार प्रतीतिका नमूना कह सकते है। इस क्रियाके अध्ययनमें बहुतसे खतरे, अपनी अपेक्षा के अनुसार, होते हैं, जिनका अभीतक निराकरण हुआ नहीं और शायद होगा भी नहीं। इन बातोंसे ऐसी उलझन पैदा होती है कि परिणामी असर का प्रमाण ठहराना मुश्किल होता है। ताहम नमूनेके सब घटकोंका, जिनसे वह बनता है उनका विश्लेषण करनेसे और जिनके पारस्परिक संबंध का जिस नियमोंसे नियंत्रण होता है उनसे ऐसी बातोको खोलनेसे महत्व पूर्ण ज्ञान मिलता है।

इस विषयपर पीछेके तीन शतकोंने डेकार्ट (१६४४), लिबनिटझ(१७०३), कैन्ट (१७८१), जोहान्स मूलर (१८२६) और हेअरिंग (१८६१) आदि पंडितोंनें बहुत विचार किया है, जिनके वादविवाद का विचार इस ग्रंथमें जरूरी नहीं। लेकिन इतना कहना जरूरी है कि हेअरिंग और हेलमहोल्टझ के प्रभावसे तत्वज्ञानमें ज्यादह व्यावहारिक वादविषयोंका संबंध होने लगा और उसी समयसे हालके ज्ञानमें प्रगति होने लगी।

इस विषय के संशोधन की जीवन-वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक ऐसी दो पद्धतिया होती हैं और इन दोनोंमे आखिरमें साम्य दिखाई देगा तो भी दोनो पद्धतियोंमे बहुत

अन्तर है। हर शास्त्र अपने क्षेत्रमे महत्व का है तो भी पहला आधारभूत है इसमे सन्देह नहीं, और जबतक मनोविज्ञानमें जीवन-विज्ञानके तत्त्व ग्रथित होते हैं तबतक उससे विश्वसनीय फल दिखाई देंगे। प्राकृतिक क्रियाओंमें प्रतीतिके नमूनेके निर्धारण के दो व्यूह होते हैं: एक व्यूहसे मस्तिष्क प्रणालीके पथकी प्रवर्तक प्रेरणाओंका अभ्यास होकर उनको सरल करना और विरोधी प्रेरणाओंकी ऐकता, संकलन और सहवर्गीकरण करना यह क्रिया ऐसी होती है कि जिससे संस्कारोंका प्रदर्शन निश्चित होता है;और दूसरे व्यूहसे वंशपरंपरा प्राप्त और अनुभव जनित पेशियोंका मिलाप होता है जिससे संवादि-क्रियाका धर्म निश्चित होता है।मनोवैज्ञानिक बाते इसके ऊपरके समतलसे कार्य करके नीचेके समतलके कार्योंका नियमन करती हैं। पहली क्रियाके स्पष्टीकरण का कार्य सर **चार्लस स्काट शेरिंगटन आक्सफर्ड विश्वविद्यालय** मेंके इन्द्रिय-विज्ञान-शास्त्रके प्राध्यापक ने किया है। इनकी पद्धतिमें सुन्दर शास्त्रीय प्रणाली और तर्कशास्त्र का मिलाफ दिखाई देता है। इनका द्विनेत्रीय दृष्टिसंबंधी कार्य महशूर हैं, और इन्होंने मस्तिष्क मंडल की कल्पना की संकलन कार्य की कल्पना की नींव रची ऊपरकी सुंदर इमारत रचनेमें जीवनवैज्ञानिक, प्राकृतिक, मनोवैज्ञानिक और रुग्ण-विषयक बातों का इस्तेमाल हमारे गुरु **सर हरबर्ट पारसन** ने बहुत किया है।

प्रकाश और रंग की प्रतीति

चाक्षुष दृश्य या दिखाव

किसीभी प्रकाश की व्याख्या उसकी दीप्ति, वर्णछटा और संपृक्तता इन राशियोंमे कर सकते है यह पहले ही कहा है। इनका वर्णन **हेल्महोल्टझ** और **हेआरिंग** पंडितनें पहले किया है लेकिन प्रकाश और रंग के दृश्य की, जिससे चाक्षुष जगत् भरा हुआ होता है, प्रतीतिका गुणधर्म बतलानेवाली बातोंका संशोधन **काट्झ** पंडित (१९११) ने किया है।

काटझने चाक्षुष दृश्य-दिखाव की आठ व्याख्यायें की थी,और उनके विवेचनमे ख्यालमे रक्खा चाहिये कि रंग (कलर) इस शब्द प्रयोग का इस्तेमाल विस्तृत तौरसे, छटा रहित सुफेद काली श्रेणीके लिये और जिनसे छटाओंकी सज्ञा होती है उनके लिये किया है।

(१) **सादे समतल रंग** (प्लेन कलर्स) जैसे कि वर्णपटके रंग, या रंगीन पदार्थ की लम्बी निरुंद नलीमेंसे देखनेसे देखे हुए रंग में जब उसके अवकाशमेंके स्थान या इर्द गिर्द की परिस्थिती का ठोस पदार्थसे संबंधका बोध नहीं होता।

(२) **पृष्ठीय रंग** (सरफेस कलर्स) प्रकाश या रंग, जो साधारणतया पदार्थके पृष्ठपर दिखाई देता है। कागज और उसका रंग ये दोनों संज्ञा अविभक्त ही होती है।

(३) **पारदर्शक समतल के रंग** (ट्रान्सपेरन्ट प्लेन कलर्स) इनमे पारदर्शकता के गुण का बोध होता है। इसका अनुभव रंगीन काचमें से देखनेसे होता है।

(४) **क्षेत्रीय रंग** (स्पेटियल-स्पेशन कलर्स) जैसे कि रंगीन द्रवों का या पारदर्शक कुहरा का रंग जो पारदर्शक होते है और जिसमे त्रिमर्यादाके क्षेत्र का और ठोसपन (घनता) का बोध होता है।

(५) **आयनेके** रंग (मिरर्ड कलर्स) पदार्थ आयनेमेंसे देखनेसे बोध होनेवाले रंग ।

(६) **चमक** (लस्टर) जब एक रंग दूसरे रंगके पीछे होतेही दिखाई देता है तब उस असर को चमक कहते है ।

(७) **दीप्तिमान रंग** (ल्युमिनस कलर्स) दीप शिखा की मिसाल होती हैं ।

(८) **दहकनेवाले रंग** (ग्लोइंग कलर्स)

इन अनेक दृश्यो के सादे-समतलके रंगोका अलग स्वतंत्र वर्ग होता है जो अपनी प्रतीतिके बाहर के होते है। शेष वर्गके दीप्तिमान और दीप्तिहीन ऐसे वर्ग हो सकते हैं । दीप्ति का दृश्य तब होता है जब कोई रंग उसके इर्द गिर्द के पदार्थोसे ज्यादह चमकदार होता है।

प्रकाश और रंग की प्रतीति के गुणधर्म

चाक्षुष संज्ञाओका बयान करनेके समय कहा गया था कि, यद्यपि बेरंगसे, दृष्टिपटलपर सुपेद या रंगीन प्रकाशका भौतिक उत्तेजक गिरनेसे असली, बिनचूक प्राकृतिक संवादि–क्रिया होती है जिसका गुण प्रकाशका प्रमाण और गुणके अनुसार होता हैं । दो मीटर मोमबत्ती के बलके प्रकाशसे प्रकाशित किया हुआ समतल, एक मीटर मोमबत्तीके बलके प्रकाशसे प्रकाशित हुए समतल से ज्यादह चमकदार होता है; और ४५०० अं. एकं की विसर्जन शक्तिसे नीली सज्ञा पैदा होती हैं । लेकिन ख्यालमे रखें की यह पूर्ण सत्यस्वरूप की बात नहीं है । यदि ऐसा हो तो स्वच्छ दिनके प्रकाशमें मिट्टीका टुकडा, और अंधियारे दिनमें खड़िया का टुकडा दोनो समान भूरे रंगके दिखाई देगे यद्यपि भिन्न भिन्न समयमे दोनो परसे समान प्रमाण का प्रकाश परिवर्तित होते हुये भी मिट्टीका टुकडा भूरे रंगका और चुनीका टुकड़ा सुपेद रंग का हमेशाही दिखाई देता है। सुपेद कागज के टुकडेका कोई भाग छायामें हो तो वह भूरे रंगके कागज का जैसा भासमान होगा, लेकिन अपने ख्यालमे फौरन आता है कि पहला बिलकूल सुपेद ही होता है सब पदार्थ अपने को अपने खास रंग और रूप के जैसे ही दिखाई देते है इस बातसे यह स्पष्ट होता हैं कि यह क्रिया सिर्फ भौतिक उत्तेजकोसे नहीं पैदा होती, यद्यपि उनसे असलमें शुरू होती है, उसमे ऊपरके समतल के व्यूहसे फर्क होकर उसमे कोई नयी संज्ञा पैदा होती है । यानी प्रतीतिको संज्ञा नहीं मान सकते, और मानसिक विश्लेषणको, सापेक्ष तौरके यथार्थ और केवल निर्णय प्रमाणोमे जिनका कि प्राकृतिक समतल मे इस्तेमाल किया गया है, बटा नहीं सकते ।

भिन्न धर्म और प्रमाण के प्रकाशसे प्रकाशित हुए पदार्थोंमे यद्यपि भिन्न भिन्न अवस्थाओमे देखनेसे,दृष्टिपटल के उत्तेजनके स्वरूप और प्रमाण मे फर्क हो,तो भी उनके गुणग्रहणमे सापेक्षतासे फर्क नहीं होता; इसीका **रंग सातत्य** (कलर कामस्टन्सी) इन लफजोंमें आविष्करण कर सकते हैं।इस धर्मका सुपेदसे भूरे और काले तक के सब रंगोके लिये विभिन्न रंग छटाओकी श्रेणी के लिये और मानसिक प्रकारकी प्राथमिक वर्णछटाके लिये लाल, पीली, हरी और नीली संज्ञाका इस्तेमाल कर सकते हैं । सुपेद कागज को सुपेद कहनेका और काली मखमल को काली कहनेका रिवाज है, क्यो कि अपने दृष्टिपटलपर कागजसे ज्यादह और मखमलसे कम प्रकाश पाया जाता है;यदि प्रकाशन की मर्यादामे ऐसा फर्क किया जाय कि सुपेद पदार्थसे परिवर्तन होनेवाले प्रकाशका प्रमाण कम हो और काले पदार्थसे प्रमाण ज्यादह हो तो

भी सुपेद पदार्थ सुपेद और काला पदार्थ कालाही दिखाई देगा । वर्णछटा रहित रंगोकी श्रेणीमेंसे इन्द्रियगोचर प्रकाशके प्रमाणपर कुछ असर नहीं होता । वर्णछटादार श्रेणीमें इन्द्रियगोचर प्रकाशमे उसके गुणधर्मानुसार फर्कोंका कुछ असर नही होता नैसर्गिक प्रकाशनमें कोई भी पदार्थ अपनी मूलोत्पत्तिके रंगोंके गुणोंसे युक्त जैसा भासमान होता है इसीको **हेअरिंग** पंडितने **स्मृति रंग** (मेमरी कलर्स) कहा है, अनैसर्गिक प्रकाशनमे और प्रकाशनमें के हर फर्कमें मध्यम रंग दिखाई पडता है । यह फर्क ऐसा होता है कि उसमे भी अपनेको आदत पडी हो ऐसे मूलभूत रंगोको हम पहॅचान सकते है । और इसीका मानसिक तौरसे बिलकुल अलग प्रमाण निश्चित कर सकते हैं; यानी पदार्थके इर्दगिर्द की छायायें उपदृश्य जैसी होकर उनमेंसे मूल रंग दिखाई पडता है ।

भौतिक उत्तेजक और प्रतीति मेंके विरोधके स्पष्टीकरण के संबंधमें बहुत बहस हुअी हैं । इस घटना के स्पष्टीकरण के संबंधमें दो मत हैं । **हेअरिंग** पंडित प्राकृतिक क्रियाओंको मानते है । उनका कहना यह है कि विरोध और संयोजन (कानट्रास्ट और अडापटेशन) से, जिसमे कनीनिकाके परिवर्तनसे मदत होती है, दृक्क्षेत्र मेंकी बातोका स्थायी तौरपर संस्थापन होकर साधारणतया समान **रंग सातत्य** प्रस्थापित होता है । इसी तरहसे **स्मृति-रंग** भी प्रस्थापित होते है, जिनको अपना सातत्य कायम रखनेके लिये परिधिके घटकावयवोंसे प्रतिक्रिया करनी जरूरी होती है । यानी इसमें " अन्तरनेत्र " (इनर आय) की कल्पना की है जिससे बाह्यजगत् के सत्य पदार्थोंसे नया चाक्षुप्रजगत् बनाया जाता है, जिससे इन्द्रिय भौतिक और आदि भौतिक प्रतिक्रियाका बोध होता है । परिधिकी भौतिक तथा प्राकृतिक क्रियाओंपर जिनकी नींव होती ऐसे गुणोके खुलासेसे इस घटना का वर्णन नहीं होता, यह बात **काटझ** के प्रयोगोंसे निश्चित हुई है ।

काटझ पंडित के मतानुसार प्रकाशसे मिली हुई अवस्थाका नेत्र, जब बिखरे हुए साधारण दिनके प्रकाशमें किसी पदार्थको देखता है तब उसको वह पदार्थ उसके खास रंगका दिखाई पडता है । अपने एकत्रित अनुभवसे स्मृतिचित्र बनाया जाता है, जिसके विकासमे चाक्षुपसंज्ञाओंके सिवा स्पर्श और संवेदन संज्ञाओका हिस्सा होता है । इस अनुभव का संबंध पदार्थ को जोडनेकी आदत हो जानेसे सच्चा रंग **स्मृतिरंग** होता है। और इसी वजहसे उसमें घनता और रूपरेखा-सीमारेखा की धारणासंभव होती है और रंगीत पदार्थके पृष्ठके समतल में उसका स्थान निर्देश होता है। यदि पदार्थको उसके इर्दगिर्द की परिस्थितिसे अलग करके देखें, जैसे कि किसी लम्बी नलीमेंसे देखे, तो उसमे अंतर दिखाई देता है । ऊपरके उसके सब गुणोंका लोप होता है । ऐसी हालतमे सुपेद पदार्थ यदि छायामें हो तो वह भूरे रंगका दिखाई पडता है और रंगीन पदार्थ नीले धुवेमेंसे या नीले प्रकाशनमेंसे देखें तो वह पदार्थ नीले रंगका मालूम होता है । **काटझने** इस अवस्थाको—पदार्थको उसके इर्दगिर्द की परिस्थितिसे अलग करनेकी अवस्थाको—**रंग विभाजन** (कलर रिडक्शन) नाम दिया है । यह गैर वर्णछटाकी श्रेणीमें समवर्णी और वर्णछटावाली श्रेणीमें विभिन्नवर्णी होती है, और इस विभाजित अवस्थाके रंग को, जिसमें अब वह पदार्थ दिखाई पडता है, "सादा रंग " कहते हैं। **इस तरहके रंग नलीमेंसे दृष्टिक्षेत्रमेंही दिखाई पडते हैं ऐसा नहीं,** बल्कि जब वे अपने अवकाश

की प्रतीतिके पार, जैसे कि बादलमे या रंगमिश्रणके यंत्र के वर्णपटमें निसर्गसे दिखाई पडते है; यानी इर्दगिर्द के मिश्र नमूने की परिस्थिति से रंगको अलग करनेसे, उसके विभाजनसे रंग दृष्टि की ऊपरकी (मस्तिष्क) प्रतीतिका लोप होता है और रंगसातत्य की घटना भी नहीं पायी जाती। यानी साधारण दृष्टिमें पदार्थके रंग का ज्ञान (कुछ मर्यादा तक) प्रकाशनसे पैदा होनेवाले बदल के साथ कायम रहता है; तो भी उसका स्मृतिरंग और आकस्मिक तौरके प्रकाशनसे पैदा होनेवाले रंगको मानसिक तौरसे अलग कर सकते हैं। पहली तौरके रंगको (स्मृतिरंग) दूसरे रंगमेंसे देख सकते हैं; इस क्रियाको **जैनश्क** ने **रंग परिवर्तन** (कलर ट्रान्सफार्मेशन) नाम दिया है। विभाजन की क्रिया परिवर्तन की क्रियाका उपनयन जैसी हो सकती हैः एक दूसरे की विरोधी और व्यतिक्रम जैसी होती है।

इससे अनुमान कर सकते है कि भौतिक उत्तेजकसे अपनी बुद्धिको विभाजित रंग का अनुभव होता है,दरमियानमें अपनेको परिवर्तित रंगकी प्रतीतिकी पसंदगी का अनुभव होता है। **काटझ** के मतानुसार परिवर्तन की क्रिया मस्तिष्कीय है, परिधिकी नहीं, मानसिक तौरकी है प्राकृतिक नहीं। और मनुष्यका अनुभव वही रंगसातत्य में असली बात होती है। इसमे दो क्रियाअे होती हैः संवेदना जो प्राकृतिक, प्राथमिक, स्थायी और मूलाधार तौरकी है और जो भौतिक बातोपर अवलम्बित रहनेवाली क्रिया होती है, और दूसरी प्रतीति जिससे संवेदनाकी व्याख्या होती है, जो तरल स्वभावकी होती है और जिसपर अनुभवसे किये हुए निर्णयका असर होता है।

लेकिन यह बात निश्चित है कि, उपपादन की बातोंका कालसंबंधकी तथा स्थानसंबंधकी विचार करना जरूरी है क्योंकि इनसे प्राकृतिक क्रियाओंमें मानसिक क्रियाओंके जैसे हि बदल होता है।

एक असली महत्वकी बात, जिसके संबंधी बहुत चर्चा हो रही है, और जो वादविवादकी पद्धतिमें भूल जाती है, यह होती है कि **नैसर्गिक प्रकाशनमें किसी भी रंगका देखावा, अनैसर्गिक प्रकाशनसे रंगका होनेवाले देखावोंसे कम अनिश्चित तौरका नहीं है और वह अवर्णनीय है।** दोनो भी भौतिक–प्राकृतिक तौरके नहींः दोनों मानसिक तौरके होते है। दोनों पदार्थके या किरण विसर्जन शक्तिके धर्म नहीं; बल्कि दोनोंका चैतन्यकी अवस्थामें अस्तित्व होता है। दोनोंमेंसे किसीभी एक का वर्णन अनुभवजन्य प्रयोगकी क्रियाओंसे नहीं हो सकता। कोई एक संवेदना एक स्वतंत्र संवेदना जैसी भासमान नहीं होती और अनेक बातोंके मिश्रणसे प्रतीतिके सादे नमूनाका निर्धारण होता है जो, ज्ञात पृथक्करण होवे विना ऐकीकि जैसा भासमान होता है। किसी उत्तेजकके ग्रहणमे उपपादनकी प्राकृतिक क्रियाओंसे फर्क होता है और इसके सिवा ऊञ्च समतलसे कार्य होकर, आकारकी प्रतीति (क्योंकि आकारके फर्कसे रंगमें फर्क करना संभव है) क्षेत्रकी प्रतीति, क्षेत्रमेंका स्थाननिर्णय और दूसरी अन्य बातोंका एकही समय चैतन्य कि अवस्थामें प्रवेश होता है; जिन सबके कार्यसे अपनी रंग और प्रकाशकी प्रतीतिमें बदल होता है, इन सबका पारस्परिक संबंध और संकलन होकर एक पूर्ण स्वतल नमूना तैयार होता है। इसी तौरका दृक्प्रत्यक्ष दूसरी प्रतीति की क्रियाओंमें भी दिखाई पडेगा, क्योंकि रंगसातत्य की आकारसातत्यसे

तुलना कर सकते हैं जिससे आकारसंबंधीकी अपनी कल्पनाअे कायम स्वरूपकी रहती है जिसपर अन्तरका कुछ परिणाम नहीं होता, कोई प्रसिद्ध वस्तुके आकार का ज्ञान उसकी दृष्टिपटल परकी प्रतिमाके आकार पर अवलम्बित नहीं रहता । क्षितीज परके मनुष्यसे ऱ्हस्व मनुष्यकी संज्ञा नहीं होती, किसी वर्तुल को बाजूसे देखनेसे वह दीर्घ वर्तुल जैसा भासमान नहीं होता ।

आकार और सीमारूप रेषा की प्रतीति

आकार की प्रतीति यानी पदार्थोंकी शकल की पसंदगी की नींव आकार संज्ञापर रची हुई होती है जिसमे कमसेकम दृष्टिगोचरता का और कमसे कम निर्णय बुद्धिका समावेश होता है । इसमे **पारसन** पंडित के मतानुसार और भी मिश्र भौतिक और मानसिक बातों का योग होता है । यह बात एक अच्छी मिसाल होती है जिसमे मानसिक बोध पूर्ण और एकाकी नमूने की पसंदगी होती है और जिसमें व्यक्तिगत तफ़सीलोंका चेतन विश्लेषण नहीं होता, क्यो कि भिन्न भिन्न उत्तेजकोंसे जो बाह्य परस्पर विरोधी जैसे भासमान होते है, एक मान संवादि-क्रिया होती है । चतुष्कोण की प्रतीति और दृष्टान्त में फर्क नहीं होता यद्यपि वह उसका चित्रलेखन कागज पर खींचा हो और उसको तिरछे तौरसे देखनेसे यथार्थदर्शन में उसकी सीमा समान्तर जैसी नहीं दिखाई देती और उसके कोण समकोण जैसे नहीं दिखाई पडते । किसी भी नमूनेके निरगमन की असली बात—उसका **आशय** (मीनिंग) यह होता है । रंग के नमूने जैसे आकार के नमूनोके गुणग्रहण मे अनुभव ही असली बात होती है (यानी स्मृतिरंग जैसे स्मृतिके आकार भी होते हैं) । नमूनेकी उपयुक्तता और उसका अनुभव इन दो बातोंसे उसकी धारणा उसके साक्षात्कारकी स्पष्टता और उसकी गुणग्राहकता की आसानी निश्चित हो सकती है ।
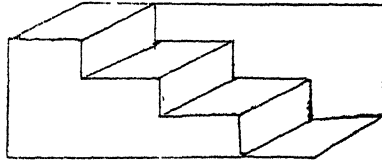
चित्र नं. ३२१

स्कोरेडरकी सिडी

अनुभवसे सामुदायिक सापेक्षिक स्थिति की बौद्धिक शक्ति पैदा होती है, यानी अपूरी सामग्रीसे नमूने पूरे करनेकी योग्यता पैदा होती है । इसके साथ साथ प्रतीति का नमूना सुधारनेकी योग्यता होती है जिसमें संवेदनके समतल परके दृश्योमें के फर्कोंमे प्रतीतिके समतलपर परिचित और निश्चित सुधार होते है । प्रतिमासे अज्ञात रोहदाना या गत अनुभव की स्मृति जाग्रत होती है जिससे उसमे ऐसा अंतर होता है कि अन्तिम भावना प्रत्यक्ष उत्तेजक जैसी नहीं होती बल्कि गत अनुभव की पार्श्वभूमिके अनुरूप होती है ।

इन सब के ऊपर रची हुई बातें होती हैं और उनका नियमन करनेवाली उच्च दर्जेकी मनोयोग और रुचि की शक्ति होती है और उसीके ऊपर प्रत्यक्ष प्रभाव का अन्तिम बल अवलम्बित रहता है लेकिन ख्यालमे रखे कि आकार बोध की नींव अनुभव होता है । जन्मांध की आकार प्रतीति दृष्टिवालेसे बिलकुल भिन्न नहीं होती ।

द्विनेत्रीय प्रतीति–दर्शन

द्विनेत्रीय दृष्टिमें दोनों नेत्रोंका,समन्वयसे उपयोग होनेसे मानसिक संस्कार एक होता है। दो संज्ञावाहक दिखावों का उपस्थितिकरण-प्रदर्शन उत्क्षेपण शक्तिसे ऐकीकि प्रतीति होना यह

जातिजनिमें कुलोत्पत्तिमें–देरसे विकसित होती है। और श्रेष्ठ प्राणिवर्गकाही मनुष्य या वानर (प्रायमेटस) यह खास गुण होता है। उत्क्रान्तिमें उसका महत्व बढकर होता है क्यों कि गुणग्रहण की यथार्थता नेत्र और हातोंमिके नाजुक समन्वय से, जो इसी गुणसे पैदा होता है, मनोयोग अवधान और रुचि आस्था जैसे मानसिक गुणोंकी पैदाईश होती है, और इसी गुणसे हस्तकौशल्य और बौद्धिक श्रेष्ठता का विकास होकर मनुष्य का इर्द गिर्द की परिस्थिति पर अमल हो सकता है। द्विनेत्रीय दृष्टि यह प्रतीतिकी क्रिया होती है, यह मिश्र या जटिल क्रिया होती है। इसकी दो भिन्न अवस्थाएँ होती हैं:—पहले हर नेत्रके व्यूहसे एकही समय संवेदना की प्रतिमा बनती है, और ये दोनो प्रतिमा योग्य—अनुरूप हो तो उनका ग्रहणशक्ति की क्रियासे एकत्रीकरण होकर एक प्रतिमा तैयार होती है। **द्विनेत्रीय दृष्टि असलमें प्रतीति होती है जो हर नेत्र की संज्ञाओंके संश्लेषणसे बने हुये अद्वैत का फल है।** इस क्रियाकी दो अवस्थाऐं होती हैं:—दो लायक एक नेत्रीय संज्ञाओंका देखावो की-और इन दोनोंसे एकार्का प्रतीतिकी समुत्पादन की अवस्था।
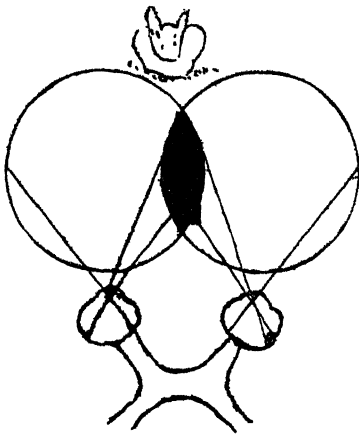
चि. नं. ३२२
खरगोश का एकनेत्रीय (सुपेद) और द्विनेत्रीय (काला) दृक्क्षेत्र
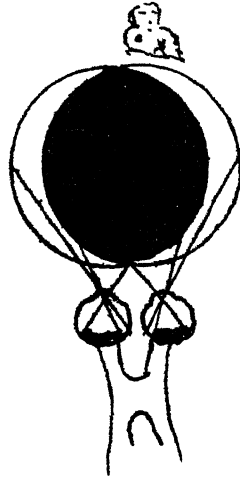
चित्र नं. ३२३
वानर जैसे श्रेष्ठ वर्ग प्राणिके एकनेत्रीय सुपेद और द्विनेत्रीय काले दृक्क्षेत्र

(अ) दो लायक एकनेत्रीय संज्ञाओंके उपस्थितिकरण का तंत्र

१ दो एकनेत्रीय संज्ञाओंके अनुरूप उपस्थितिकरण की जरूरी बाते: (१) दोनो नेत्रोंके चाक्षुष दृक्–क्षेत्र इस तरहसे मिलते होने चाहिये कि दोनो नेत्रोंको एक ही पदार्थ बराबर दीखे और मध्य–मस्तिष्क–मंडल की रचना इस तरहसे होनी चाहिये कि दोनो नेत्रोंकी संज्ञामे साहचर्य हो : (२) दृष्टिपटल और मस्तिष्क मे के पारस्परिक घटकोंमे साहचर्य हो (३) नेत्र की बाह्य चालक स्नायुओंका कार्य चाक्षुष अक्षरेषा संबंधि इस तरहसे होना चाहिये कि दृष्टिपटलका मस्तिष्कमेके घटकोंसे दोनो प्रतिमाओंके संबंधका कार्य ठीक तरह से हो।

(१) द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्र और मज्जातन्तुओंका अन्योन्य· छेदन

नेत्र की जातिजनित विकास की अवस्था का विचार करने मे पहले ही कहा गया

कि नेत्र बाजू की ओरसे सामनेकी ओरको झुका हुआ होता है (पृष्ठ३२२)। नीचेकी श्रेणीके प्राणियोमे द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्र कुल क्षेत्र का एक छोटासा(चि.नं. ३२२)अपूर्णांक जैसा होता है। इसके साथ साथ इन प्राणियोमे दृष्टिरज्जू संधिमे मज्जातन्तुओंका पूरा अन्योन्य छेदन होता है। श्रेष्ठ प्राणिवर्गमे इसके अलावा, नेत्र सामने की ओर को झुके होनेसे दृगाक्ष समानान्तर जैसे होते है और द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्र का आकार कुलक्षेत्रके योगमे बडा होता है; मज्जातन्तुओंके अन्योन्य छेदनसे क्षेत्रमेके सहचरित भागोंका मस्तिष्कमे ठीक समन्वय होता है;एकनेत्री क्षेत्र बिलकुल निरुंद जैसा भाग रहता है (चि.नं.३२३)। बाजूके नेत्रसे दृश्य पट-नेत्रोंके सामनेका अखंड दृश्य (पानोरामा) दिखाई पडता है यह उसका फायदा है, दोनो दृक् क्षेत्र सामने और पीछेकी ओर एक दूसरे पर चढते है और इर्दगिर्दका सब अवकाश दिखाई पडता है।इसके अलावा मनुष्यमे उसके नेत्र सामनेकी ओरको होनेसे उसके पीछे बडा अंध क्षेत्र होता है। यद्यपि बिलकुल परिधिके वक्रीभवनसे एक नेत्रीय दृष्टि बाजूके क्षेत्र मे संभव होती है (चि. नं. ३२४) प्राणियोंको नेत्रके सामनेके अखंड दृश्य की स्वसंरक्षण जैसे कार्योंके लिये जरूरत होती है।

चित्र नं. ३२४
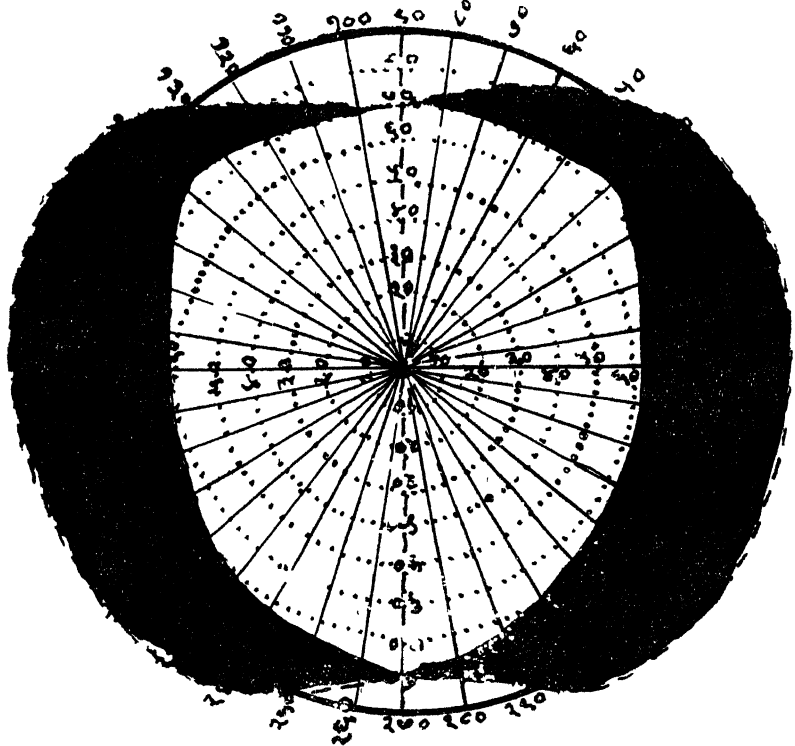
मनुष्य का द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्र

काला भाग एक नेत्रके दृक् क्षेत्रका बाजू का भाग है।

द्विनेत्रीय दृक् क्षेत्र में पारस्परिक व्यापक की जरूरत होती है तोभी सूक्ष्म भेददर्शन शक्तिके संस्कार दृष्टिपटलके केद्रन्थ भागसे जाने जाते है। दृष्टिस्थान और उसके मस्तिष्क–मज्जा संबंध का विकास घनता दर्शक दृष्टि के विकास में महत्व की बात होती है।

दृष्टिपटलके समन्वित (अनुवर्ति–संगत) बिन्दु

दो मिलापी एक नेत्रीय संस्कारोकी योग्य उपस्थितिकरण के लिये दृक्क्षेत्रमे के बिन्दुओकी जो पारस्परिकसे मिलते होते हैं प्रतिमा दृष्टिपटल के कार्यक्षम बिन्दुओपर गिरना जरूरी है। दोनो दृष्टिपटल के ऐसी बिन्दुओको, जिनकी प्रतिमाओं समवर्ती दृक्क्षेत्रमेंके एकही भागपर प्रक्षेपित होती है, **समन्वित, अभिन्न या समान प्रकार के बिन्दु** कहते हैं (कारसपांडिंग आयडेनटिकल पॉइन्टस)। दृष्टिपटलके नासिकाके भागकी परिधिमें समन्वित बिन्दु नहीं होते, क्यों कि द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्र एक नेत्रीय दृक्क्षेत्रके कनपुटीके भागकी परिधि की चन्द्रकोरी भागतक नहीं फैलता। इसके सिवा दृष्टिपटल के सब भागोमे हर बिन्दु का प्राकृतिक तौरका समन्वित बिन्दु दूसरे दृष्टिपटलमें मिलता है। जब किसी बाह्य पदार्थकी दो प्रतिमाओं ऐसे बिन्दुओपर गिरती है तब द्विनेत्रीय दृष्टि सभव होती है: यदि ऐसा न हो, जब कि एक नेत्रको उगलीसे सई बिन्दुके बाहर किया जाता है, तो द्विधा दर्शन पैदा होता है (डिपलोपिया)। ऐसे बिन्दुओको **असमन्वित विभिन्न–विजोड** बिन्दु कहते हैं। ख्यालमें रखे कि दोनो दृष्टिपटलोके दृष्टिस्थान समन्वित बिन्दुओंके अहम उदाहरण होते हैं। किन्ही दो **बिन्दुओंकी जोड स्पष्ट समन्वित खड़ी रेषा तथा स्पष्ट समन्वित आड़ी रेषाओंके समान दिशामें और समान अन्तर पर हो तो वह समन्वित बिन्दुओंकी जोड होती है**। एक नेत्रके दृष्टिपटलके नासिका भाग का दूसरे नेत्रके कनपटीके भाग का हवाला देता है।

नैसर्गिक नेत्रमें दृष्टिपटल दृष्टिस्थानके इर्दगिर्द सममिताकार रचा हुआ होता है, और दृष्टिपटल के बिन्दुओकी समन्वितता यह कुछ शारीर–शास्त्रकी विशेषतः नहीं। कन्हीं या काने लोगोमे द्विनेत्रीय एक दर्शन, द्विधा दर्शनके सिवा (डिपलोपिया) होता है। ऐसा माना गया है कि ऐसे लोगोंमें केन्द्रच्युत मिथ्या दृष्टिस्थान–केन्द्र पैदा होता है जिसका दूसरे नेत्रके सच्चे सत्य दृष्टिस्थान–केन्द्रसे प्राकृतिक संबंध जुडा हुआ होता है और उसके साथ दुहरी समन्वित प्रणाली प्रस्थापित होती है, ऐसी अनियमित चाक्षुष अवस्था सापेक्षतासे स्थायी होकर उसका घनतादर्शक दृष्टि जैसा काम करना संभव है; कंची दृष्टिकी सुधारनेकी शस्त्रक्रियाके बाद पहलेकी आदतसे इन लोगोंमें मिथ्या दृष्टिस्थान काम करनेसे इन लोगोंको कुछ समयतक नये समन्वित बिन्दु तयार होने तक द्विधादर्शन की तकलीफ होती है। जो नेत्र काना नहीं होता उसको ढाकनेसे भी यह अनुभव पाया जाता है इसका उत्तेजक, जिससे मिथ्या दृष्टिस्थान अपने दृष्टिपटल का नियमन करता है, उसे निकालनेसे एकनेत्रीय द्विधा दर्शन पैदा होता है। यानी **समन्वितता शारीरशास्त्र की विशेषता नहीं लेकिन यह कार्यशक्तिका गुण है: वह दृढतासे निश्चित नहीं होता लेकिन उसका विकास और उसमें फर्क होना संभव है।**

हारापटर:—नेत्रकी किसीही अवस्थामे अवकाशमें के बिन्दु, जिनकी प्रतिमाओं दृष्टिपटलके समन्वित बिन्दुओंपर गिरती हैं उनके जोड़ को हारापटर यह संज्ञा दी है। ये **हारापटर** के बिन्दु दोनों नेत्रको पातबिन्दु और स्थैर्य बिन्दुओंमेसे जानेवाले वर्तुल के व्यास पर होते हैं।

प्राकृतिक द्विनेत्रीय द्विधा दर्शन:—एक पदार्थ की दो प्रतिमाओं दोनों दृष्टिपटलके समन्वित बिन्दुओपर गिरती हैं तब एक दर्शन होता है। लेकिन प्रतिमाओं विषमें बिन्दुपर

गिरती हैं तब द्विधा दर्शन—दोहरा दर्शन होता है यद्यपि कुछ मर्यादा तक ऐसे विषम बिन्दु-ओका एकत्रीकरण संभव है। इससे अनुमान कर सकते हैं कि दृक्क्षेत्रमेंके जो बिन्दु हारा-

मूलर का हरापटर
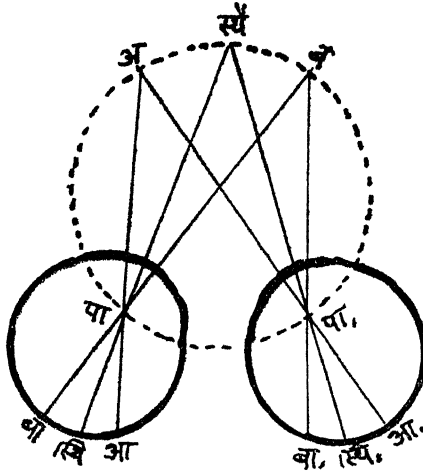
चित्र नं. ३२५

स्थै स्थैर्य बिन्दु : अ, स्थै और ब की प्रतिमाओ दृष्टिपटलके समन्वित बिन्दुओपर अनुक्रमसे आ, स्थि और वा पर गिरती है। इन कुल बिन्दुओंका प्रक्षेपण बिन्द्वाकार वर्तुलके परिधिपर होता है। स्थै के स्थानके अनुसार उसका हारापटर भिन्न होगा।

पटर पर नहीं होते उनकी प्रतिमाओ द्विधा दिखाई देती हैं। प्राकृतिक द्विधादर्शनसे यद्यपि देहमान की अवस्थामे तकलीफ नहीं होती सैद्धान्तिक तौरसे स्थाननिर्णय में उसका महत्व होता है। इसके निदर्शन के लिये दूर की खिडकी की तरफ नजर को स्थिर कर के पहले एक नेत्रको बंद कर के और फिर दूसरे नेत्रको बंद करके देखे तो नेत्रकी प्रतिमायें स्थिर नेत्र की बाजूको जाती हैं ऐसा भासमान होगा यानी समदर्शी द्विधा दर्शन होगा; या इस पृष्ठ के पार के पदार्थोंके तरफ बीचमे पेन्सिल पकड कर देखे तो भिन्नस्थित द्विधा दर्शन होगा।

दृक्क्षेत्रमेंका द्विनेत्रीय स्थैर्यबिन्दु

द्विनेत्रीय एकदर्शन के लिये बिलकुल सही व्यूह की जरूरत होती है। दोनो नेत्र पारस्परिक संबंध सब अवस्थाओमें कायम रखकर इकाई जैसे घूमने चाहिये जिससे हर पदार्थकी दो प्रतिमायें समन्वित बिन्दुपर गिरे। नेत्रके बाह्य चालनी स्नायुओंका नियमन करनेवाले नीचेके मज्जाकेन्द्रोको शारीर शास्त्र का प्रमाण काफी दिया है। दोनों नेत्रों में परस्परानुकूल कार्य होनेके लिये दोनों नेत्रोंके स्नायुओंका नियंत्रण ऊपरके मज्जाकेद्रोंसे एकानुरूप ऐकिक तौरसे होता है जिससे ऊर्ध्व तथा अधो सरलचालनी और वक्र चालनी स्नायु एक साथ कार्य करते है और एक नेत्रका बाह्य सरल चालनी स्नायु दूसरे नेत्र का अन्तर सरल चालनी स्नायुके साथ, पिछले लम्बे बन्डल के द्वारा कार्य करता है। द्विनेत्रीय संज्ञाओं अन्तर्दृष्टिसे समतुलित जैसी मानी गई हैं और यह कार्य मध्यमस्तिष्क के बाणाकार (सजिटल) समतलमें के द्विनेत्रीय एक दर्शन के नेत्रसे होता है, जो दोनों नेत्रोंकी एकत्रिक अवस्थाका भाल लोचन (सायक्लोपीन) जैसा कार्य करता है। यदि संज्ञा और उसके नियंत्रण में समन्वय होना जरूरी है तो चालक व्यूह का कार्य मिलाफ का होना चाहिये; और नेत्रगोलक के सब चलन के विचारमे हर चलन के खास बाणाकार समतल में सरके मध्य बाणाकार समतलको स्थानान्तरित करना चाहिये

और वह वैसा नैसर्गिक अवस्थामें होताही है। नेत्रगोलक की बाजूके हर स्नायुका संबंध शरीरके मध्य समतलसे अन्य अवयवोका जैसा होना जरूरी है। दाहिने नेत्रका सरल बहिर्नेत्र चालनी स्नायु और बांये नेत्रका सरलान्तर्नेत्र चालनी स्नायु का संबंध मस्तिष्कमे, दाहिने हाथ जैसा संबंध होता है। ख्यालमे रखें कि दोनो नेत्रों के आडी रेषामे के एक दिशाकी ओरका चलन का नियत्रण मस्तिष्क के एक ही गोलार्थ से होता है। इस व्यवस्था-घटना का महत्व नेत्रके **ऐच्छिक** तथा **परिवर्तक स्थिरीकरण** कार्यमे दिखाई पडता है।

ख्यालमें रखें कि **ऐच्छिक स्थिरीकरण** का नियंत्रण, जिससे नेत्र स्थायी या घूमते पदार्थ पर स्थिर किये जाते है ललाटीय खंड के दूसरे चक्रांग के पिछले भागमें के केन्द्रोसे होता है। और एक ओरके मज्जातन्तु एक ओरसे पार्श्व सयोजनेमे से होकर दूसरी ओरके चाक्षुष स्नायुके चालक मज्जातन्तुके केन्द्र को जाते हैं। इस तरहसे दोनों नेत्रोंसे परस्परानुकूल कार्य होकर दोनो नेत्र स्थैर्यबिन्दुकी ओरको घूमते हैं।

इसी प्रकार परिवर्तक स्थिरीकरण का नियंत्रण पाश्चात्य खंडमेंसे होता है और संभव है कि एंग्युलर चक्रांग के स्थिरीकरण के चलन और अनेक संस्कारोंके सहयोगसे स्थान के निर्णयमें दोनो नेत्रोंका परस्परानुकूल कार्य होनेमें बहुत महत्वका भाग होता होगा। समझो कि जब दाहिने क्षेत्रमेका पदार्थ दोनों दृष्टिपटल के बाये भागमे के समन्वित बिन्दुओंको उत्तेजित करता है तब दोनोंकी संज्ञाऐं बांये चाक्षुष पथमेसे दृष्टिरज्जु संधिमेंसे मस्तिष्कमे के बाये चाक्षुष क्षेत्र को जाती हैं। वहासे केन्द्रत्यागी परिवर्तक प्रेरणा अन्योन्य छेदक तौरसे बहकर मध्यमस्तिष्कमे के नीचेके दाहिने केन्द्रोंको जा पहुंचती है; वहासे प्रेरणाओंका परिवर्तन नेत्रोंको दाहिनी ओरको स्नायु-दाहिना सरल बहिर्नेत्र चालनी स्नायु और बांया सरलान्तर्नेत्र चालनी स्नायुको जाता है और इन स्नायुओंके संकोचनसे दोनों नेत्र दाहिनी ओरको घूम जाते है। और प्रतिमाकी देहमानकी अवस्थामे बढती प्रवृत्ति होकर वह दृष्टिस्थानकी केन्द्र की ओरको जाती रहती है और ज्यादहसे ज्यादह तीव्रता पैदा होने के बाद प्रतिमाके चलन का उत्तेजन रुक जाता है। यदि प्रतिमाका चलन दृष्टिस्थानके दूसरी ओरकी परिधिकी ओरको होता रहे तो उसकी क्रमशः अवनति होकर व्युत्क्रम व्यूहसे आखिरमें व्युत्क्रम चलन उत्तेजित होकर प्रतिमा दृष्टिस्थान केन्द्रकी ओर वापिस लौट जाती है। इसी तौरसे **हिलते पदार्थकी प्रतिमा** दृष्टिस्थान केन्द्रके पार जानेके बाद व्युत्क्रम चलन होकर नेत्र, पदार्थके पीछे पीछे जाते है। ख्यालमें रखे कि दृष्टिपटल का परिधि भाग चलनकी पसंदगी के लिये अनुकूल शील है और यदि प्रकाशकिरणें उस भाग पर गिरे तो फौरन दृष्टिस्थान केन्द्र उस ओरको घूम जाता है। यदि दृष्टिस्थानकी दृष्टि मामूलीसे कम हो तो नेत्रका स्थिरीकरण नहीं होगा और गैर हाजिर स्थैयबिन्दु की ओर अनैच्छिक नेत्रकंप (निस्टागमस) दिखाई देता है, जैसे कि वह दुष्प्राप्य वस्तुको शोध रहा है।

संज्ञावाहक पथोंका चालक पथोंपर केन्द्राभिमुख होना अति महत्व की बात है। संज्ञावाहक पथोंके संगम का असली उद्देश यह होता है कि वे सामयिक या आम केन्द्र यानी (चालक) पथको मिलें जिसको दोनोसे उसका मेल होनेसे परस्परानुकूल व्यूह की पैदाईश हो। यह सामयिक या आम पथ अपनी तौरसे, उसके पासके दोहरे उद्गम की वजहसे और

उसके सहचरित चलनसे मध्य मस्तिष्क मे के नीचेकी चालक केन्द्रोंसे संहत होता है जिससे आखरी आम पथमे परिवर्तन होता है और जिसका कार्य नेत्रके व्यक्तिगत चालक स्नायु की तौरका होता है और जो मस्तिष्कके कैलकेरियन भाग की परिवर्तित प्रेरणाओंके तथा मस्तिष्क भाग की ऐच्छिक प्रेरणाओंके काम मे आता है इतनाही नहीं बल्कि श्रवणान्तर्पुट की परिवर्तित प्रेरणाओंके भी काम में आता है।

(ब) दो संज्ञावाहक दृश्योंके एकत्रीकरण का व्यूह

दृष्टिपटलोंके दो सहचरित बिन्दुओंकी संज्ञाओंके एकत्रीभवन संबंधमें कई कल्पनाओं की गई थीं। ऐतिहासिक तौरकी महत्व की कल्पनाओं तीन तरह की थीं इस संबंध का प्रकट प्रमाण शारीरशास्त्र संबंधीका है। **गैलन** (१३०-२७०) का मत ऐसा था कि दृष्टिरज्जुके मज्जातन्तुओंका दृष्टिरज्जु सधिमे एकत्रीकरण होनेसे संज्ञाओंका एकत्रीकरण होता था। इसके अलावा दूसरी मतप्रणाली-**पोर्टो** (१५९३) **गैसन्डी** (१६५८) **डुटुर** (१७४३) ऐसी थी कि यह संज्ञाओंका एकत्रीकरण नहीं होता बल्कि हर वक्त एक ही नेत्र देख सकता था। तीसरी कल्पना **केपलर पंडित** (१६११) की थी। उनकी कल्पनाकी नींव मानसिक प्रकारकी थी। इस कल्पनाके अनुसार द्विधा दर्शन संभवनीय था क्योंकि जिस स्थानपर दृक्-रेखाओं परस्पर मिलती है उसी स्थानपर पदार्थकी प्रतिमा दिखाई पडेगी। पहली कल्पनाको बादके पंडितोंसे ज्यादह मान्यता मिली; और जब सहचरित दृष्टिपटलके चाक्षुष पथोंका संबंध उसी ओरके पाश्चात्य खंडसे होनेसे दोनो दृष्टिपटलोंका संयुक्त संज्ञामंडल होता है ऐसा माना गया। **ओबर्ट, वर्थ, व्हेरआफ** आदि पंडितोंने माना की दो प्राथमिक संज्ञाओंके एकत्रीकरण के लिये एक ही केन्द्रकी जरूरत है।

आधुनिक पंडितोंको ये कल्पनाओं सम्मत नहीं हैं। जब दो पथोंका शारीरशास्त्रकी दृष्टिसे एक केन्द्रपर मिलन होगा उससे मिलन की जगहपर एक ही व्यूह होगा ऐसा सूचित होगा और इस मिलन का प्राकृतिक नतीजा ऐसा होगा कि दो संज्ञाओंका बीज गणित रूपी जोड या उनका प्रतिबंध होगा। इसके अलावा मालूम होगा कि दो स्वतंत्र और पूरी संज्ञाओं स्वतंत्र रीतिसे होती हैं और ऊपरके समतलमें इनका मानसिक तौरका एकत्रीकरण होता है जिससे भिन्न धर्मी प्रतीति पायी जाती है। पहले ही कहा है कि चाक्षुष पथोंकी शारीर शास्त्रीय एककेन्द्राभिमुखता का चलनक्रियासे संबंध है न कि संज्ञाओंसे संबंध है; इसका प्रमाण यह हो सकता है कि कंजे नेत्रमे नया सहचरित संबंध पैदा होता है।

द्विनेत्रीय दृष्टि की प्रतीति का धर्म है इस कल्पना का स्पष्टीकरण **शेरिंगटन** पडितके (१९०४) दोनों नेत्रोंपरके तिलमिलानेके प्रकाशके प्रयोगोंसे साबित होता है। इन्होंने एक इलमी और मिश्र प्रकारके उपकरणसे दोनो दृष्टिपटलके समन्वित बिन्दुओंपर अचूक तौरसे नियंत्रण किये हुए तिलमिलानेके प्रकाश को डाल कर एकत्रीकृत आवर्तन (फ्युजन फ्रिक्वेन्सी) के संबंधमें कुछ सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं।

इन प्रयोगोंसे निकाले हुए सिद्धांतोसे साफ मालूम होता है कि **संज्ञावाहक पूर्णता की अवस्थाके लिये समकालिक और स्वतंत्र तौरसे दो एकनेत्रीय घटक मेहनतसे बनते**

हैं: और इस तरहसे इनमें प्रभाव और स्पष्टता होती है जिसका सम्यक् दर्शन हो सकता है। **यदि दोनों संज्ञायें एक जैसी हो और सम्यक् दृष्टिसे अभिन्न जैसे भासमान होती हैं दोनों नेत्रोंका एकत्रित हुआ फल दोनों घटकोमेंके कौनसे ही एकसे भिन्न नहीं होता।**

यदि दोनों एकनेत्रीय संज्ञाओंमें कुछ भिन्नता हो यानी उनके धर्म में कुछ फर्क हो तो दोनों संज्ञाओंकी एक द्विनेत्रीय संज्ञा पैदा होती है वह दोनों संज्ञाओंके रूपके दरमियान के रूपकी होती है।

यदि दोनों एक नेत्रीय संज्ञामें अन्तर्दृष्टिसे बिलकुल भिन्न जैसी हो तो दोनों का एकत्रीकरण नहीं हो सकता और दोनों घटकोमेंका एक बलवान् और स्वतंत्र होकर दूसरेका दमन हो जाता है। एक प्रतीतिका दमन होना महत्व की बात होती है क्योंकि ऐसा न हो तो देहभान की अवस्थामे दो प्रतिमायें एक के ऊपर दूसरी गिरनेसे गडबड या मानसिक अस्तव्यस्तता पैदा होगी जैसी कि कंजे नेत्रकी होती है।

यदि असमान एक नेत्रीय घटको का प्राबल्य समप्रमाण का हो तो एकान्तरित कला (फेजेस) साधारणतया समप्रमाण की होती है; यह तालबद्ध फर्क पश्चात् प्रतिमाओंके उपपादित प्रभावसे होता होगा, जिससे दृष्टिपटल के कुछ क्षेत्रकी संज्ञाग्राहकता समसमान अंतरके ग्रहण के लिये कम होती है और भिन्न धर्मीय अंतरोंका विकास होना संभव होता है। लेकिन दोनों घटकोमेंसे एक घटक जोरदार प्रभाव का हो तो वह प्रभावशील स्वरूप का होता है इतना की दूसरेका दमन हो जाता है। यह प्राबल्य दो वजहसे पैदा होना संभव है: (१) एक नेत्रमें ज्यादह प्रकाशनसे या पूर्ण विकसित वक्रीभवन व्यूह के प्रभावसे संवेदन संस्कार ज्यादह तीव्रताके होंगे; या (२) उसपर ध्यान और दिलचस्पी की मानसिक बातोंका जान बुझकर केन्द्रीकरण होता होगा। पहलेकी वक्रीभवन व्यूह की फर्कोंकी बातसे कंजे नेत्रकी कई मिसीलोंमे एक प्रतिमाका जान बूझकर दमन होता है, और स्वाभाविक सरली-करण के अभावसे ऊपरी मज्जापथोका जरूरीके समय उपयोग नहीं किया जाता और इसी वजहसे अनुपयोगिक दृष्टिदौर्बल्य पैदा होता है (आम्ब्लोपिया एक्सअनापामिया)। और इसके विपरीत तालीमसे ऐसे नेत्रमें सुधार करना संभाव्य होता है। दूसरे तौरसे कंजी अवस्थामें जब दोनों नेत्र समबलकी प्रतिमाओका प्रदर्शन कर सकते हो तो समसमान कला-दशाकी तालबद्धता होगी जिससे वैकल्पिक कंजापन (आलटरनेटिव स्क्विन्ट) पैदा होगा और हर नेत्रमे काफी दृष्टि कायम रहेगी। दूसरी बात की वजहसे एक सीमा—रेखा—वाली प्रतिमा समतल की तुलनामें प्रभावशील होती है।

ख्यालमे रखें कि एकत्रीकरण केन्द्र का शारीर शास्त्रीय प्रमाण जैसे नहीं मिलता उसी तरह से सब पुरावा एकत्रीकरण शक्ति जन्मजात होती है इसके विरुद्ध है।

प्रकाशकी द्विनेत्रीय प्रतीति

फेकनर पंडितने (१८६०) पहले ही सूचित किया था कि चकाकीदार समतल एक **नेत्रसे** जितना तेजस्वी दिखाई देता है उतना दोनों नेत्रोंसे भी तेजस्वी मालूम होता **है, और यहि मुद्दा शेरिंगटन** के तिलमिलानेके प्रकाशके प्रयोगोंसे साबित हुआ है। जब

आकारकी द्विनेत्रीय प्रतीति

सीमा–रेखा–दर्शन यही दृष्टिकार्यका तत्व होता है, और इसी कारणसे आकार की प्रतीति खास दिलचस्पी की बात होती है। साधारणतया पहले कहे हुए सिद्धात इसपर भी लगा सकते हैं। यदि दो एकनेत्रीय प्रदर्शनमें किंचित भी फर्क हो तो ऐकिक प्रतीति पैदा होती है और जिसकी सीमा–रेखा–दोनो घटकोंके मध्यमान प्रमाण की होती है।

द्विनेत्रीय दृष्टिका–दर्शन–विकास (डेव्हेलपमेन्ट ऑफ बायनाक्युलर व्हिजन)

द्विनेत्रीय दृष्टि **जातिजनि**में देरसे पैदा होती है और मनुष्यवर्गमे यह जननके पश्चाद पायी जाती है। बालदशाकी पहली अवस्थामें स्थैर्यक परावर्तन क्रिया होती है जो क्षणिक रहती है जिससे यह बात स्पष्ट होती है कि दृष्टिस्थान का नैसर्गिक प्राधान्य होता है। लेकिन यह दोनो नेत्रोमे स्वतंत्र होता है और बालक ५ या ६ सप्ताह के बाद प्रकाश पर दोनो नेत्रोको स्थिर कर लगा–सकता है। उसके पश्चाद एकत्रीकरण की शक्ति का विकास इतना कमजोर होता है कि जल्द ही दोनो नेत्र बार बार समानान्तर की अवस्थामे वापिस जाते हैं और उनका क्षुद्र सबब से च्यवन होता है; लेकिन ५ या ७ महिनेके समयमें नेत्रोंमे स्थिरीकरण कायम रहता है। यदि इस समय नजर कायम रखके नेत्रके सामने त्रिपार्श्व रखा जाय तो नेत्र त्रिपार्श्वके सिरेकी तरफ घूम जायेगा जिससे कल्पना हो सकती है कि द्विनेत्रीय दर्शन की कोशिश की जाती है। उम्रके एक सालके बाद द्विनेत्रीय दृष्टि कायम रखनेकी कोशिश की जाती है और इसमे सुफलता न मिली तो द्विधा दर्शन पैदा होता है। द्विनेत्रीय प्रतीति की शक्ति की पैदाईशमे परिवर्तक पथोका सरलीकरण होता है और यह पहले की नीव पर तालीमसे पैदा होती है और इसी वजहसे भिन्न भिन्न लोगोमें चकाकी,रंग या सीमा–रेखा की कल्पनामे फर्क दिखाई पडते है। सत्य एकत्रीकरण और समकालिक प्रतीतिमे फर्क होता है दूसरेमे दो प्रतिमाओं, जिनमे पारस्परिक गडबड नहीं होती, उनमे फर्क हुवे वगैर एक के ऊपर दूसरी ऐसी लेकिन समन्वित बिन्दुओपर गिरती है, लेकिन पहली अवस्थामे प्रतीतिका संयोगी करण होकर नये गुणधर्म पैदा होते है जो प्रतिमाका स्थानिक संबंध में फर्क होनेसे भी कायम-कुछ मर्यादा तक रह सकते है।

चाक्षुष प्रभुत्व (आक्युलर डामिनन्स)

यद्यपि द्विनेत्रीय दृष्टिमें दोनों नेत्र एक केन्द्रस्थित, भाल लोचन जैसे, कार्य करते है तोभी कई लोगोमे दोनो नेत्रके बदले एकही नेत्रपर अवलम्बित रहनेकी आदत होती है। दोनोंमेंसे एक नेत्र **नियंत्रक** नेत्र जैसा (मास्टर आय) कार्य करता है। जब दोनो नेत्रों में की दृष्टि विकृत अवस्था, वक्रीभवन दोष, कंजापन जैसी अवस्थामे असम होती है तब अच्छा नेत्र को प्रभुत्व पाया जाता है। लेकिन दोनों नेत्रोंकी दृक्शक्ति साधारण समता की हो तो एक नेत्रमें प्रभुत्व नहीं दिखाई देता। लेकिन योग्य कसौटी के इस्तेमालसे नेत्रके प्रभुत्व की आदत की खोज कर सकते हैं।

नियंत्रक नेत्रके चाक्षुष प्रभुत्व की खोज करने की कसौटीया तीन तरह की होती हैं। (१) **कार्यशक्तिकी तुलना की कसौटी** : (अ) रंगीन या निरंग क्षेत्र की सापेक्ष **चकाकी की तुलना की कसौटी** : (ब) **प्राकृतिक द्विधादर्शन की कसौटी**। इन कसौटीयोंका

दोष यह होता है कि ये सब आत्मनिरीक्षण के तौरकी होती हैं और रोगी जो कुछ कहेगा उन बातोंपर परीक्षक को अवलम्बित रहना जरूरी होता है। (२) **स्नायुओंकी समतुलित अवस्था या चलन की कसौटी**—ये भी अनिश्चित रूप की होती है (अ) वामदृष्टि (हिटरोफोरिया) मे दोनों नेत्र जब एक पदार्थपर स्थिर होते हैं तब एक नेत्र को ढाकनेसे ढके हुए नेत्रमे कोनसे ही एक दिशामें च्यवन होता है। जिस नेत्रमे ढाकनेसे च्यवन कम दिखाई देता है वह नेत्र नियंत्रक नेत्र समझना; (ब) दृक् क्षेत्रमेंके स्थैर्य बिन्दुपर दोनो केन्द्रित होते हैं तब स्थैर्यबिन्दुको उनके नजदीक ले जाकर उसको नेदिस्ट बिन्दुके पार ले जानेसे यदि एक नेत्रमें च्यवन होता है और दूसरा नेत्र स्थैर्य बिन्दुपर स्थिर रहा हो तो दूसरे नेत्रको नियंत्रक नेत्र और पहले च्यवन होनेवाले नेत्रको दुय्यम नेत्र समझना। (३) एक नेत्रीय दर्शन की कसौटी भी होती है। इनके सिवा अलाईनमेंट कसौटी और **पारसन** की मोनापटास्कोप की कसौटीका इस्तेमाल करते है।

चाक्षुष प्रभुत्व का महत्व जाना नहीं गया है। द्विनेत्रीय दृष्टि ऐकिक प्रतीति होती है। दाहिने या बांये हाथसे काम करनेवाले लोक एक ही हाथ का सतत उपयोग करते हैं। लेकिन नेत्रोंकी बात भिन्न होती है, क्योंकि द्विनेत्रीय दृष्टि ऐकिक प्रतीति होती है। जब मनुष्य नयनगोचर प्रदेश देखता है तब उस प्रदेश का कुछ भाग दोनों नेत्रो को ज्ञात नहीं होता; और प्रदेश का कोनसा भाग कोनसे नेत्रको दिखाई पडता है यह बात उसको एक नेत्र को बंद किये विना कहना मुष्किल होता है। लेकिन निरीक्षण से मालूम होता है कि ९८ % लोक एक नेत्र का उपयोग ज्यादह करते हैं। दाहिने नेत्रका प्रभुत्व दाहिने हाथसे काम करनेवालों में दिखाई देता है यह बात सत्य नहीं है। प्रौढ अवस्थामें दाहिने नेत्रका प्रभुत्व ६४ % और बाये नेत्रका प्रभुत्व ३४ % मे दिखाई देता है। लेकिन दाहिने हाथसे ही काम करनेवाले लोगोंमें बाये नेत्रका प्रभुत्व ३३ % दिखाई पडता है।

अवकाश या क्षेत्र की प्रतीति (दी परसेपशन ऑफ स्पेस)

अवकाश या क्षेत्रकी प्रतीति और उसमेंके पदार्थोका स्थान निश्चित है यह आत्मीय धर्म के स्वरूप का कार्य होता है जिसको प्रथमतः शरीरके भुजयुग्मों से संबंध जोडा जाता है; यह इन्द्रिय शक्ति परस्पराकर्षण मूल की होती है और शरीर (मूलारंभी) की विशिष्ट अवस्था (स्थान आसन) जाननेके व्यूह पर रची हुई होती है। यह व्यूह प्रारंभिक तौरका होता है। बनस्पतिओका जमीन की ओर झुकने (जीओट्रापिझम) से यह बात स्पष्ट होती है। निर्देशन की अक्षेरषा मुकर्रर होनेसे अवकाश या क्षेत्र की निशानी अनेक पद्धतियोंसे, जिसमें ज्ञानेन्द्रियोंका कुछ हिस्सा होता है, होती है। विकासकी अवस्थामे पहले पहले स्पर्शेन्द्रिय से यह निशाणी करनेका काम शुरू हुआ, और ख्यालमें लेना कि इस इन्द्रिय की शक्ति कायम रहनेसे अंधियारेमें या अंधत्वमे अन्य इन्द्रियोंके सिवा इसीका इस्तेमाल किया जाता है। घ्राणेन्द्रिय और किरण विसर्जनकी शक्ति जाननेवाले दृगिन्द्रिय और प्रक्षेपण कार्य से प्राणिकी प्रतीति की मर्यादा बढ गयी। दृश्यपट क्षेत्र के विस्तार की अवस्थामें पहले अवकाश की प्रतीति द्विसीमाकित थी और जिसमें समतल मे पदार्थोंका स्थान निर्देश हो सकता था। **व्हान क्राईज** के मतानुसार यह अवस्था मानवोत्पत्ति मे दिखाई पडती है और मनुष्यके

बालिग दशामें (प्रौढावस्थामे) यौवनावस्थामें एक नेत्रकी तीसरी सीमा जाननेकी शक्ति अनुभवसे पैदा हुई बाह्य बातोंपर अवम्लबित रहती है लेकिन यह अचूक तौरकी नहीं होती। विकास की इससे बढकर अवस्थामे जब मिश्र नमूनोंओका विश्लेपण (पृथक्करण) करनेकी और उनपर निर्णय लेनेकी शक्तिका विकास होनेसे और असलमें द्विनेत्रीय दृष्टि का विकास होनेसे त्रि सीमा विस्तार की प्रतीति होती है।

तत्वज्ञान की विधायक पद्धति या दर्शन का जिसमे अवकाश या क्षेत्रसंबंधी की अपनी कल्पनाओंकी व्याख्या की जाती है आधुनिक कालमे **जे.कान्ट के** समयमें १७८७ शुरू हुआ । इन्होने अवकाश का प्रत्यक्ष ज्ञान का प्रागनुभव-मनस्सम्भव स्वभावका (एप्रायोरीमे) सिद्धात निकाला। अवकाश की ऐकिक तथा न बदलेनेवाले तत्व जैसी कल्पना अपने मानसिक कक्षा जिसके मानसिक तत्व भाग थे और जो **समय** की कल्पना जैसी अपने को पहलेसेही प्राप्त थी। इस स्वयंभूत्व वाद (नेटिव्हिस्ट व्ह्यु) का अवलंबन बहुतसे विचारवान् लोगों ने किया लेकिन अवकाश के खास आकार का गुणग्रहण किस रीतिसे होता है इसका पता नहीं लगाया गया। इसी वजहसे इस संबंधमें और दो कल्पना-ओंका योग हुआ—**जोहान्स मूलर** का (१८२६) **खास शक्ति** का सिद्धान्त और **लोटझ** का (१८५२) स्थानिक लक्षणोंका(लोकल साइन्स)सिद्धान्त। पहले सिद्धान्तसे नैसर्गिक और अनिश्चित तौरके गुणके मज्जातन्तुओंके उत्तेजनके नतीजोंसे अवकाश की कुछ प्रतीति पैदा हुई; और दूसरे सिद्धान्तसे संज्ञाओंका जो एक ही तरहकी मज्जातन्तुओसे पायी जाती है, जो समान जैसी दिखाई देती है, पारस्परिकसे अवकलन होता है और यह कार्य स्वाभाविक लेकिन विश्ले-षण करनेके नालायक व्यूहसे जिस जगहमे वे पैदा होते है उसके अनुसार होता है। इन अंगीकृत कल्पना पर **पानमने** (१८५९–६१) **स्वयंभूत्व वाद** (नेटिव्हिस्ट थिअरी) निकाला और **हेअरिंग** पंडितने (१८६१–९९ उस का प्रसार किया।

इसके विरुद्ध कल्पना का भी प्रसार हुआ जिसकी मध्यवर्ती कल्पना ऐसी थी कि अवकाश का ज्ञान अनुभवसे पैदा होता है। इस **अनुभव** वाद का प्रचार **नागेल, वुनडट** और **हेल्महोल्टझने** किया। **हेअरिंगका स्वयंभूत्व** वाद और हेल्महोल्टझका **अनुभव वाद** इन दोनो के प्रसारसे इन्द्रिय विज्ञानशास्त्रवेत्तो और मानस विज्ञानशास्त्र वेत्तोके दो विरोधी वर्ग हो गये है। पहला वर्ग जन्मजात बातोंको और दूसरा वर्ग अनुभवजन्य बातों को महत्व देता है। इस घटनाका विचार करे तो दोनो कल्पनाओंको बौद्धिक व्याख्या कामकी लागू होती है। अपनी अवकाश की कल्पनाका प्रारंभ और उसकी रचना प्रत्यक्ष ज्ञान पर होती है। लेकिन यह नींव की जमीन संस्कार ग्रहणशील होती है और उसके ऊपर जो रचना की जाती है उसका निर्णय अनुभवजन्य ज्ञानसे होता है । दोनों कल्पनाओंका अचूक **निवेदन** करनेका स्थान मुकर्रर करना मुश्किल बात है और यह वैयक्तिक कल्पना पर अवलम्बित रहती है;लेकिन अनुभव वादसे ज्यादह सयुक्तिक विश्लेषण के लिये काफी उत्तेजन मिलता है इस बात का इनकार नहीं कर सकते।

अवकाश की प्रतीतिका विचार तीन सतलोंमे कर सकते है:—

(अ) द्वि. सीमा मर्यादित १ स्थिति—दिशाकी प्रतीति (अवकाशमेंका प्रक्षेपण)
२ विस्तार—अन्तरकी द्विसीमांकित प्रतीति

(ब) त्रि. सीमा मर्यादित १ स्थिति—गहनताकी प्रतीति (घनतादर्शक दृष्टि)
२ विस्तार—आकार की प्रतीति

(क) अवकाशमेंकी स्थितिका फर्क—चलन–गति की प्रतीति

दिशाकी प्रतीति (अवकाशमे प्रक्षेपण)

अवकाशमे किसी पदार्थका प्रक्षेपण करनेकी शक्ति चाक्षुष और आसन के घटकोसे बने हुए दोहरे व्यूह पर रची हुई होती है। नेत्रोके संबंधमे पदार्थका प्रक्षेपण और दृष्टिपटलपर उसके प्रक्षेपणका आसन के व्यूहसे जिससे नेत्र, गर्दन और श्रवण संपुट की स्नायुओके संस्कारोंका संश्लेषण होता है, परस्पराकर्पण शक्ति की वजहसे स्थान–दिशा निर्णय होता है। पदार्थके स्थानका निर्णय ज्ञान यह मिश्र संश्लेपण की क्रिया होती है जिसमें निम्नलिखित बाते प्रधान होती हैं।

(अ) चाक्षुप (१) एक नेत्र की दृष्टि; (२) द्विनेत्र दृष्टि

(ब) अंगस्थिति या आसन की बातें (१) सिरके संबंधसे नेत्रोका चलन (२) सिर का शरीरके संबंध से चलनः (३) शरीर का पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षणसे संबंध। जब सिर और शरीर खडी रेखामें होते हैं और नेत्र प्राथमिक अवस्थामे होते हैं जब दोनों व्यूहोंके वैयक्तिक कार्यको अलग कर सकते हैं; इस हालत मे स्थान निर्णय की शक्ति असलमें चाक्षुष रूप की होती है।

चाक्षुषव्यूह

एकनेत्रीय प्रक्षेपण : अवकाशमें प्रक्षेपण करनेकी नेत्रकी शक्ति नैसर्गिक होती है; इनका एक सबूत यह होता है कि अन्डेसे बाहर निकला हुआ मुरगीका बचा फौरन दानेकी ओर अचूक चोंच मारता है, और जो जन्मजात अंधे होते हैं उनको फिर दृष्टि पैदा होनेसे उनमें अचूक दिखाई देनेवाली स्थान निर्णयकी शक्ति यह और एक प्रमाण है। ख्यालमे रखें कि स्थाननिर्णय की अचूकता पहले पहल संदिग्ध रूप की होती है।

संज्ञाका विशेषत्व, जिससे एक संज्ञाग्राहक घटक की चेतनाके सूक्ष्मभेद दूसरे संज्ञाग्राहक घटक की चेतनाके सूक्ष्मभेदसे जाने जाते हैं उसको **संज्ञानुभव विशिष्ट लक्षण** (लोकल साईन) ऐसा **लाट्झ पंडितने** (१८५२) नाम दिया। यह लक्षण प्रारंभिक रूपका है और स्पर्श संज्ञासे चाक्षुष संज्ञामें जन्मजात पैदा होता है। और यह उत्क्रान्तिमें आम सावधानी या चेतनाकी अलग अलग जाननेकी संज्ञा **व्यवसायात्मिक बुद्धि** (डिसक्रिटिक सेन्स) का क्रमिक गतिके गुणोमे रूपान्तर (एपिक्रिटिक अट्रीब्यूट्स) होनेके समय पैदा होता है (पन्हा देखिये ५८३)। शरीरके अन्य घटकोंके समान दृष्टिपटलके हर घटकोंका संज्ञानुभव विशिष्ट लक्षण होता है। चाक्षुष व्यूहके दृष्टिस्थानमें का असली संज्ञानुभव विशिष्ट लक्षण होता है। हर नेत्रका विचार करनेसे निर्देशन का प्राथमिक स्थान दृष्टिस्थान होता है और उसपर बनी हुई प्रतिमा दृक्क्षेत्रमेंकी स्थैर्य रेषा पर (फिक्सेशन लाईन) जो नेत्रकी पात बिन्दुमेसे बाहर जाती है प्रक्षेपित होती है। दृष्टिस्थानको केन्द्र समझकर उसमेंसे जानेवाले आडे और खड़े समतलसे वाह्य अवकाश का विभाजन होता है जिन पदार्थोंकी प्रतिमा दृष्टिपटलके इस केन्द्र से बाहर गिरती है उनका

प्रक्षेपण ऊपर नीचे, दाहिने या बाये ओरको दृष्टिपटलके नीचे ऊपर बाये, दाहिने स्थानके अनुसार बनता है।

द्विनेत्रीय प्रक्षेपणः—द्विनेत्रीय दृष्टिमें, हर दृष्टिपटलमे समन्वित बिन्दु होनेसे उनकी संज्ञाओं ऐकिक जैसी जानी जाती हैं और यह अधिकार जन्मजात और परंपरागत होनेसे दोनो नेत्रो का भाल नेत्र जैसे कार्य होता है। दोनों नेत्रो की संज्ञाओंके संस्कार इस काल्पिनिक नेत्र के सुपुर्द किये जाते हैं और दोनों घटकोंके संश्लेषणसे एक घटक हो जाता है जिससे अवकाशमे के पदार्थोंका प्रक्षेपण इस काल्पनिक दिशाके केन्द्रसे निकलनेवाली रेषाकी दिशामे होता है। दिशाका केन्द्र लेकिन दोनों नेत्रोंके पात बिन्दुओंके ठीक बीचमें नहीं होता; उसका स्थान पीछेकी ओरको सिरके पार्श्वीय चलन के केन्द्रमें या उसके नजदीक होता है; यह स्थान केन्द्र के बाहर नियंत्रक नेत्रकी ओर होता है।

अंगस्थिति या आसन का व्यूह (धी पोस्टरल मेक्यानिझम)

नेत्रके बाह्य चालक स्नायुओंमें मज्जातन्तुओंकी भरती ज्यादह प्रमाणमे होनेसे और

चित्र नं. ३२६
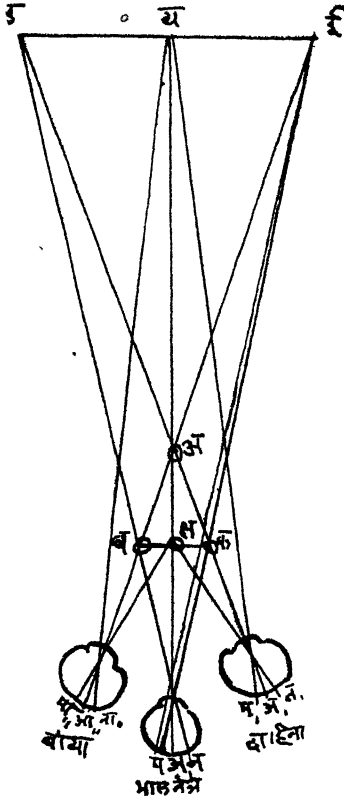
प्रक्षेपण के व्यूह का तंत्र चित्र-नं. ३२६ से ध्यानमें आयेगा : अ बिन्दुपर नजर स्थिर की जाय तो दोनों अक्ष रेषाओं आआ औ अ आ अ में एकत्रित होती हैं। इससे अनुमान कर सकते है कि आअ,और औअ पर के सब बिन्दु मध्य रेषा अ आ पर रहेंगे। यानी ब और क बिन्दु दोनों नेत्रोंसे क्ष स्थान पर और ड और ई य स्थानपर दीखेंगे। यदि ब क्ष स्थानमे दिखाई पडे तो क्ष स्थानमेंका प्रत्यक्ष पदार्थका बाये नेत्रसे प्रक्षेपण मा स्थानसे होता है ऐसा भास होगा यानी चाक्षुष अक्षकी दिशाके दाहिने ओरको औ अ के १०° (ऐसा समझो) होगा। लेकिन औ अ आअ की जैसी होनेसे भाल नेत्रसे उसका प्रक्षेपण क बिन्दुको यानी उसकी अक्ष रेषा की दाहिनो ओरको १०° होगा।इसी तौरसे क्ष की प्रतिमा दाहिने नेत्रसे ब बिन्दु को होगी यानी एकही पदार्थ का दृक्क्षेत्रमें दो बिन्दुओं में प्रक्षेपण होनेसे व्यस्त द्विधा दर्शन होगा। इसी तौरसे स्थैर्य बिन्दुके उस पारके य बिन्दु का अव्यस्त द्विधा दर्शन होगा।

इनका मध्यमस्तिष्कमें के अंगस्थिति या आसनदर्शक के केन्द्रों से संयोग होनेसे दिशाकी प्रतीतिमें इन स्नायुओंका महत्व का कार्यभाग है ऐसा मान सकते है। इन स्नायुओंसे

पदार्थोंका चाक्षुष यानी दृष्टिपटलसे प्रक्षेपणों का सिर के संबंधी तल के समकक्षों को निर्देशन किया जाता है। जब शरीरका सिर और नीचेका भाग खडा होता है लेकिन नेत्र अपने प्राथमिक स्थानसे घूमते है, ऐसी हालतमें प्रतीति की क्रियाओंके संचयमे इन स्नायुओंके कार्यका अनुमान कर सकते है। इसमे उनकी अंगस्थिति के तनाव के असरसे सुधारा हो सकता है जिससे, नेत्र कैसा भी घूमा हो उसको स्थिर समझके चाक्षुष प्रक्षेपणका खुलासा हो सकता है। यानी प्रतिमाके झुकाव का प्रतिकार करनेके लिये नेत्रगोलकके ऐंठण के प्रमाण से ज्ञान होता है; यद्यपि प्रतिमा दृष्टिस्थानपर होती है वह स्नायुओंका समतुलित स्थानके अंतरके प्रमाणमें कितनी बाजूकी ओरको होती है इस समझके सुधारका ज्ञान स्नायुशक्तिसे होता है।

इसी तौरसे सिरके चलनके बदनपर होनेवाले परिणाम का, या कुल शरीरमेंके स्थानके अंतरोंके परिणामका गर्दन और श्रवण संपुट के स्नायुओंकी आद्य समग्राहकता की प्रेरणाओंसे सुधार होता है। यदि सिर झुका हुआ हो और नेत्र संतुलित अवस्थामें रहे हो तो भी दृष्टिपटलकी प्रतिमा झुकी होनी चाहिये। तत्रापि खड़ी रेषा खड़ी अक्षरेखामें ही जाती है ऐसा ज्ञान होता है। इन चलनोंको विरोध करनेके लिये नेत्रके प्रत्यक्ष परावर्तित प्रतिकारक चलन के बदले (ऐक्च्युअल रिफ्लेक्स कापेनसेटरी मूव्हमेंट) प्रतीतिकी सहचरित क्रिया होती है जिससे दिशा संबंधी चाक्षुष संज्ञामेंके सुधारको परस्पराकर्षण आधार के हवाले किया जाता है। इन सब शक्तीओंका नक्की नतीजा यह होता है कि चाक्षुष और अंगस्थितिके प्रक्षेपण के मिलाप इसी तौरसे परस्परसे प्रतिकारक क्रिया करते है कि सिर और शरीर की सब अवस्थाओंमें दृष्टिपटल पर की प्रतिमाके सब स्थानोंके लिये एक स्थिर पदार्थका, जिसपर दृष्टि रोकी होती है, दृश्य नेत्रोंको बिलकुल न घुमानेसे होनेवाले दृश्य जैसा ही होगा और जिसका अवकाशमेंके परस्पराकर्षण आधार के (भूज रेषाको) निर्णायकाक्षसे संबंध होता है। अंगस्थिति के प्रक्षेपणसे अपनेको दृष्टि रोके हुए पदार्थ का अपने संबंधसे स्थाननिर्णय का ज्ञान होता है; इससे इस बिन्दुकी **आत्मगत स्थाननिर्णयता** (सबजेकटिव्ह आरिएनटेशन) होती है। इसके अलावा चाक्षुप प्रक्षेपणसे पदार्थोंकी सापेक्षता का ज्ञान होता है; यानी इससे **वस्तुविषयक स्थाननिर्णय** होता है, और इसका पहलेसे मिलाप होनेसे दृक्क्षेत्रमेंके सब पदार्थोंका आत्मगत स्थाननिर्णय निश्चित तौरसे होता है।

अवकाशमें के चाक्षुप प्रक्षेपण की अचूकता ज्यादह होती है। प्रक्षेपण का नियमन भालनेत्रके दृष्टिस्थान से होनेसे क्षेत्रके परिधिभागके पदार्थोंको स्थाननिर्णयमें बहुत गलती होती हैं लेकिन याम्योत्तर वृत्त में दिशा का नाप बराबर हो सकता है। यदि अंगस्थिति की अवस्थामें गलती ज्यादह होती है। इसमे दृष्टि को बंद करनेसे स्थाननिर्णय बहुत कम दर्जेका यानी स्पर्शेन्द्रिय के जैसा होता है।

अन्तरकी प्रतीति (द्विसीमांकित–द्विसीमादार)

द्विसीमांकित अन्तर का निर्णय असलमें पदार्थके दो सिरेकी दिशा की प्रतीतिके फैलाव जैसा होता है; इसी वजहसे यह प्रतीतिं की क्रिया उन्ही तत्वोपर रची हुई होती है जिसका दृष्टिपटल और नेत्रगोलक के स्नायुओंके संस्कारोंसे निदर्शन होता है। इन दो घटकोमेंसे

पहला—दृष्टिपटल—ज्यादह महत्वका माना गया है यद्यपि दूसरेका भी असर ज्यादह होता है। **मनस्टरबर्ग** की शोधसे (१८८९) मालूम होता है कि इस संशोधनमे नेत्रगोलक के चलन का विचार यदि छोड दिया जाय और दृष्टिपटलकी प्रतिमाओके आकार परसे ही सिर्फ तुलना की जाय तो गलतियोका औसत प्रमाण साधारणतया दुगना यानी २·१ से ४·३% होता है। समग्ररूपसे विचार करें तो कह सकते है कि रेषाअें और कोण जिनका स्थान समान तौरका होता है और जो दृष्टिपटलके समान बिन्दुओसे मिलते होते है उनकी तुलना अचूक और जल्द हो सकती है, लेकिन असम पदार्थोंकी तुलनामें अनिश्चितता दिखाई पडती है।

समसमान अन्तरोंकी (फासलोंकी) तुलनामें **निर्णयकी अचूकता** ज्यादह पायी जाती है। इसका नाप अनेक संशोधकोंने मुकर्रर किया था, **वेबर** पंडित का मनोदैहिक-नियम (सायकोफिजिकल लॉ) यह इस तरहसे मान्य हुआ कि (पन्हा—देखिये) आकार (आयतन) के निर्णयकारक भेद कुल आकारके अनुपातमे होते है। भिन्न भिन्न संशोधकोंका गलतीका मध्यमान प्रमाण भिन्न भिन्न था। लेकिन वह तुलना करनेके लिये इस्तेमाल हुअी लंबाईका अपूर्णांक साधारणतया १/१०० के बराबर था। लेकिन ख्यालमें रखें कि आडे नापनेमें अचूकता खड़े नापने की अपेक्षा ज्यादह होती है। जब भिन्न भिन्न सीमाओंकी (यानी आड़ी की खड़ीसे) तुलना की जाती है तब चूक बढकर और ज्यादह तौरसें परिवर्तित होती है (**वुनडट १/५, हेल्महोल्टझ १/४०**)। इसी तौरसे असम अन्तरोंके—फासले की तुल-

चित्र नं. ३२७
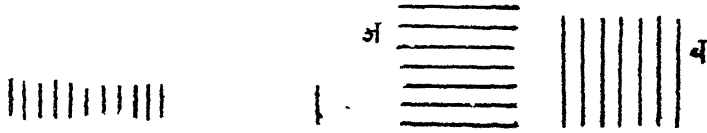
चित्र नं. ३२८
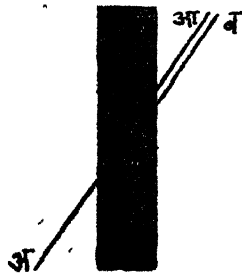
चित्र नं. ३२९
पेजेनडार्फका दृष्टिभ्रम
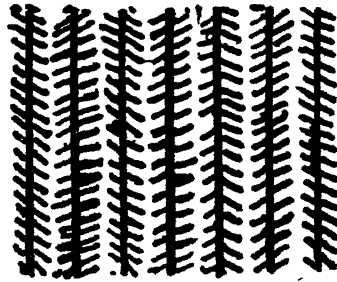
चित्र नं. ३३०
झोलेनरर्सका दृष्टिभ्रम।
खडी रेषाअें समानान्तर नही दिखाई देती

नामें ज्यादह बडी चूक दिखाई पडती है। खड़े फासलेमें आड़े फासलेकी अपेक्षा सीमा बडी होती है। इसके अलावा दो रेषाअें समानान्तर हैं या नहीं, या कोईभी रेषा सरल है या नहीं इस नापन का बराबर अन्दाजा कर सकते है; इसी तौरसे ,काटकोन का निर्णय भी

ठीक होता है, लेकिन सम आकारके कोण जिनकी बाजू समानान्तर नहीं होती उनकी कल्पना ठीक नहीं होती।

लेकिन सतत गलती होनेसे **दृष्टिभ्रम** पाये जाते है। खडी अक्षरेषाओंमें च्यवन का और क्षेत्रके परिधि भागमेकी सरल रेषा वक्र जैसी है ऐसा दृष्टिभ्रम होता है (**व्हान रेकलिंग हासन**)। खड़े फासले आड़े फासले की अपेक्षा ज्यादह लंबे हैं ऐसा भ्रम होता है, और हर नेत्र अपनी ओरके बाहरके फासले ज्यादह है ऐसा मानता है (**कुंडट**)।

चित्र नं. ३३१

मूलर लिअर का दृष्टिभ्रम

चि. नं. ३३२ **चि. नं. ३३३**
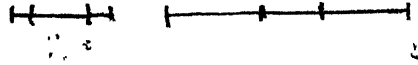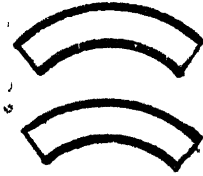
बाल्डविन का दृष्टिभ्रम **हाफलर** का दृष्टिभ्रम

हिस्सा किया हुआ फासला न भरे हुए अन्तरसे—फासलेसे बडा दिखाई देता है, (चित्र नं. ३२७) यदि दोनों फासले बराबरीके है बांये ओरका भाग ज्यादह लम्बा है ऐसा दृष्टिभ्रम होता है और चित्र नं. ३२८ यदि समभुज काटकोन चौकोन है अ ब से ज्यादह ऊंचा है ऐसा दृष्टिभ्रम होता है। इसी वजहसे सूक्ष्म कोण का प्रमाण ज्यादह और विशाल या स्थूल कोणका प्रमाण कम माना जाता है; और यही **पोजेनडार्फ** के दृष्टिभ्रमकी नींव होती है चित्र नं. ३२९ मे अआ के बदले अब सरल रेषा है ऐसा भ्रम होता है या चित्र नं. ३३०मे खडी रेषा समानान्तर भासमान नहीं होती। विपरीतता की बुद्धिसे आकार परिमाण बडे आकार परिमाण के सामने कमत्तर और छोटे आकार परिमाण के नजदीक बडे है ऐसा भ्रम होता है; चित्र नं. ३३१ मे दो रेषाओंके बीचके दो भाग बराबर नहीं, ऐसा भ्रम होता है या **बाल्डविनका** चित्र नं ३३२ बीचका बिन्दु छोटे वृत्त की अपेक्षा बडे वृत्त के नजदीक है ऐसा भ्रम होता है। इसी तरहसे वृत्तकी विपरीतता का भ्रम होता है चित्र नं. ३३३ दोनों आकृतियाँ समसमान नहीं, ऐसा भ्रम होता है। इसी तरहके और भी अनेक दृष्टिभ्रमोंका वर्णन किया गया है।

इन दृष्टिभ्रम संबंधी बयानोंकी अनेक भैतिक, प्राकृतिक और मानसिक तौरकी व्याख्याऐं दी गयी हैं। इसमें प्रकिरण (ईरेडिएशन) जैसी दुय्यम भौतिक बातों का महत्व या अप्रत्यक्ष दृष्टिमें अस्पष्ट प्रतीति ख्यालमें रखनी चाहिये। इन दृष्टिभ्रमों के स्पष्टीकरणमे अनेक संशोधकोंने नेत्रगोलकके चालक स्नायुओंका हिस्सा होता है ऐसा माना हैं; दृष्टिभ्रम की पैदाइशमें इसका हिस्सा होता होगा लेकिन यह बात जरूरी नहीं है इसका सबूत यह है

कि क्षणिक प्रकाशनमें और पश्चाद प्रतिमाओंमें यह दृष्टिभ्रम कायम रहता है। इसमें दृष्टिपटल के प्रक्षेपण का भाग होता होगा।

मानसिक बातोंका भी हिस्सा होता है क्योंकि पहले के अनुभव के अनुसार दिखाये हुए नमूने में सुधार किये जाते हैं।

गहराई की प्रतीति

गहराई की प्रतीति मिश्र संश्लेषणके तौरकी होती है जो परस्पर संबंधी बातोंपर अवलम्बित होती है। इसमें की कुछ बातें ऐसी होती हैं जो नेत्रके बाहरकी होती हैं और जो गत अनुभवसे पाये हुए निर्णय के स्वरूपकी होती है, इसलिये इन बातांको **बाहरकी बातें** ऐसा कह सकते हैं।और ये बातें एक नेत्रसे भी जान सकते है। दूसरा भाग अन्तर्विहित (इनाट्रिनझिक) बातोंका है जिनका संबंध प्रत्यक्ष नेत्रोंसे होता है। इनके दो वर्ग कर सकते हैं: एक वर्ग जिसमें नेत्रोंके अभियोजनसे पैदा होनेवाली कुछ प्रतीति की जरूरी बातें; और दूसरे वर्गमें दोनों नेत्रोंकी प्रतिमाओंके फर्कोंकी अव्यक्त मानसिक ज्ञान की बातें होती हैं। दोनों नेत्रोंकी एककेन्द्राभिमुखता के सिवा सब बातें एकनेत्रीय दृष्टिको लगा सकते हैं और ध्यानमें रखें कि दोनों नेत्रोंकी एककेन्द्राभिमुखता अन्य बातोंकी अपेक्षा ज्यादह यथार्थ अचूक होनेसे अति प्राधान्य की होती है और इससे अनुमान कर सकते है कि गहराईकी प्रतीति यह द्विनेत्री दृष्टिका प्रधान कार्य होता है। इस अवस्थाको **घनता चित्रदर्शन स्टेरिओस्कोपिक दृष्टि** कहते है। इन दो मानसिक क्रियाओंके दो वर्ग भेद कर सकते हैं; पहलेको **गहराईकी कल्पना** (कनसेपशन ऑफ डेफ्थ) और दूसरे को यानी **घनता दर्शक दृष्टि–गहराई की प्रतीति** (परसेपशन आफ डेफ्थ)। इसके प्रतीतिकी संश्लेषण की बातोंका सार निम्नलिखित जैसा कर सकते है:—

(अ) बाह्य बातें
- (अ) मानसिक बाते— १ क्षेत्रीय यथार्थदर्शन हवा. अवकाश मेंका दूर दृश्य(एरिअल परस्पेकटिव्ह)
  - २ प्रकाश और छायाका वितरण
  - ३ आकारोंका पारस्परिकसे ढांक जाना
  - ४ भूमितीय दूरदृश्य
  - ५ आकारकी व्याख्या
- (ब) वस्तुस्थल भेदाभासात्मक चलन (पैरालाकटिक मुव्हमेन्ट)

} एक नेत्रकी

(ब) अभियोजनकी बातें (एडजस्टमेंन्ट फैंकटर्स)
- १ दृक्संधान शक्तिके प्रयत्न
- २ एककेन्द्राभिमुखताके प्रयत्न

(क) अन्तर्विहित चाक्षुष बातें
- विभिन्न प्रतिमाओंका घनता चित्र दर्शक परिणाम

} द्वि नेत्रकी

(अ) बाह्य मानसिक बातें:—

हवामेंका दूरदृश्य:—(एरिअल परस्पेकटिव्ह क्षेत्रीय यथार्थ दर्शक) हवामेंका दूरदृश्य इसका अर्थ यह होता है कि नेत्र और पदार्थमें की हवा की तहोंकी कमप्रमाण की पारदर्शकता की वजहसे दूरीके पदार्थोंका रंग और उनके आकारोंकी दिखाई देनेवाली अस्पष्टता। इससे अनुमान कर सकते है कि जिन पदार्थोंका रंग और आकार स्पष्ट दिखाई पडते हैं वे नज़दीक और इसके विपरीत अवस्थामें के दूरीपर है।

पदार्थ परका प्रकाश और छायाके वितरण से पदार्थका आकार और घनता की समझ होती है वर्तुल का आकार उसपरसे प्रकाशका परिवर्तन होनेकी अवस्थासे जान सकते हैं। छाया ज्यादह महत्वकी होती है जिससे एकस्थानमेंके पदार्थकी छाया दूसरे स्थानमेंके पदार्थोंपर जिस तरहसे गिरती है उनके सापेक्ष स्थान का बोध होता है।

आकारोंका पारस्पारिकसे ढांक जाना भी महत्वकी बात होती है; क्योंकि जब एक पदार्थ दूसरेसे पूर्ण तया नहीं ढाका होता है तब यह अनुमान होता है कि वह उसके पीछेकी ओरको है।

भूमितीय यथार्थदर्शन दूरदृश्य ही महत्वकी बात होती है। समानान्तर रेषाएँ जैसे की रेलगाडीके रूल (लोहेकी सडक) दृक् रेपाकी ओर एककेन्द्रगामी होती है और समानान्तर समतल क्षितिज के समतलपर पारस्पारिक को काटते हैं।

आकारकी व्याख्या का अन्तरके अपने निर्णय पर असर होता है: पूर्व अनुभवसे पदार्थके आकार का ज्ञान होता है, इससे यह अनुमान निकाल सकते है कि पदार्थका आकार घटा हुआ ऐसा भासमान हो तो उसका अन्तर अपनेसे बढ गया है। यदि मनुष्य की प्रतिमाका अपने पातबिन्दुसे होनेवाला कोण छोटा हुआ हो तो वह मनुष्य अपनेसे दूरीपर है। इसके विपरीत अवस्था का भी बोध होता है।

वस्तुस्थल भेदाभासात्मक चलन (पैरालाक्स)

नेत्रोंको हिलानेसे पदार्थोंके पारस्परिक स्थानके चलन का भास होना यह बात गहराई की प्रतीतिमें महत्वकी समझनी चाहिये। जब बीचके समतलपर दृष्टि रखी हुई होती है तब उसके पारके पदार्थ जिस दिशामें निरीक्षक अपनेको हिलाता है उसी दिशामें वे पदार्थ हिलते हैं ऐसा भास होता है लेकिन बीचके समतल के इस पारके पदार्थ मनुष्यकी चलनकी दिशाकी विरूद्ध दिशामें हिलते है ऐसा भास होता है। इससे उनके पारस्परिक सापेक्ष स्थान का वर्णन अचूक होता है;क्यूं कि दृश्यक्षेत्रमेंके दृश्यबिन्दुके अन्तरके प्रमाणानुसार स्पष्ट कोणिक वेगमे (ऐंग्युलर व्हेलासिटि) होनेवाले फर्कोपरसे मनुष्यसे पदार्थके खास अन्तर की कल्पना हो सकती है। इस परसे अनुमान हो सकता है कि नेत्रको हिलानेसे भिन्न भिन्न प्रतिमायें, अर्थात भिन्न रूपकी, दिखाई देती है, और उनकी घनताका निर्णय, घनता चित्र दर्शन दृष्टि की नींव जैसा हो सकता है। लेकिन इसमें फर्क यह होता है कि एक नेत्रकी प्रतिमाका दूसरे नेत्रकी समकालिक प्रतिमाके बदले उसके पूर्वके संस्कार की स्मृति प्रतिमासे तुलना की जाती है। पंडित **हेल्महोल्टझ** के मतानुसार एक नेत्रवाले मनुष्योको घनताकी प्रतीति जो

दिखाई देती है उसकी वजह नेत्रके सततके अनैच्छिक चलनसे दृष्टिपटल परकी प्रतिमाओंके परिवर्तन रूपमें होती है। प्रासंगिक तौरसे विचार करें तो गहराई के ज्ञान की किसीभी एक बात की अचूकता जाँचनेके प्रयोगोंमें केवल स्थैर्य दृष्टि जरूरी होती है।

जल्दी दौडती जानेवाली रेल्वेकी गाडीमेंसे बाहरके तारके खंबोंको देखनेसे वे सामनेसे जल्दी जल्दी जाते हैं लेकिन वे पारस्परिक नजदीक होते हैं ऐसा भास होता है; यह वस्तुस्थल भेदाभासका उदाहरण होता है।

इन सब बातोंका असर, मनुष्यको प्राप्त होनेवाले अनुभव पर पूर्णतया अवलम्बित होता है और इस का कुल नतीजा यह होता है कि गहराई, अन्तर (फासला) और घनता का परिणाम पाया जाता है। ये सब बाते, वस्तुस्थल भेदाभासके सिवा, तसबीर खींचनेमें प्रकाश और छायाके फर्कोंसे चेहरा उठावदार करना, हवामें की दूरदृश्यता की अस्पष्टतासे दृक्गोचर प्रदेशोमे दूरी की कल्पनाका बोध करना या पार्श्वभूमिमें किसी ज्ञात वृक्ष, घर या मनुष्य को रखकर तुलना करनेके सामनेके पदार्थकी विपरीतता स्पष्ट करना ऐसे प्रकारोंमें अच्छी तरहसे स्पष्ट हो सकती है।

तथापि चित्रलेखन कितनाही उमदा हो गहराईका दृष्टिभ्रम पूरा नहीं होता क्योंकि इसमें घनता दर्शन की बात का अभाव होता है। और इस वजहसे दोनों नेत्रोंसे देखनेके बदले एक नेत्रसे चित्र देखनेसे वह ज्यादह असली दिखाई देता है क्योंकि इसमें मानसिक तौरसे घनतादर्शन परिणाम का अभाव होता है।

इन बातोकी अचूकता के प्रमाण का निर्णय करना मुश्किल होता है। किसी पदार्थको एक नेत्रसे देखनेसे होनेवाला संस्कार दोनों नेत्रोंके संस्कार जैसा ही होता है यदि स्नायुओंके व्यवस्थापनका विचार न किया जाय।

स्नायु व्यवस्थापनकी बातें

दिशा मुकर्रर करनेके लिये स्नायुओंके व्यवस्थापनकी जितनी जरूरी होती है उतनी अपनी गहराई की प्रतीतिमें भिन्न भिन्न फासले परके पदार्थोंपर दृष्टि स्थिर करनेके लिये स्नायुओंके व्यवस्थापन की जरूरी होती है यह बात सत्य है। लेकिन नेत्रके बाहर की या भीतरकी स्नायुका असर गहराईका स्थान निर्णय करनेमें जरूरी होता है यह मत मानना संभवनीय नहीं होता, क्योंकि स्नायुके कार्यकी अप्रकटित कालमर्यादा के प्रमाणमें पदार्थ प्रकाशित किया जाय तो वह फर्कोंसे दिखाई पडता है। इससे यह बात ध्यानमें आयेगी कि गहराई के संस्कारमें बाह्य स्नायुओंका असर, जिनसे नेत्रके चलनोंका नियमन होता है कम परिणाम होता है, और दृक्संधान व्यापार और एककेन्द्राभिमुखता के चलन का असर भी कम होता है।

जब नजदीक के पदार्थपर दृष्टि स्थिर होती है तब दृक्संधान व्यापारका प्रमाण दूरीके पदार्थ देखनेके लिये जितना जरूरी होता है उससे ज्यादह होता है, इस प्रयत्न का ज्ञानका गहराईकी संज्ञामें असर होता है, लेकिन वह बहुत कम होता है।

घनता दर्शक दृष्टि

दोनों नेत्रोंकी प्रतिमाओंमेंकी विभिन्नतासे, जो द्विनेत्रीय प्रक्षेपणसे पैदा होती है, कुछ मर्यादामें, गहराई जाननेकी अचूक तरह होती है। प्रतीति दो घटकोकी बनी है जो वस्तु-स्थल भेदाभाससे देखे हुए, और नेत्रमेंके स्थैर्यबिन्दुसे नजदीक बिन्दुओंकी प्रतिमाओंकी व्यस्त विभिन्नता और इस बिन्दुके पारके पदार्थोंकी अव्यस्त विभिन्नता इन बातोंके निर्णयो-पर रची हुई होती है। यानी गहराईकी प्रतीतिका विचार करे तो उसमें दो भिन्न क्रियायें होती हैः—क्षेत्रमेंके स्थैर्यबिन्दु का स्थाननिर्णय (होरापटरका समतल) जिनकी प्रतिमा समन्वित बिन्दुपर गिरती है, और इस समतलमेंके पदार्थोंके, जिनकी प्रतिमाअें विषम बिन्दुपर गिरती हैं, घनतादर्शक वस्तुस्थल भेदाभाससे स्थाननिर्णय होता है। इस दूसरी क्रियाका विचार अब करेंगे।

इस बातकी शक्ति और इसके कार्यका व्यूह इन दोनोंका पृथक्करण घनतादर्शक यंत्र (स्टिरियास्कोप) की सहायतासे कर सकते हैं; इसमें एक ही पदार्थके दो चित्र दिखाई पडते हैं जब उसको किंचित भिन्न रीतिसे देखें तो ये दो चित्र हर नेत्रसे अलग अलग देखनेके जैसे होते हैं (चित्र नं. ३३४)। इस यत्रम मैजिक लालटैन के दो समान आकृतिके बतलानेवाली कांच अ और ब स्थानपर रखी है ऐसा समझो, और यदि इनकी प्रतिमायें दृष्टिपटलके समन्वित बिन्दुपर गिरती हो तो दोनों की एक प्रतिमा **स्वस्तिक** स्थानपर दिखाई पडेगी। यदि अब दो पारदर्शक काचोको जिनपर मनुष्य की आकृति खींची है, अ और ब थानपर पहले की लालटेन कांच के सामने इस तरहसे रखे कि उन दोनों मनुष्योंकी आकृति उसी समन्वित बिन्दुपर ही गिरेगी तो उस मनुष्य की प्रतिमा स्वस्तिक के सामने पहलेकी प्रतिमाके सामने दिखाई पडेगी। अब मनुष्य की एक या दूसरी या दोनों आकृतियोंको थोडा मध्यरेषाकी ओरको सरकानेसे स्वस्तिक परकी मनुष्यकी आकृति स्वस्तिक के सामने निरीक्षक की ओरको चली गयी है ऐसा भास होगा। यदि उन आकृतियोंको मध्यरेषासे बाहरकी ओरको सरकावे तो मनुष्यकी आकृति निरीक्षकसे दूर स्वस्तिक के पीछे गयी है ऐसा भास होगा। कांच की चलन की गतिको बढानेसे मनुष्यकी आकृतिका सामने या पीछे की ओरके चलन का भास अदृश्य होकर मनुष्यकी दोनों आकृति स्वस्तिक के बाजूकी ओरको दिखाई पडेगी। अन्तमें मनुष्यकी दोनों आकृतियोंमेंसे एक को निकाल कर दूसरीको हलानेसे वह स्वस्तिक के बाजूकी ओर को जायेगी।
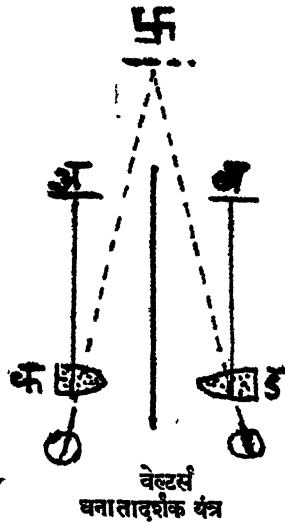
चित्र नं. ३३४

वेल्टर्स घनातादर्शक यंत्र

इससे यह शाबित होता है कि **घनतादर्शक दृष्टिके लिये किंचित असम दो प्रतिमा एकही समय चेतना—आंतर प्रतीति—या देहभान की अवस्थापर प्रक्षेपित होना जरूरी**

है। इससे मालूम होगा कि एक प्रतिमा का दमन करनेसे घनतादर्शक दृष्टिका लोप होता है और यह बात भी ध्यानमें आयेगी कि घनतादर्शक दृष्टि नहीं होगी यदि प्रतिमाअे समन्वित बिन्दुओपर गिरती हो, दोनों बिन्दुओंकी विषमताका प्रमाण जितना ज्यादह होगा उतना, कुछ मर्यादातक, आराम का असर मालूम होगा, उसके पश्चाद दोनो प्रतिमाओंकी छाप इतनी असम हो जाती है कि उनका प्रतीतिसे एकत्रीकरण नहीं होता : लेकिन फिर भी यह मर्यादा पार हो जानेके बाद दोनो छाप इतनी भिन्न होती है कि प्रतीतिकी क्रियाको उनको एकत्र करना संभव नहीं होता, उनका विश्लेषण होकर द्विधा दर्शन पैदा होता है और गहराई प्रतीतिका लोप हो जाता है। ख्यालमें रखनेकी असल बात यह होती है कि दोनों प्रतिमाअें दूरदूरके नहीं ऐसे बिन्दुओंपर गिरनी चाहिये। मसलन विद्युद स्फुलिंग को स्थैर्य बिन्दुके सामने या पीछे डालनेसे यह दोहरी दिखाई गी तो भी उसका अचूक स्थान निर्णय होगा।

घनतादर्शक दृष्टिकी अचूकता (द्विनेत्रीय तीव्रदृष्टि)

गहराई के गुणग्रहणमें मानसिक और स्नायुसंबंधी बातोंसे पैदा हुई अचूकताका ठीक प्रमाण मुकर्रर करना मुश्किल होता है, इसकी वजह यह होती है कि दोनोंको अलग अलग करनेमे खतरा पैदा होता है। और भिन्न भिन्न व्यक्तिओंमे फर्क दिखाई पडते हैं। लेकिन घनतादर्शक दृष्टिकी बात का शास्त्रीय संशोधन करना आसान होता है लेकिन उसके लिये खास तौरकी व्यवस्था जरूरी होती है जो ठीक तौरसे नहीं हो सकती क्योंकि जिसमे दृक्-संधान व्यापार और नेत्रोंकी एककेन्द्राभिमुखता, दृष्टिपटल की प्रतिमाओंका हिलना,फासले के प्रमाणसे आकारमें फर्क होना आदि बातोंका असर दूर करना आसान नहीं होता। **घनतादर्शक दृष्टिकी अचूकताका निर्णय, गहराईके सूक्ष्मभेदोसे जिनका पृथकरण होता है और जिनका वस्तुस्थल भेदाभासके कमसेकम फर्कोंसे नापन होता है, कर सकते हैं।**

इसके नापन की आम पद्धति ऐसी होती है कि दो स्थिर पदार्थोंके बीचके समतलमें रखे हुअे एक पदार्थ (धागा जैसा) की सापेक्ष गहराई का प्रमाण निश्चित करना, या वैकल्पिक तौरसे दोनो पदार्थोंके बीचमेका पदार्थ यांत्रिक साधनसे दोनोके समतलमे रखने की कोशिश करना। और भी एक दो पद्धतियाँ होती है। द्विनेत्रीय दृष्टि की तीव्रताका औसत प्रमाण २ सैकन्द माना है।

क्षणिक प्रदीपनसे यद्यपि आरामका अनुभव होना संभव है लेकिन ख्यालमें रखें कि उसकी अचूकताका प्रमाण बहुतही कम होता है। पंडित **लैंगलान्डस** की शोधसे (१९२९) मालूम हुआ है कि १।१५०००० सैकन्द की वैद्युत स्फुलिंगसे (स्पार्क) से यानी सूक्ष्मतम समय के प्रकाशनसे द्विनेत्रीय दृष्टिकी तीव्रताका प्रारंभिक प्रमाण अभ्याससे १० सेकन्द इतना हो सकता है। दिलचस्पी की बात यह होती है कि अपनेको पदार्थका स्थाननिर्णय, उसके आकार का ज्ञान न होते ही,करना संभव है। प्रदीपन की कालमर्यादा क्षणिक समयसे बढानेसे ०·१ सेकन्द तक द्विनेत्रीय दृष्टि की तीव्रतामें कुछ फर्क नहीं होता, उसके पश्चाद यानी ०·१ सैकन्दसे ०·५ सेकन्द तक तीव्रता का प्रमाण जोरसे बढता है; प्रारंभिक प्रमाण ९ सेकन्दसे ४ सेकन्द इतना कम होता है; उसके बाद तीव्रता बढ़नेका प्रमाण मन्दगतिसे होता है और ४ सेकन्द की अवधिमें प्रारंभिक प्रमाण २·७ सेकन्द इतना दिखाई पडता है। ख्यालमे रखना कि जब कि सतत प्रदीपनमें यह प्रमाण २ सेकन्द इतना होता है। महत्वकी बात यह

होती है कि इस प्रमाणमेंके जल्द बढनेका प्रमाण नेत्रकी चलन की क्रियाके काललसे संगत होता है; इस बात परसे अनुमान कर सकते है कि यह सुधार इन बातोंके असरसे होता होगा। लेकिन यह असंभवनीय है कि इतने सूक्ष्म भेदीकरण स्नायुओंकी छाप की आद्यसमग्राहकता पर अवलम्बित होगी, और यह ज्यादह संभवनीय है कि नेत्रके व्यवस्थापनसे प्रतिमा दृष्टि-पटलकी कचीकारी पर घूमती होगी। कार्यक्षमता के इस बढाव की तरह ऐसी ही अवस्थामें की संज्ञाओंकी तरहसे बिलकुल भिन्न होती है। द्विनेत्रीय प्रतीति संज्ञाओंका संश्लेषण या जोड नही होता बल्कि इन कार्योंसे उसका कार्य बिलकुल भिन्न रूप का होता है।

घनतादर्शक दृष्टिका मर्यादा क्षेत्र

द्विनेत्रीय दृष्टि यह संज्ञाओमेंकी एक अचूक संज्ञा होते ही उसका मर्यादा क्षेत्र सापेक्षतासे बहुत छोटा होता है, क्योंकि दो सेकन्द की मर्यादा इतने छोटे कोणकी कार्यशक्तिकी नींव दोनों नेत्रोंमेंके फासले इतनी छोटी होती है। लेकिन दिलचस्पी की बात होती है कि घनता दर्शक दृष्टि कार्यक्षम होनेके लिये, यदि दोनों नेत्रोंको बहुत दूर तक अलग अलग करना संभव हो तो, उसका मर्यादा क्षेत्र अनिश्चिततासे विस्तृत करना संभव होता है। यदि उनको दस लाखसे ज्यादह फासले पर दूर करें तो तारा मंडलमेंके जैसे कि शनीके ताराका उसके उपग्रह के समवेत यथार्थ घनतादर्शक फोटो चित्र उतार ले सकते है; इसकी सादी तरकीब इस तर की होती है कि उसका एकरातको फोटो उतार कर दूसरी रातको उसी समय दूसरा फोटो उतारते हैं जिससे ताराओंको चलनसे यह यथार्थ अन्तर विस्तार पाया जाता है। इस तरकीबसे सौर्य मंडलके अवकाशोंका फोटो उतारना संभव होता है।

मिथ्या दृष्टिः—(स्युडो व्हिजन) यह दृष्टिभ्रम होता है जिससे घनतादर्शक दृष्टिका व्यवस्थापन करनेसे आम आकार उलटे दिखाई पडते है। यदि मानसिक असर अलग करना संभव हो तो तो नजदीक के पदार्थ दूर है और उन्नतोदर पदार्थ नतोदर है ऐसा मालूम होता है।

रंगीन घनतादर्शक दृष्टिः—**कौहलास्क** के संशोधनसे मालूम होता है कि सादे पार्श्वभूमि परके रंग उठावदार दिखाई देते हैं। यह दृश्य रंगोके अभिवर्धन के फर्कोंसे होता है; नेत्रोंमेंके मार्गोंसे नीले किरण लाल किरणोंकी अपेक्षा ज्यादह परिवर्तित होती है। उनके केन्द्र भिन्न भिन्न समतलपर बनते हैं (रंगोंका अपायन) इतनाही नहीं बल्कि दृक्रेषासे बने हुए उनके कोण भी भिन्न होते हैं। दोनो नेत्रोंके सामने उन्नतोदर शीशेका थोडे कनपटी के ओरको उनको पकडनेसे नीला रंग लालके सामने है ऐसा भास होता है,उनको थोडे नासिका की ओरको रखनेसे लाल रंग नीले के सामने दिखाई पडता है। जिन लोगोंमें उनकी कनीनिका कनपटी के ओरको केन्द्रच्युत होती उनको नीले रंगके सामने लाल रंग दिखाई पडता है, लेकिन कनीनिका नासिकाकी ओरको केन्द्रच्युत हो तो लालके सामने नीला रंग दिखाई पडता है। इसी तत्वपर **अनाग्लिपस** के दृश्य की नीव रची है। इसमे एक नेत्रके सामने लाल रंग की कांच और दूसरे नेत्र के सामने नीले रंग की कांच पकडनेसे सामनेके सादे चित्रमें घनतादर्शक दृश्य भासमान होता है। इसी तरकीबसे सामने के लोगोंके बडे जमाव को एक ही समय घनतादर्शक चित्र दिखाना संभव होता है।

घनतादर्शक दृष्टिसंबंधी कल्पनाऐं

घनतादर्शक दृष्टि स्नायुओंके चलन से होती है यह पुरानी कल्पना अब नापसंद है। यह दृष्टि दृष्टिपटलके विभिन्न बिन्दु उत्तेजित होनेसे पायी जाती है । विपरीत विभिन्नतासे पदार्थ दृश्यबिन्दुसे नजदीक है ऐसा भास होता है और अविपरीत विभिन्नतासे पदार्थ दृश्य बिन्दुसे दूर भासमान होते है। इस विभिन्नता की जानकारी जन्मजात से होती है या संपादित तौरकी होती है और यह ऐन्द्रिय तौरकी होती है या मानसिक तौरकी होती है इस संबंधमे पहलेके संशोधकों में एक मत नहीं था। हेअरिंग पंडित का मत जातिजनन मतवाले पंडितोको ज्यादह मान्य मालूम होता है। इस मत के अनुसार अवकाश की प्रतीतिकी नींव प्राकृतिक तौरसे दृष्टिपटल की विभिन्नता पर होती है जैसि की रंगदृष्टि दृष्टिपटल की प्राकृतिक क्रियाओंके अनुसार होती है। दृष्टिपटलके घटकोंमें रंगोके प्रमाण के तीन अवयवो जैसे अवकाश के भी तीन अलग अलग प्रमाण के अवयव होते हैं, जिनसे अनुक्रमसे ऊंचाई, गहराई और चौडाई की संज्ञा होती है,और जिनसे किसी बिन्दुका स्थाननिर्णय सापेक्षतासे स्थैर्यबिन्दुके अनुसार होता है। दो समन्वित बिन्दुओंके समसमान और एक दूसरे को काटनेवाले ऊंचाई और चौडाईके प्रमाण होते है जिससे सिर्फ गहराई जाननेकी बाकी रह जाती है। मध्यस्थित समतलसे समान लेकिन विपरीत दिशाके फासले परके बिन्दुओंके गहराई का प्रमाण समसमान होता है और चौडाईका प्रमाण विभिन्न होता है जिससे बाह्य बिन्दु स्थैर्यबिन्दु की दिशा की रेषापर उस फासले पर मालूम होता है जो विभिन्नताका प्रमाण और स्वरूप पर अवलम्बित होता है। लेकिन एक नेत्रीय दृष्टिके दृश्यसे दृष्टिपटलके आद्ये नासिकाके भागसे गहराईके घन प्रमाणका और कनपटीके भागसे गहराई के ऋवण प्रमाण का अस्तित्व शाबित नहीं होता। और इससे मालूम होना ज्यादह संभवनीय है कि जानकारी का व्यूह संज्ञाके ऊपरी समतल पर का होगा और यह असलमें प्रतीतिके समतल पर मिश्र एकत्रिकरण के रूपका होगा।

अवकाशमेंका स्थाननिर्णय

तात्कालिक वस्तुस्थल भेदाभासपर अवलम्बित रहनेवाली घनतादर्शक दृष्टि यह स्थैर्यबिन्दुके संबंधका सापेक्ष नापन होता है, लेकिन इससे स्थैर्यबिन्दुका खास स्थान अनिश्चित रहता है। आम तोरसे माना गया है कि इस बिन्दुका स्थाननिर्णय दृष्टिस्थानसे स्थैर्यबिन्दुको जानेवाली रेषाऐं पारस्परिकसे मिलकर जहा एक ओरसे दूसरी ओरको पार जाती है, नेत्रगोलक का स्नायुओंके चलनसे जो व्यवस्थापन होता है, और इसके लिये दृक्संधान शक्ती का जो कार्य होता है इन सब बातोपर अवलम्बित होता है। लेकिन पहले ही कहा है कि यह संशयास्पद है।

यह ध्यानमे आजायेगा कि यह स्थाननिर्णय इस सब बातोंका संमिश्र संश्लेषण के रूपका होता है, जिन बातोमे स्नायुओंके व्यवस्थापन के सिवा एकके बाद दूसरी जल्द जल्द होनेवाली वस्तुस्थल भेदाभ्यासकी घटना और अनुभवके कार्यकी जानकारी ये बातें होती है। जब इनमे स्वतंत्र तौरकी पारस्पारिक क्रिया होने दीई जाय तो उनके जोडके नतीजाका प्रमाण, जो अनुभवकी बातोंपर अवलम्बित होता है, ज्यादह निश्चित रूपका दिखाई देगा।

लेकिन (जब) बाह्य बातोंके असर को अलग किया जाय तो केवल स्थाननिर्णय की अचूकता बहुत ही कमदर्जेकी दिखाई पडेगी (जैसे कि) जो अंधेरी कोठरीमें यकायक होनेवाले प्रकाशकी चमक की स्थाननिर्णय करनेमें दिखाई देती है।

अवकाशमेंका स्थाननिर्णय करनेकी अपनी शक्तिकी समजमें की असली मुद्दे की बात यह होती है कि अनुभव की बातोंका जैसे कि क्षेत्र-हवा-मेका और भूमितीय यथार्थदर्शन-दूर दृश्य आदि बातोंका, जिनको पहले ही कहा है (पन्हा---देखिये), व्यवस्थापन की बातें और दृष्टिपटल की प्राकृतिक क्रियाओंसे मिश्रण होकर, ऐकीकि प्रतीतिका नमूना बनता है जिसको देहभानकी अवस्थामें जानकर खुलासा किया जाता है। एकनेत्रीय स्थाननिर्णय का नमूना, जो साधारणतया बाह्य बातोंपर अवलम्बित होता है, आखिरी प्रतीतिमे द्विनेत्रीय स्थाननिर्णय के नमूने जैसा होता है एकको दूसरेके बदले, कुछ फर्क मालूम होवे विना रख सकते है। उसके संज्ञाके घटक मिश्र होते हुए भी, और स्वाभाविक और वंशपरंपरा प्राप्त स्वभाव पर रची हुई समज की पद्धतीपर अवलम्बित होनेवाली उसकी उत्पत्ति मिश्र तौरकी होते हुए भी वह प्रतीति देहभानकी अवस्थामे एक असली मुख्य, पूर्ण और ऐकीकि जैसी दिखाई देती है।

आकारकी प्रतीति

आकारकी प्रतीतिका संबंध अन्तर-फासले की प्रतीतिसे बिलकूल निकट जैसा जुडा हुआ होता है। किसी पदार्थके आकार के ज्ञान की नींव दृष्टिपटल परके उसकी कल्पनानुसार प्रतिमाके आकारपर और उसके नापे हुअे अन्तरपर रची होती है। इस नापनमे दोनों घटकोंकी गणिती जोड नहीं दिखाई देती या कोणका आकार या अन्तरका वस्तुगत संबंधका निर्णय करनेवाले भौतिक नियमोंसे बंधी नहीं होती। यह प्रतीति निश्चित मानसिक स्वरूपकी ऐकीकि तौरकी प्रतीति जैसी होती है। फासले—अन्तर—की कल्पना किसीभी तरहसे बनी हो दूरसे देखनेसे पदार्थ बडा जैसा और नज़दीकसे देखनेसे छोटा जैसा भासमान होता है।

यह मानसिक विशेषताकी कल्पना पश्चात प्रतिमाके कार्यसे अच्छी तरहसे होती है। पश्चाद प्रतिमाको हिलते परदेपर प्रक्षेपण करके परदेको नेत्रके नजदीक लानेसे प्रतिमाका आकार छोटा मालूम होता है और उस परदेको दूर हटानेसे प्रतिमा बडी दिखाई देती है। दृष्टिपटलके विभिन्न उत्तेजित क्षेत्रका प्रमाण कायम रहता है : लेकिन आकारके बदल भौतिक नियमोंके अनुसार नहीं होता; पदार्थके आकारका प्रमाण और प्रतिमाका अन्तर इन दोनोंके गुणनफलके प्रमाणमें होता है।

यदि शुद्ध प्रधान गणिती तौरका संबंध हो तो स्पष्ट आकार भासमान होने के लिये जरूरी कोणके चौडाई का प्रमाण स्पष्ट अन्तर के व्युत्क्रम प्रमाण में होना जरूरी है, लेकिन प्रत्यक्ष देखे हुअे बदल स्पष्ट अन्तरके वर्ग के प्रमाण में होते हैं।

आकारकी मानसिक स्वरूप की कल्पना, आकारसंबंधी के जो दृष्टिभ्रम भासमान होते हैं उन परसे अच्छी तरहसे कर सकते हैं। हर अन्तर की कल्पनामें आकारका दृष्टिभ्रम पैदा होता है जिसके प्रमाण की तुलना प्रत्यक्ष आकारसे नहीं हो सकती। अन्तर का प्रमाण जो होगा उससे वह बढकर है ऐसी मानसिक कल्पना करनेसे इस जगह के पदार्थ

का आकार भी बढकर होगा ऐसी कल्पना की जाती है; इसके विपरीत किसी पदार्थ का अन्तर उसके खास अन्तर के प्रमाण से कम है ऐसा भासमान हो तो पदार्थ भी उसके खास आकारके प्रमाणसे छोटा है ऐसी कल्पना होती है। कहा जाता है कि इसमें अन्तर की कल्पना प्रधान स्वरूपकी है लेकिन यह निश्चित है ऐसा नहीं कह सकते, शायद यह संबंध व्युत्क्रम रूपका होगा, क्योंकि जब आकार का प्रमाण निश्चित तोरसे मालूम होता है तब दृष्टिभ्रम का असर अन्तरकी प्रतीति पर होता है।

मानसिक बातोंपर जिससे अन्तरसंबंधी की अपनी कल्पना की जाती है दृष्टिभ्रम की नींव रची होती है। दृक्क्षेत्र के यथार्थ दर्शन का असर ज्यादह प्रमाणमे होता है, क्यों कि सब अस्पष्ट पदार्थ बडे हैं ऐसा भास मालूम होता है। कोहासामे सामनेका आदमी राक्षस के आकार का बडा जैसा भासमान होता है लेकिन एक दो कदम आगे चल जानेसे वही आकृति मनुष्य के ही आकार की है ऐसा मालूम होता है। गतिके दृष्टिभ्रम इसके विपरति भास-मान होते है। चलती रेल ट्रेनमें से सामने के पदार्थोंकी ओर देखनेसे वे दृष्टिस्थल भेदाभास की वजहसे पारस्परिकसे नजदीक है ऐसे भासमान होते है।

क्षितिज परका चांद और सूर्य का आकार आकाशमें के मध्य स्थानमेंके उनके आकार से बहुत बडे दिखाई देते हैं यह आम अनुभव है। और एक तरहके दृष्टिभ्रम होते हैं जो दृक्संधान के व्यापार के स्नायुओंकी क्रिया पर अवलम्बित होते हैं जिसमें पदार्थ उनके नैसर्गिक आकारसे बडे (म्याक्रापसिया) पदार्थ स्थूलाभास (वह स्थिति—विशेष जिसमें पदार्थ उनके मूल रूपसे अधिक बडे दिखाई देते है) या छोटे (मायक्रापसिया) पदार्थ लघुत्वा-भास मालूम होते हैं। दृक्संधान शन्तिका अट्रोपीन जैसे दवाओसे लकवा पैदा करनेसे पदार्थ स्पष्ट दिखाई देने के लिये ज्यादह जोरदार दृक्संधान शक्तिका इस्तेमाल किया जाता है जब इस प्रमाणके अनुसार पदार्थ छोटा है ऐसी कल्पना की जाती है। वार्धक्य दृष्टिमें यही दृश्य दिखाई देता है। इसके विपरीत दृक्संधान का आकुंचन होता है जब ज्यादह कार्य की जरूरत नहीं होती पदार्थ स्थूलाभास होता है। यदि हर नेत्रके सामने + ६ डी का शीशा रख कर नजदीक के पदार्थपर नजर स्थिर की जाय तो वह पदार्थ बडा भासमान होता है उसका अभिवर्धन होता है लेकिन एक नेत्र को बंद करनेसे अभिवर्धन और भी ज्यादह होता है। दृष्टि नजदीक स्थिर करनेमें नेत्रोंकी एक केन्द्राभिमुखता होती है और एक नेत्र को बंद करनेसे यह एककेन्द्राभिमुखताका असर और उसके साथ ही दृक्संधान का असर कम होनेसे पदार्थ स्थूलाभास होता है। इसके विपरीत जब नजदीक का पदार्थ एक नेत्रसे देखा जाता है और यकायक वह पदार्थ दोनों नेत्रसे देखनेकी कोशिश करनेमें एक-केन्द्राभिमुखता और दृक्संधान का कार्य जारी होनेसे पदार्थ लघुत्वाभास पैदा होता है।

गति-चलन की प्रतीति

प्रत्यक्ष—वास्तविक—वाकई—चलन या गति

अवकाशमे के पदार्थका स्थानबोध किस व्यूहसे होता है इसका बहस किया गया अब इस स्थानमें बदल किस तरहसे होता है इसका विचार करेंगे। स्थानमें के बदलका ज्ञान दो

मे से कोनसे ही एक तरहसे होता है। एक तरहमें स्थानके बदल के बोधसे **गतिका अप्रत्यक्ष बोध होता है**। इसमें गति मंद और कुछ समयतक होती रहती है और गतिकी कल्पना पदार्थ एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जब दिखाई पडता है तब होती है, मसलन दूरीके स्थानमे दिखाई हुई और बिलकूल मंद गतिसे जानेवाली रेल्वे ट्रेन कुछ समय के बाद दूसरे स्थानमे दिखाई देती है तब उसके गतिकी कल्पना होती है जिसमें संज्ञानुभवके विशिष्ट लक्षणो के दृश्य की जोड होती है जिसमें समयका अन्तर और दोनो स्थानों की कल्पनाओंका मिश्र साहचर्य एकत्रित होता है।

दूसरी तरहमें गतिकी प्रत्यक्ष प्रतीति होती है मसलन स्टेशन प्लैट फॉर्मपर अपन खडे होते है तब सामनेसे रेल्वे ट्रेन शीघ्र वेगसे पार निकाल जाती है वह प्रतीति। इसमें देह-भानकी अवस्थापर प्रतीतिका नया संश्लेषण तात्कालिक तौरसे और ऐकीकि तौरका आघात होता है, जिसकी पैदाईश स्थानके बदल का प्राथमिक ज्ञान प्रारंभिक प्रमाणसे थोडा बढकर होनेसे होती है। इसकी भौतिक नीव दृष्टिपटल परकी प्रतिमाका सरक जाना और नेत्रका पदार्थकी ओर देखनेमे चलन होना इन बातोपर होती है। लेकिन ख्यालमे रखना कि यह अनेक प्रतिमाओ की, वे जैसी दृष्टिपटल पर सरक जाकर इनके श्रेणीका समक्ष होनेसे, जोड होती है ऐसा नहीं, किन्तु उत्तरोत्तर होनेवाले भिन्न भिन्न स्थानिक लक्षणो के प्रदर्शनमेंका अन्तर जुडा जाता है जिससे अनुकलित प्रतीति तयार होती है और जिसमे संश्लेषण इस तरहसे होता है जो प्रान्तिक तंत्र ही सिर्फ काम नहीं कर सकता।

जीवनशास्त्र की तौरसे चलन का बोध यह असलमें प्राथमिक लक्षण है। नीचेके वर्गके प्राणियोंमें यह दृष्टिकी असली बात होती है जिनको भक्ष्य या शत्रूके चलन जाननेकी जरूरी होती है; और इसी वजहसे यह कार्य दृष्टिपटल के अलग अलग जाननेवाला व्यवसा-यात्मिक–डिसक्रिटिक–परिधी भाग से असली तौरसे होता है। इसका प्राथमिक तौरका स्वरूप रुग्णविषयक अवलोकनमे अच्छी तरहसे दिखाई पडता है: मध्य मस्तिष्क की विकृ-तिकी अवस्थासे रोगीमें जब सुधारा होने लगता है तब आकार या रंग का बोध होनेके पहले चलन का बोध होता है जो क्रिया पहले परिधि भागमें शुरू होकर केन्द्र की ओर को फैलति है।

गतिकी प्रतीति दिखाई देनेका प्रारंभिक प्रमाण का विचार करनेसे मालूम होता है कि छोटे प्रमाणकी गति जाननेकी शक्ति ज्यादह होती है; और क्षेत्रमेके स्थिर पदार्थोंकी वजहसे यह प्रमाण ज्यादह भासमान होता है। इसमे गतिमान पदार्थका कोणीक आकार, प्रकाशनका प्रमाण और पार्श्वभूमीसे होनेवाले निरोधन के अनुसार इसमें फर्क होते हैं। यदि ये बातें कायम रखी जाय तो गतिकी प्रतीति दो बातोंपर अवलम्बित होती है: एक गति-मान पदार्थकी कोणिक गति (एंगुलर मोशन) और दूसरी दृष्टिपटल का खास उत्तेजित भाग।

पदार्थकी गति उसके वेगसे सूचित की जाती है। इस भाषाके अनुसार कमसे कम **कोणिक वेग जो दृष्टिस्थानसे प्रत्यक्ष तौरसे जाना जाता है उसका प्रमाण हर सेकन्द को**

१ से २ मिनिट आकारके कंस इतना माना होता है जब क्षेत्रमें स्थिर पदार्थ होते हैं; यदि क्षेत्रमें स्थिर पदार्थोंका अभाव हो तो यह प्रारंभिक प्रमाण १० गुना बढ जाता है।

ऐसा शोध लगा है कि गति जाननेकी शक्तिमें दृष्टिपटलके उत्तेजित भागके अनुसार फर्क दिखाई देते हैं। दृष्टिस्थानमें यह शक्ति ज्यादह प्रमाणमे होती है, वहासे परिधिकी ओर उसका प्रमाण घटता जाता है। परिधि भागमें गतिका ज्यादह बोध होनेके लिये उसके कोणिक गतिका वेग बढाना ज्यादह जरूर होता है। गतिमेंके फर्क जाननेकी शक्ति दृष्टि-स्थानमें ज्यादह दिखाई देती है। परिधि भागमें गतिका बोध होता हैं।

भासमान गति (अपैरेन्ट मृव्हमेन्ट)

बाह्य क्षेत्रमेंके पदार्थोंकी प्रतिमाऐं दृष्टिपटलपर सरक जानेसे—बहनेसे—प्रत्यक्ष गतिकी प्रतीति होती है इसका विचार किया। पदार्थोंकी प्रत्यक्ष गति न होते ही गतिका दृष्टिभ्रम होता है। इसी दृश्यको **भासमान गति** कहते है; इसी प्रतीतिको **ओबर्ट** पंडितने (१८८७) **स्वयंगति** (आटो कायनेटिक) नाम दिया है। यह वर्णन स्पष्ट न होनेसे अनेक पंडितोने अनेक तरह की कल्पनाओंका प्रचार किया है।

(१) बाह्य क्षेत्रमेंके पदार्थ स्थिर होते हैं लेकिन सर या नेत्रोंको हिलानेसे **भासमान गति** पैदा होती है। आम तौरसे जब नेत्रोंको एक स्थैर्य बिन्दुसे दूसरे स्थैर्य बिन्दुकी ओर जल्द घुमाया जाता है तब गतिकी संज्ञाका बोध नहीं होता यद्यपि पदार्थोंकी प्रतिमाऐं दृष्टि-पटल पर सरक जाती हैं : इसमें ध्यानका संबंध होता है। लेकिन जब ध्यानका अभाव होता है तब गति भासमान होती है यह दृश्य चक्कर आनेकी अवस्थामें, जिसमें शरीर घुम जाता है। अच्छी तरहसे व्यतीत होता है। जब उंगलीसे या अनैच्छिक नेत्र स्नायुओंके चलनेसे नेत्रोंका स्थानान्तर किया जाता है तब पदार्थ घुमते हैं। ऐसा भास होता है। यह दृश्य अंधियारेसे मिलती अवस्थामें जैसे कि रातके समयमे आकाशमेंके तारागणोंको देखनेकी कोशिश की जाती है, और जिसमें दृष्टिस्थानसे नजर स्थिर करना मुष्किल होता है तब भी दिखाई पडता है।

(२) दृष्टिपटलके नजदीकके बिन्दुओंका क्षणिक स्थिर दीपकोंके उत्तेजनसे चलन की प्रतीतिका दृष्टिभ्रम पैदा कर सकते है। इसीको **केंकल पंडितने बीटर गति भ्रम** ऐसा नाम दिया है। इसमेंकी असल बात क्रमिक उत्तेजकोंमेंका समयका संबंध यह होती है। इस दृश्यका निरीक्षण दृष्टिपटलका दृष्टिस्थान और परिधि भाग के संबंधमें अनेक पंडितोंने किया है। प्रकाशकी दो विरुद्ध लकीरियोंका इस्तेमाल करनेसे यह दृश्य पैदा कर सकते हैं। प्रकाश-लकीरियोंका इस्तेमाल कुछ अन्तरसे करनेसे ये (दृश्य) समकालिक भासमान होतें हैं इसीको **सिम स्टेडियम समदौड** नाम दिया है, जब दोनोंमेंका अन्तर इससे ज्यादह होता है तब वे अनुक्रमसे दिखाई पडतीं है; इसीको **अनुक्रमिक दौड–सक्सेसिव्ह स्टेडियम** कहते है: और जब इन उत्तेजकोंका इस्तेमाल ज्यादह समयके बाद किया जाता है तब एक प्रकाशकी लकीर दूसरीकी ओर हिलतीं है ऐसा भास होता है; इसीको समदौड **आपूट स्टेडियम** कहते हैं।

(३) दो उत्तेजकों के समय का अन्तर कम होनेसे जैसा गतिका भास होता है। उसी तौरसे उत्तेजक की क्रिया कम समयतक होनेसे भी गतिका भास होता है। यदि दो

उत्तेजक प्रकाश भिन्न बल के हो तो कम बलका प्रकाश ज्यादह बलके प्रकाश की ओर जाता है ऐसा भास होता है।

(४) **कंपन गति-स्ट्रोबास्कोपिक मूव्हमेंन्टः**—यह दृश्य सिनेमा प्रदर्शनमे अच्छी तरह से दिखाई पडता है। गतिकी भिन्न भिन्न अवस्थाकी लेकिन स्थिर चित्र की आकृतिया वे जैसे चलते हैं ऐसा भास होता है; इसके विपरीत प्रत्यक्ष गतिमान पदार्थ स्थिर है ऐसा भास होता है।

५ इससे मिलती अवस्था वक्रगति का भास की अवस्था (ऐनआरथास्कोपिक मूव्हमेन्ट) होती है जिसमें हिलते चित्रको किसी चिरमेंसे देखनेसे उसमें आकृति विपर्यास है ऐसा भास होता है।

(६) और भी भासमान गति की मिसालों का वर्णन किया है। इसका सूचक उदाहरण झुलनर्स दृष्टिभ्रम (चित्र नं. ३३० देखिये) या बुहलर का (चित्र नं. ३३५) होता है। यदि चित्र नं. ३३० को पारदर्शक कागजमेंसे, जिसके दोनो बाजूको कुछ लकीरिया निकाली है, देखनेसे उसकी मूल रेषाऐं समानान्तरता से भिन्न होती है। चित्र नं. ३३५–३३६ मेंकी दोनो खडी रेषाओंकी तुलना करनेसे चित्र नं.३३५की रेषाऐं समानान्तर नही दिखाई पडती।

चित्र नं. ३३५ **चि. नं. ३३६**
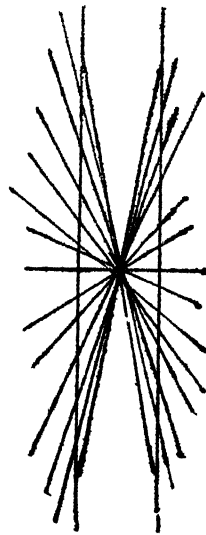
बुहलर का दृष्टिभ्रम

(७) **गतिदार पश्चाद् प्रतिमाओं का दृश्य** (मोशन आफ्टर इमेजिस) दिलचस्पिका होता है; यदि अपनी दृष्टि कुछ समयतक एक दिशाके **गतिमान पदार्थपर** रोख कर फिर किसी स्थिर पदार्थ पर दृष्टि रोखनेसे ये पदार्थ विरुद्ध दिशामें घुमते हैं ऐसा भास होता है। यही दृश्य **प्लेटो की कमान** से देख सकते है। चित्र नं. ३३७में की कमान को घुमानेसे वर्तुलाकार पट्टे अन्दर जाते है या बाहर आते हैं ऐसा भास होता है; घुमाने की

गतिको रोकनेसे वे पट्टे उलटी दिशामें घुमते हैं ऐसा भास होता है। तुफानी दर्यामें जहाजमेंके प्रवास करनेके बाद जमीन पर उतरतेही आपना शरीर घुमता है ऐसा भास होता है उसके जैसा ही यह दृश्य होता है।

चित्र नं. ३३७

प्लेटो की कमान

अन्य प्रतीति की क्रियाओं के जैसी चलन के दृष्टिभ्रम देखे हुओ नमूनाओंकी अपूर्ण रचना पर अवम्लबित होते है जिससे व्याख्या करनेके तंत्र को इस तरह की अनुमति मिलती है जिससे एकही नमूनेकी भिन्न भिन्न संशोधक भिन्न भिन्न व्याख्या कर सकते हैं इस का खास उदाहरण ऐसा होता है कि अंधियारी कोठरीमें एक के ऊपर एक ऐसे दो दीपक रख कर एक को दाहिने और बायी ओरकी हिलानासे कोनसा दीप हिलता है इसका निर्णय निरीक्षक पर अवलम्बित रहता है। यदि वह लम्बक को सोंचे तो नीचेका दीप हिलता है और ऊपरका स्थिर है ऐसी वह कल्पना करेगा; यदि वह ताल मापक यंत्र को (मेट्रोनोम—चाभीदार स्प्रिंग से चलनेवाला यंत्र जो संगीत में ठेके की ताल बतलाता रहता है। जिस ठेके पर इसे मुकर्रर किया जाय उसी की ताल और सम देता रहता है। सोंचे तो नीचेका स्थिर और ऊपरका दीप हिलता है ऐसा भास होगा। जब एक वस्तु दो स्थिर पदार्थमे हिलती है जैसा की चन्द्रमा दगोमेंसा चलता है, तब इसी तौरका दृष्टिभ्रम होता है; ध्यान जिस पर लगाया हो उसके अनुसार हिलती वस्तु हिलती है और स्थिर वस्तु स्थिर है या इसके विपरीत अवस्थामें विपरीत भास होता है। इन चलन की व्याख्या का साफ तौरसे निदर्शन हो सकता है कि इसमें ध्यान और दिलचस्पी की महत्व प्रतीतिके नमूनाओकी पसंदगी हो कर उनको सुसंगत और पूर्ण जैसा माना जाता है।

चाक्षुष प्रतीतिका रूप—स्वरूप गुण

चाक्षुष संज्ञाओंके विचार के भागके आखिरमे दृष्टिकार्यकी कल्पनाका विचार किया तब ऐसा सिद्धान्त पेश किया था कि इस संबंधमें जो कुछ पुरावा इकट्ठा हुआ है उसपरसे अभी भी खास तौरका सिद्धान्त मुकर्रर करना संभव नहीं है। और यही मत चाक्षुष प्रतीतिके संबंधमे दे सक्ते है।

हालमें अभीतक जिन मूलभूत बातोंका विचार किया है उनपरसे साफ मालूम होता है कि जिन बातोंपर इन चाक्षुष प्रतीति के नमूनाओंकी नींव रची है वे ज्यादह गुंतागुंत और मिश्र स्वरूपकी जैसी होती है । इन चाक्षुप प्रतीतिके नमूनाओके पैदाईश–उद्गम–मे भिन्न भिन्न अस्पष्ट संस्कारोंका, जिनका समाहार करना मुष्किल की बात होती है, संबद्ध होता है, क्योंकि इनमेंकी कुछ बातें बाह्य जगत् कि और कुछ वैयक्तिक तौरकी **सामुहिक ग्राहक समाहारकी** (ह्युरी रिसेपाटिव्ह समेशन) यानी इनमे बाह्यग्राहक (एक्सटेरोसेपटिव्ह), आद्यसमग्राहक (प्रोप्रियोसेपटिव्ह), और आन्तरग्राहक (एनटेरोसेपटिव्ह) प्रेरणाओंका समाहार होता है ऐसा **शेरिंगटन पंडितने** कहा है। इन बातोंका एक वस्त्र जैसा बिना जाता है, जिसका नमूना वंशपरंपरा प्राप्त मौरूसी–धर्म और अनुभवसिद्ध बातोंके नमूनेके अनुसार होता हैं; लेकिन ख्यालमें रखना कि ये बातें भिन्न भिन्न लोगोंमें भिन्न सी होती है, और एकही व्यक्तिमें बदलती और लसलशी जैसी होती है; और आखिरी नमूना वैयक्तिक और तरंग रूप का होता है । इससे कल्पना कर सकते है कि भौतिक घटनाकी रचनाके संबंधमें जिन भौतिक नियमोंका विचार कर सकते है उसके कक्षेकी बाहरकी ये बाते होती है। इसमें कार्य और कारणसंबंधींकी नियमित बातोंकी अलावा नयी घटनाका बोध होता है।

नीचेके समतलकी प्राकृतिक बातोंका विचार करनेसे मालूम होता है कि इस संश्लेपणके कार्यमें दो व्यूह व्यतीत होते हैं ऐसा **वरदमिर** (१९१२) ने और **पारसन** पंडितनें (१९२७) मत प्रदर्शित किया है:—

(१) मध्यमस्तिष्क प्रणाली के मार्गोंमेंकी लहरियोंका विश्लेषण और परस्परानुकूल व्यापारकी बातोका, जो आदतसे होती है उनका सरलीकरण, और जो विपरीत तौरकी होती है उनकी रुकावट का व्यूह है जिसका कार्य परस्परानुकूल व्यापार और संस्कारोंका देखावा निश्चित करना यह होता है; (२) व्यूहका कार्य वंशपरंपरा प्राप्त और अनुभवसिद्ध नतीजोंसे पैदा हुई पेशियोंका समायोजन करना जिससे संवादि क्रियाओंका रूपका निर्णय होता है ।

शेरिंगटन पंडितके शोधनसे (१९२०) मालूम हुआ है कि सुषुम्ना का कार्य प्रत्यावर्तित क्रियाओके पारस्परिक कार्यपर अवलम्बित होता है । उनके बाद **म्यागनस** पंडितने (१९२४) लघु मस्तिष्कके कार्यका संशोधन करके बतलाया कि प्राथमिक गतिका कार्य ही प्रत्यावर्तन के रूपका होता है।**पाव्हलोव्ह** पंडित और उनके सहकारीयोंने पचीस सालतक कुत्ते की उच्च मानसिक क्रियाओंके विश्लेषण के प्रयोगोसे बतलाया कि ये क्रियाअें, यद्यपि मिश्र स्वरूप की होती है, तोभी प्रत्यावर्तन रूपकी होती है । सुषुम्ना और मस्तिष्क. स्तंभ की सादी प्रत्यावर्तित रूपकी क्रियाअें और पोषण नलिका की क्रिया, लैंगिक क्रिया और अंगस्थितिदर्शक प्रत्यावर्तित क्रियाओंकी जिनको जन्मजात प्रवृत्ति (इनस्टिंक्टस) कहते है, उनकी रचना निश्चित हुई है और ये वंशपरंपरासे प्राप्त होती हैं । ये क्रियाअें जातिवर्ग के खास लक्षण होती है न की वैयक्तिक लक्षण जैसी, और बाह्यबातोंकी असर के सिवा स्वतंत्र तौरसे और नियमिततासे दिखाई पडती हैं । इसी वजहसे **पाव्हलोव्ह पंडितनें** इनको **मौलिक प्रत्यावर्तन क्रियां** (अनकन्डीशन्ड रिफ्लेकसेस) नाम दिया है । इन प्रत्यावर्तन क्रियाओंकी नीवपर ऊपरकी प्रत्यावर्तन क्रियाअें होती हैं । इनमेंकी ज्यादह मिश्र रूपकी और हर

व्यक्तिको उसके खास अनुभवसे पैदा होती है; इनसे हर मस्तिष्क मडल प्रणाली की वर्धिष्णु कार्यसिद्धिका बोध होता है, और ये सतत पैदा होनेसे और उनमे बाह्यबातोंकी असरसे फर्क होनेसे **पाव्हलोव्ह** पंडितने इनको **संबद्ध प्रत्यावर्तन** क्रिया (कंडीशन्ड रिफ्लेक्सेस) ऐसा नाम दिया है। इन्हीके नीवपर या बुनियादिपर उच्च मानसिक कार्योंकी इमारत खडी होती है। इनकी पैदाईश स्वयंभू नहीं होती; इनकी रचना नैसर्गिक मौलिक प्रत्यावर्तन क्रियापर होती हैं, और एकदफा तयार होनेके वाद कुत्ते जैसे प्राणिमे इनपर नयी संबद्ध प्रत्यावर्तन क्रियाअें एकके ऊपर दूसरी, तिसरी, चौथी प्रमाणकी क्रियाकी नींव और शायद मनुष्यवर्गमे अटकलसे अमर्याद मिश्र प्रमाण की प्रत्यावर्तन क्रियाकी नीव रची जा सकती हें; ये क्रियाअें समाहारके रूपकी होती हें। और इनमे निकट संबद्ध तौरके उत्तेजकोंमे के फर्कोंका विश्लेपण करनेकी शक्ति होती है, इतनाही नहीं वल्कि इनमे रुकावट करनेकी शक्ति होनेसे जिससे कई उत्तेजक कार्यक्षम और कई निष्क्रिय होते है, इनका मिश्ररूप ज्यादह बढ जाता है। मध्यमस्तिष्क मंडल के सब कार्यमें संवादि क्रियाकी मिश्रता और व्यक्तित्व ये **समाहार** और **व्यतिकरण** इन दोनो क्रियाओकी परस्परानुकूल व्यापार की वजहसे पैदा होते है।

इन संशोधनके फल या नतीजो को मनुष्योको लगानेमे सावधानी रखना जरूरी है। तो भी मनुष्यमें उच्च मानसिक क्रियायें इसी तरह की नीव पर रची होनेसे आम तौरके और अजमानेवाले अनुमान प्राणिवर्गसे मनुष्यवर्गको लगा सकते हें। यह बात साफ साफ दिखाई देती है कि शिक्षण और तालीम से पैदा हुई आदतो की एक अति संमिश्र संबद्ध परावर्तित क्रियाओकी एक शृंखला जैसी वनती है। अपने जीवन भर अपने बाह्य या आन्तर परिस्थिति में असंख्य आन्दोलनोंका, जो महत्व की हो या न हों, जो हर एक या सब मिलके, पेशियोंमेंके और मध्यमस्तिष्क के मार्गोमें के खास तौरके फर्कोमें परिवर्तित होगा; और इनमें संबद्ध संवेदना के गुण दिखाई पडेंगे, और जमा हुए पूर्व अनुभव के प्रत्यावर्तित क्रियाओमे इनका असर जोरदार या सूक्ष्म तोरका दिखाई पडेगा।

संज्ञाके नमूने की प्रतीतिके निर्णय मे उत्क्षेपण दो तरहसे होना संभव है:—

(१) मनुष्य इसी जगतमें पाये हुए अनुभवसे स्वयं सिकता है; (२) या उसके बापदादाके अनुभव का ज्ञान उसको वंशपरंपरासे प्राप्त होता है। चाक्षुप प्रतीतिके विपयपर बहुतही वादविवाद हो रहा है और इसमेंसे दो कल्पनाओपर एक **अनुभव वादकी प्रत्यक्ष-वाद** की (एम्पिरिसिझम) कल्पना और दूसरी **सहजज्ञान वाद, या स्वयंभूत्व वाद** की (नेटिव्हिझम) कल्पना होती है। दोनों प्रणाली के लोगोका कहना है कि इसका निर्णय उनके कल्पनाके अनुसार ही होता है।

अनुभव वाद—दर्शन शास्त्र का वह सिद्धान्त जिससे यह प्रतिपादित किया जाता है कि प्रत्यक्ष परीक्षणद्वारा ही मनुष्य वास्तविक सत्यपर पहुंच सकता है।

सहजज्ञान वाद—स्वयंभूत्ववाद—जिससे प्रतिपादन किया जाता है कि हमारे कुछ विचार और भावनायें जन्मजात या सहज जात होती है। इस लिये इस प्रकारके सहज जात विचार हमारे इन्द्रियानुभव (सेन्स एक्सपीरियन्स) से स्वतंत्र होते हैं।

हालमें इतना ही कह सकते है कि चाक्षुप प्रतीतिमें उनका कुछ भाग होता होगा। इस संबंधमें **लेमार्क** के विकास के सिद्धान्त से शारीरिक दाय आनुवंशिकता-पूर्ण तया सिद्ध नहीं होती लेकिन मानसशास्त्र प्रणालीमें गुणधर्मोंका यह प्रेपण निश्चित होता है यह पहले ही कहा है (पन्हा ३५० देखिये) इसमें जीवनशास्त्र दृष्टिसे उपयोगके मज्जासंबंधी के गुण-धर्म वंशपरंपरा प्राप्त होते है ऐसा मान सकते हैं। तस्मात् ऐसा निश्चित तौरसे कह सकते हैं कि अनुभवसे पैदा हुओ संबद्ध प्रत्यवर्तनों का जाला जैसा बिना जाकर उसको वंशपरंपरा प्राप्त हुई पूर्व निश्चित नींव पर इस तरहसे रखा जाता है कि उसका अभेद्य नमूना बनता है।

इस कल्पनासे (**पारसन** के मतानुसार) नीचेके समतल परके केन्द्रोंके आकार-वृद्धिके मंडल (फार्मेटिव्ह झोन) तक जा पहुंच सकते हैं; लेकिन इन पदार्थोंपर ऊपरके समतल की मानसिक बातों का असलमें **ध्यान** और **आस्था** ओका (अटेंनशन ऍंड इन्टरेस्ट) ज्यादह जोरदार असर होता है। विकासकी आद्य अलग अलग जाननेकी **प्राथमिक** अवस्थामे **पारसन की डिसक्रिटिक स्टेज** प्रतीतिसे (देहभान की अवस्थाका) **चेतना** के प्राथमिक प्रवाहमे सिर्फ इस तरहका बदल पैदा होता है कि जिससे आमतोरकी भावोत्पादक शक्ति युक्त सावधानी जाग्रत होती है, जो आनन्ददायक होगी या न होगी, लेकिन उसमें वर्गीकिरण करनेकी या सूक्ष्म भेद जाननेकी शक्ति होती है (प्रकाशप्रतिक्रिया फोटो ट्रापि-झम)। विकास की इससे बढकर सूक्ष्म भेद जाननेकी अवस्थामें (एपिक्रिटिक स्टेज) विभिन्न संज्ञामें के सूक्ष्म भेद जाने जाते है और सावधानी प्रतीतिके नमूनाओंकी उन बातो पर केन्द्रित होती है जिनका जीवन शास्त्रीय दृष्टिसे महत्व होता है और उसीका **ध्यान** होता है। विकास की अव्यवस्थित संयोजनमे (सिनक्रिटिक स्टेज) जब जीवन-शास्त्र के महत्व का उत्क्षेपण होता है, ध्यान का आस्थामे (इन्टरेस्ट) रूपान्तर होता है जिसमे संकल्प की खास प्रवृत्ति दिखाई देती है। जब आमतौरकी सावधानीका कार्यक्षम **ध्यानमें** और सूक्ष्म भेद जाननेवाली **आस्थामें** रूपान्तर होता है तब भावोत्पादक शक्तिका मनोविकार की अवस्थामे बदल होता है।

मस्तिष्कमेंकी प्राकृतिक क्रियाओंका चैतन्यमे उत्क्षेपण किस व्यूहसे होता है और चैतन्य मे की शक्तिका आन्तर कार्य किस तरहसे होता है इसका हालमे बिलकूल अज्ञान है लेकिन इसका अज्ञान होते ही उसमे उच्च दर्जेकी प्राकृतिक क्रिया होती होगी ऐसी कल्पना करना मुमकीन नहीं होगा।

इस संबंधमें आखिरी खास कल्पना मुकर्रर नहीं कर सकते लेकिन **पारसन पंडितके** संशोधन के आधारपर जीवनशास्त्रीय तत्वोंपर रची हुई दृष्टिकी मज्जाप्राकृतिक व्यूहकी कल्पना कर सकते है। इसकी नींव **वुन्डट पंडित** की **सृजनात्मक संयोजन** (क्रियेटिव्ह सिनथेसिस) के तत्वपर या **लायड मारगन पंडितकी** ।**निर्गमनात्मक विकास दर्शनात्मक विकास** (ईमरजन्ट ईव्होल्यूशन) के तत्वपर रची होती है ऐसा मालूम होगा, यदि उनमेंकी आदि भौतिक गुंतागुंत की बातोंको अलग करे। प्रसंगोपात विकासकी प्रगतिमें, जिसकी पहले कल्पना नहीं होती ऐसी घटना दिखाई देती है क्योंकि कारणोंके संयोग—मिलाप—से परिणामी प्रेरणाओंकी बीजगणितीय जोड जैसी जोड नहीं कर सकते। जलमें नमकको (सोडियम क्लोराईडको)

घुलानेसे जिसकी पहलेके अनुभव विना कल्पना नहीं होती, ऐसी कुछ घटना होती है,—द्रावण घोल पैदा होता है; घोलकी संपृक्तता बढनेसे यकायक मणिभकरण—स्फटिकीभवन (क्रिस्टलायझेशन) होता है। भौतिक समतलपर जैसे ये दर्शन पैदा होते हैं इसी तौरसे जीवन के समतलपर विकास की प्रगतिमें जीव पैदा हुआ और इसीके साथ साथ या इसके आगेकी अवस्थामे चैतन्य पैदा हुआ। विकासके भौतिक समतल, सजीवताका समतल और मानसिक समतल ऐसे ये तीन समतल होते हैं। और इन तीनोंके भौतिको—रासायनिक, प्राकृतिक और मानसिक घटनाओंके आन्तर संबंधसे स्वतंत्र गुणधर्म होते हैं, और ऊपरके हर समतलमेंकी घटनाऐं नीचेके समतल की घटनाके साहचर्य और सहघटनपर अवलम्बित होती हैं।

विविध प्रकारकी और गुणधर्मकी अनेक संज्ञाकी बातोंका **संकलन** और **सहसंबंध** के परिणामसे प्रतीति पैदा होती है। चैतन्य के नमूने उसपर आघात करनेवाली संज्ञाके तात्कालिक परिवर्तन नहीं हैं,ख्यालमें रखना कि वे संज्ञावाहक व्यूहके कार्यके मानसिक नतीजे—होते है न की गणिती तौरके परिणाम होते है, और पूर्वकी उत्तेजकोंसे और ऊपरके केन्द्रोंसे इसमें बदल होता है। ग्रहणशील मज्जामंडल की मुलायम संज्ञाग्राहक पृष्ठ-प्लेट-पर एक समान प्रत्यक्षोंकी पुनरावृत्ति—दोहराना—करनेसे उनमें अतिभेदकारक नमूनाओंका विकास होता है (क्यों कि कोई भी दो प्रत्यक्ष एकरूप जैसे नहीं होते) और इसमें सतत बढनेवाले संमिश्रके सज्ञा स्वभाव, जो अति मिश्र तौरकी चैतन्य की संवादि क्रियाओंके काम में आते है। और आपसमे उनका विश्लेषण होनेसे ज्यादह चल और उतार चढाव की प्रतीतिके नमूने पाये जाते है।

यह माना गया है कि ये संकलन जो बिलकुल असंगत बातोंकी बनी होती है, उनका **भौतिक समतल** पर होनेवाले संश्लेषणसे कुछ सादृश्य नहीं है। लेकिन उनका धर्म मूलतः भिन्न है ऐसा माननेका कुछ कारण भी नहीं है। पदार्थोंकी एकरूपता जो प्रत्यक्षमें जडवस्तु और शक्ति (प्रकृति और पुरुष) इतने जैसे भिन्न दिखाई देते है, उनपरसे समानांतरताका बोध (सजेस्टिव्ह पॅरलल) होता है लेकिन हालकी स्थितिमें उनको तर्क सम्मत अनुमान तक बढाना योग्य नहीं होगा; यद्यपि उनके निर्गमनसे सृजनात्मक धर्मका बोध होता है, जिसका कारण और कार्य जैसा सबंध नहीं होता; तो भी जिसका पृथक्करण करना अपनेको संभव नहीं ऐसी आदिभौतिक कल्पना करना योग्य नहीं होगा। असल मुद्दा यह होता है कि अपनी मानसिक वृत्ति मर्यादित तौरकी होनेसे और नापन करनेके प्रमाणोंका अभाव होनेसे ऊपरके समतल की बातोंको जानना अपनेको संभव नहीं है और शायद हमेशाके लिये संभव भी नहीं होगा। **प्राकृतिक तौरके समतलमें** अपने इन्द्रियोंसे भौतिक बातोंको जानकर उनका खुलासा कर सकते हैं; **मानसिक तौरके समतलमें** अपने प्रतीतिसे संज्ञाओंको जानकर उनका खुलासा कर सकते हैं; लेकिन इनका विश्लेषण करनेके लिये इसके ऊपरका समतल नहीं होता यह ख्यालमे रखना। **पारसन** पंडितके मतानुसार किसी बातका पूरा ज्ञान ऊपरी समतल से नीचेके समतल का निरीक्षण करनेसे होता है (बैक स्ट्रोक) और यह नियम सब समतल को लगा सकते है। ऐसी कल्पना कर

सकते हैं कि हर समतल पर हुशियार रखवारदार होता है लेकिन सिर्फ ऊपरी समतलके हुशियार रखवालदारको उसके नीचेके समतलमे की बातोका ज्ञान रहता है उसके ऊपरीके समतल की बातोकी, जो प्रत्यक्ष तौरसे खुदके समतल परकी और नीचेके समतलपर अवलम्बित रहनेवाली बातो के सिवा, कुछ भी कल्पना नहीं होती। सबके उपरी समतलमे उच्च असुरी रखवालदार होगा वह सब कुछ जानता होगा। लेकिन अपन ऐसे उच्च असूर नहीं है : और उपरके समतलके व्यावहारिक आर्थिक बातोका विचार करनेसे उसकी कुछ जरूरत भी नहीं।

खंड १०

नेत्रका प्रकृतिविज्ञान और प्राणिरसायन

नेत्रगोलमें का रुधिराभिसरण

नेत्र में की चयापचय क्रिया

नेत्राभ्यन्तरीय स्नायुतंत्र और कनीनिका की प्रतिक्रिया

नेत्रका बाह्य स्नायुतत्र और नेत्रोंके चलन

नेत्रका संरक्षक तंत्र

नेत्राभ्यन्तर दबाव का प्रकृतिविज्ञान

खंड १०

अध्याय २४

नेत्रगोलमेंका रुधिराभिसरण

नेत्ररोगविज्ञानशास्त्रमें नेत्रगोलकमेके रुधिराभिसरण का प्राकृतिक ज्ञान जितना दूसरा दिलचस्पीका विषय नहीं है। नेत्ररोगोकी विकृत अवस्था के ठीक ठीक ज्ञान की यह नींव होती है इतनाही नहीं बल्कि नेत्ररोगमेकी चयापचय क्रिया का तंत्र इसीपर अवलम्बित होता है। और इसी वजहसे उसका बराबर ज्ञान होना जरूरी है।

नेत्राभ्यन्तर के रुधिराभिसरण का यंत्र

प्राकृतिक तौरसे विचार करनेसे मालूम होता है कि नेत्रगोलक मे रक्तकी भरती करने-वाली रोहिणियोकी दो भिन्न भिन्न प्रणालिया होती हैः—(१) तारकातीत पिंडकी पुरो-तथा पार्श्वरोहिणिया जिनकी शाखाएँ पारस्परिकसे मिलती है; (२) इसके अलावा दृष्टि-पटल की रोहिणियां, जिनकी शाखाएँ पारस्परिकसे नहीं मिलतीं, जो थोडी कुछ मिलती हो तो प्राकृतिक दृष्टिसे उनका इतना महत्व नहीं है। विकृत शारीर तौरसे विचार करे तो भी मालूम होता है कि दोनों प्रणालियां स्वतंत्र जैसी कार्य करती है। लेकिन ख्यालमें रखना जरूरी है कि दोनों प्रणालियोपर यांत्रिक असर एकसरीखा दिखाई देता है, यद्यपि दोनो प्रणालिया शारीर दृष्टिसे भिन्न भिन्न हैं; प्राकृतिक तौरसे विचार करे तो, बहुतसा सबूत मिलता है कि दोनों एक समान है; जैसे कि उनपर अन्दर जाने वक्तका और बाहर आने वक्तका दबाव एक सरीखा होता है, दोनोंमे दबाव कम होनेका प्रमाण समान होता है। रोहिणियोंकी प्रणालीका दबाव उनके आकारके समानुपाती प्रमाणमें—बराबर औसदसे—कमती होता जाता है, इसकी वजह यह है कि दृष्टिपटलकी मध्यरोहिणी और तारकातीत पिंडकी पुरो तथा पार्श्वरोहिणिया ये दोनों प्रणालिया चाक्षुष रोहिणीकी शाखाये है। दोनो नेत्रगोलमे प्रत्यक्ष तौरसे घुसती है और दोनोका आकार एक सरीखा है, दोनों की प्रगतिमे, बाह्य दबाव एक सरीखा होनेसे दोनोंमेका दबाव एक सरीखा ही होगा ऐसी कल्पना कर सकते हैं। कृष्णमंडल की रोहिणियो का स्पन्दन और दृष्टिपटलकी रोहिणियोका स्पन्दन समकालिकसा होता है।

रोहिणियोंका (शुद्धरक्तवाहिनियोंका, धमनीयोंका) स्पन्दन

नेत्रगोलककी रोहिणियोका स्पन्दन—नेत्राभ्यन्तर दबाव की वजहसे उसमें जो कुछ थोडा फर्क होता होगा उसके सिवा—शरीरकी अन्य रोहिणियोंके स्पन्दन जैसाही होता है इसमें कुछ संदेह नहीं। शरीर की सब रोहिणियोमें स्पन्दन होता ही है और उसका विस्तार रोहिणियोंकी प्रणालीमें समप्रमाणमें कमती होता जाता है। नैसर्गिक नेत्रगोलकमे यह विस्तार इतना छोटा होता है कि वह खास यंत्रो की सहायतासे ही दिखाई पडता है। बालनटाईन के संशोधनसे मालूम हुआ है कि नैसर्गिक नेत्रगोलकमे यह स्पन्दन १०%में दिखाई पडता है और उसके साथ साथ इन रोहिणियोका चलन भी दिखाई पडता है। नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्र की सहाय-

तासे महारोहिणी संबंधीका प्रत्यावर्तन (एओरटिक रिगरजीटेशन) जैसी विकृतिमे यह स्पन्दन, जब उसका विस्तार बडा होता है, सूक्ष्मतम शाखाओमें भी दिखाई पडता है; रोहिणी अर्बुद, ग्रेव्हज की विकृति, कांचबिन्दु, पाडुरोग, नेत्रगोलक को दबाना, नेत्रगोलकके पीछे नेत्रगुहामेके पीछेके भागके घटकोंका अर्बुद ऐसी अवस्थाओमे भी यह स्पन्दन दिखाई पडता है।

नेत्रगोलकमेंके असंकुचनीय घटकोंसे नेत्रगोलक के स्थितिस्थापक शुक्लपटल को यह दबाबका स्पन्दन जा पहुँचता है और वह आयतन स्पन्दन (व्हाल्यूम पल्स) होता है। लेकिन नैसर्गिक नेत्रगोलकमे यह पटल बिलकुल कम स्थितिस्थापक होनेसे यह आयतन स्पन्दन नहीं दिखाई पडता, लेकिन महाबली निकट दृष्टि नेत्रगोलक मे यह पटल फैलनेवाला होनेसे यह आयतन स्पन्दन दिखाई पडता है। इसकी यान्त्रिक रचनाका विचार करनेसे हृदयके आकुंचनसे पैदा होनेवाला रोहिणियोमेंका स्पन्दन नेत्रगोलकमेके घटकोंसे प्रत्यक्ष तौरसे बहन होकर नीलाएँ तालबद्ध जैसी दब जाती है। नेत्रगोलकमे नेत्राभ्यन्तर दबाव सब जगह एक सरीखा कार्य करनेसे नीलाएँ फैल जाती या संकुचित होती है।

नीलाओंका अशुद्ध रक्तवाहिनीयोंका–स्पन्दन

नेत्रगोलकमे की नीलाओमेका स्पन्दन का शोध सबसे पहले ट्रिगट पंडितने १८५२ मे लगाया। नैसर्गिक नेत्रवाले बहुतसे लोगोमे (७०% से ८०%) नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे नेत्रबिम्ब पर स्पन्दन उसका विस्तार बडा हो तो, वह दिखाई पडता है। गुलस्ट्रान्डके नेत्रान्तरंगदर्शक यंत्रसे अभिवर्धन ज्यादह होनेसे रक्तवाहिनी संबंधीका परावर्तन–उनका चौडा होना या निरून्द होना सब जगह दिखाई पडता है। रुग्णविषयक अवलोकनसे मालूम हुआ है कि नीलाओका स्पन्दन प्रत्यक्ष रोहिणियोके स्पन्दन पर अवलम्बित रहता है। वह रोहिणियोके संकोचनसे समकालिन जैसा होता है। वह हृदयके बाये क्षेपक कोष्ट (लेफ्ट व्हेन्ट्रिकल) के साथ तालबद्ध रहता है और दाहिने ग्राहकपुट से स्वतंत्र जैसा कार्य करता है। विकृत अवस्थाओमे जैसे कि महारोहिणिकी अपूर्णतामे जब रोहिणियोंका स्पन्दन ज्यादह बढकर होता है नीलाओंका स्पन्दन ज्यादा साफ दिखाई पडता है।

शरीरके अन्य भागोमेसे, जैसेकी चपडीमें, रोहिणियोका स्पन्दन केशिनियोंमेसे नीलाओंमे जा पहुँचता है। लेकिन यह दृक् प्रत्यक्ष नेत्रमे दिखाई पडेगा या नही इस संबंधमे सन्देह है, क्योकि नेत्रके न दबनेवाले घटक उसके बाह्य स्थितिस्थापक शुक्लपटलमे दबाव के साथ बंद रहते है और जिससे दबान के फर्कोंको रुधिराभिसरणकी प्रणाली सकत नाली जैसी प्रति-क्रिया करती है जो शरीरके अन्य भागोमे नहीं दिखाई पडती। इसके संभाव्य यान्त्रिक कार्यमे हृदयके संकुचनमें रोहिणियोंकी दबाव की लहरियोंका वहन प्रत्यक्ष नेत्राभ्यन्तरके घटकोंसे होता है, और उसके साथ साथ नीलाएँ समकालीन दबी जाती है : नेत्रमें नीलाएँ नेत्राभ्यन्तर दबाव की वजहसे न बहुतसी चौडी होती है या संकुचित होती है; लेकिन जब वे नेत्रकी बाहर जाती है तब उनमें ज्यादह रक्त घुस जाता है, क्योकी अब नीलाएँ बडे दबावके क्षेत्रसे कम दबावके क्षेत्रमे जाती है; और इस जगहमे नीलाओंका स्पन्दन ज्यादह जोरदार होता है। इस अवस्थामें यदि पश्चात अजका हो तो उसमें स्वयमेव स्पन्दन दिखाई पडता है।

अर्थात यद्यपि नीलाओंका स्पन्दन नेत्राभ्यन्तर दबाव के फर्कोसे पैदा होता है तो भी उसके पैदाईशमें और उसके विस्तारके फर्कोमें अन्य कारण भी होते है । जैसे कि शुक्ल-पटलकी सकत अवस्था;यह जितना कम फैलनेवाला होगा उसी प्रमाणमे रोहिणियोंके स्पन्दनको कम जगह मिलेगी और फिर नेत्रबिंबपर नीलाओका स्पन्दन दिखाई पडनेका ज्यादह संभव होगा । इसी तौरसे रोहिणियोकी अवस्था और रोहिणियोंकी कठनताकी सिवा नेत्राभ्यन्तरका बढा हुआ दबाव से नीलाओंमें स्पन्दन दिखाई पडना हैं । रोहिणियोंकी रचनासे भी नीला-ओंमें स्पन्दन दिखाई पडता है, जैसे कि जब नेत्रबिंब के नजदीक यदि नीला की ऊपरसे रोहिणी पार जाती हो तो नेत्रबिंबकी ओरका नीलाका भाग दबा जाकर चपटा हो जाता है और फिर रोहिणीके उस पारके नीलामे दबाव बढ जानेसे उसमें स्पन्दन होता है ।

रक्तवाहिनियोंके संबंधीके दबाव

मानवी नेत्रगोलक को रक्तकी भरती सिर्फ **अन्तः मात्रिका रोहिणीकी** चाक्षुषरोहिणी शाखासे होता है । लेकिन ख्यालमे रखना कि सस्तनप्राणियोंके नीचेके वर्गके प्राणियोंको (कुत्ता, खरगोश जैसे प्राणि जिनका ज्यादह तोरसे प्रयोगशालाओमे इस्तेमाल किया जाता है) **बहिः मात्राकी रोहिणी** की शाखासे भी रक्तकी भरती होती है, इनके शाखाओका संगम होनेसे उनमें रक्त का दबाव ज्यादह होना संभव है तो भी मनुष्यके रक्तवाहिनियोंमें रक्तका दबाव सापेक्षतासे ज्यादह होता है । चाक्षुषरोहिणी अन्तःमात्रिकाकी या असलमे **विलिस** के रोहिणी वर्तुलकी या मस्तिष्क मूलिक रोहिणी चक्रकी–शाखा होती है । यह रोहिणी वर्तुल खास मुख्य रक्तवाहिनी है । क्योकि इसी स्थानमें शरीरकी रक्तवाहिनियोंका चालक तंत्र होता है । चाक्षुष रोहिणी अन्तः मात्रिकासे निकलनेके पश्चाद मात्रिका रोहि-णीका संकुचन होता है । यह शाखा निकलनेके पहले मात्रिका रोहिणीका व्यास जो ५·४ मि. मि. होता है वह शाखाके पश्चाद ३·८ मि. मि. होता है; चाक्षुष रोहिणी के व्यास का औसद प्रमाण सिर्फ १·५ मि. मि. होता है । इस तरकीबसे पीछेकी ओरको रक्तप्रवाहको रुकावट होनेसे चाक्षुष रोहिणीमें रक्त की भरती ज्यादह प्रमाणसे होती है और उसके दबाव का प्रमाण भी ज्यादह रहता है ।

इसी वजहसे नेत्रमें रोहिणियोमेंका रक्तका दबाव ज्यादह होता है । नैसर्गिक मनुष्यमे के बाहवी (ब्रेकियल) रोहिणीमेंका रक्तका दबाव **हृदय प्रसरण / हृदय आकुंचन** (डायास्ट-लिक / सिस्टलिन) ... ६०से८० / ११० से १२५ मि. मि. पारदके (Hg) वरावर होता है । चाक्षुषरोहिणीमे यह प्रमाण थोडा कम (२५%) होता है । नीलाओंमेंका दबाव घटकों-मेंके दबावसे यानी नेत्राभ्यन्तरके घटकोंके दबावसे ज्यादह होता है । ऐसा सबुत मिलता है कि इस दबावका घटावका प्रमाण, रोहिणी जब नेत्रमें घुसती है और नीला बाहर आती है, छोटी रक्तवाहिनियोंमे होता है ।

रोहिणीयों संबंधीका दबाव

(१) नेत्रकी बाहरकी रोहिणीयां

(अ) चाक्षुषरोहिणीमेंका दबाव

शरीर की रोहिणीयोंमेंका दबाब का रुग्णविषय नापनेमें जिन सिद्धान्तोका इस्तेमाल

किया जाता है उन्हीका इस्तेमाल नेत्रगोलकको नैसर्गिक रक्तभार मापक यंत्र (स्फिग्मा मैनामिटर) समझके करनेसे चाक्षुष रोहिणी में के दबावका माप हो सकता है।

नैसर्गिक नेत्रगोलकमें रोहिणीयोमेंका स्पन्दन बहुत कम होता है, लेकिन नेत्राभ्यन्तर का दबाव बढनेसे हृदय प्रसरण की मर्यादा तक स्पन्दन बढ जाता है। इस समय रोहिणी हृदय के चक्र–पर्यायमें-के कुछ भागमें बिलकुल दब जानेसे स्पन्दन महत्तम होता है। दबाव को और ज्यादह बढानेसे स्पन्दन का विस्तार उत्तरोत्तर कम होता है। हृदय संकुचन का असर पार होनेके बाद रक्तवहन–रुधिराभिसरण–बंद होता है, स्पन्दन रुक जाता है और रोहिणी बैठ जाती है। यानी **स्पन्दन के महत्तम बिन्दुसे हृदय प्रसरण का और स्पन्दन बंद होनेसे हृदय संकुचन का फिहरिश्त में दर्ज होता है।**

इस तौरसे निकाले हुए मान को चक्षुप रोहिणी मे का दबाव, कोई कोई मानते है, लेकिन यह समझ गलत है। ध्यानमे रखे कि जब रक्तवाहिनिया दबाई जाती है तब उनमेंके रक्त का स्तंभ आशिक या पूरी तौरसे अचल होता है और इसी वजहसे दर्ज किया हुआ दबाव नेत्रमेकी रोहिणीयोंमेंका दबाव नहीं बल्कि, बिलकुल नजदीक की रोहिणी शाखा या चाक्षुप रोहिणीका पार्श्विक दबाव होता है;यानी दृष्टिपटल के स्पन्दन को देखनेसे दृष्टिपटल की मध्यरोहिणी मे के दबावसे चाक्षुप रोहिणी के पार्श्विक दबान का माप होता है, या नेत्रकें आयतन स्पन्दनसे (व्हाल्यूम पल्स) तारकातीत पिंड की पश्चाद रोहिणीसि दबाव नापा जाता है।

नेत्राभ्यत्तर दबाव को बढानेके दो तरतीबे होती हैं:—

(१) **मैनामिट्रिक तरतीब** दोनो में लायक है। इस तरतीब में मैना मिटर के (क्यानुल) नलीदार सूचीको अन्दर घुसाकर उसमेसे क्षार द्रावण डालकर नेत्राभ्यन्तर का दबाव बढाया जाता है, और दृष्टिपटल की रोहिणी के स्पन्दनशील कार्य का या नेत्रगोलक के आयतन स्पन्दनके विस्तार का परीक्षण किया जाता है। थरथरी के महत्तम बिन्दुओंसे और थरथरी के (आसिलेशन) मौकूफी बिन्दुओसे हृदय प्रसरण और हृदय संकुचन का

चित्र नं. ३२५

चाक्षुष रोहिणीमेंका दबाव

एक (अ) नलीदार सूचीको, जो नेत्रमें घुसाई है। (ब) नलीको पारद के मैनोमिटर से (क) जोडा है जिसका लेखन **कायमोग्राफ** (ल) पर होता है। इस यंत्रमे क्षार द्रावणसे आगार (रिझरवायर) (फ) भरा जाता है और जिसका दबाव पिचकारी (ड) से बढा सकते है। पार्श्वकी नलीमें (ट) जिसमे का दबावका आगार (त) के दबावसे समतुलन कर सकते हैं एक वायुका बुदबुद है जिसका चलन थरथराना–स्पन्दन के साथ सूक्ष्मदर्शक यंत्र (स) से देखा जाता है जब शरीर का दबाव बढांया जाना है।
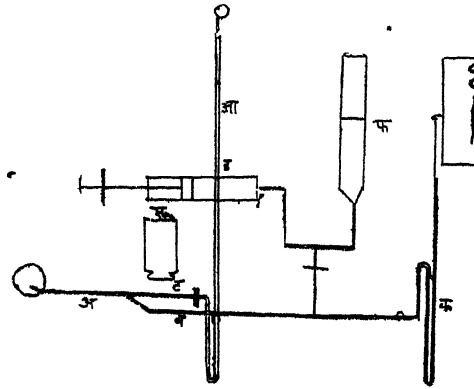
दबाव जाना जाता है। इन थरथरीका विस्तार पहले पहल (१८५०) **वेबर पंडित** ने दर्ज किया था; उनके बाद बहुतसे अन्य **पंडितोंने** इसका संशोधन किया। हालमें (१९२५)

डयूक एल्डर पंडितनें अपने यंत्रसे थरथरी ओंका विस्तार सूक्ष्म दर्शक यंत्रसे कैशिक नली सूची नालीमेंके वायु बुदबुद को तपास कर उनके फल निकाले जो नीचेके कोष्टक में दिये हैं।

सारिणी १८

संशोधक	पारद के मि. मि. दबाव		प्रयोग का प्राणी
	हृदय प्रसरण	हृदय संकुचन	
बेसले (१९०८)	७०	—	खरगोश
माइस (१९११)	५०–७०	—	,,
लुलीज गुलको बिस्क (१९२४)	५४–७०	९२–१०८	,,
डयूक एल्डर (१९२५)	७८	११५	बिल्ली

(२) दूसरी तरकीब मे नेत्रगोलक को बाहरसे दबान लगाके नेत्राभ्यन्तर दबाव को बढाकर रक्तवाहिनियोमे का स्पन्दन देखा जाता है; यह तरकीब बिलकुल बे भरोसे की होती है।

तारका और कृष्णपटल की रक्तवाहिनियोका स्पन्दन देखनेसे तारकातीत पिंडकी पश्चाद रोहिणीसे चाक्षुप रोहिणीका यही फल पाया जाता है।

(ब) तारकातीत पिंड की पुरो रोहिणीयों में का दबाव

इन रोहिणीयोंको आसानीसे पहुंच सकते है। और ऐसा दावा किया जाता है कि इनसे तारकातीत पिंड को रक्तकी भरती होनेसे उनसे इन रोहिणीमेंके–जिनका नेत्राभ्यन्तर के जलभागके पैदाईशमे हिस्सा होता है–दबाव पर असर होता हैं लेकिन यह बात पूर्णतः मान्य नहीं हुई है।

शरीरकी रोहिणीयोमेंका दबाव उनके भीतरीके व्यास पर और उनकी शाखा निकलनेके क्रमपर अवलम्बित रहता है, और शुक्लकृष्ण संधिके नजदीक की छोटी रक्तवाहिनियोंमे का दबाव, तारकातीत पिंड को प्रत्यक्ष चाक्षुप रोहिणीसे निकलनेवाली उसकी पश्चाद लम्बी रोहणीकी अपेक्षा जरूरतन कम होना चाहिये।

प्राकृतिक और विकृत शारीर के सबूत से सिद्ध होता है कि तारकातीत पिंड की पश्चाद रोहिणीयोसे इस पिंड को रक्त की भरती होती है और नेत्राभ्यन्तर जल की पैदाईशमें इसीका पूरा हिस्सा होता है। तारकातीत पिंड की पुरो रोहिणी का हिस्सा दुय्यम और मदत गारी के जैसा होता है।

२ नेत्राभ्यन्तर की रोहिणीयोंमें का दबाव

नेत्रगोलक को बाहरीसे दबाव लगाने की तरतीबसे नेत्राभ्यन्तर के रोहिणीमेंके दबाव का नापन बराबर नहीं होता जो कुछ नापन होता है वह उसको रक्तकी भरती करनेवाली शाखाओंका दबाव का नापन होता है। दृष्टि–पटल की रोहिणीयोंमे के दबाव का ठीक ठीक नापन इन रोहिणीयोंके अन्दर मैनामिटर घुसानेकी तरतीबसे हो सकता है। इसका संशोधन

ड्यूक एल्डर पंडितने बिल्ली के नेत्राभ्यन्तर की रोहिणीमें मैनामिटर की सूक्ष्म **नली विशेष** (मायक्रोपिपैट) को घुसाकर किया था (१९२६); दर्ज किये हुए दबाव का औसद मान : हृदयप्रसरण / हृदयसंकुचन–६४/८८ मि. मि. (Hg) था, नेत्रके दबाव के ढलाव का फैलाव शरीरके अन्य भागोकी रोहिणीयोमे के दबाव जैसा ही होता है; और यह मान छोटी रक्तवाहिनीयोतक दिखाई पडता है। रोहिणीयोमेका दबाव और नेत्राभ्यन्तर दबाव इन दोनों दबाव के पतन में का प्रमाण पारदके (Hg) ६५ मि. मि. इतना होता है।

ड्यूक एल्डरने एक बिलाडीके रोहिणीयोमें का दबाव के Hg.मि. मि. मे का देखा हुआ ढलाव का प्रमाण सारिणी १९ से मालूम होगा; प्रमाणमेका

सारिणी १९

	हृदय प्रसरण	हृ. संकुचन	औसद
मात्रिका रोहिणमिं का दबाव (दाहिनी)	—	—	१०४
चाक्षुष रोहिणीमे का दबाव (दाहिनी)	८०	११०	९९.५
दृष्टिपटल की रोहिणीमे का दबाव (बायीं)	६५	८६	७५.५
नेत्राभ्यन्तर दबाव	—	—	२०

नीलाओंमेंका दबाव

(१) **नेत्राभ्यन्तर की नीलाओंमें का दबावः**—नेत्रगोलकमेंके घटकों का दबाव बढकर होनेसे (२०-२५ मि. मि. Hg) सादे यांत्रिक सिद्धान्तोसे, अनुमान कर सकते है कि नीलाओमेका दबाव ज्यादह होगा। रुधिराभिसरण की क्रिया चालू रहनेके लिये नेत्राभ्यन्तर दबावसे सब रोहिणीयोमेका दबाव बढकर होना जरूरी है। ऐसा न होगा तो नीलाओंकी दीवाले बैठ जाकर रुधिराभिसरण बंद हो जायेगा। प्रयोगोंके नाप से मालूम हुआ है कि शरीरके अन्य इन्द्रियो के सादृश्य से नेत्रकी नीलाओंमेंका दबाव वेश्मनीमेंके दबावसे थोडा बढकर होता है। इसका सबूत यह होता है कि दृष्टिपटल की नीलामे सूची नली घुसानेसे लहूका फवारा धीरे धीरे वहता है। इनमेंका दबाव नेत्राभ्यन्तर दबावसे पारद के २मि. मि. (Hg) से ज्यादह होता है।

(२) **शुक्लपटलमेंकी नीलाओंमेंका स्क्लेम की नालीमेंका दबावः**—शुक्लपटलमेंकी नलिआओंमेंका दबाव असली तौरका महत्व का होता है क्यों कि इनका प्रत्यक्ष संबंध **स्क्लेमकी नालीसे** होता है और इसी वजहसे इस नाली में का दबाव नीलाओं जैसा ही होगा। **ड्यूक एल्डर पंडितनें** कुत्तेके इस नालीमें (**होविस** के वर्तुलमें) सूक्ष्मनालीविशेष घुसाकर दबाव नापा तो मालूम हुआ कि वह नेत्राभ्यन्तर दबाव से थोडा बढकर होता है; दोनोंमेंका फर्क नैसर्गिक अवस्थामें १.५ मि. मि. (Hg) इतना होता है।

(३) **शुक्लपटलकी बाहरी की नीलाओंमेंका दबावः**—नैत्रगोलक में से नीला बाहर आते ही उनमेका दबाव जल्द ही सरके नीलाओमेंके दबाव इतना कम होता है। परि शुक्लपटलमेंकी नीलाओमेका दबाव नेत्राभ्यन्तर दबावसे १३ मि. मि. पारदके (Hg) **७ मि. मि. इतना कम होता है।**

नेत्राभ्यन्तर दवाव और नीलाओंमेंकी तबदिली और स्क्रेम की नाली का संरक्षक अभिद्वार जैसा कार्यः—

रुधिराभिसरण कायम तौरसे चालू रहनेके लिये यह एक स्वीकृत नियम(पासच्युलेट) है कि रोहिणियोंमे का दवाव केशिनियोंमेके दबावसे बढकर,केशिनियोंमें का दवाव नीलाओमेके दबावसे बढकर,और नीलाओमेका दबाव,नेत्रभ्यान्तरके दबावसे बढकर होना चाहिये । वेश्मनीमेका दबाव बढानेसे रुधिराभिसरण संस्थान दवा जाता है। जिनका पार्श्विक दवाव कम होता है ऐसी नीलाएँ उनके बाहर जानेके स्थान पर बंद हो जाती हैं । यह क्रिया होतेही रक्तप्रवाह रुक जाता है, रोहिणियोमे की शक्ति पीछे एकत्रित हो जानेसे सामनेका संकोचन खुला होकर रुधिराभिसरण अधिक दबावसे शुरू होता है, नीलाओमें का दबाव नेत्राभ्यन्तर के दबावसे बढ जाता है । और यह क्रिया रोहिणियोमे का दवाव कम हो जानेतक यानी चाक्षुप रोहिणीमे के दबाव का समतल जा पहुँचा है और कुल रुधिराभिसरण रोका जाकर रक्तवाहिनिया बंद हो जानेतक वारवार होती रहती है ।

दबाव का सापेक्ष प्रमाण ठीक तौरसे जाचनेके लिये **ड्यूक एल्डर** पंडितने नीलाओके दबाव का नापन उनमे मैनामिटर की केशसदृश सूक्ष्म सूची नालीको घुसाकर जांचा और नेत्राभ्यन्तर का दबाव पारद (मर्क्युरी) मैनामिटर को नेत्रगोलकमे घुसाकर जाचा, नैसर्गिक अवस्थामे शुक्लपटलमेकी नीलाओमेका दबाव नेत्राभ्यन्तर के दबावसे थोडा बढकर होता है । नेत्राभ्यन्तर का दबाव थोडा बढानेसे नेत्राभ्यन्तर की नीलामे का दबाव बढ जाता है लेकिन वह नेत्रकी वेश्मनीयोंके दवावसे थोडा बढकर रहता है; इसके साथ साथ शुक्लपटलमें की नीलाओंमेंका दबाव भी बढता है । लेकिन उसका प्रमाण (३९) नेत्राभ्यन्तरके प्रमाणसे (४०) थोडा कम रहता है ।

नेत्राभ्यन्तर का दबाव बढनेसे नेत्रकी भीतरकी नीलाओंमेका दबाव सादे यांत्रिक कारणोंसे वेश्मनीमेके दबावसे बराबर या कुछ थोडा बढकर होता है । लेकिन शुक्लपटलमेंकी नीलाओकी दीवाले, शुक्लपटलके उनके आवरणोंसे तनी हुई रहनेसे, उनका आकार बडा रहता है; और इसी वजहसे इन नीलाओमेका दबाव नेत्राभ्यन्तर के दबावसे कम रहता है। स्क्रेम की नाली, जो एक नीला, जैसी ही होती है,शुक्लपटल के घटकोमें ही स्थित होनेसे इस दबाव का कम होनेका असर सापेक्षतासे उस पर होता है,और इस हालत में स्क्रेमकी नालीमेका दबाव पूर्ववेश्मनीमे के दबावसे कमतर होता है । इसकी दीवाले इतनी नाजूक होती हैं कि उनमेके द्रवोका अन्योन्य प्रसरण आसान होता है और नेत्राभ्यन्तरके द्रवाशसे उसका पूर्व वेश्मनी के कोणमे की प्ररोहाओकी वजहसे संबंध होता है। और इस सापेक्ष दबाव की वजहसे चाक्षुष जल का नीलाओमे जलस्थिति प्रेरित गिरना असंभवनीय होते ही नेत्राभ्यन्तर का दबाव बढ जानेकी अवस्थामे नेत्राभ्यन्तर के जलका प्रवाह होता है और उसी कारणसे स्क्रेमकी नाली को नाजुक संरक्षक अभिद्वार जैसा कार्य करनेका मोका मिलता है; और नेत्राभ्यन्तर का दबाव बढनेकी अवस्थामे चाक्षुषजल का श्रावन होकर नेत्राभ्यन्तर दबाव नैसर्गिक प्रमाणमें रखना आसान होता है ।

केशिनियोंमेंका दबाव

जीवनकी सब क्रियायें केशिनियोंकी दीवालेमेंसे ही होती है और इसी वजहसे उनमेंके दबाव का नापन करना प्राकृतिक तौरसे बहुत महत्वपूर्ण बात होती है। नेत्रमेंका उसका प्रमाण नापनेकी तरकीब अभितक किसीने भी निकाली नहीं है। उसको मुकर्रर करनेमें बहुतसे खतरे पाये जाते होंगे क्योंकि नेत्राभ्यन्तर का हस्तलाघवसे या नेत्रगोलकको बाहरीसे दबानेसे नेत्राभ्यन्तर के दबावमें फर्क होता है; नेत्राभ्यन्तर दबावसे नीलाओंके दबाव पर असर होता है; और इसीका असर केशिनियोपर दिखाई पडता है; तीनो दबाव सन्निपातसे बढने लगते हैं, लेकिन यह दबाव समानान्तर जैसा नहीं होता।

शरीरके भिन्न भिन्न भागोंमे की केशिनियोंमेंका दबाव नापन के जो कुछ प्रयोग किये गये है उनका फल इतना विविध प्रमाण का हुआ है कि इसका फैलाव १ से ७० मि. (Hg) तक दिखाई पडता है। जो कुछ प्रयोग किये गये है वे सब चमडीमेंकी केशिनियो पर थे। **लान्डीस** पंडित के प्रयोग हालके है (१९३०) और वे ज्यादह अचूक है। उन्होने शिराओंमें सूक्ष्म नाली विशेष (पिपैट) को घुसाकर शोध लगाया कि रोहिणीयों की ओरकी केशिनियोंके भागमें दबाव का औसत प्रमाण पारदके(Hg)३२मि. मि. के बराबर, उनके बीचके भागमे पारदके २० मि. मि. इतना और इनके नीलाओंके भागमें पारदके (Hg) १२ मि. मि. इतना था। ऐसा दावा करना सभव है कि इन प्रयोगोंके सिद्धातोंका नियम आम रुधिराभिसरण के लिये इस्तेमाल करना न्याय्य नहीं होगा, और नेत्रमेंकी खास अवस्थाओंको लगाना कभी ठीक नहीं होगा उन परसे जो कुछ अनुमान निकालना संभव वे उनकी ऊंचाई और उनमे बहुत फर्क होते है इतनाही। हालमें **क्रोग** (१९२९) **डेल** और **न्युइस** इनके संशोधनसे पूर्वे की केशिनिया मे के रुधिराभिसरण के कार्यसंबंधी की कल्पनाये बिलकूल बदल गयी हैं। उनके प्रयोगोंका विचार करनेसे साफ साफ सिद्ध हुआ है कि केशिनियोंको रुधिराभिसरण कार्यमेका स्थिर भाग नहीं समझना और उनमेंके रक्तका दबाव कायम स्वरूपका होता है और उसको नाप सकते है ऐसा नहीं बल्कि केशिनिया रक्तवाहिनी संबंधी के प्रणालीका महत्तम कार्यकारी, सहेतुक और गत्यात्मिक भाग होता है जिसका दबाव अविरतसे आदमी आदमीमे, इन्द्रिय इन्द्रियमें और इन दोनोंमें बार बार बदलता रहता है। रुधिराभिसरण का नियमन सिर्फ हृदयसे नहीं होता; हृदय एक पंप जैसा है, रोहिणीयां और नीलाएँ बहानेकी नलीया होती है लेकिन केशिनियां रुधिराभिसरण का असली भाग होता है क्योंकि चयापचयकी (मैटाबालिझम) कुल क्रियायें उनकी दीवालोंमें ही होती है; केशिनियोंका मूल या प्राथमिक स्वरूप कायम रहता है, तब कुल रुधिराभिसरण यंत्र का कार्य परिवृत्तीय (पेरीफिरल रक्त) वाहिनियों के संकुचन पर अवलम्बित होता था। **डेल (१९१०) लान्डिस (१९२६)** आदि हालके संशोधन कार्यसे पूरी तौरसे सिद्ध होता है कि परिवृत्तीय प्रतिरोध बिलकुल बारिक रोहिणियों के प्रान्तमें ही सिर्फ होता है ऐसा नहीं, बल्कि उसका बडा हिस्सा केशिनियोमे होता है और यहां रक्तवाहिनियोंमेंका दबाव ज्यादह प्रमाणमें कम होता है। केशिनियों की एक ओरकी बारिक रोहिणीयां और दूसरी ओरकी बारिक नीलाएँ इन दोनोंकी सूक्ष्म रचना और प्राकृ-

तिक धर्म और केशिनियो की रचना और प्राकृतिक धर्म इनमें कुछ साफ साफ विभक्त करनेवाली रेषा नहीं है। केशिनियोंमेका दबाव इस शब्दप्रयोगसे इतनाही समझना कि रोहिणियोंसे नीलाओंके बीचका दबाव का बडा ढलाव।

नेत्रमें इन सिद्धान्तोका इस्तेमाल शरीरके अन्य भागोंकी अपेक्षा ज्यादह युक्त होता है। नेत्रके घटकोमेंके दबाव का प्रमाण पारद (Hg) के २० ते २५ मि. मि. इतना होता है। यही दबाव शरीर के अन्य घटकोंमे १ से २ मि. मि. इतना ही रहता है। लान्डीस पंडितने चमडीपरके दबाव का जो प्रमाण निकाला है यानी जो घटकोंमेंके दबावसे ३० मि. मि. ज्यादह होता है, उसको नेत्रके घटकों को लगावें तो नेत्रकी बारिक रोहिणीयों के प्रान्तमें की केशिनियोंमेंका प्रमाण ५० से ५५ मि. मि. इतना होगा। इसके सिवा और अन्य सूचक बातें होती हैं जिन परसे नेत्रकी केशिनियोंमेंका दबाव अन्य इन्द्रिय की अपेक्षा ज्यादह होता है ऐसा मान सकते हैं। तारकातीतपिंड की रोहिणीया शारीर शास्त्रके दृष्टिसे ऐसी अजब घटना होती है कि उनका यकायक केशिनियों के जालामे विभाजन होता है जिनकी ये शाखाएँ इतनी चौडी हो सक्ति है कि उनमेंसे १० रक्तकण यकायक जा सकते है। इससे यह संभाव्य है कि इनके शक्तिका भाग जो पार्श्विक दबाव से सूचित होता है, ज्यादह उंचाई को जा सकता है और वह तात्विक दृष्टिसे बारिक रोहिणियोंसेभी ज्यादह होता है। नेत्रकी नीलाएँ बाहर आनेके समय संकुचित होती है; और नेत्रकी रुधिराभिसरण की प्रणाली कम फैलनेवाले और स्थितिस्थापक वेष्टनसे बंद रहनेसे केशिनियोंमे स्पन्दनशील प्रवाह चालू रहता है। इसी वजहसे दबाव के ढलाव का बिन्दु नीलाओंकी ओरको ज्यादह झुकेगा और इससे रक्तवाहिनिया संबंधकी प्रणाली सकत नाली जैसी होती है। केशिनियोंके प्रान्तमें दबाव का प्रमाण पारदके ५० मि. मि. इतना ऊंचा होना संभाव्य है। ख्यालमें रखना कि यह सिर्फ अन्दाजा है। जो कुछ मालूम हुआ है वह इतना ही है कि नेत्रमें जानेवाली रोहिणीयोमेका दबाव पारदके (Hg) ६५ से ८५ मि. इतना होता है। और नेत्रसे बाहर जानेवाली नीलाओमेका दबाव नेत्राभ्यन्तर के दबावसे १ मि मि. इतना बढकर होता है। इन दोनों के बीचमे क्या हालत होती है इसका ज्ञान नहीं है। लेकिन संभव है कि दबाव का मोटा हिस्सा केशिनियों के रोहिणियोंके ओरके प्रान्तमें कम होता है, और चाक्षुष जलकी पैदाईशके संबंधीके सिद्धान्तोसे यह शाबित हो सकता है।

रुधिराभिसरणका नियमन

कुल रुधिराभिसरण के नियमन की प्रणालीका इन्तजाम केशिनियोमें रक्त की भरती होनेके लिये किया है। हृदय एक पंप जैसा है और रोहिणीया और नीलाएँ उसकी वाहक नलीया जैसी होती है, लेकिन केशिनिया रुधिराभिसरण यंत्र का असली भाग होता है क्यो कि चयापचय क्रियामेका पारस्पारिक अदल बदल उसीमें होता है।

एक बात ख्यालमें नहीं रहति की शारीर शास्त्र दृष्टिसे विचार करें तो केशिनियां रुधिराभिसरण यंत्र का सबसे बहुत बडा भाग होता है। क्रोघने (१९२०) जो संशोधन किया है उस परसे माल्हूम होता है कि स्नायुओकी केशिनियों को बाहर निकाल कर सबको एक की सीरेको दूसरी के सीरे को जोडनेसे जो नलिका तयार होगी वह इतनी लम्बी

होगी की पृथ्वी की परिधिके उसके अढाई फेरे होंगे; या उनको एक के बाजूमें दूसरी ऐसी सब केशिनियों को रखनेसे जो पत्र तयार होगा उससे देढ एकर क्षेत्र जमीन आच्छादित होगी।

नेत्रके रुधिराभिसरण पर दो बातों का असर होगा : एक शरीरके रुधिराभिसरण का नेत्रमेंके रुधिराभिसरणपर होनेवाला फर्क, और दूसरी बात यह होती होगी की नेत्रमेंका रुधिराभिसरण स्वतंत्र संस्थान जैसा कार्य करिता होगा। शरीरके रक्तमें के दबाव का बढाव का या कमती होने का असर, नेत्रकी छोटी रक्तवाहिनिया सापेक्षतासे निष्क्रिय हो, तो उनपर परिवर्तित होगा। यदि वे संकुचित हो तो रक्तकी ज्यादह भरती का कुछ असर नहीं दिखाई पडेगा या बढाव बेनासिर होगा, केशिनियोंमें दबाव कम हो जायेगा। इसके विपरीत छोटी रक्तवाहिनियोंका प्रसरण हुआ हो या असली रोहिणीमेंका दबाव कम हुआ हो तो भी नेत्रकी रक्तवाहिनियोमे ज्यादह रक्त की भरती होगी।

नेत्र की रुधिराभिसरण की रक्तवाहिनियां, नैसर्गिक व्यापार के दृष्टिसे, तीन तरह की होती है:-(१) बडी क्षुद्र रोहिणिया (आरटेरिओल्स); (२) बारिक रक्त वाहिनियां जिनमे अन्तीमं क्षुद्ररोहिणिया, केशिनिया और क्षुद्र नीलाएँ या शिराक इनका समानेश होता है; और (३) बडी नीलाएँ। इन तीनोंका कार्य स्वतंत्र होता है। (१) क्षुद्र रोहिणियोका प्रसरण होनेसे नेत्रमे रक्तकी भरती हो तो रक्तका दबाव बढकर ज्यादह होता है; यादि बारीक रक्तवाहिनियोका प्रसरण हुआ हो तो नेत्रमे कार्यक्षम रक्ताधिक्यता (ऐकटिव हायपरीमिया) होगी, उसके साथ साथ नेत्रका ताप बढेगा, उनमेंके रक्तका दबाव बढेगा और केशिनियोंकी श्रवनक्षमता—झिरपन—बढकर नेत्रकी वेश्मनीमे जीवनरस (प्लाझमा) प्रवेश करेगा। (२) इन रक्तवाहिनियोके संकुचनमें ये परिणाम नहीं पाये जाते। क्षुद्र रोहिणीयोंके आकुंचनसे नेत्रमेके रक्तका प्रवाह का प्रमाण कम होता है, उसका ताप कम होता है; इसके बारिक रक्तवाहिनियोंका भी आकुंचन हुआ तो वे खोखली हो जाती हैं।(३)बारिक रक्तवाहिनियो के प्रसरणसे रक्तका प्रवाह बढकर दबाव बढ जाता है और उसके साथ झिरपन होता है।(४) नीलाओंके संकुचनसे बारिक रक्तवाहिनियोंमेंका दबाव बढ जाता है; इसके असरसे केशिनियोमेका दबाव बढकर होता है। क्षुद्र रोहिणिया और नलिाओंकी संकोचन समता उनकी दीवालोंमेंकी स्नायुसे होती है। केशिनियोंके संकोचन संबंधमें दो मत हैः—एक के अनुसार उनकी अन्तःत्वक् पेशियोकी वजहसे होता है; दूसरे मत के अनुसार नेत्र के केशिनियोमेकी **रूजन** की पेशियोंसे—जो स्नायु जैसे ही है—होता है। यह संकोचनक्षमता का नियमन दो बातोपर अवलम्बित होता है मज्जारज्जुओसे और दूसरी रासायनिक तोरसे। पहले का नियंत्रण मध्यमस्तिष्क मज्जा प्रणालीसे, और दूसरेका नियमन प्रत्यक्ष तौरसे स्थानिक बातोंसे होता है।

रुधिराभिसरण का नियमन करनेवाला मज्जामंडल

रक्तवाहिनियों का नियमन करनेवाले मज्जातन्तु (व्हेसोमोटर नर्व्हस) सब किस्मके रक्त वाहिनियोंको यानी रोहिणिया केशिनिया और नीलाओको, जाते है। रक्तवाहिनियोंका **संकोचन करनेवाले** मज्जातन्तु (व्हेसो कानस्ट्रिक्टर्स) आनुकंपिक मज्जामंडलसे पाये जाते है यह बात **ब्राउन सिकार्ड** (१८५२) **क्लाड बरनार्ड** (१८५२) आदि लोकों के

संशोधनसे सिद्ध हुई है। ग्रैवेयक आनुकंपिक मज्जातन्तुओंको उत्तेजित करनेसे उस ओरके चेहरकी चमडी फिकी होती है। उस मज्जारज्जुको काटनेसे या उसका हलका पक्षपात होनेसे (ग्रैवेयक अर्बुद्र जैसे विकृतिसे) मुखकी आरक्तता पैदा होती है। शारीर शास्त्रीय निरीक्षणसे ये आनुकंपित मज्जातन्तु कृष्णमंडलके रक्तवाहिनियोंमें और **टाईटमन** के मज्जातन्तु से दृष्टिपटल की रक्तवाहिनियोंमें दिखाई पडते हैं। प्राकृत दृष्टिसे विचार करें तो कृष्णमंडल की रक्तवाहिनियो पर उनका संकोचन परिणाम होता है यह निश्चित है लेकिन उनके दृष्टिपटल की रक्त वाहिनियोंपरके इस परिणाम संबंधी संदेह है।

रक्तवाहिनियो का नियमन करनेवाले मज्जातन्तुओंसे रक्तवाहिनियोंपर बलकारक संकोचक परिणाम होता है। उनको उत्तेजित करनेसे यह परिणाम और ज्यादह जोरदार होता है और उसकी वजहसे कृष्णमडल की रक्तवाहिनियोंका संकोचन होकर उसके साथ नेत्राभ्यन्तर का दबाव कम होता है। दृष्टिपटलसंबंधी ऐसा निश्चित तौरसे नहीं कह सकते।

शरीरमें रक्तवाहिनियोंका संकोचन करनेवाले मज्जातन्तु आनुकपिक मज्जामंडलसे पाये जाते हैं; रक्तवाहिनियोंका प्रसरण करनेवाले तन्तुओंका उगम भिन्न भिन्न स्थानोंमे होना है, खास तौरसे मस्तिष्किय और त्रिकास्थिय भाग के अनैच्छिक बाह्य प्रवाहसे होता है। इस तरहके मज्जातन्तु नेत्र को जाते हैं ऐसा पुरावा नहीं मिलता।

त्रिमुखीमज्जा रज्जुमें रक्तवाहिनियोंका प्रसरण करनेवाले मज्जातन्तु न होते ही अन्य संज्ञाग्राहक मज्जातन्तुओंके कार्य के अनुसार इसके **ऐन्टीड्रोमिक कार्यसे** रक्तवाहिनियोंका प्रसरण होता है। संज्ञाग्राहक मज्जातन्तु उनके प्रान्तिक फैलावमें चमडी और रक्तवाहिनियां इन दोनोंको मज्जातन्तु भेजते हैं, और जब चमडीमेंका उसका भाग उत्तेजित होता है तब वह संज्ञा मुख्य शाखामेंसे मस्तिष्क की ओर को जाती है इतना ही बल्कि उसकी रक्तवाहिनियों की शाखामार्गे एन्टीड्रोमिक कार्यसे वापिस रक्तवाहिनीकी जीवघटक तन्तु की प्रतिबिम्बित संज्ञा जैसी जाती है। नेत्रमें इस कार्यका यंत्र महत्वका होता है। लेकिन ख्यालमें रखना कि इस संस्थानमें इन तन्तुओंका कार्य दुय्यम तोरका होता है जिससे घटकों की पेशियोमे की चयापचय क्रियामें रुकावट होकर **व्हिस्टामाइन्स** जैसे पदार्थ बनकर उनसे रक्तवाहिनियोंका प्रसरण होता है ऐसा **लैंगले** (१९२३) और **लुईस** (१९२७) पंडितोंका कहना है।

नेत्रमेंके छोर जाले–टर्मिनल प्लेक्ससेस

आनुकंपिक और संज्ञाग्राहक मज्जातन्तुओंके छोर नीरे) के जाले बनते हैं तो ज्यादह तादाद में पाये जाते हैं और वे कृष्णमंडल की गैंगिलियन पेशिओंके बीचमें मिलते हैं।

रक्तवाहिनीयोंकी परावृत्त–प्रतिबिम्बित क्रिया

नेत्रमे रक्तवाहिनिया संबंधी जो प्रतिक्रियायें पायी जाती हैं उनके दो वर्गमें विचार कर सकते हैं : स्थानिक प्रतिक्रियाये जिसमें स्थानिक उत्तेजककी स्थानिय प्रतिक्रियायें नेत्रके मज्जाजालाओंका सक्षेप पथ–शार्ट सरकिट होनेसे पैदा होती है और इसे **एक्झान प्रतिक्रिया**

कहते है। (बिजली के तारका बीचमें किसी चालक वस्तुसे संबंध हो जाय तो कुछ धारा उस चालक में हो कर निकलने लगती है इसे शार्ट सरकिट कहते है)

एक्झान प्रतिक्रियायें जिनका कार्य संज्ञाग्राहक मज्जातन्तु द्वारा होता है और जिनके साथ रक्तवाहिनियोका प्रसरण व्हिस्टामाईन्स पैदा होनेसे होता है यह ऊपर कहा है इनके स्थानिक स्वरूपसंबंधी यह सबूत है कि **गैसेरियन मज्जाकंद** को निकाल लेनेसे भी ये चालू रहती है। ये क्रियाये शुक्लास्तर में अच्छी तरहसे दिखाई पडती हैं, और इनसे नेत्रमेंके कृष्णमंडल की रक्तवाहिनियों का प्रसरण होकर नेत्राभ्यन्तर के दबाव मे बढाव और केशि-योंकी दीवालों की प्रवेशक्षमता–पिझरना–यह बढती है तारकापिधानकी इजा शुक्लास्तरमेंका दुःखद अन्तःक्षेपन, तारकाकी जखम और नेत्रगोलक की मोटे शस्त्र की जखम से होती हैं। कभी कभी यह रक्तवाहिनियोंमेके नियमनके फसाद दूसरें नेत्र मे भी इसी तरह के होते है।

आनुकंपिक मज्जामंडलकी एक्झान प्रतिक्रियाये रक्तवाहिनियोका संकोचन रूपकी होती है, और यह यान्त्रिक इजासे रक्षण का यंत्र जैसा हौता है। एकाद छोटीसी रक्तवाहि-नियोंको इजा होनेसे उसकी दीवालका संकोचन होकर थोडे क्षण में जब संकोचन निकल जाता है तब रक्तकी गुठली बनकर रक्तप्रवाह बंद हो जाता है। यह क्रिया मज्जारज्जुके आसरखे होती है लेकिन इसमे मस्तिष्कीय क्रियासे संबंध नहीं है।

रुधिराभिसरण का रासायनिक तौरका नियमन

रुधिराभिसरण का रासायनिक तौरका नियमन दो पारस्परिक विरोधी तरकीबोसे होता है एक का कार्य संकोचन रूपका और दूसरीका कार्य प्रसरण रूपका होता है। **पहले तरकीब के द्रव्योंसे** प्रवर्तक प्रभाव का कार्य होता है। पीयुषग्रंथी–मस्तकपिंड (पिट्यु-टरी ग्रंथी) से पैदा होनेवाले **पिट्युइटेरिन** से सतत–निरन्तर ततिवर्धक या बलकारक संकोचन होता है; इसका असर क्षुद्र रक्तवाहिनियोपर होता है जिससे उनका संकुचन होता है और उनकी प्रवेशक्षमता झिरपन कम होती है। मूत्रपिंडके परिधिके ऊर्ध्व भाग के पिंड से पैदा होनेवाले **ऐडरीनलीनसे** यही क्रिया जोरदार शीघ्रसे और पोषक होती है। दूसरे **तरकीब** की द्रव्यें स्थानिक घटकोकी पेशियोसे होती है और इनका नमूना हिस्टेमाइन्स जैसा होता है ये द्रव्य नैसर्गिक चयापचय क्रियाओंमें पैदा होते हैं जिनसे सूक्ष्म रक्तवाहिनियो का प्रसरण होकर चयापचया क्रियामें जरूरी रक्त की भरती होती है **हिस्टेमाइन** सरीखे पदार्थोंका कार्य त्रिगुणा जैसा त्रिगुणी संवादि क्रिया जैसा होता है:—(१) प्राथमिक और स्थानिक प्रसरणः (२) केशवाहिनियोंकी दीवालो का स्थानिक झिरपन मे बढाव : (३) नजदीकें की सूक्ष्म रोहिणियोका प्रसरण जो स्थानिक मज्जा परिवर्तनसे पैदा होता है। यह त्रिगुणी संवादि क्रिया असलमें चमडी, शुक्लास्तर और नेत्रके आन्तर भागमें ज्यादह तौरसे मर्या-दित होती है;और इस तीसरे भागका महत्त्व विकृत नेत्राभ्यन्तर का दबाव बढाने में होता है।

पूरी त्रिगुणा संवादिक्रिया, पेशियोंकी ईजा हिस्टेमाईन को पैदा करने इतनी काबिल हो तो, दिखाई पडती है। तारकापर प्रहार करनेसे यह क्रिया जल्द आसानीसे पायी जाती

है ऐसा **ड्यूक एल्डर पंडित** का शोध है। खरगोश जैसे प्राणिमें जिसकी तारका धवल होती है उसके तारकापर प्रहार करनेसे उस प्रहार किये हुए भागमें की केशवाहिनीयोंका प्रसरण होता है और कुल भागकी क्षुद्र रोहिणीयों का प्रसरण होना है; रक्तवाहिनियों की

चित्र नं.३३९

नैसर्गिक सुपेद खरगोशकी तारकाके सामनेके पृष्ठपरकी रक्तवाहिनीया (-चित्रमेंकी रक्तवाहिनीया संकुचक स्नायुके भागकी क्षुद्र रोहिणीया हैं (अ) और तारकाके परिधिभाग की रक्तवाहिनीयां बडे वर्तुलसे बतलाई हे।

चि. नं. ३४०
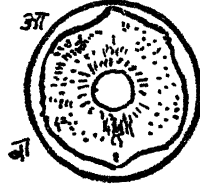
तारकाके **आ बा** भागको प्रहार करनेसे पैदा होनेवाली रक्तवाहिनीयोंकी रक्ताभिनयता।

चित्र नं. ३४१
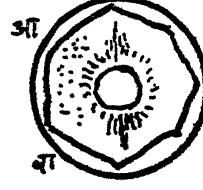
नेत्रको कोकेनसे सुन करनेके पश्चात (**आ बा**) भाग की रक्ताभिक्यता

दीवालोंमेंसे झिरपन ज्यादह होता है; इसका सबूत यह होता है कि उस प्राणिको ट्रिपान ब्ल्यु जैसा प्रतिस्फटिक द्रव्य देनेसे वह उसके पूर्व वेश्मनीमें जल्द दिखाई पडता है। इसके साथ तापका प्रमाणही बढ जाता है।

रुधिराभिसरण को रुकावट होनेसे जो प्रतिक्रियारूप रक्तसंचय होता है वह चयापचय जल्द प्रसरणकी मिसाल होती है। विसर्जनशक्ति (ताप, प्रकाश और पराकासनी विकिरण) से चयापचय क्रियामें केशिनियोंका प्रसरण दिखाई पडता है।

बेसंवादि और दुर्गलनीय अवस्थाः—हिस्टेमाइन पैदा होनेके बाद रक्तवाहिनियोंका प्रसरण और साथसाथ जो झिरपनकी बढती होती है तब रक्तवाहिनियोंका संकुचन करना संभाव्य नहीं होता क्योंकि ऐडरीनलिन जैसे रक्तवाहिनियोंका संकोचनकारक पदार्थके इस्तेमालसे कुछ भी असर नहीं दिखाई देता। इसी अवस्थाको बेसंवादि अवस्था कहते हैं। और इसके साथ साथ केशिनियोंकी झिरपन की अवस्था ज्यादह नहीं बढा सकते (दुर्गलनिय अवस्था)।

नैत्राभ्यन्तरकी रक्तवाहिनियोपर कुछ दबाओका परिणाम का संशोधन **लामन, ड्यूक एल्डर** आदि शास्त्रज्ञोने किया है उनका सार यह हैं; (१) **ऐडरीनलीनसे** छोटे मात्राओमें कृष्णमंडल की केशिनीयोंका प्रसरण और मोठे मात्राओंसे संकुचन होता है; (२) **पिटयुइटरीन** से क्षुद्र रोहिणीयोंका और केशिनीयोंका संकुचन होता है; (३) **हिस्टामाईनसे** क्षुद्र रोहिणीयोंका सकुंचन और केशिनीयोंका प्रसरण होता है; (४) **डायोनिनसे** सब बारिक रक्तवाहिनीयोंका प्रसरण होकर ज्यादा झिरपन होता है:(५) **कोलीन** तथा **एसिटिल कोलीन** से छोटे रक्तवाहिनियोंका प्रसरण होता है लेकिन पहले **अट्रोपीन** डाला हो तो संकुचन होता

है : (६) **अट्रोपीन** से नेत्राभ्यन्तरीय केशिनीयोंका प्रसरण होता है और प्रवेशक्षमता बढती है : (७) **फायसोस्टिगमीनसे (एसरीन)** नेत्राभ्यन्तरीय केशिनीयोका प्रसरण : (८) **पायलोकारपिनसे**· रक्तवाहिनियोका प्रसरण : (९) **कोकेनसे** थोडा संकुचन होता है।

केशिनियोंकी झिरपनशीलता

साधारण तौरसे कह सकते है कि केशिनियोकी दीवाले प्रातिस्फटिक जैसे द्रव्योंकी सापेक्षतासे झिरपनशील नहीं होती और जल, स्फटिक और हवा को ज्यादह झिरपनशील होती हैं। लेकिन इस व्यापक नियमके स्वीकारको मर्यादा है; कोनसा ही जीवन पत्र (बायालाजिकल मेमब्रेन) पूरी तौरसे अर्ध झिरपनदार नहीं होता है; और केशिनियोंकी झिरपनशीलतामें भिन्न भिन्न वर्गके प्राणियोमे फेर दिखाई पडता है।यकृत की केशिनियां प्रातिस्फटिक पदार्थोंको आंत्र की श्लेष्मल त्वचा की अपेक्षा ज्यादह झिरपनशील होती है। और नेत्रकी केशिनिया ज्यादह बेझिरपनदार होती है। नेत्रकी घटकोंकी सापेक्ष बेझिरपनशीलता नेत्राभ्यन्तरके जलमें प्रोतीनयुक्त द्रव्योंका प्रवेश न होनेके लिये ज्यादह होती है। झिरपनशीलता बढनेसे रक्तमेके प्रातिस्फटिक द्रव्य नेत्रकी वेश्मनीमे प्रवेश करेंगे।

अध्याय २५

नेत्रमेंकी चयापचय क्रिया (दी मेटाबॉलिझम आफ दी आय)

कुलविसर्जन शक्तिका नेत्रमेंका पारस्परिक आदान प्रदान

नेत्रमें कुल विसर्जन शक्तिका जो आदान प्रदान होता है (टोटल एनर्जी एक्सचेंज) उसकी साधारण कल्पना नेत्रमे जानेवाले पौष्टिक द्रव्य और उसके बाहर आनेवाले द्रव्योंकी तुलनासे कर सकते हैं। उसका पूर्णतया पृथक्करण करनेके लिये काबिल ऐसा पूरा ज्ञान अभी भी जमा नहीं हुआ है लेकिन जो कुछ खबरें मिली है उन परसे साधारण अनुमान कर सकते हैं।

कानेको पंडितनें (१९२५) शाईसोख कागजपर आवर्त नीलाओंमे से बाहर आनेवाले रक्त को जमा करके उसका वजन नापा। **फिशर** पंडितने (१९३०) ऐसा अनुमान किया था कि खरगोशमे के कृष्णमंडलमें से एक दिनमें जो **रक्त का प्रवाह** हुआ था वह १·७ लिटर (३ पाइन्टस) था। नेत्रमेके थोडे घटको को ही रक्त की भरती होते हुए भी नेत्रमेंका रक्तप्रवाह काफी है यह बात ख्यालमे रखना जरूरी है। **फिशर** पंडित के संशोधन से (१९३०) मालूम होता है कि इसी अवस्थामें भी नेत्रमे **आक्सीजन** का इस्तेमाल हर मिनट को ६४ सी. सी या २४ घंटे में १३६ **मिलिग्राम** इतना होता है और यह प्रमाण मूत्रपिंडमें के आक्सिजन के इस्तेमाल के बराबर है। उन्होंने ऐसा और एक शोध लगाया कि तारकापिधानमेंसे हर दिनको नेत्रमें ११ मि. ग्रा. आक्सीजन का शोषण होता है।

मातृका रोहिणी और आवर्त नीलाओंमें के रक्त मे के शक्कर के प्रमाणमें का फर्क ०·००९ से ०·०३९ मि. ग्रा. प्र. सै. इतना होता है यानी, हर दिनमे **कारबोहायड्रेट** के इस्तेमाल का औसत प्रमाण ०·३८ ग्राम होता है। मातृका रोहिणी की अपेक्षा आवर्त नीलाओंमें लाकटिक आसिड का प्रमाण जो बढकर दिखाई पडता है उस परसे इस शक्कर के आखरी नतीजाका अनुमान कर सकते है; इस परसे मालूम होता है कि ०·४३८ ग्राम कारबोहायड्रेट मेंसे ०·२३८ ग्रामका लाकटिक आसिड बनता है, और ०·१९ ग्राम के आखरी पदार्थोंमें (एन्ड प्राडक्टस) प्राणिलीकरण होता है। शक्कर से लाकटिक आसिड बननेकी (ग्लायकोलायसिस) क्रिया, अनएरोबिक रूपकी होती है, और शेष ०·२ ग्राम शक्करका प्राणिलीकरण होनेके लिये २१२ मि.ग्राम आक्सीजन की जरूर होगी;लेकिन रक्तमेंसे सिर्फ १३६ मि. ग्राम की भरती हो सकती है और ११ मि. ग्राम हवामेंके आक्सीजनकी तारकापिधानमेंसे भरती होना संभव होता है इससे साफ साफ मालूम होगा की नेत्रमें आक्सीजन का तुटवडा होता है। इस आक्सीजन के तुटवडाकी वजहसे नेत्राभ्यन्तर जलमें लाकटिक आसिड का प्रमाण ज्यादह दिखाई पडता है. और इसी वजहसे स्फटिकमणिमेंकी आन्तर स्वयं प्राणिलीकरण की प्रणालीकी जरूरी भासमान होती है।

इस जोडमें दृष्टिपटलका, जिसकी रुधिराभिसरण की प्रणाली स्वतंत्र होती है, विजार नहीं किया है; लेकिन पुरावा है कि उसमेंकी कारबोहायड्रेड की चयापचय क्रिया

सारिणी (२१)

घोडेके नेत्राभ्यन्तर जल की आम रासायनिक रचना ड्यूक एल्डर के संशोधनके अनुसार। हर ४०० सी. सी. मे ग्राम के प्रमाण

	चाक्षुषजल	स्फटिक द्रवपिंड	रक्तरस
द्रवाश भाग	९९.६९२१	९९.६८१३	९३.३२३८
घन द्रव्य सूके१००° सेन्टीग्रेड	१.०८६९	१.१०८७	९.५३६२
कुल प्रोतीन	०.०२०१	०.०६६२	७.३६९२
अलब्यूमिन	०.००७८	०.००७७	२.९५५७
ग्लाब्युलिन	०.०१२३	०.०११५	४.४१३५
म्युकोप्रोटीन	——	०.०२११	—
अवशिष्ट रेसिड्युअल प्रोतीन	——	०.०२५०	—
फाइब्रिनोजेन	अल्पांश	अल्पांश	+
विषघ्न द्रव्य इम्यून बाडीज	अल्पाश	अल्पांश	+
खमीर	अल्पाश	अल्पांश	+
चरबीदार पदार्थ	०.००४	०.००७	०.१३
कोलिस्टेराल	अल्पांश ?	०.००६०५	कुछ प्रमाण
नान प्रोतीन. N	०.०२३६	०.०२६४	०.०२२९
कुल N नायट्राजिनस	०.०२६९	०.०३०१	—
यूरीया	०.०२८	०.०२९	०.०२७
अमिनो असीडस	०.०२९	०.०३०	०.०३५
क्रियाटिनिन	०.००२	०.००१	०.००२
आरगैनिक असिडस(जैव)अम्ल	अल्पाश	अल्पांश	—
शर्करा–शुगर	०.०९८३	०.०९७३	०.०९१०
सोडियम	०.२७८७	०.२७३१	०.३३५१
पोटयाशियम	०.०१८९	०.०१९२	०.०२०१
कैलसियम	०.००६२	०.००६८	०.०१०१
मैगनेसियम	०.००२६	०.००२०	०.००२८
क्लोरीन	०.४३७१	०.४१६८	०.३६६४
इनआर गै. फा (P_2O_5)	०.००३३	०.००३१	०.००३०
इनआर गै.सल्फ (SO_4)	०.००६१	०.००६२	०.००५८
अमोनिया	०.००३	—	
लाकटिक असिड	०.०२	—	
आक्सीजन	२०–४० मि.मि. ७० vol %	—	
कुल कारवान अम्ल (CO_2)	७१ vol %	—	
	६०.७० vol %	—	
	४७.५ vol %	४३.७vol%	

ज्यादह शीघ्र स्वरूपकी यानी तारकामेंकी यही क्रियासे दुगने बल की होती है। तारकापिधान-मेंसे हवामेंके आक्सीजन का शोषण होता है। नेत्राभ्यन्तर जल और स्फटिकद्रवपिंडमें जो श्वासोच्छ्वास होता है वह बिलकूल क्षुद्र स्वरूपका होता है;इससे यह अनुमान निकाल सकते हैं कि कुलचयापचय की क्रिया कृष्णमंडलमें और स्फटिकमणिमेंही होती है। स्फटिकमणि निकाले हुए नेत्रपरके प्रयोगोंसे इन दो घटकोंके सापेक्ष कार्यकी कल्पना कर सकते हैं। स्फटिकमणिपर जो कुछ प्रयोग किये हैं उनपरसे मालूम हुआ है कि नेत्राभ्यन्तर जलमें लाक-टिक आसिडका प्रति सेंकडा प्रमाण बहोतही कम होता है। और नेत्रमेंकी कुलचयापचयकी क्रियामें स्फटिकमणिका बहुत बडा हिस्सा होता है।

नेत्राभ्यन्तर जल

प्राकृतिक—तौरसे—विचार करें तो नेत्रकी रक्तवाहिनियोंमेंका द्रवांश के सिवा उसमेंके अन्य जलांश यानी पूर्व और पश्चिमी वेश्मनीमेंका जल, स्फटिकद्रवपिंड और अन्य घटकोंमेंका जलांश एकही प्रणालीके—समघटकोंके—भाग मानना चाहिये। ख्यालमें रखना कि **चाक्षुषजल** इस नामका संबंध शारीर शास्त्रसे है न की इन्द्रिय विज्ञान से।

नेत्राभ्यन्तरजलकी रासायनिक रचना

इस विषयका विचार सबसे पहले **बरझेलियस** पंडितने १८३२में किया। उनके पश्चात अनेक शास्त्रज्ञोंने इस विषयका संशोधन किया है। सारिणी २१ के शोध इस विषयका संशोधन करनेवाले **ड्युक एल्डरके** है। इन्होंने सन १९२७ इस विषयपर एक स्वतंत्र लेख प्रकाशित किया है। इन्होंने जानवर घोडेपर जो प्रयोग किये हैं उनपरसे मालूम होता है कि घोडेमेंके चाक्षुषजल और स्फटिकद्रवपिंडमें के जलांशमें रक्तरसमेंके सब घटक पाये जाते हैं। रक्तरसके एकसौं (१००) सी. सी. में द्रवांशका प्रमाण ९३·३२३८ और घनपिंडोंका प्रमाण ९·५३६९ होता है; और चाक्षुषजलमें द्रवांश तथा घनपिंडोंका प्रमाण ९९·६९२१ और १·०८६९ होता है और स्फटिकद्रवपिंडमें यही प्रमाण अनुक्रमसे ९९·६८१३ और १·१०८७ होता है।

इस संशोधनसे मालूम होता है कि नेत्राभ्यन्तर जलमें रक्तरस के सब घटक उसीके प्रमाणमें पाये जाते हैं। इनका सापेक्ष समहार तौरसे विचार करें तो उनके, अणूओंके भौतिक द्रावणके अनुसार तीन वर्ग होते हैं:—प्रतिस्फटिक कोलाईड्स अनायनीकृत और आयनीकृत मणिभीयद्रव्य (क्रिस्टलाईड्स)।

प्रतिस्फटिक (कोलाईड) द्रव्य

प्रतिस्फटिक वर्गके सब पदार्थ—नत्रप्रचुर पदार्थ (प्रोटीन्स), चर्बीदार, संरक्षक और फेनिकार पदार्थ (फैटस, इम्यूनबाडीस एन्ड फरमेन्टस) नेत्राभ्यन्तर जलमें मिलते हैं, लेकिन उनके समाहारका प्रमाण रक्तरसकी अपेक्षा कम होता है।

कोलाइड्स अणु—समूह दशा; पदार्थकी वह दशा जिसमें वह किसी द्रवमें छोटे छोटे अणुसमूहोंके रूपमें बिखरा रहता है। ये समूह साधारण छन्नोंमेंसे तो निकल जाते हैं परन्तु **चमडे इत्यादि की झिल्लियो में से नहीं छन सकते।**

(अ) **नत्रप्रचुर पदार्थ** (प्रोटीन्स)का अस्तित्व नेत्राभ्यन्तरजल में पूरी तौरसे शाबित हुआ है, इतनाही नहीं बल्कि उनके सब प्रकार (अलब्युमेन, ग्लाब्युलेन फायब्रिनोजेन) उसी सापेक्ष प्रमाणमे पाये जाते हैं। गाय और खरगोश के घनपिंडोका औसद प्रमाण अनुक्रमसे रक्तरसमें—चाक्षुषजलमें ७.५३ और ५.५७, ०.०१७और ०.०४ होता है। रक्तवाहिनियोमेंसे नेत्रमे जानेमें उनमे कुछ भी फर्क नहीं होता ।

संशोधकोंने इनका विश्लेषण भौतिक और रासायनिक पद्धतियोसे किया है। भौतिक पद्धतियोंमें वक्रभिवन गुणक, गाढत्व (द्रवोका गाढापन), और पृष्ठीय खिंचाव इनका इस्तेमाल किया है; और रासायनिक पद्धतियोमें **एसबाक** के प्रतिकारक (रिएजन्ट) से, नत्राम्ल, ट्रायक्लोर असेटिक अम्ल, सल्फो सालिसिलिक अम्ल आदिसे प्रक्षेपण, और **सूक्ष्म (मायक्रो) जेकुढाल** पद्धति इनका इस्तेमाल किया है।

(ब) **संरक्षक पदार्थ** (इम्यूनबाडीज) ये कुछ सूक्ष्म अंशमें मिलते हैं। ये पदार्थ भी नत्रप्रचुर द्रव्योंके जैसे ही प्रतिस्फटिक रूपके होते हैं। हालके संशोधनसे पता लगा है कि संरक्षित प्राणियोके नैसर्गिक चाक्षुषजलमें इन संरक्षक पदार्थोंका प्रमाण नत्रप्रचुर द्रव्योंके समाहार जैसाही दिखाई पडता है।

(क) **फेनिकार पदार्थ**—खमीर (फरमेन्टस) संरक्षक पदार्थ जैसे ही सूक्ष्म अंशमें मिलते हैं और ये नत्रप्रचुर द्रव्योंके साथी रहते हैं।

पारप्रसरण होनेवाले पदार्थ

इन पदार्थोंके घोलमेंके इआन्स से विद्युत कार्यसे **सहयोग करनेवाले**, या विभक्त होनेवाले यानी **असहयोग** करनेवाले, ऐसे दो वर्ग होते हैं।

(अ) सहयोग करनेवाले (नान् डिसोसिएटेड) पार प्रसरणदार पदार्थ

सहयोग करनेवाले पार प्रसरणदार पदार्थ नेत्राभ्यन्तरजल और रक्तरस इन दोनोंमें समप्रमाणमें बटे हुए होते है ऐसा शोध लगा है। इस वर्गमें शक्कर, यूरीया और अनत्रप्रचुर नाइट्रोजन संयुक्त द्रव्य ये असली पदार्थ होते हैं।

नेत्राभ्यन्तर जल के एक सौ सी. सी. ग्राम (१००) के घोल में अनुक्रमसे शक्कर के घोल का प्रमाण ०.०९८३ ग्राम, यूरीया के घोल का प्रमाण ०.०२८ ग्राम, और अनत्रप्रचुर नाईट्राजिनस के घोल का प्रमाण ०.०२३६ होता है तो रक्तरस के एक सौ (१००) सी. सी. ग्राम के घोलमें शक्करका प्रमाण०.०९१० ग्राम, यूरिया के घोलका प्रमाण ०.०२७ ग्राम, और अनत्रप्रचुर नाईट्राजिनसके घोलका प्रमाण ०.०२३९ ग्राम होता है।

लैक्टिक अम्ल का (दुग्ध से बनाया जानेवाला अम्ल विशेष जौ औषधी की तरह काममें लाया जाता है) चाक्षुषजल में का प्रमाण २० से २४ मि. ग्रा. प्र. सै होता है तो रक्त में के लैक्टिक अम्ल का प्रमाण १५ से १८ मि ग्रा प्र. सै. यानी बढकर होता है। **शाब्रश फिशर** ने शोध लगाया है कि स्फटिक मणिवाले नैसर्गिक नेत्र में लैक्टिक अम्ल के समाहार का प्रमाण जिसमेंका स्फटिकमणि निकाला है ऐसे नेत्र में के लैक्टिक अम्ल के प्रमाण की अपेक्षा बढकर होता है। नैसर्गिक नेत्रमें २० से २८ मि ग्रा प्र. सै. हो तो निर्मणि नेत्र

में १४ से १९ मि. ग्रा. प्र. सै. होता है । लैक्टिक अम्ल का प्रमाण बढकर होने की वजह यह होती है कि स्फटिकमणि में ग्लायकोलिटिक क्रिया (ग्लायकोजिन पदार्थ का पृथक्करण की क्रिया) ज्यादह जोरदार होती है; और एक बात भी ख्यालमें रखना की दृष्टिपटलमेंकी चयापचय क्रिया का भी इसमें असर होता है ।

(ब) असहयोग करनेवाले पार, प्रसरणदार पदार्थ

असहयोग करनेवाले पार–प्रसरणदार पदार्थोंका बटाव असम हुआ है ऐसा मालूम होता है। ऋण आयन का (सोडियम, पोट्याशियम, कैलसियम और मॅगनेसियम) पार्थक्य गुणक $>$ १ (पार्टिशन कोइफिशन्ट), और घन आयन (क्लोराइडस, फासफेटस, सलफेटस) का पार्थक्य गुणक $<$ १, होता है यानी नेत्राभ्यन्तर जलमें रक्त रस की अपेक्षा ऋणायन का समाहरण घनायन के समाहरण से कम होता है

नेत्राभ्यन्तर जल के भौतिक गुणधर्म

नेत्राभ्यन्तर जल के भौतिक गुण धर्मोंमें विशिष्टगुरुत्व, वक्रीभवन गुणक, पृष्ठीय खिंचाव (सरफेसटेनशन) गाढापन (व्हिसकासिटी), वाहकता (कनडक्टिव्हिटी) आभिसारक दबाव (आसमाटिक प्रेशर) ये होते हैं। **विशिष्टगुरुत्व** (वह संख्या जो यह बतलावे की अमुक वस्तु पानीसे कितने गुना भारी है) पानीसे थोडा ही बढकर होता है। पानीका प्रमाण एक हो तो मनुष्यमे नेत्राभ्यन्तर जलका यह प्रमाण १·००२ से १·००९ होता है ।

वक्रीभवन गुणक—(रिफ्रैकटिव्ह इन्डेक्स) इस जलका वक्रीभवन गुणक मनुष्यमें १·३३३६६ से १·३३७०० होता है । **पृष्ठीय खिंचाव** सरफेसटेनशन-चाक्षुप जलका पृष्ठीय खिंचाव रक्तजीवन बीजरस(प्लाझमा)या रक्तके पृष्ठीय खिंचावसे बढकर होता है लेकिन पानीके पृष्ठीय खिंचाव या तनाव से कम होता है (जल ६०·४, जीवनबीजरस ५७ पानी ७६·८) **गाढापन** व्हिसका सिटि पानीसे ज्यादह और रक्तसे कम होता है। **वाहकता** (कंडक्टिव्हिटी) इसमें तापके अनुसार फर्क होता है । रक्तरससे तुलना करनेसे मालूम होता है कि चाक्षुष-जलकी वाहकता रक्तरससे ज्यादह होती है : इसकी वजह यह होती है कि रक्तरसमें प्रति-स्फटिक घटकोंका प्रमाण ज्यादह होता है ।

अभिसारक दबावः—(आसमाटिक प्रेशर) रक्तजीवनबीज रसमें अप्रसरणदार पदार्थोंका प्रमाण ज्यादह होनेसे उसका अभिसारक दबाब चाक्षुष जलके अभिसारक दबावसे पारद के २० से ३० मि. मि. इतना ज्यादह होता है । नेत्राभ्यन्तर जल का अभिसारक दबाव केशिनियो के रक्तजीवन बीजरस से कम होता है।

नेत्राभ्यन्तर जलका अभिसारक दबाव

नेत्राभ्यन्तरजलके अभिसारक दबावका नापन की तीन पद्धतिया होती हैं:—(१) **भौतिक पद्धति हिमांक पद्धति** जिसमें हिमांक (फ्रीझिंग पाईन्ट)-को और कमतर करनेकी कोशिश की जाती है । इस पद्धतिमे गलति ज्यादह होती है क्योंकि नापन के लिये नेत्रमें का जल का प्रमाण बहुत कम मिलता है । इस पद्धतिसे पहलेके संशोधकोंके मतानुसार चाक्षुषजल रक्तके निस्सारक दबावसे ज्यादह दबाव का(हायपरटानिक)(११ : १०) होता है।

(२) **जीवन शास्त्रीय पद्धति–कोषाभिसरण पद्धति** (प्लाझमोलायसिस):–इस पद्धतिकी नींव रक्तके लाल कणोमेंका द्रवोंका अभिसरण देखना यह होती है। इसमें भी अचूकता नहीं दिखाई देती। पहले के संशोधकोंके मतानुसार भी चाक्षुषजलका दबाव रक्तके निस्सारक दबावसे ज्यादह दबाव था; लेकिन आधुनिक संशोधकोंके (**रोमर १९०७** रिसलिंग १९०८) मतानुसार चाक्षुषजल रक्तरससे समाभिसारक (आयसोटानिक) होता है।

(३) **प्रत्यक्ष पद्धति** (डायरेक्ट मेथड) जिसमें प्राणिके नेत्राभ्यन्तर जलकी उसीके रोहिणी नीलाओंमेके रक्तरससे तुलना की जाती है। यह नापन एक सूक्ष्म अभिसरण मापक-यंत्र (मैक्रो मैनोमिटर चि. नं. ३४२) से किया जाता है।

चित्र नं. ३४२
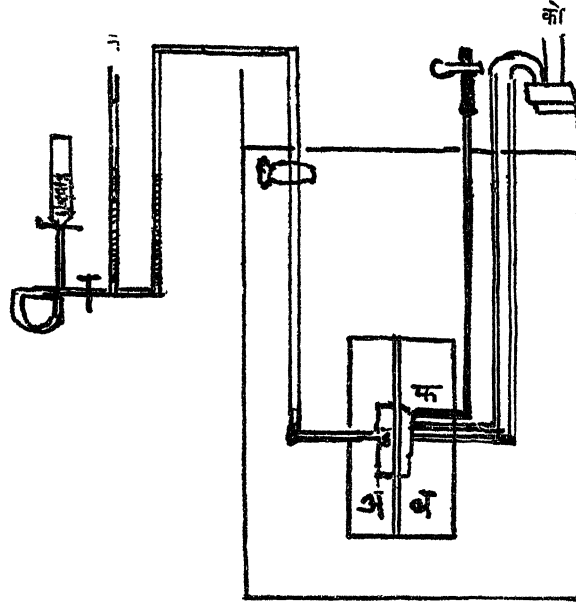
डयूक एल्डर का चाक्षुष जलके लिये सूक्ष्म अभिसारण मापक यंत्र
(मायक्रो आस्मा पिंटर)

इस यंत्रके सेलमेके सेलोफेन झिल्लीमेके (अ) की ओरको रक्तजीवन रस (प्लाझमा) रखा जाता है और झिलीके ब की ओरको चाक्षुषजल रखा जाता है। यह झिल्ली प्रतिस्फटिक घटकोंको अभेद्य होनेसे दोनो नलोमेंके प्रतिस्फटक घटकोंका सापेक्ष जमाव के प्रमाणसे दोनों जलमेके अभिसारक दबाव भिन्न होनेसे उनकी नोंध प्रत्यक्ष तौरसे मैनोमिटरमें (न) होती है, इस अवजार की कारवाई हिफाजतसे करनेसे दोनों ओरके जलोमेके प्रमाणमें फर्क नहीं होता। जलोमेके स्फटिक घटक झिल्लीमेंसे पार जा सकते हैं जिसकी वजहसे झिल्लीके दोनो ओरको उनका वितरण होकर अभिसारक संतुलित अवस्था पैदा हो सकति है; इसी लिये प्रयोग के पहले चाक्षुषजलमेंके स्फटिक घटकोंके जमाव का प्रमाण नापकर प्रयोग के बाद चाक्षुषजलमेंकी उनकी संतुलित अवस्था का प्रमाण नाप कर रखते हैं। इसमेंके **असहयोग करनेवाले स्फटिक घटकोंका जो ग्लुकोज (अंगुरीशर्करा) तरहके होते हैं नापनका**

प्रमाण रासायनिक पद्धतिसे निकाल सकते हैं और आयनीकृत क्षारोंका प्रमाण उनकी विद्युत वहनशक्ति विद्युत मार्गद्वार (फ)ले करते है,जो **कोहाल राऊष्क** के अवजारसे (को)ल्गाने है।

इसके यह फल दिखाई देते है कि इसमें अप्रसरणशील पदार्थ ज्यादह प्रमाणमे होनेसे नेत्राभ्यन्तरजलसे रक्तजीवनरस का २० से ३० मि. मि. इतना ज्यादा दबाव होता है, खास प्रमाण रक्तरसके प्रतिस्फटिक घटकोंकी समाहृत अवस्था (कानसेनट्रेशन) पर अवलम्बित होता है। नेत्राभ्यन्तर जलका अभिसारक दबाव केशिनीयोंमेंके रक्तजीवनरससे कम होता है

नेत्राभ्यन्तरजल की प्रतिक्रिया (रीएकशन)

नेत्राभ्यन्तरजल रक्तसे ज्यादह अम्ल होनेसे अम्ल तथा क्षारके उदासीन बिन्दुके थोडे क्षारकी ओरको झुकता है इसका दिग्दर्शन **सोखसेन** के काबिल संख्यालेखनमें p. H. ७·१ से ७·३ कर सकते है। नीलाओंमेंका रक्त रोहिणीयोंमेके रक्तसे थोडा ज्यादा अम्ल होता है p H ०·०१ से ०·०४ इतना कम होता है।

p H में रक्तके अनुसार फर्क होता है। नेत्राभ्यन्तरजल लिटमस कागज को क्षारीय होता है; फिनाल थालियनसे कुछ फर्क नहीं दिखाई देता।

अप्राकृतिक नेत्राभ्यन्तर जल

नेत्राभ्यन्तर जलके रचनामें जो कुछ परिवर्तन दिखाई पडते हैं वे दो वर्गमेंसे कोनसे भी एक वर्ग के होते है; (अ) केशिनियोंकी दीवालोकी प्रवेशक्षमता के फर्कोंपर अवलम्बित होनेवाले परिवर्तन (ब) रक्तकी रचनाके फर्कोंपर अवलम्बित होनेवाले परिवर्तन।

अ केशिनियोंकी दीवालोंकी प्रवेशक्षमता के फर्क

नेत्रकी केशिनियोंकी दीवालोंकी प्रवेशक्षमता किसी ही वजहसे बढी हो साधारणतया नेत्राभ्यन्तरजल की रासायनिक रचनामें और उसके भौतिक गुणधर्मोंमें निश्चित फर्क होते हैं, और ये किसीभी कारणसे पैदा हुए हो, एक समान होते हैं; ये फर्क होनेके कारण नेत्राभ्यन्तर दबाव यकायक कम होनेसे केशिनियोंकी दीवालोंका तनाव तात्विक तौरसे कम होना, या रक्तवाहिनियोंका प्रसरण करनेवाली मज्जामय प्रतिक्रिया, या उनके दीवालोंपर दवाओंकी प्रतिक्रिया या बाहरसे शरीरमे प्रवेश किये हुए या शरीरमे ही विकृति जनित जहरोंकी प्रतिक्रिया इस रूपके होते है। इस तरहसे पैदा हुआ नेत्राभ्यन्तरजल नैसर्गिक जलसे भिन्न होता है, यह रक्तजीवनबीजरसदार होता है। और इसी वजहसे इसको रक्तजीवनरस दार नेत्राभ्यन्तरजल (प्लाझमाईड इन्ट्राआक्युलर फ्लुईड) कह सकते हैं। यह रक्तजीवनरस दार नेत्राभ्यन्तरजल नेत्रकी वेश्मनीयोंमे और उसके अन्य घटकोंमे जैसे कि तारकातीत पिंडीय कला तहकी नीचे, तारकामें और कृष्णपटलके नीचेके अवकाशमें नत्रप्रचुरजल जैसा जमा होता है। उसकी रचनामें दिखाई देनेवाले फर्क इस तरह होते हैं:—

(अ) प्रतिस्फटिक पदार्थोंका (जिनका पार प्रसरण नहीं होता—नान डिफ्युझिबल) प्रमाण ज्यादह बढ जाता है : नत्रप्रचुर पदार्थ—प्रोटीन्स; कोलेस्टेएल, संरक्षक पदार्थ इन सबका प्रमाण बढ जाता है।

(ब) पार प्रसरण होनेवाले पदार्थ जैसे की शक्कर इनके समाहारमें कुछ फर्क नहीं होता।

(क) क्लोराईड जैसे ऋण आयनवाले पदार्थ कम होते हैं और सोडियम जैसे धन आयनवाले पदार्थ बढ जाते हैं।

इसी तरहसे भौतिक गुणधर्मोंमे फर्क होता है : विशिष्टगुरुत्व वक्रीभवन गुणक, पृष्ठीय खिंचाव सब बढ जाते है गाढापन बढ जाता है लेकिन वाहकताका प्रमाण कम होता है, नीचेके सारिणीमेके फल ड्यूक एल्डर के है।

सारिणी २२

	नैसर्गिक नेत्राभ्यन्तर जल	जीवनबीज रक्तरसदार नेत्राभ्यन्तर जल	दोनोंमेका फर्क
नत्रप्रचुर………	०·०४	२·५	+ २·४६
शक्कर…………	०·१६५	९·१७२	+ ०·००७
क्षार–क्लोराईड……	०·५००	०·४२१	– ०·०७९

चाक्षुषजल की रासायनिक रचना केशिनियोंकी दीवालोंकी प्रवेशक्षमतापर अवलम्बित है न की रक्तका दबाव और वेश्मनीमेके दबावके फर्कोंपर अवलम्बित है।

ब रक्तके (रासायनिक) रचनाके फर्क

जब रक्तकी रासायनिक रचनामे, उसके नैसर्गिक पदार्थोंके समाहारमे बदल करनेसे या उसमे नये पदार्थ मिलानेसे जो फर्क किया जाता है उसका असर नेत्राभ्यन्तर जलमें इस तरहका होता है :(१) **प्रतिस्फाटिक पदार्थ** दिखाई पडे तो बिल्कुल आंशिक प्रमाणमें पाये जाते है। लेकिन केशिनियोंकी पारप्रसरणशीलता बढानेसे ये प्रतिस्फटिक ज्यादह प्रमाणमे नेत्रमे जाते है।

(२) **पार प्रसरणवाले पदार्थ जो आयनीकृत नहीं होते** नेत्रमे जल्द जाते है और उनका प्रमाण या समाहार जीवनबीज रक्तरस जैसा होता है। मधुमेह जैसे विकृतिमे जलमें शक्करका प्रमाण बढ जाता है ऐसा अनुभव है; रक्तमेके प्रमाणके अनुसार चाक्षुष-जलमें वह बढ जाती है।

(३) पारप्रसरण कारक पदार्थ जिनका आयतीकरण होता है उनका कार्य उनकी विद्युत अवस्था के अनुसार होता है। ऋण विद्युत संचारित **एनियान्स** जैसे कि क्लोराइड-क्षार नेत्रमें शीघ्रतासे घुस जाते है : घनविद्युत संचारित **केटियान्स** जैसे, नेत्रमें इतने जल्द नहीं जा सकते।

नेत्राभ्यन्तरजलका स्वरूप

नेत्राभ्यन्तरजलके स्वरूप संबंधीका वाद बहुत दिनसे चल रहा है। पहले जमानेके संशोधन इसको तारकातीतपिंड की कलातहका आश्राव मानते थे और जिसका अनुवाद अभिभी कैक संशोधक करते है। इसके अलावा दूसरी मतप्रणालीके अनुसार चाक्षुषजल रक्तसे साधे पारजानेकी क्रियासे बनता है। वीसवे सदी के शुरूआतमें दोनों मतप्रणालीके दृष्टिविशारद सम प्रमाणमे थे। **आश्राव की कल्पनाको** शारीर शास्त्रीय पुरावा **निकाटि कालिन्स** (१८९१–१८९६) शास्त्रज्ञोने लाया और उसको ऐन्द्रिय शास्त्रीय पूरावा की

जोड **लिओबार्ड हिल** और **सिडल** के संशोधनसे (१९१२–१९१८) मिली । **छाननकी कल्पना** का पूरावा संशोधक **लेबर** और उनके अनुयायीओंने निकाला, और उसका अनुवाद **पारसन** (१९०३) **हेन्डरसन** और **स्टारलिंग** (१९०४–०६) और **वेसले** (१९०४–११) पंडितोंने किया । लेकिन इन दोनो कल्पनाओंके विरुद्ध आपत्ती निकाली गयी थी । आखिरमें हालमें भौतिक रासायनिक पद्धतियोंका जीवन शास्त्रीय संशोधनमे इस्तेमाल होनेसे तीसरे और पूर्णतया अखंडनीय कल्पनाका–**नेत्राभ्यन्तर जल पार पृथक् हुआ जल होता है, और जो केशिनीयोंके रक्तसे संतुलित अवस्थामें होता है,** जारी हुई । इस तरहकी कल्पनाका प्रसार **मेजिटाट** संशोधकने पहले पहल (१९१७) किया, और इस कल्पनाका ज्यादह संशोधन **ड्यूक एल्डरने** (१९२७) किया ।

१ पारपृथक्करण की कल्पना

पंडित पारसन की **पारपृथक्करण** कल्पनानुसार जिसका **ड्यूक एल्डरने** बहुत विस्तार किया है नेत्राभ्यन्तरजल (चाक्षुषजल) और केशिनीयोमेंका रक्त दोनो तापगत्यात्मक संतुलन (थर्मोडायनामिक इक्विलिब्रियम) अवस्थामे होते हैं, और नेत्राभ्यन्तर जल उसका पारपृथक्करण हुआ जल है और पृथक्करण करनेवाली झिल्ली केशिनियोंकी दीवाल होती है। **इसकी पैदाईश और इसकी चयापचय क्रियाकी शरीरके अन्य घटकोंके जलसे तुलना कर सकते है** और वह उनसे **नेत्रकी केशिनीयोंकी सापेक्ष प्रवेशक्षम हीनता की अनुसार इसमें होनेवाले गुणोंसे यह अन्य जलोंसे भिन्न दिखाई देता है** । शरीरके भिन्न भिन्न घटकोकी केशिनीयोंकी प्रवेशक्षमता खास इन्द्रियके जरुरी के अनुसार फर्क होता है और वह नेत्रकी केशिनीयोंमें जो पूरी तोरकी प्रवेशक्षम हीनता दिखाई देती है वह नेत्राभ्यन्तरजल को प्रतिस्फटिक घटकोंसे भिन्न रख कर, वह प्रकाशके संबंधमे समावयव तौरका रहे इस लिये जीवन शास्त्रीय संयोजनता जैसी होती है ।

पारपृथक् हुअे जलसंबंधी यहां संक्षिप्तमें विचार करना मुनासिब होगा । इसका पहले पहल शोधन लन्दन युनिव्हरसिटी कालेज के रासायनशास्त्रके प्राध्यापक **डोनान** ने किया था (१९११) । बडे अणूवाले प्रतिस्फटिक घटक और पारजानेवाले स्फटिक घटकों के बने हुअे मिश्रघोलका अर्ध प्रवेशक्षम झिल्लीसे संबंध होनेसे प्रतिस्फटिक घटकोंको रुकावट हो कर वे पीछे झिल्लीके इस पार रह जाते हैं और स्फटिकघटक और झिल्लीमेसे पार जाते हैं। आखिरमें ऐसी अवस्था पैदा होती है कि झिल्लीके दोनों ओरके घोलमें–पहलेका(प्राथमिक्क असली) घोल और पारपृथक् हुआ घोल–संतुलित अवस्था दिखाई देती है । रक्त इसी तौरका मिश्र घोल होता है और केशिनीयोंकी दीवाल इस तरहकी अर्ध प्रवेशक्षम झिल्ली होती है,जिसमेंसे प्रतिस्फटिक घटक पार नहीं जा सकते और चाक्षुषजल पारपृथक्करण हुआ जल होता है । जब संतुलित अवस्था पैदा होती है और यद्यपि प्रतिस्फटिक घटकोंको रुकावट होती है,यह मान सकते हैं कि पार जानेवाले क्षारोंका झिल्लीके दोनो ओरके जलमे समसमान विभाजन होता है; लेकिन पहलेके घोलमें ऋणविद्युत संचारित प्रतिस्फटिक आयनोका प्रमाण ज्यादह होता है और पार जानेवाले ऋणविद्युत संचारित आयनोंकी समन्वित संख्या झिल्लीमेंसे तापगत्यात्मक संतुलित आवस्था कायम रखनेके लिये झिल्लीमेसे फेके जाते है। पार न जानेवाले ऋण विद्युत संचारिक

प्रतिस्फाटिक आयन उनके संचारणको बेनासीर करनेके लिये घनविद्युत संचारित आयनो की समन्वित संख्या रख लेते हैं। इस नियंत्रणसे झिल्लीके दोनो ओरके स्वतंत्र तौरसे पार जानेवाले वाले आयनोंका समसमान विभाजन होनेमे रुकावट होती है और इसी वजहसे खास तौरकी अभिसारक और विद्युत परिणामोंकी घनता पैदा होती है।

ऐसी हालतमें नेत्राभ्यन्तरजल केशिनीयोंके जीवन रससे और विकृत अवस्थामें, पूर्णतया तापगत्यात्मक संतुलित अवस्थामे (थरमो डायनामिकल) होना चाहिये; यह संतुलित अवस्था रासायनिक, जलस्थित्यात्मक, अभिसारक और स्थिर विद्युतसंबंधी (केमिकल, हायड्रोस्टेटिक,आसमाटिक ऐन्ड इलेक्ट्रो स्टेटिक) होती है।इनका अब संक्षिप्तमें विचार करेंगे।

(१) रासायनिक संतुलन

ऐसा समझो कि पार पृथक्करण की झिल्ली (डायालायझिंग मेम्ब्रेन) बिलकुल अभेद्य जैसी है तो नेत्रमेंकी अवस्था सादी जैसी होगी : झिल्लीके एक ओरको (अ) रक्त है जिसमें प्रोतीन युक्त क्षार, विद्युतविच्छेद्य पदार्थ सोक्लो (Nacl) और अ–विद्युत विच्छेद्य पदार्थ होते है (इलेक्ट्रोलायटस ऐन्ड नान इलेक्ट्री लाईटस); प्रोतीन युक्त क्षारका-सो प्रो (NaP) प्रोतीन आयन प्रो (P) झिल्लीमेंसे पार नहीं जाता : झिल्लीके दूसरी ओरको (ब) चाक्षुषजल और अविद्युत पदार्थ होते हैं। चाक्षुष जल क्षारीय द्रावण (सो क्लो) होता है इन दोनोंके आयन झिल्लीमें से पार जा सकते है। इससे साफ मालूम होगा कि प्रो (P) (अ) ओरसे (ब) ओरको पार नही जा सकता और अविद्युत विच्छेद्य पदार्थ पार जा सकते हैं। लेकिन जब पदार्थ विद्युत संचारित होते हैं तब बात बिलकुल भिन्न होती है। यदि संतुलन

रक्त (अ)		चाक्षुष जल (ब)
झ (z)	प्रो–(P–)	
क्ष + य (z + Y)	सो+(Na–)	सो + (Na +) क्ष
य Y)	क्लो–(C–)	क्लो – (C –) क्ष

प्रस्थापित करना हो तो (ब) ओरसे (सो +) के एकग्राम अणूको उत्क्रमणीयतासे और समतापतासे (रिव्हरसीबली ऐन्ड आयसोयरमिकली (अ) ओरको ले जानेके लिये जरूरी विसर्जन शक्तिका प्रमाण (अ) ओरसे (क्लो–) आणूको इसी तौरसे लेजानेके लिये जरूरी विसर्जन शक्ति का प्रमाण जो पाया जायेगा उसके बराबर होना चाहिये।

इससे अनुमान कर सकते है कि झिल्लीके दोनो ओरको (अ, ब) केटियन्स और एनियन्स के जोडींके समाहरण का गुणन फल पारस्परिकसे बराबर होना चाहिये। यदि क्ष, य, झ अनुक्रमसे ब के ओरके सो +, क्लो–तथा अ के ओरके सो + और क्लो, और प्रो–के लिये रखे तो झिल्लीके दोनो ओरके पार पृथक्करण होनेवाले आयनोंका कार्य उनके गुणन फलसे नोंद कर सकते हैं।

यानी $क्ष^2 = य (य + झ)$ या $क्ष^2 = य^2 + य झ$

इससे सिद्ध होता है कि $क्ष^2$ $य^2$ के बराबर नहीं है, या क्ष य के बराबर नहीं

और क्ष $>$ य और क्ष $<$ य + झ

नैसर्गिक नेत्राभ्यन्तरजल की रासायनिक घटनेका विचार करनेसे मालूम होता है कि इसमें संतुलनके प्रमाण पूर्णताया दिखाई देते है।कोनसीहि जीवनशास्त्रीय झिल्ली पूर्णतया प्रवेशक्षम हीन नहीं होती। और पहले ही देखा है कि इस जलमें जीवनरसके सब घटक, यदि पृथक्कारक झिल्ली पूर्णतया प्रवेशक्षमहीन है ऐसी कल्पना करनेसे, साधारण तया उसी प्रमाणमे पाये जाते है (सारिणी २१ देखिये)। चाक्षुषजलमे जीवनरसके प्रतिस्फाटिक घटकों का अल्पांश दिखाई देता है। उदाहरण के लिये प्रोतीन्स (नत्रप्रचुर द्रव्य) का प्रमाण उनके जैसा ही होता है, उनके रासायनिक घटनेमें कुछ भी फर्क नहीं होते और वे नयी पैदाईश ही नही होतीं; **इन द्रव्योंके प्रमाणमें, प्रसरण के सादे नियमानुसार झिल्ली की प्रवेशक्षमतामें फर्क करनेसे, परिवर्तन होता है,**

शर्करा यूरीया जैसे घटक जिनका आसानीमे प्रसरण होता है, और जिनका आपनी करण न होनेसे जिनपर विद्युत नियंत्रण नहीं होता उनका प्रमाण जलमेंके घोल के प्रमाण जैसा ही होता है। इन घटकोंका आयनी करण होनेसे और ये विद्युत संचारित होनेसे उसका उनपर **नियंत्रण** का असर होता है और उनके घनता का प्रमाण सैद्धान्तिक तौरका दिखाई देता है। क्लोराइड जैसे **एनियन्स आयन** जिनका पूर्णतया पार **पृथक्करण** होता है वे रक्त की अपेक्षा चाक्षुषजलमे ज्यादह प्रमाणमें पाये जाते है और सोडियम, कैलसियम जैसे केटान्स उनके विद्युत संचारित अवस्थाकी वजहसे रोक जानेसे उनका प्रमाण व्युत्क्रम जैसा होता है। यह बात **बोरमन** ने खरगोशके रक्तरस छन्ना तथा उसके चाक्षुषजल की रासायानिक रचना संबंधके संशोधनसे स्पष्ट होता है जिसका सार निचे सारिणीमें दिया है।

सारिणी २३

(प्र. सें. मि. मि. का प्रमाण)

	रक्तरस (सीरम)		छन्ना किया हुआ रक्तरस		चाक्षुषजल
	रोहिणीमेंका	नीलामेंका	रोहिणीमेंका	नीलामेंका	
Na सोडियम...	३००·३	३०२·२	३१३·९	३१५·७	३१६·९
K पोट्याशियम...	२४·४४	२२·१	२३·२	२१·४४	२३·३
Ca कैलशियम...	१६·२	१५·७	१०·५	१०·५	१०·६
Cl क्लोरिन......	४०२·६	४०१·९	४३१·०	४२७·१	४३४·६

झिल्लिकी प्रवेशक्षमता बढानेसे प्रतिस्फटिकों का प्रमाण बढ जाता है और(रक्तके) जीवनरस जैसा **चाक्षुषजल** होता है जिसमें प्रोतीन अणुओका प्रमाण ज्यादह होता है और इसी वजहसे इनपर दबाव कम आता है और इसके घटनामे तापगत्यात्मक सिद्धान्तोके अनुसार ' बदल होता है। क्लोराईड जैसे एनियन्स घटते है और सोडियम जैसे केटान्स बढते है — और इनके साथसाथ प्रतिस्फटिक घटकोंकी घनता बढती है। और आयनिकृत ग्लुकोज (जिनका आयनीकरण होता है) कायम प्रमाणके रहते है। रक्त में अन्य पदार्थ डालनेसे वे चाक्षुषजलमें उसी प्रमाणमे दिखाई देते है। प्रतिस्फटिक घटक रक्तमें पूर्णतया रह

जाते हैं। प्रसरणशील द्रव्य जिनका जीवनरस (प्लाझमा) के प्रोतीम से शोषण होता है कुछ प्रमाणमें पार जाते है। पूर्णतया पार जानेवाले पदार्थोंका उनके प्रसरणशील नित्य राशिके प्रमाणमे विभाजन होता है एनियन्स पार जाते हैं और केटान्स पीछे रोक जाते हैं।

रासायनिक दृष्टि से विचार करें तो "नेत्राभ्यन्तर जल, उसके नैसर्गिक अवस्थामें और नैसर्गिक से बदली हुई अवस्थामे केशिनियोमें के रक्तसे पूर्ण संतुलित सा दिखाई देता है, और उसके बननेमें रासायनिक विसर्जन शक्तिका, नये पदार्थ बननेमें, बने हुए पदार्थोंको रुकावट करनेमें या उसके घटकोंकी घनता बढानेमे, व्यय नहीं होता "।

(२) **अभिसारक जलस्थित्यात्मक संतुलन** (दि आसमॉटिक हायड्रोस्टेटिक इक्विलिब्रियम)। च्यूं कि प्रसरणशील आयनोंका बटाव असम रीतिसे होनेसे पारपृथक्करण हुअे जलमें और जिसमेसे यह पृथक्करण होता है उसमें अभिसारक दबावमे फर्क रहना ही चाहिये।

पहले ही देखा है कि यह वास्तविक रूप का है, और नेत्राभ्यन्तर जलका दबाव नैसर्गिक और अनैसर्गिक अवस्थामे केशिनियो मे के रक्तके और उससे पार पृथक् हुअे जलमेंके अभिसारक दबाव जैसा ही होता है।दोनो के अभिसारक दबावमे फर्क होनेसे संतुलित अवस्था पैदा होनेके लिये जलस्थित्यात्मक दबावमें प्रतिकारक संमतुलन होता जरूरी होती है। इससे यह अनुमान होता है कि यदि प्रणाली संतुलित हो तो केशिनीयोंमे के रुधिराभिसरण का दबाव चाक्षुपजल के (नेत्राभ्यन्तरजल के) जलस्थित्यात्मक दबावसे, दोनों जलमेंके अभिसारक दबावके फर्क के प्रमाणसे बढकर होना जरूरी है। यह संतुलित अवस्था तब पायी जाती है जब नेत्रको रुधिराभिसरण से होनेवाले जलस्थित्यात्मक प्रवाह की नेत्राभ्यन्तर जलसे रुधिराभिसरण को सम लेकिन विपरीत तौरको आकर्षणसे प्रतिपूरित होती है। रक्तवहा केशिनीयोंमेके दबाव के नापन की खास तरकीब नहीं निकाली गयी है; लेकिन नेत्रमेंके रुधिराभिसरण की स्थिति खास तौरकी होनेसे नेत्राभ्यन्तर दबावसे रोहिणीयोंके ओरके केशिनीयो के भागमें के रक्त के दबावका प्रमाण पारदके (Hg) प्रमाणसे २५ से २० मि. मि. इतना ज्यादह होता है ऐसा माना गया है। और इसी वजहसे दबावकी संतुलित अवस्था की शर्तें पुरी हो सकती है।

ख्यालमें रखना कि यही शर्तें मेंढक और मनुष्य के उदरसंबंधी की रक्तवाहिनीयोंमें पायी जाती हैं।

(३) **स्थिरविद्युत (संबधीका) संतुलन** (दि इलेक्ट्रोस्टेटिक इक्विलिब्रियम)

झिल्लीके दोनो बाजूके घोलमेंके प्रसरणशील आयनोंका असम बटावसे संतुलन की अवस्थामें विद्युतचलन की शक्तिमें फर्क होता है। वैद्युत विभवान्तर (इलेकाट्रिक पोटेनाशिअल डिफरन्स) का वेर्नेस्टका सूत्र निम्न लिखित जैसा होता है:—

$$\text{अ} = \frac{\text{रा ता}}{\text{फै}} \text{ नैगु } \frac{\text{क्ष}}{\text{य}} \left(E = \frac{RT}{F} \ln \frac{x}{y} \right)$$

यहा अ=(E) वैद्युत विभवमें (संभाव्य)का अन्तर, रा (R)=विद्युत की इकाइयोमेंकी गैसकी अचल राशि, ता (T)=परम तापक्रम, फै (F)=फैरड—विद्युत समावेशन की इकाई—मेंके कूलंब (विद्युतगणनामें प्रयोग होनेवाली एक इकाई) की संख्या, नैग (In)=नैसर्गिक

गुणक, क्षय (x/y)=झिल्लीके दोनो बाजूके प्रसरणशील आयनोंकी घनताका अनुपात है।

लेहमन और **मीसमन** संशोधकोने कैशिक विद्युत पावन यंत्र और विद्युत मार्ग-द्वार-का इस्तेमाल से, जिनमेसे एक गलेकी जुगुलर नीलामे और दूसरा चाक्षुपजलमें घुसाकर, बिलाडी, खरगोश और कुत्तेमे देखाकी इन दोनो प्रणालीमे अन्तर (६ से १० मिलिव्होल्ड) दिखाई देता है, चाक्षुपजल घनविद्युत संचारित और रक्त ऋणविद्युत संचारित होता है। यह प्रमाण अनैसर्गिक अवस्थामे भी कायम दिखाई देता है। चाक्षुपजलमेंके प्रोतीन्स की घनताका प्रमाण बढानेसे वैद्युत विभवान्तर कम हुआ और नेत्रको वारवार सूक्ष्म छिद्र गिरानेसे उसका प्रमाण कुछ थोडे मिलिव्होल्टस हो गया। इसी तौरसे नेत्राभ्यन्तरके दाहमे वैद्युत विभवान्तर कम होता है और रक्तमेकी प्रतिस्फटिक की घनता कम करनेसे उसमे घटत दिखाई पडती है।

रासायनिक संतुलित अवस्था के सिवा भौतिक संतुलित अवस्थाकी सब वाते जल-स्थित्यात्मक, अभिसारक और स्थिर विद्युत बाते भी पूरी दिखाई देती हैं।

इन बातोंकी पूरावेसे शाबित हो सकता है कि नेत्राभ्यन्तरजल केशिनियोमेंके रक्त-रसका **पारपृथक्करण हुआ जल** होता है, क्योंकि (१) इसमें नैसर्गिक तथा अनैसर्गिक अवस्थामे खास तौरके प्राकृतिक रासायनिक गुण होते हैं जिनकी इस तरहकी पैदाईशमें जरूरी होती है, (२) क्योकि पारपृथक्करणकी झिल्लीसे प्रतिस्फाटिक अणूओंके समान प्रसरणपर दबाव से होनेवाली रुकावट के सिवा अन्यशक्तीका प्रदर्शन इसके पैदाईशमें नही होता और (३) क्योकि यह केशिनीयोमेंके रक्तसे रासायनिक, जलस्थित्यात्मक, अभिसारक और स्थिर विद्युत से संतुलित अवस्थामें होता है। इस पारपृथक्करणकी झिली केशिनियोंकी दीवाल ही होती है, क्योकि इसके पुराने यह होते हैं कि नेत्राभ्यन्तरजल केशिनीयोमेंके रक्तसे संतुलित अवस्थामें होता है, क्योंकि उसके गुणधर्मोंमे रक्तके फर्कोके अनुसार फर्क होते है और नेत्रमें पारपृथक्करण होनेका ऐसा एक ही स्थान नहीं दिखाई देता। केशिनीयोकी दीवालकी दोनों ओरको जलस्थित्यात्मक और अभिसारक दबाव की संतुलन अवस्थाका समतोलन होता है जिसके समतलमे परस्पर प्रतिकारक दबाव का उतार चढाव होता रहता है जिसकी वजहसे हर केशिनीयोंमेंका जल का प्रवाह एक दफा बाहरकी ओरको और एक दफा अन्दरकी ओर को चालू रहता है। उस जलका नेत्रगोलक के सब घटकोमे क्षितिकरण-छाना-होता रहता है आखिरमें पूर्व वेश्मनी और पश्चात वेश्मनी के बाह्य कलाघटकपट और अन्तःकलापट में से होकर वह वेश्मनीयां भर जाता है और स्फटिकद्रव पिंडमें ही यह जाता है। इस जलके प्रवाहमें,यद्यपि चयापचय क्रियासे उसमें फर्क होते है,विसर्जन शक्तिके कार्यका पुरावा नहीं मिलता; यह निष्क्रिय स्वरूपकी होती है तो भी ख्यालमे रखना कि हर घटकोंमेसे छाना होनेके समय तापगत्यात्मक संतुलन होता है।

केशिनीयोकी दीवालोंकी प्रवेशक्षमता बढानेसे तापगत्यात्मक संतुलनमें खास तरहके व्यवस्थापनकी जरूरी होती है; इस तरहसे पारपृथक् हुओ जीवनरसदार चाक्षुपजलके सब धर्म दिखाई पडते है। नेत्राभ्यन्तरका दबाव यकायक कम करनेसे, जैसे कि जलविमोचन

की क्रियामें, पारपृथक्करण क्रिया कुछ समयतक अति छन्ना की क्रिया जैसी होती है। इन अवस्थाओमें जीवनरस दार द्रव नेत्रकी वेश्मनीयोंमे इतनाही नहीं बल्कि अन्य घटकोमे भी इकट्ठा होता है, और इसमेंके प्रतिस्फटिकदार घटकोकी वजहसे घटकोंकी पेशीदार घटकोमेंसे पार नहीं जाता और फिर तारकातीत पिंडयि पेशीदार घटक, तारका का पिछला पुष्ठ और कृष्ण पटल के नीचेके अवकाश मे जमा होता है।

(२) झिरपन की कल्पना

इस कल्पना का प्रसार पहले पहल **लेबर शास्त्रज्ञ** ने किया (१८९५–१९०३) यह कल्पना इस तरह की थी कि चाक्षुपजल की पैदाईश रक्तमेंसे दबाव जनित झिरपन की क्रियासे होती है,और इसी दबाव के असरसे उसका प्रसरण होता है।इस कल्पना को **पारसन हेन्डरसन स्टारलिंग** आदि पंडितोने मान्यता दीई। लेकिन नेत्राभ्यन्तरजल का इस तरहका प्रसरण होता है इस संबंधी कुछ पुरावा नही मिलता, जो कुछ पुरावा मिलता है उससे सिद्ध होता है कि चाक्षुषजल संतुल्न अवस्थामें होता है। और उसकी रासायनिक रचना और भौतिक गुण इस कल्पनाके विरुद्ध होते हैं।

(३) आन्तरोत्सर्ग की कल्पना

इस कल्पनाके अनुसार चाक्षुषजल तारकातीत पिंडीय (सिलियरी बॉडी) कला तह की पेशियोका आश्राव होता है। इसका पुरावा शारीरशास्त्रीय तौरका होता है जिससे ऐसी कल्पना का प्रचार हुआ कि कलातह की पेशिओंकी रचना तारकातीत पिंडीय ग्रंथी जैसी होती है। पहलेके संशोधको के मतानुसार तारकातीत पिंड (सिलियरी बॉडी) एक ग्रंथी होती है; इनके पश्चातके संशोधकोने ऐसी कल्पना कीई कि इस पिंड के दो भाग होते हैं। सामनेके भागसे चाक्षुप जलकी पैदाईश और पिछले भागसे स्फटिक द्रव की पैदाईश होती हैं; इसके पश्चाद **कालिन्स** ने शारीरशास्त्र और विकृत शारीर के बातोंपरसे ऐसी कल्पना का प्रचार किया कि इस कला तह की खास तरह की वृद्धि होती है जिसमे द्रवोत्सर्ग का स्थान होता है। लेकिन पुरावा इसके विपरीत है।

आश्रावसंबंधीका प्राकृतिक तौरका पुरावा से भी यह बात पूरी शाबित होती नहीं: एसरीन या पायलोकारपीन नेत्रमे डालनेसे चाक्षुषजलमे प्रोतीन द्रव्योका जो प्रमाण बढ जाता है वह द्रव्योत्सर्गिक कार्य का पुरावा है ऐसा **सेडल** का दावा था, लेकिन एसरीनसे रक्तवाहिनियों का प्रसरण होता है और इसी वजहसे ये घटना होती है यह सिद्ध कर सकते है। इस दवाका कार्य द्रवोत्सर्गिक मज्जातंतुओंके सीरोंपर होनेसे द्रवोत्सर्ग की क्रिया होती है। लेकिन नेत्रके कौनसेही मज्जातन्तुओके सीरोंमें इस द्रवोत्सर्गिक मज्जातन्तुओंका अभाव होता है।

द्रवोत्सर्गिक कल्पना के विरुद्ध असली दो बाते होती है : ख्यालमें रखना किं शरीरमेंके कुछ खास कार्य के लिये खास तरह की पेशि घटकोसे शोधन किया हुआ जल ही द्रवोत्सर्ग होता है और उसके पैदाईश में कुछ कार्य होता है और इसके लिये जरूरी विसर्जन शक्ति द्रवोत्सर्गिक पेशियोंसे पायी जाती है। यदि कुछ कार्य नहीं हुआ हो तो द्रवोत्सर्ग नहीं होता। यह व्याख्या इस जलको नही लगा सकते।

पहले ही बतलाया है कि नेत्राभ्यन्तरजल केशिनीयोंमेंके रक्तरससे तापगत्यात्मक संतुलनमें होता है, और तारकातीत पिंडीय पेशियोंमेंसे पार जानेके समय किसीभी तरहकी क्रिया-रासायनिक, जलस्थित्यात्मक, अभिसारक या विद्युत तौरकी-नहीं दिखाई देती यह महत्वकी बात इस कल्पनाके विरुद्ध होती है।

नेत्राभ्यन्तर जलकी पैदाईश और उसका प्रसरण

नेत्राभ्यन्तरजल के प्रसरण संबंधी तीन तरहकी मतप्रणाली प्रचलित है। (१) **लेबर** (१९०३) की श्रेष्ठ कल्पना इस तरहकी है कि चाक्षुषजल का प्राथमिक प्रसरण होता है, जल,जो तारकातीतपिंड के झिल्लीमेंसे पाझरन जैसा पैदा होता है, कनीनिकामेंसे पूर्ववेश्मनी में जाकर वहांसे **स्क्लेम की नालीमेंसे** होकर नेत्रकी बाहरकी ओर को जाता है।। (२) दूसरी कल्पना, जिसका **हैमबरगर ने** प्रसार किया, इस पहले कल्पनाकी बिलकूल विरुद्ध थी;इस कल्पनाके अनुसार चाक्षुषजल पाझरन नहीं बल्की नेत्रकी सब घटकोंमें आम चयापचय क्रियाकी अदलबदलसे पैदा होता है।(३) तीसरी कल्पना **ड्यूक एल्डरकी** (१९२७); इस कल्पनासे पहले दोनो कल्पनाओंका मिलाफ जैसा किया है; इस अल्पनाकी तीन पृथक् अवस्था होती है। पहले के अनुसार नेत्राभ्यन्तरजल केशिनीयोंमें के रक्तसें संतुलन अवस्थामें होता है और उसके दीवालमेंसे उससे चयापचय क्रियाका अदल बदल नेत्रके सब घटकोंमें होता रहता है और इसी क्रियाकी वजहसे इसकी नयी पैदाईश होती रहती है। इस नींव पर **दुय्यम दबावजन्य प्रसरण** अधिस्थापित किया है जिसकी अवस्था सतत होनेवाले दबाव के फर्कोंसे होती है; ये दबावके फर्क स्पन्दन, श्वासोश्वासके परिवर्तन, और स्नायुओंके कार्यसे पैदा होते है। तीसरी अवस्था आनुषंगिक-या साथ साथ होनेवाले **तापका प्रसरण**-जिससे चाक्षुषजल का सतत प्रवाह चालू रहता हैं। प्रयोगोंके पुरावाओंसे सिद्ध हुआ है कि नेत्राभ्यन्तरजल का प्रसरण बहुत छोटे आकार का होता है।

इन प्रयोगोंका जिनपर ये अनुमान कीये गये है विचार संक्षिप्तमे ही क्यों नहो, करना मुनासिब होगाः—

(अ) नेत्राभ्यन्तर जलके पैदाईशका स्थान

नेत्राभ्यन्तर जलके पैदाईश के स्थान का संशोधन रक्तमे या चमडीके नीचे रंगोंका या प्रक्षेप होनेवाले द्रव्योंका अन्तःक्षेपण करके उनका नेत्रमें जानेके मार्गका जिन्दी अवस्थामे परीक्षण करके जान सकते हैं या मृत्यूके पश्चाद नेत्रके शरीरतन्तु विज्ञानसे परीक्षण करके जान सकते हैं। इस संबंधमें फ्लुरीसिन, मेथिल व्हायोलेट, मेथिलिन ब्ल्यू, ट्रिपान ब्ल्यू, पायरान ब्ल्यू और इन्डिगो ब्ल्यू आदि द्रव्योंका इस्तेमाल करते है। इसमें कुछ शक नहीं है कि ये पदार्थ नेत्रके वेश्मनीमें **तारकातीत पिंडके द्वारा** जा सकते हैं; लेकिन **तारकाके मार्गमेंसे** और कृष्णपटलमेंसे भी जाते है। यानी अनुमान कर सकते है कि नेत्रके रक्तवाहिनीयादार घटकोंमेंसे, अर्थात तारकातीत पिंडमेंसे ज्यादा प्रमाणमें, इन दव्योंका प्रवेश नेत्रमें हो सकता है। लेकिन ख्यालमें रखना कि इन बातोंपर पूर्णतया अवलम्बित नहीं रह सकते।

नेत्राभ्यन्तर जल तारकासे सिर्फ नहीं पैदा होता क्योंकि कई मिसालोंमें तारका का जन्मजातसे अभाव होते ही या तारकाको निष्फल लेनसेहि नेत्राभ्यन्तरजल पैदा होता रहता

है। उसकी पैदाईश सिर्फ तारकातीत पिंडसेही नहीं होती क्योंकी कई प्राणियोंमें इसका अभाव होता है और कई मनुष्योमे इसका जन्मजात के अभाव या यह नोंद हुई है।

(ब) **नेत्राभ्यन्तर जल का बाहर जानेका मार्गः**—इस मार्गका निर्णय पूर्व-वेश्मनीमे पदार्थोंका अन्तःक्षेपण करके उनका बाहिर जानेके मार्गोंका निरीक्षण किया है। इस संबंधमे बहुत ही लिखाण हुआ है। इतनाही कह सकते है कि **श्लेम की नाली** और **तारकाका सामनेका पृष्ठ** इनका भाग इस क्रियामे प्रमुख होता है।

(क) **नेत्राभ्यन्तर जलका प्रसरण**

नेत्राभ्यन्तर जलके प्रसरण पर तीन तरहके असर होते हैं।

(१) **प्राथमिक चयापचय क्रियामेंका अदलबदल जन्य प्रसरण** : इस तरकीबसे नेत्रके रक्तवाहिनीयो दार घटकोंमेसे नेत्राभ्यन्तरजल की नयी पैदाईश सतत होती रहती है। नये पदार्थ उसमें (मिलाये) डाले जाते है और चयापचय क्रियाके बेकाम के पदार्थ निकाले जाते हैं। केशिनीयोंकी दीवालोंके दोनो ओरके तुलित जलस्थित्यात्मक और अभि-सारक दबावोंमेके गत्यात्मक संतुलनसे इसकी जाच कर सकते हैं,ये दबाव कायम रूप के स्थिर नहीं रहते लेकिन उनमें हमेशा उतार चढाव होता रहता है और किसी ही एक केशिनीयोंमें इनके पारस्परिक सापेक्ष संबंधसे एक क्षणमे जलका प्रवाह बाहरकी ओरको और दूसरे क्षणमें भीतरकी ओरको होता रहता है।

(२) **दबाव जन्य प्रसरणः**—प्राथमिक चयापचय के अदल बदल पर जलसंचय का दुय्यम और आन्तरिक प्रसरण अधिस्थापित होता है जो, स्पन्दन स्वर, श्वासोश्वास का वक्र और नेत्रकी आन्तर और बहिरस्नायुओके आकुंचन की वजहसे दबावमें सतत होनेवाले फर्कोंसे निर्धारित होता है। दबावके फर्कोंका धर्म और विस्तार का विचार करनेमें उनके असरोंका विचार करना मुनासिब होगा। दबाव बढनेसे नेत्रमेंसे थोडासा जल बाहरकी ओर फेंका जायेगा और उसका **श्लेम की नालीसे** जिसमेंके दबाव के संतुलनका नाजूक व्यवस्था-पन होता है और जिसमेंके दबाव का स्थान नीलामेंके दबाव के उतारके ही नीचे होता है, पूर्ववेश्मनी के कोण के पास मार्ग चुना जायेगा। ख्यालमें होगा कि नैसर्गिक अवस्थामें नीलाओमेंके मार्गमेंका दबाव नेत्रकी वेश्मनींमेंके दबावसे ज्यादह होनेसे जलस्थित्यात्मक प्रवाह शक्य नहीं होता। लेकिन दबाव बढनेकी अवस्थामें यह संबंध उलटा होता है और **श्लेम की नालीसे**,जिसमेका दबाव पूर्ववेश्मनींमेंके दबावसे कुछ समयतक कम होता है, संरक्षक अभि-द्वार जैसा कार्य होता है और तारकातीत पिंडीय स्नायुका कार्य शुक्लपटलके कांटेपर होनेसे जलके बहिरप्रवाहको शोषणक्रियासे मदत होती है। इसी तरहसे तारकातीत पिंडीय स्नायुकी प्रवृत्ती, उसके संकुचनसे कृष्णपटल की नीलाओंको खोलनेमें होती है और जलप्रवाह नेत्रके पिछले भागमें जाता है। इसी तरहसे नेत्रगौहिक स्नायुओंके और तारकातीत पिंडीय स्नायुके संकुचनसे इसके साथ साथ स्पंदन स्वर, श्वोसोश्वास के चलन और नेत्रच्छद का सतत होनेवाले चलनसे दबावकी अवस्थामें जो फरक होंगे, उनसे नेत्रके जल घटकोंपर सतत काले किन कमतर दबाव प्रसरण का असर होता रहेगा।

(३) **तापज प्रसरणः**—बाह्य प्रसरण के सिवा पूर्ववेश्मनीमें खुद चाक्षुषजलमें तापके परिचालन के प्रवाहसे (कनव्हेक्शन करन्ट्स) आन्तरप्रसरण होता है जिसकी वजहसे सतत प्रवाह चालू रहता है जिसकी दिशा तारकाके स्थानमें ऊपरकी और तारकापिधानके स्थानमें नीचेकी दिशामें दिखाई देता है; यह ताप प्रसरण हवासे ठन्डे हुअे तारकापिधान और रक्तवाहिन्यादार तारकामेंके तापके फर्कोंसे होता है।

तापके फर्कोंका अनुमान अनेक तरकीबोंसे किया गया है : खरगोशमें **फेरो—कानस्टनटीन थरमोपाइल नीडल्स** और **गैल्वनो मीटर** धारामापक यंत्र की सहायतासे **ड्यूक एल्डर** पंडितको मालूम हुआ की तारकापिधान और तारकामेंके तापका फर्क ३° से ५° सेन्टीग्रेड इतना होता है। **नेलसन** के संशोधनसे मालूम होता है कि स्फटिकद्रवपिंड और चाक्षुष जलमेंके तापका फर्क १° सेन्टीग्रेड इतना होता है।

तापप्रसरण का शोध पहले पहल **लेवर** पंडितने (१९०३) मे लगाया। लेकिन स्लिट लैंपके प्रचारसे इसका संशोधन पूरी तौरसे हुआ है। दाहजन्य पेशियोंसे या फ्लुरिसिन के अन्तःक्षेपण से इस प्रसरण को देख सकते हैं। यह साफ भौतिक तोरकी घटना होती है; शारीरकी अवस्थामें बदल करनेके बाद दस मिनिटसे यह दिखाई पडती है। निकाले हुअे नेत्रगोलकके तारकापिधान को ठंडक लगानेसे भी यह प्रवाह पैदा होता है। तारकापिधानको गरमी लगानेसे यह प्रवाह रूक जाता है, या तारकापिधानका ताप तारकाके तापसे ज्यादा करनेसे प्रसरण की दिशामें बदल कर सकते है। प्रसरणका ऊपर जानेवाले प्रवाहका वेग शीघ्र गतिका होता है, कनीनिकाके केन्द्रस्थानमें इसके गतिका वेग ३ से ४ सेकन्दमें १ मि. मि. इतना होता है।

इस ताप प्रसरणकी वजहसे ही तारकापिधानके पिछले पृष्ठपर अनक्षेप या साका जमता है यह ख्यालमें रखना।

स्फटिक द्रवपिंड

स्फटिक द्रवपिंडकी रासायनिक रचना

स्फटिकद्रवपिंडकी रासायनिक रचना का उल्लेख सारिणी १९ दिया है, इस सारिणीसे मालूम होगा कि इसकी रचनामे नेत्राभ्यन्तरजलके घटकोंका (रक्तजघटक) प्रमाण नेत्राभ्यन्तरजलमेंके इन घटकोके प्रमाण जैसा ही होता है,और इनके सिवा इसमें और दो विशिष्ट (या रक्तसे न बने हुअे) घटक श्लेष्मल—नत्रप्रचुर घटक **म्युको प्रोतीन** और **अवशिष्ट प्रोतीन** घटक (रेसिडयुअल प्रोतीन्स) होते है। रुग्णविषयक दृष्टिसे विचार करें तो स्फटिकद्रवपिंड नेत्राभ्यन्तरजलके घटक और ये दो घटक इनके संयोगसे बना हुआ सरेस जैसा पदार्थ होता है।

स्फटिकद्रवपिंडमे रक्तमेंके प्रतिस्फटिक घटकोंका (कोलाईड) प्रमाण सूक्ष्मतर होता है जिसमेंके प्रोतीन्स रक्तरसके प्रोतीन्स जैसे होते हैं; अनायनीकृत—आयनहीन (नान आयोनाइल्ड) घटकोंका प्रमाण नापन करें इतना होता है; और रक्तरसके आयनीकृत घटकोंमें ऋणायनका (केटियान) घनताका प्रमाण कम होता है और घनायनका प्रमाण

ज्यादह होता है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि स्फटिकद्रवपिंडमेंके ये घटक चाक्षुष जलमेंके इन घटकोंके जैसे पारपृथक्करणसे पैदा होते हैं।

श्लेष्मल नत्रप्रचुर (म्युकोप्रोतीन) घटक : इस श्लेष्मल पदार्थका शोध सबसे पहले व्हर्च्यू शास्त्रज्ञने किया (१८५२)। इसका रासायनिक स्वरूप श्लेष्मल जैसा होता है, कमजोर असेटिक अम्ल का ज्यादह प्रमाणमे और आक्सीजन हारी–सोजीकारक फेहलिंग द्रावणसे जल विच्छेदनके इस्तेमालसे इसका अवक्षेपण या साका बनता है इसमे चिटोसामिन (१६·६६%) और ग्लुकुरोनिग अम्ल (२३%) भी मिलते है। यह पदार्थ स्फटिकद्रवपिंडके सिवा नाभिनाल या नाभिरज्जुमे और (अंबेलायकल कार्ड) तारकापिधान मे मिलता है, और संभव है कि दृक्‌शास्त्रीय तारकापिधान की पारदर्शकता कायम रखनेमें यह कामयाब होता होगा।

अवशिष्ट प्रोतीन घटक (रेसिड्युअल प्रोतीन्स):—स्फटिकद्रवपिंड सरेससे इसको छन्ना या झिरपिनकी पद्धतिसे अलग कर सकते है और यह चिपचिया और गोद जेसा पदार्थ होता है और इसको धोकर सुकानेसे यह सरेसका सुका सिंग जैसा दिखाई देता है। इसका जलमें घुलन नहीं होता, लेकिन यह पानिको सोक लेता है; अम्ल की क्रियासे फुल जाकर यह स्पष्ट सरेस जैसा होता है। क्षारकी क्रियासे खूब फुल जाता है, और अम्ल या क्षारमें इसको उबलनेसे यह पूर्णतया घुलित हो जाता है। इसमे कारबोहायड्रेट मूलक–मौलिक परमाणु समूह (रैडिकल) नहीं होते। इसके प्राथमिक रासायनिक घटनामें कारबान (C) ४४·४६% हायड्रोजन (H) ६·४१५%, नायट्रोजन (N) १२·२०%, रक्षा ३·८२५%, फास्फरस (P) ०१२% और गंधक–सलफर (S) ०·६७५% प्रमाणमें होते हैं। इस पदार्थका महत्व इसलिये है कि इससे सरेस बनता है (**ड्युक एल्डर**)।

स्फटिक द्रवपिंड के भौतिक गुणधर्म

(१) **विशिष्टगुरुत्व** यह प्रमाण जल से थोडा ज्यादह होता हैं। मनुष्यमें यह प्रमाण १·००५३ होता है; यही प्रमाण बैलमें १·००६ से १·०१४, घोडेमें १.००७९, और सूवरमे १·०० से १·०१४ इतना होता है। (२) **वक्रीभवन गुणक** का मनुष्यमें औसद प्रमाण १·३३८२, बैलमें १·३३३०४, से १·३८४८, घोडेमें १·३२३·२ से १·३३६३, कुत्तेमें १·३२३९ से १·३३७२, वानरमे १·३३३८२ और खरगोशमे १·३२८८६ से १·३३४८ ऐसा संशोधकोंका शोध लगा है।

(३) **गाढापन गाढत्व** (व्हिसकासिटी) : नैसर्गिक अवस्थामें स्फटिकद्रवपिंड का गाढत्व बहुतही बढकर होता है। यह प्रमाण स्फटिकद्रवपिन्डके छन्नासे पाये हुए जल का होता है; चाक्षुषजल से स्फटिकद्रव्यपिंडका गाढत्व ज्यादा होता है और उसकी वजह यह होती है कि इसमें **म्युसिन** होता है। **केमनर** के संशोधनसे (१९२८) इसमें परिवर्तन दिखाई देते है, यह प्रमाण २०° सेन्टिग्रेडमे १६·६२ से २१·५०$\times$१०$^{-३}$ सी. जी. एस. इकाइकेबरावर होता है। लेकिन ५०° से यह प्रमाण आधा हो जाता है।

(४) **वाहकता–परिचालकता** (कनडकटिव्हिटी):—स्फटिक द्रवपिंडके छन्नाकी वाहकता का भी नापन किया गया है; इसमें प्रोतीन घटक चाक्षुष जल की अपेक्षा जादह

होनेसे इसकी वाहकता चाक्षुष जलसे थोडी कम होती है। व्हान डर होव्ह ने 'बैल के स्फटिक द्रवपिंडका संशोधन ३७° से मालूम होता है कि स्फटिकद्रवपिंड और चाक्षुषजल-में यह प्रमाण अनुक्रमसे $१७६·०३\times१०^{-४}$ और $१७८·२४\times१०^{-४}$ इतना था।

(५) **अभिसारक दबाव** (आसमाटिक प्रेशर): स्फटिकद्रवपिंडके छन्नाका अभिसारक दबाव का नापन नेत्राभ्यन्तर जलके नापनमें जिन पद्धतियों का इस्तेमाल किया था उन्ही का किया है।। कोषाभिसरण पद्धति (प्लाझमोलायसिस) और हिमांक पद्धति (क्रायस्कोपिक मेथड) यो के फलोमे कुछ फर्क नही दिखाई पडे। केमनरने बैल के स्फटिकद्रवपिंडके छन्ना पर प्रयोग करके शोध लगाया कि इसके हिमांक का (फ्रीझिंग पाइंट) अवनतांशका प्रमाण–०·५५३९ से इतना कम था, यही चाक्षुपजल के हिमाक प्रमाण –०·५६५९ से इतना कम था। इससे स्फटिकद्रवपिंडमे के अभिसारक दबाव का माध्यम ७·४ वातावरण के (वायुभार) इतना जिसमें –०·३ से +०·५ इतना फर्क होता है और चाक्षुषजल में ५·६ वातावरण इतना जिसमें –०·१ से +·२ इतना फर्क दिखाई पडता है। ०·१ ग्रामवाले घोलक द्रवकी नीव परसे –०·१८६° –जलके हिमांक के अवनतांश से अणुओंकी द्रावण घनता के नापनसे स्फटिकद्रवपिंडके छन्ना की घनता ०·३०४ M और चाक्षुषजल की घनता ०·२९७ M इतनी होती है। दोनोंमें का ०·००७फर्क कुछ महत्व का नहीं समझना। नापन की प्रत्यक्ष पद्धति से यही फल पाये जाते है; क्योंकि स्फटिकद्रवपिंड और चाक्षुष जल दोनों में अर्ध प्रवेश–क्षम झिल्ली होनेसे उनमें अभिसारक दबाव संतुलन की अवस्था होती है।

स्फटिकद्रवपिंडकी प्रतिक्रिया

स्फटिकद्रवपिंड चाक्षुषजल से ज्यादह क्षारीय होता है लेकिन रक्तसे ज्यादह अम्लीय होता है। सरेस के रचना मे फर्क होनेसे उसकी क्षारीयता हवा के असर से ज्यादह बढ जाती है : ज्यादह हिफाजतसे काम करनेसे PH का प्रमाण ७·२ से ७·५ मे बदलता रहता है।

स्फटिकद्रवपिंडकी अनियमित घटना:—इस अवस्थामे स्फटिकद्रवपिंडमें प्रोतीन घटकोका प्रमाण नैसर्गिक से बढ जाता है, गाढत्व और शक्कर का प्रमाण बढा हुआ दिखाई देता है।

स्फटिकद्रवपिंडका स्वरूप

स्फटिकद्रवपिंडकी सूक्ष्म शारीररचना समावयव सरेस जैसी होती है। और भ्रूण विज्ञानसे मालूम होता है कि उसकी उत्पत्ती कललके बाह्य पटलसे (एक्टोडर्म) यानी अर्थात दृष्टिपटलसे होती है। उसके रासायनिक और भौतिक गुणोंसे साफ मालूम होता है कि यह सरेस ही है जिसकी रचना की नीव दो खास प्रोतीन–नत्रप्रचुर–घटक यानी म्यूको प्रोतीन और अवशिष्ट प्रोतीन पर रची होती है; और इनका खास कार्य पारदर्शकता और सरेस की विभवता (पोटेनशिआलिटी) कायम रखना यह होता है; और नेत्राभ्यन्तर जल

केशिनीयोमे के रक्तसे उनकी दीवालोंमेंसे पारपृथक् होकर उनसे भौतिक तौरसे मिलकर सरेस बनानेमें कामयाब होता है ऐसा शास्त्रज्ञ ड्यूक एल्डरनें कहा हैं (१९२९)।

स्फटिकद्रवपिंडकी उत्पत्ती

म्यूको प्रोतीन और अवशिष्ट प्रोतीन, इस सरेस की सूक्ष्म रचना की नीव होते हैं। कललके बाह्यपटलका अर्थात दृष्टिपटलका और स्राव होते हैं। जब ये घटक जम जाते है तब वे तन्तुर जाला जैसे दिखाई देते हैं। उनका दृष्टिपटल के आन्तर मर्यादक तह और मूलर्सके तन्तुओसे अविरत संबंध दिखाई देनेसे उनका दृष्टिपटलसे निकट संबंध स्पष्ट होता है। जनन के पश्चाद इस द्रव्य की नयी पैदाईश नहीं होती ऐसा पुरावा मिलता है क्योंकि जब किसी वजहसे इसका नाश या लोप हो जाता है तब उसकी जगह नेत्राभ्यन्तर जलसे भर जाती हैं।

नेत्राभ्यन्तर जलके स्वरूपसंबंधी जो अनुमान किये गये है उसपरसे यह साफ होता है कि स्फटिकद्रवपिंडमेंका जलांश उसके आसपासके रक्तवाहिनीयों दार घटकोमेंसे असलमें तारकातीत पिंडसे पारपृथक्करणसे पैदा होता है; इस कार्यमें कृष्णपटलकाही बडा भाग होता है इसका पुरावा यह होता है कि कृष्णपटलकी इजा या विकृतीमे यद्यपि तारकातीत पिंड नैसर्गिक जैसा हो,स्फटिकद्रवपिंडमें गुणऱ्हासजन्य फर्क दिखाई देते हैं। इसकी सूक्ष्म रचना सरेस जैसी होनेसे इसमें प्रसरण बहुतही सूक्ष्म तौरका होता है। पूर्ववेश्मनीमेंसे जल का बाहर जानेका मार्ग जैसा स्क्लेमकी नालीमेंसे होता है, उसी तोरसे स्फटिकद्रवपिंडमेंके जलांशका बाहर जानेका मार्ग दृष्टिमज्जारज्जूके मार्गमेंसे होता है लेकिन ख्यालमें रखना की यह मार्ग बिल्कूलही सूक्ष्म तौरका होता है। जलांशका बाहर गिरनेका मार्ग पूर्ववेश्मनीमेंके द्वारा होनेसे और तारका स्फटिकमणि को लगी रहनेसे- पूर्व वेश्मनीके द्रव्योंको स्फटिकद्रवपिंडमें जाना मुष्किल होता है। पूर्ववेश्मनीमें शक्करका अन्तःक्षेपण करनेसे स्फटिकद्रवापिंडमे उसकी घनता चाक्षुषजल जैसी कभी नहीं होती।

स्फटिकद्रवपिंडका भौतिक स्वरूप

सरेस के उनके जलका प्रतिस्फटिक घटकोसे संयोग उत्क्रमणीय स्वरूप का हुआ है या नहीं इसके अनुसार अनुत्क्रमणीय सरेस और उत्क्रमणीय सरेस ऐसे दो वर्ग होते हैं। अनुत्क्रमणीय सरेस अस्थितिस्थापक होते है और वे फुलते नहीं; इसके अलावा उत्क्रमणीय सरेस ज्यादह स्थितिस्थापक, फुलनेवाले और फीके रंगके होते है। स्फटिकद्रवपिंड उत्क्रमणीय स्थितिस्थापक सरेसके रूपका होता है।

फुलना और फिका होना

प्रोतीन घटकोसे बने हुए सरेस की असली महत्व की बात, जो उसके भौतिक रासायनिक गुणोंकी नीव होती है, यह होती है कि उसके समवैद्युत बिन्दु या बिन्दुओका निर्धारण करना। प्रोतीन वर्ग उभय विच्छेद्य (ऐम्फो लाईट) रूपका होता है यानी उसका द्रावण कभी अम्ल स्वरूपका या कभी क्षारिक तौरका कार्य कर सकता है। प्रोतीन आयन कभी ऋणवैद्युत संचारित होता है तो कभी धनविद्युत संचारित होता है और

इसी वजहसे इन दोनों अवस्थाके बीचमे ऐसा एक बिन्दु होता है जहा दोनो विभिन्न अवस्था संतुलित होती है। इस बिन्दुको **समवैद्युत बिन्दु** कहते हैं और इस बिन्दुमें प्रोतीन निर्विकार जैसे होते है। यानी ज्यादह अवस्थामें पृथक् प्रोतीन आयन आम्ल या क्षारोंसे **रासायनिक गणित तौर** जैसे **स्टाइओ किओमेट्रिकली** प्रतिक्रिया करता है, जिससे धातुओंके विघटित होनेवाले प्रोर्तानेन्टस या प्रोतीन अम्ल लवण बनते है, लेकिन समवैद्युत बिन्दुमें प्रोतीन नान आयनिज अवस्थामे होते है जिससें धातुओंके प्रोर्तानेट या प्रोतीन अम्ल लवण नहीं बनते। इस बिन्दुके स्थानमें आयनीकरण, वाहकता, अभिसारक दवाव और फुलजानेकी अवस्था बिलकुल सूक्ष्म प्रमाण की होती है, लेकिन इसी स्थानमे प्रोतीन अस्थिर अवस्थामें होनेसे वे आसानीसे प्रक्षेप होते हैं। इसी वजहसे प्रोतीनके द्रावणको भिन्न भिन्न प्रतिक्रियाके द्रावणमें मिलानेसे इन सब गुणोंमें परिवर्तन होगा और स्थायी पीएच (pH) द्रावण पैदा होगा जिस स्थानमें ये गुण बिलकूल ही सूक्ष्म प्रमाणमें होते हैं और इसके दोनो ओर को गुणोंका प्रमाण बढता जाता है।

स्फटिकद्रवपिंडमें **सिरम अलब्युमिन, सिरम ग्लाब्युलिन, म्यूको प्रोतीन** और **अवशिष्ट प्रोतीन** ऐसे चार तरहके प्रोतीन घटक होते हैं। इसके पहले के दो घटकोंके समवैद्युत बिन्दुओका निर्धारण अनुक्रमसे pH ४·७ और pH ५·५२ हुआ है। म्यूको प्रोतीन के जमजानेका महत्तम प्रमाण का समवैद्युत बिन्दु pH २·५ के पास होता है। अवशिष्ट प्रोतीन के समवैद्युत बिन्दुका निर्धारण अभितक नहीं हुआ हैं।

अबे के पराकासनी प्रकाशके शोषणके संशोधनसे मालूम होता है कि स्फटिकद्रवपिंडमें दो समवैद्युत बिन्दू pH ३·८ और ९·४ के पास होते है।

स्फटिकद्रवापिंडकी अस्थिरता

स्फटिकद्रवपिंड यह समजातीय सरस (जेल) जैसा गत्यात्मक संतुलन की अवस्थामें रहता है, जिसकी दृढतामें क्षुल्लक तांत्रिक आघातसे भी जल्द बिघाड होता है। उसको क्लैम्पपर लटकानेसे या छाननेके कागज या कपासमेसे छाननेसे उसकी रचना का धीरेसे लेकिन सतत भंग होता है और आखिरमे उनका स्वच्छ साबुन के द्रावण के घनता का गड्ढा बनता है और कैम्प पर या छाननेके कागजपर बेडौल अवशिष्ट प्रोतीत रहता है।

इस अवशेष को कोई लोक स्फटिक द्रवपिंडकी तन्तुर परांची या द्रवगोल आवरण (हायलाईड मेम्ब्रेन) मानते हैं लेकिन ख्यालमें रखना कि ये दोनो मत गलत है; यह एक वह पदार्थ होता है जो स्फटिकद्रवपिंड मे सर्वत्र पसरा हुआ होता है। यह बिघाड सूक्ष्म तन्तुओं के वजहसे या स्वयंजनित खमीरकी क्रिया जैसी (फरमेन्टशन) नहीं होता।

इसी तौरका सरस द्रावणमें रूपान्तर अम्ल या क्षार के द्रावण से या स्फटिक द्रवपिंड की चयापचय क्रियामे रुग्ण विपर्योकी वजहसे बिघाड होनेसे दिखाई देता है। इस अवस्थामे स्फटिकद्रवपिंड का द्रवभाग अलग होकर वह सिकुड जाता है और इसके जगह जगह में सूक्ष्म तन्तुर घटक या छिद्रदार सूक्ष्म अपारदर्शकता और बारिक जालीदार कपडा जैसी घटना एकान्तरसे दिखाई देती है।

.असम स्थितिस्थापकता (एन–आयसोट्रापिझम)

स्फटिकद्रवपिंडमे की तन्तुर घटनासंबंधी दिलचस्पी की बात यह होती है कि स्फटिकद्रवपिंडमें समस्थिति दर्शन नहीं दिखाई देता लेकिन उसमें लकीरियां दिखाई देती हैं। स्फटिकद्रवपिंडमे सोडाबायं कार्ब और अम्ल कि क्रियासे जो बुदबुदे पैदा होते हैं उनका आकार गोल होनेके बदले स्फटिक माणिके आकार के होते है और इसी वजहसे इसमें हवाके घुसाओ बुदबदो की माला जैसी दिखाई देती है।

स्फटिक द्रव पिंडमेंका प्रसरण और प्रक्षेपन (डिफ्युजन और प्रेसिपिटेशन्)

स्फटिक द्रवपिंडमें के प्रक्षेपनसे(तलछट के रूपमे पृथक हो जानेकी क्रिया),अन्य सरेसोकी जैसे, **लीसर ग्यांगकी** कुण्डली(रिंगज) बननेका दृश्य दिखाई देता है। यदि सूक्ष्मदर्शक यंत्र के नीचे कांच की स्लैइड पर स्फटिक द्रव पिंडमे पोटयाशियम बायक्रोमेट का क्षार मिलाकर रखा जाय और उसके ऊपर समाह्रत रजत नत्रित का एक बुंद डालनेसे रजत क्रोमेट का कुण्डली को आकारका प्रक्षेपन बनता है जो एक सहा नहीं दिखाई देता बल्कि बीच बीचमें स्फटिक द्रवपिंड के स्पष्ट क्षेत्र दिखाई पडते हैं। सरेस जैसे पदार्थोंमे इस तरह के पट्टेदार प्रक्षेपन होने की क्रिया मंद प्रसरण और अति संपृक्तता के क्षेत्र बननेपर अवलम्बित होती हैं। भूगर्भ शास्त्रमें अगेट बननेमे यही क्रिया दिखाई देती है और प्राकृतिक शास्त्रमें हड्डी की और पित्ताश्मरी की रचना इसी तत्वपर अवलम्बित होती है

नेत्रके रक्तवाहिनीयोंदार घटकोंमेंकी चयापचय क्रिया

नेत्रके इन घटकोमेकी चयापचय क्रिया शरीरके ऐसे अन्य घटकोंकी जैसी ही होती है। नेत्रमेके ये घटक शुक्लपटल, कृष्णमंडल और दृष्टिपटलकी मस्तिष्कीय तह ये होते हैं।

शुक्लपटल

यह असलमे तन्तूर और स्थितिस्थापक घटकोका बना हुआ होता है और इसका असल कार्य रक्षण करनेका जैसा होनेसे इसमें चयापचय किया कम प्रमाण की होती है और इसी वजहसे इसमें रक्तवाहिनीया कम होती है।

शुक्लपटल की रासायनिक रचना अन्य संरक्षक घटकोंके समान होती है। इसमे जलका प्रमाण ६५.५१%, रक्षा ०.८४% और शेषमे प्रोतीन नत्रप्रचुर द्रव्य होते हैं, जिसमें कोलोजेन (८७%) और म्युको प्रोतीन (१३%) इतना होता है। म्यूको प्रोतीन पदार्थ (श्लेष्मिक नत्रप्रचुर पदार्थ उपास्थिमय पदार्थ (कानडायटिन) पर गंधकाम्ल की क्रियासे होनेसे वह उपास्थिमे के श्लेष्मिक वर्गका होता है; इसके रासायनिक घटनामें कर्ब (३२.४७%) हायड्रोजन (स. ४.८६%), नाइट्रोजन(N ५.६६%) गंधक (S ४.५७%) कारबोहायड्रेड (२८.८३%) होते हैं।

शुक्लपटलकी स्प्रीति (टरजिसेन्स) खास दिलचस्पी की बात होती है क्योंकि उसका नेत्राभ्यन्तर दबाव मे महत्व होता है; शुक्लपटलमें प्रोतीन द्रव्य होनेसे अम्ल और क्षारमें वह फुला हुआ होता है और इस क्रियामें नेत्रगोलकके आयतन समावेशनमें बदल होता है।

शुक्लपटलका सुपेद रंग उसमेंके जलांशके प्रमाणपर अवलम्बित होता है; और **फिशर** पंडितके मतानुसार शुक्लपटलके तन्तु सरेस जैसे होनेसे उसमें जलके अंशका विपरीत तौरसे संयोग होता है, और जब जलांशका प्रमाण नैसर्गिक होता है तब उसमेंसे प्रकाश का प्रसरण होनेसे उसमे अपारदर्शकता दिखाई देती है; जलाश का नैसर्गिक प्रमाण ४०% से कम होता है तब वह तारकापिधान जैसा पारदर्शक होता है।

कृष्णमंडल

यह कृष्णपटल, तारकातीत पिंड और तारकाका बाना होता है; इसका पोषण प्रत्यक्ष रक्तसे होता है और रक्त और इनके घटकोमेंका अदल बदल पारपृथक्करण रूपका होता है।

दृष्टिपटल की मस्तिष्कीय तह

इस तहकी चयापचय क्रिया मस्तिष्कमेंकी चयापचय की जैसी ही होती है; इन दोनोंमें रक्तवाहिनीयोंका प्रत्यक्ष संबंध इसके घटकोसे नहीं होता, लेकिन रक्तवाहिनीयां मज्जाधारक घटकोंके आवरणसे लपेटी रहती है जिसमेंसे द्रव पदार्थोंका अदल बदल होता है और इसी तौरसे लसिकाका वहन होता है।

नेत्रके रक्तवाहिनीयां रहित घटकोमेंकी चयापचय क्रिया

आन्तर प्राणिलीकरण की प्रणाली

चयापचय क्रियाकी असली प्रतिक्रिया पारस्परिक प्राणिलीकरण (ऑक्सिडेशन) और सोज्जकरण (रिडक्शन) की क्रिया की रूपकी होती है, जो श्वासोश्वास के गैसिस से रक्तके माध्यममेंसे होती है। इस तरहके बाह्य श्वासोश्वासके व्यूहके सिवा बहुतसे घटकोंमें आन्तर श्वासोश्वसन व्यूह होता है जिससे पहलेकी क्रियाको मदत होती है। जिन घटकोंमें रक्तवाहिनीयोंका अभाव होता है उनमें यह आन्तर श्वासोश्वसन व्यूह महत्व का होता है असलमें नेत्र जैसे इन्द्रियमे, जिसमे आक्सीजनका प्रमाण कम होता है इसका महत्व ज्यादह होता है। इस व्यूहमे दो तरकीबसे कार्य होता है:—एक **विपाक** (एनझाईम) की तरकीब और दूसरी तरकीब स्थिर पदार्थकी जिसमें यकायक स्वयंमेव प्राणिलीकरण हो सकता है।

पहलमें की प्रतिक्रिया पृष्ठपरसे शोषण के रूपकी होती है जिसका स्थान एक अणु याले घटकोंके अति मिश्र और नाज़ूक और लसलसादार परिस्फटिक प्राणालीके पृष्ठपरसे होता है जिनको विपाक (एनझाइम) कहते हैं। दूसरीमे ऐसे पदार्थ होते हैं कि जिनमें सोज्जीकरणके बदले प्राणिलीकरण की क्रिया होती है और जो तुरन्तही पाणिली करणसे सोज्जीकरण दिखाते हैं। ऐसे पदार्थका नमूना ग्लूटाथायोनिन, जिसमे सिसटीन होता है, पदार्थ होता है।

यह खास तौरसे शाबित हुआ है कि स्फटिक मणिमेंकी चयापचय क्रिया इसी तरकीबसे होती है और शायद यही क्रिया तारकापिधान और स्फटिकद्रवपिंडमें भी होती है।

तारकापिधान

तारकापिधान की रासायनिक घटना

पंडित **लेबर** के मतानुसार तारकापिधानमें **द्रवभागका प्रमाण** ७८·९% इतना होता है जिसमें से १६·४% (ॅ) वह सकता है और ६२·५१% उसको सुकानेसे

उड जाता है। **घन द्रव्योंका प्रमाण** २१·०७% होता है:–घन द्रव्योंमें घुलनशील **क्षार** ०·८४% और अघुलनशील क्षार ०·११% **प्रोतीन द्रव्य** २०·८३% और अन्य सेन्द्रिय द्रव्य २·८४%। तारकापिधान में अलब्युमिन और ग्लाब्युलिन थोडे प्रमाणमें मिलते लेकिन साधारणतया ये कोलाजेन और म्यूको प्रोतीन (८१·२%–१८·८%) होते हैं। इस कोला-जेन को पानीमें उबलनेसे जिलेटिन नही मिलता बल्कि नैट्रोजन (N १६·९५ %) और गंधक (S ३०%) मिलता है। ख्यालमें रखना ये दोनो द्रव्य शुक्लपटल में के इन द्रव्योंसे भिन्न तौरके होते हैं।

जेस के संशोधनसे मालूम हुआ है कि इसमें अमिडो अम्ल–हिसटिडाबूॅन, अर-जिनाईन और लायसाईन मिलते हैं। तारकापिधान के द्रवभागमें चाक्षुष जलके सब घटक मिलते है।

तारकापिधान पोषण

तारकापिधान का पोषण नेत्राभ्यन्तर जलके द्रव्योंका परिधिभागसे **प्रसरण** होकर होता है। पहले ही कहा है कि नेत्राभ्यन्तरजल शुक्लकृष्ण संधि के इर्द गिर्द के रक्तवाहिनियोंमेंसे प्रत्यक्ष पारपृथक्करणसे (डायलिसेस) पाया जाता है और अप्रत्यक्ष तौरसे पूर्ववेश्मनीमेंके जल से होता है। तारकापिधान मे की चयापचय क्रिया मंद गतिसे होती है और यह पौष्टिक अन्न दोनोमेंसे कोनसे ही एक मार्गसे मिल सकता है। यह प्रसरण बने हुए मार्गोंके सिवा तारकापिधान के आम रचनामें से होता है। और इसी वजहसे तारकापिधान का आधा भाग उसके परिधिसे अलग किया जाय तोभी पारदर्शक रह सकता है और इसी कारणसे उसके कुछ भाग का कलम करना संभव होता है।

इस संबंधमें पंडित **ग्रूबर** और **लाक्युअर** के प्रयोग ख्यालमे रखने लायक है। **ग्रूबर** पंडितने तारकापिधानपर लोहेका जंग लगाया और फिर पोट्याशियम फेरोसायनाईड का अन्तःक्षेपण रक्तवाहिनीयोमे किया जब कुछ समय मे तारकापिधानपर के रंग के डाग चाक्षुष जलमे कुछ भी रंग न दिखाते हुअे भी उसके परिधिसे केन्द्रकी ओर नीले दिखाई लगे **लाक्युअर** पंडितनें पूर्व वेश्मनीमे फेरोसायनाइड का क्षेपण करनेसे तारकापिधान के परिधि-भागसे केन्द्रकी ओर प्रसरण होके न्हनीला रंग दिखाई लगा।

पोषण के दोनोमेंसे कोनसा ही एक मार्ग साबित रहनेसे तारकापिधान का पोषण होता है; दोनो मार्गोंका नाश होनेसे जैसे कि पिछली लम्बी तारकातीत पिंडीय रोहिणी में काट देनेसे या कुल छोटी तारकातीत पिंडीय रोहिणीयोंको काटनेसे तारकापिधान का गुण-न्हास होता है और वह सड भी जाता है।

प्रसरण इसके विरुद्ध दिशामे भी होता है, यद्यपि उसकी गति मंद होती है तो भी यह क्रिया प्राकृतिक तौरसे औषधीयों के उपयोगमें महत्वकी होती है। अट्रोपीन जैसी दवाअें तारकापिधान पर डालनेसे पूर्व वेश्मनीमें प्रसरण हो जाती है। यह फैलाव तारका-पिधानमेंसे पार जाता है, यह क्रिया परिधिके शुक्लकृष्ण संधिकी रक्तवाहिनियोंमेंकी शोषण क्रिया नही है। ख्यालमें रखना कि प्रवेशक्षमतामें उपयोग किये जल की प्रतिक्रिया के अनु-

सार फर्क होता है। जबतक **अन्तःपट** (एनडोथेलियम) और **बाह्यकला घटकोंको** (एपिथेलियन) की कुछ भी इजा नहीं होती तबतक प्रवेशक्षमतामें चुनाव करने की शक्ति दिखाई देती है। पोट्याशियम पूर्ववेश्मनीमे जा सकता है लेकिन उसमेंसे बाहरकी ओरको नहीं जा सकता। बाह्य कला की तहसे शोषण को रुकावट होती है, और उसको निकालनेसे या उसका नाश होनेसे शोषण शीघ्र तौरसे होता है उसमें चुनाव की क्रिया नहीं दिखाई देती और कम प्रसरणशील पदार्थ जैसे की मेथिलिन ब्ल्यू, फ्लुरिसिन, रक्तरस या हीमोग्लोमिन भी पार जा सकता है। कोकेनसे प्रसरण को मदत होती है क्यो कि उससे सुन बहिरी पैदा होनेसे बाह्य कला तह सूकी होनेसे उनपर विपरीत असर होता है और उसमें नेत्र पिचपिचाना बंद होता है और अश्रू का आश्राव नहीं होता। सब सुबहिरी करनेवाले पदार्थ इसी तौरसे कार्य करते हैं। त्रिमुखी मज्जारज्जू की अन्तके तन्तुओंकी कार्य शक्ति, बाह्यकला घटकोंकी चयापचय क्रिया नैसर्गिक होने के लिये उनकी प्रवेशक्षमता का नियमन के लिये और उनकी प्राकृतिक रासायनिक क्रिया होनेके लिये कायम रहना जरूरी है।

तारकापिधानमें की श्वासोश्वास की क्रियाः—प्राणवायूकी कमतरतासे तारकापिधानपर घातक असर होता है; नेत्रको, जिसकी बाह्य कला तह शाबित होती हैं, आर्द्र कोटरमें रखनेसे तारकापिधान २४ घंटे तक साफ रहता है लेकिन हवाके बदले सिर्फ हायड्रोजेनमें रखनेसे उसके घटक फौरन अपारदर्शक होते हैं। तारकापिधान को प्राणवायूकी आक्सीजनेकी अत्यन्त जरूरी होती है। उसमें रक्तवाहिनीयोंका अभाव होने की वजहसे इसमे श्वासोश्वास व्यूह होता है और यह कार्य आन्तर और बाह्य कलापटल तहोंसे होता है। आक्सीजेन और कारबानिक आसिड तारकापिधानमेंसे पार जाते हैं लेकिन उनका चलन एकही दिशामें होता है। आक्सीजेन बाह्य कलाघटकमेसे (बाह्य वातावरणसे) पीछेकी पूर्ववेश्मनी की ओर जाता है। और कारबानिक आसिड (अम्ल) तारकापिधानमे से सामने के वातावरण की ओर को निकल जाता है; साधारणतया अन्तःपटको आक्सीजेन की ज्यादा जरूरी होती है और उसको यह नेत्राभ्यन्तर जलसे प्रत्यक्ष तौरसे मिलना संभव है; लेकिन यह वह मिला या पूरा नहीं मिला तो वह इर्दगिर्द के वातावरणसे मिला सकता है। इस प्राणवायूका उपयोग किस तरहसे होता है इसका अभीतक पत्ता नहीं लगा है।

तारकापिधान की स्फीति (टरजिसेन्स):—यह तारकापिधान को स्रवित जलमें (भपकेमे खींचे हुए) डुबाके रखनेसे पैदा होती है उसकी मोटाई आठ गूना बढ जाती है और उसका वजन चौगूना बढ जाता है; इसमें शुक्लपटलका भाग नहीं दिखाई देता। लेकिन इसको अम्ल या क्षारमे डुबा रखनेसे इसमें यह अवस्था शुक्लपटल की अवस्था जैसी दिखाई पडती है, और फूलनेकी अवस्था क्षारोंके प्रमाणपर अवलम्बित रहती है।

तारकापिधानकी तह हमेशा तनी हुई जैसी रहती है और इसमें अक्षीय और आडी दिशामे फर्क दिखाई देता है, उनमे प्रकाशसंवर्धाका दोहरा परिवर्तनका गुण दिखाई पडता है। जब दबाव बढ जाता है तब यह गुण और बढ जाता है। प्रकाशका परिवर्तन ज्यादह होकर वह उसमेंसे ज्यादह प्रमाणमें अन्दर जाता है। दबाव का प्रमाण बहुत बडा हुआ हो तो धुंदलापन होता है। ख्यालमे रखना कि यह धुंदला पन जलशोफकी अवस्थासे भिन्न होता

है। यह अवस्था तारकापिधानकी तहोंमें जल जोरसे घुस जानेसे पैदा होती है ऐसा माना गया है।

स्फटिकमणि

स्फटिकमणिकी रासायनिक रचना

स्फटिकमणिमे द्रवांशका प्रमाण ६३·५०% होता है और घन द्रव्योंका प्रमाण ३६·५०% होता है। घन द्रव्योंमे प्रोतीन ३४·९३, लेसिथिन ०·२३%, कोलेस्ट्रीन ०·०२२% चरबी ०·२९% और क्षार ०·८२% इतना प्रमाण होता है।

(१) प्रोतीन द्रव्योमेः—अलब्युमाईड, जो केन्द्रमें पाया जाता है, जल और अम्लमें घुलता है, १७% होता है।

(२) ग्लाब्युलिन्स जलमें घुलता है; इसकी दो तरह होती है : एक

(अ) अल्फा क्रिस्टालीन ११% असेटिक अम्लमें घुलता नहीं, यह बाहरके घटकोंमें मिलता हैं।

(ब) बीटा क्रिस्टालीन ६·८% असेटिक अम्लमे घुलता है और भीतरी के घटकोंमे मिलता है।

(३) अलब्युमिन ०·२%

प्रोतीन द्रव्योंमें नायट्रोजन और गंधक पाये जाते हैं उनका प्रमाण नीचे दिया है।

सारिणी २४

	ना. N.	गं. S.
अलब्युमिनाईड	१६·३४%	०·८७%
अल्फा क्रिस्टालीन	१६·४६%	०·६८%
बीटा क्रिस्टालीन	१७·००%	१·३४%

प्रोतीन द्रव्योमें अमिडो असिडस अनेक तरहकी पाया जाता हैं।

स्फटिकमणिमें प्रोतीन द्रव्योंका प्रमाण उमरके साथ बढता जाता है (पांच हते की उम्रमें ३२·३३% से सोलाबरसके उम्रमें ३६·३५% होता है) अघुलनशीन प्रोतीनका प्रमाण बढता है (७·३२% पांच हतेका प्रमाण १६ बरसके उम्रमे २१·४७% होता है) घुलनशील प्रोतीनका प्रमाण घटता जाता है (२४·९५% पाच हतेका प्रमाण १६ बरसके उम्रमें १४·८८% होता है)। घुलनशील प्रोतीन का घटनेका प्रमाण **बीटा क्रिस्टालीन**मे दिखाई देता है, और उसका अभाव बढती उम्रमे स्फटिकमणिकी कठनाईका कारण होता होगा।

स्फटिकमणिमें **चरबीदार पदार्थोंका** प्रमाण प्रोतीन द्रव्योंसे कम होता हैं और सब संशोधकोंके मतानुसार इनका प्रमाण उम्रके अनुसार बढता है।

खनीज क्षारोंकी द्रावण घनता का प्रमाण ०·७ ते ०·८% इतना होता है। इनका प्रमाण रक्त या नेत्राभ्यन्तरजलके प्रमाण इतना नहीं होता। **बरडन कूपर** के वर्णपट

विश्लेषण से मालूम होता है कि इन द्रव्योमें निम्न लिखित द्रव्योंके क्षार होते हैं:—कैलासियम, सोडियम, पोट्याशियम, मैंगनेशियम और झिंक, जस्त, लोहा, शिसा, चांदी, खिलिकान और अन्य धातुअें मिलती है। इन, क्षारोंके घनताका प्रमाण उम्रके साथ बढता जाता है।

कैलशियम का प्रमाण १५% और फासफरस का प्रमाण २०% होता है।

शक्करका प्रमाण **क्रोनफेल्ड** के मतानुसार रक्तके प्रमाण इतनाही होता है; यह हेक्झोझ की तरहकी होती है ग्लायकोजेन तरहकी नहीं होती।

स्फटिकमणिमें यूरीया युरिक अम्ल और क्रियाटिनिनका अभीतक पता नहीं लगा है।

स्फटिकमणिके समविद्युतग्राही बिन्दुका (आयसो इलेक्ट्रिक पाइंट) शोध लगा है। प्रोटीन द्रव्योंकी स्थिरता संबंधमें इसका महत्व होता है। **गुलोटा** के संशोधनसे इसका प्रमाण pH·४ निकला तो **बुग्जिया** (१९२५) और **स्कलिनीसि** के संशोधनसे मालूम हुआ कि स्फटिकमणिके परिविभागसे (pH ३ से ४) उसका केंद्रस्थ भाग (pH ४·५) ज्यादह क्षारीय प्रमाणका होता है। **वूडस** और **बर्की** (१९२८) ने ऐसा सिद्धान्त बनाया कि स्फटिकमणिके **अल्फाक्रिस्टलाईन का** समविद्युतग्राही बिन्दु pH ५ होता है और बीटा क्रिस्टलाईनका pH६ होता है। pH ४ से ५ प्रमाणमें स्फटिकमणिके तन्तु अपारदर्शक होते है, लेकिन pH ६ से ७ प्रमाणमें वे पारदर्शक होते हैं। स्कालिनिसीके मतानुसार स्फटिकमणिका नैसर्गिक pH प्रमाण ७·३८ होता है।

स्फटिकमणिका पोषणकार्य :

नेत्रगोलकके सब घटकोंमे स्फटिकमणि की प्रणाली पृथक् और अलग होती है और यह चाक्षुष जलसे घेरा हुआ होता है और इसी वजहसे इसका पोषण इसके आवरणमेंसे प्रसरण क्रियासे ही होना चाहिये। स्फटिकमणि यह चाक्षुषजलसे बिलकुल भिन्न तौरकी भौतिक रासायनिक प्रणाली होती है। उसका अभिसारक प्रमाण १·२% (सोडियम क्लोराईड) द्रावणके बराबर होता है। लेकिन चाक्षुषजलका या स्फटिकद्रव पिंडका ०·९६ से ०·९९% प्रमाणके बराबर होता है। यह अभिसारक दबाव कायम रखनेके लिये सतत कार्यकी जरूरी होती है और यह स्फटिकमणिके आवरण की स्थितिस्थापकता और, स्फटिकमणिके भीतरका जलस्थितिका दबाव (हायड्रोस्टेटिक प्रेशर) कायम रखनेके लिये तारकातीत पिंडीय स्नायुकी स्फटिकमणिके **झान्यूल** नामके आन्दोलन बंदपर जो ततिवर्धक खींच होती रहती है उससे यह पाया जाना संभवनीय दिखाई देता है। यानी स्फटिकमणिमें जलकी अभिसरणसे अन्दर घुसनेकी प्रवृत्ति और छाननेके दबावसे स्फटिकमणिसे बाहर प्रसरण होनेकी जल की प्रवृत्ति ऐसे दो विभिन्न शक्तियोंमें संतुलिन अवस्था पैदा होती है।

इस व्यूहका नियंत्रण स्फटिकमणिके आवरणसे होता है यह प्रयोगसे सिद्ध हुआ है। इस आवरणको काटनेसे या उसको इजा होनेसे उसके अन्दर जल घुस जाता है जिससे स्फटिकमणिके तन्तु फुल जाकर वे अपारदर्शक होते हैं। मेंढक के चमडीके नीचे नमक का अन्तःक्षेपण करनेसे उसका स्फटिकमणि सुकड जाकर अपारदर्शक होता है लेकिन प्राणिको पानीमें डुबानेसे वह फिरसे नैसर्गीक जैसा होता है। यह अभिसारणका उलटना मधुमेह, कालेरामें दिखाई देनेवाले आशुकारी मोतीबिन्दुका कारण होता है।

·जिन्दी अवस्थामें जलका अदल बदल इस आवरणमेंसे प्रसरण क्रियासे होता है। अति सूक्ष्मदर्शक यंत्रकी सहायतासे उसमें छिद्रोंका अभाव होता है ऐसा मालूम हुआ है। विद्युत विच्छेद्य पदार्थोंको और सच्चे घोलक द्रव्योंको (इलेक्ट्रोलिटस) यह आवरण पूर्णतया प्रवेश्य सार होता है, प्रतिस्फटिक अणूसमूह दशाके बारिक कणोंको कुछ प्रवेश्यसा होता है और तेल और चरबीदार बिन्दुओंको पूर्णतया अप्रवेश्य होता है। प्रतिस्फटिकके साधारण आकारके कणोंका घन या ऋण विद्युत संचारित हो, प्रसरण होना संभव है लेकिन जिनके कण मोठे आकारक होते है उनका प्रसरण नहीं हो सकता (लोहा; इन्डियन इंक वगैरा), **शुद्ध हीमोग्लोबिनका** द्रावण मंदगतिसे प्रसरण हो सकता है लेकिन उसमें रक्तरस मिश्रित हो तो उसका प्रसरण नहीं होता, **अन्डेका अलब्यूमेन** का थोडे दिनके पश्चाद, **रक्तरसके अलब्यूमेनका** सूक्ष्म प्रमाणमें होता है यदि उसपर दबाव हो। स्फटिकमणिके पीछले भागके आवरणमेंका प्रसरणका प्रमाण सामनेके भागके आवरणमेंके प्रमाणसे बढकर होता है (६ से ७ गुना) क्योंकि वह ज्यादह पतला होता है। इन सब क्रियाओमें आवरण जड अर्ध प्रवेश्य परदेके जैसा होता है लेकिन उसकी प्रवेशक्षमता कैलसियम, सायनाईड और प्रोतीनसे कम होती है और मोती बिन्दुकी अवस्थामें बढती है : उम्र बढनेके साथ साथ इसकी प्रवेशक्षमता कम होती है।

स्फटिकमणिमें खास प्रसरण मंदगतिसे होता है। लेकिन रक्तमें क्षारोंका अन्तःक्षेपण करनेसे और उनका अस्तित्व वर्णपटीक विश्लेपणसे देखनेसे **बर्नजोन्स** ने सिद्धान्त निकाला था कि क्षार स्फटिकमणिमें सब इन्द्रियोंके आखिरको घुसता है और उसमेंसे सब इन्द्रियोंमेंसे निकल जानेके बाद निकल जाता है। इसके साथ स्फटिकमणि और चाक्षुपजलमेंकी अदल बदल उसके पोषण के लिये और उसमेंकी चयापचय क्रियाके फलोंको निकालनेके लिये जरूरी होती है और यदि इसमें खतरा पैदा हो तो स्फटिकमणि अपारदर्शक हो जाता है। नैसर्गिक स्फटिकमणिको प्राकृतिक क्षार द्रावणमें शरीरकी उष्णतामानमें, उसको कुछ भी पौष्टिक अन्न न दिया जाय तो, वह अपारदर्शक होता है; और आवरणकी प्रवेशक्षमतापर प्रयोग करनेसे ही मोतीबिन्दुकी अवस्था पैदा होती है। इसी तौरसे पिछली तारकातीत पिंडीय रोहिणीको या आवर्त नीलाओको बांधनेसे स्फटिकमणिमें मोतीबिन्दुकी अवस्था पैदा होती है क्योंकि इस प्रयोगसे पोषणद्रव्योंका अभाव होता है और त्याज्य द्रव्योंका जमाव होता है।

स्फटिकमणिमेंकी श्वासोश्वास क्रिया

स्फटिकमणिमेंके प्राणिलीकरण व्यूहसंबंधी अभीतक पूरे ज्ञानका अभाव होनेसे उस संबंध निश्चित तौरकी कल्पना करना संभाव्य नहीं होता। स्फटिकमणिमेंकी चयापचय क्रिया मंद तौरकी होती है यह माना गया है; लेकिन यह बात असंभवनीय दिखाई देती है कि चाक्षुषजलमेंका, जिसमें हिमोग्लाबिन नहीं पाया जाता, प्राणवायू (आक्सीजेन) का दबाव, अन्य मदत के सिवा, अपने कार्यमें काबिल हो सकता है। यह बात साबित हुई है कि स्फटिकमणिमें **आन्तर प्राणिलीकरण** (इन्टरनल आक्झीडेशन) की प्रणाली होती है यह कल्पना पंडित **गोल्ड स्किमिडने** पहले पहल (१९१७) निकाली। इस कार्य-

शक्तिका नाप दो तरहसे हो सकता है:—(१) अन्तर्ग्रहण किये हुअे आक्सीजन का प्रमाण प्रत्यक्ष निकालना; या (२) स्फटिकमणिको लगे हुअे **मेथिलिनब्ल्यू** का रंग उडजानेके समयका प्रमाण नापना । ध्यानमे होगा कि इस रंगीन द्रव्यका प्राणिलीकरण होनेसे उसका रंग उडजाता है, और इसी वजहसे रंग उडजानेका प्रमाण प्राणिलीकरण की तीव्रताका गुणक हो सकता है । इस कार्यका नापन अनेक शास्त्रज्ञोंने किया है और उनका इस संबंधमें एकमत है । स्फटिकमणिमेंका प्राणिलीकरणका कार्य स्नायुओंके इस कार्यसे कम होता है लेकिन मज्जारज्जुमेंके इस कार्यसे ज्यादह जोरदार होता है : प्रतिकूल अवस्थामें (निर्वात) इसकी शक्ति ज्यादह बढ़ती है; अम्ल माध्यममें यह क्रिया कम होती है, pH ६·० से ७·० मे रुक जाती है, परालाल या पराकासनी किरणोंके विकिरणसे यह क्रिया कम होती है, बढती उम्रकी अवस्था या मोतीबिन्दुकी अवस्थामें भी कम होती है ।

लेकिन अभीभी मालूम नहीं हुआ है कि स्फटिकमणि उसको मिले हुअे आक्सीजेन का किस तरहसे उपयोग कर सकता है । **कैसिओंके** मतानुसार उसमें विपाक (एनझाईम्स) होते है, **अहलग्रेनने** ऐसा पुरावा बतलाया है कि स्फटिकमणिमेंकी चयापचय क्रिया हायड्रोजेनका हरण करनेकी क्रिया (डी हायड्रोजेनेसिस) पर अवलम्बित होती है ।

लेकिन **गोल्डस्किमडट, अवडर हालडेन वरदीमेअर** और **अडाम्स** के संशोधनसे मालूम होता है कि स्फटिकमणिमेंके स्वयंप्राणिलीकरण व्यूहका, इस कार्यमें भाग होता है, जिसम **ग्लुटोथायोन** स्वयंप्राणिलीकरण (आटो आक्झीडेशन) का घटक जैसा कार्य करता है और **बीटा क्रिस्टालीन** उष्णतामान स्थापक अवेशष पदार्थ (थर्मोस्टेबल रेसिड्यू) जैसा कार्य करता है । स्फटिकमणिमें ग्लुटोथायोन चर्मपृथक्करण योग्य जैसे आकारका होता है, और उसको पारपृथक्करण क्रियासे अलग निकाल लेनेसे स्फटिकमणिकी आक्सीजिनका उपयोग करनेकी शक्ति रुक जाती है । लेकिन उसमे ग्लुटोथायोनका बारिक कणको मिलानेसी आक्सजिनका ग्रहण नैसर्गिक जैसा होता है । और उसका प्रमाण और ज्यादह बढानेसे यह शक्ति और भी बढ जाती है । और इसमें अलसीके तेलका बूंद डालनेसे यह क्रिया और भी जोरदार होती है । इस बातसे स्फटिकमणिमेंके चरबीदार पदार्थोंका महत्व ध्यानमे आजायेगा । उम्र जैसी बढती जाती है और मोतिबिन्दुकी पक्व होनेकी अवस्थामें स्फटिकमणिकी प्राणिलीकरण की क्रियामें और ग्लुकोथायोन और बीटाक्रिस्टालीनके प्रमाणमें समानान्तर जैसी घटत होती जाती है ।

फिशर का निरीक्षण महत्व का है : खरगोष के नैसर्गिक नेत्रोंमेके चाक्षुषजलमे लाकटिक आसिड–अम्लका प्रमाण, **निर्मणिवाले** नेत्रकी अपेक्षा ज्यादह होती है । (नैसर्गिक नेत्रमें २८% मिलिग्राम और निर्मणिवाले (अफेकिक) नेत्रमे १४·५% मि. ग्राम जिसपरसे कल्पना कर सकते है कि स्फटिकमणिमें ग्लायकोलिटिक शक्ति होती है ।

दृष्टिपटलकी बाह्यकलाघटक की तह

दृष्टिपटलके भीतरी तहोंको पोषण दृष्टिपटलकी रोहिणियों द्वारा होता है; इसके बाह्य तहोंमें रक्तवाहिनियोंका अभाव होता है और यह संज्ञावाहक तह होती है और उनका पोषण प्रसरण क्रियासे होता है । इनको पोषण द्रव्य कृष्णपटलकी केशिनीयोंसे मिलता है ।

तारकातीत पिंडीय पिछली रक्तवाहिनीयोंको काटनेसे इन तहोंमें गुणऱ्हासकी क्रिया दिखाई देती है और भीतरी तह जैसे के वैसे रहते है। इसके अलावा दृष्टिपटलकी मध्य रोहिणीमें काट देनेसे दृष्टिपटलके भीतरी तहोंमें गुणऱ्हास दिखाई देता है। विकृत अवस्थामें इसी तौरका दृश्य दिखाई पडता है (**वेगनमन**)।

इसमेंकी चयापचय क्रियासंबंधी भी बहुतसा अज्ञान है। लेकिन ध्यानमें रखने लायक बातें ये होती हैं:—दृष्टिपटलमें प्राणिलीकरण की शक्ति होती है और यह शक्ति प्रकाशसे मिलती होनेकी अवस्थामें बढ जाती है। मेथिलिन ब्ल्यूका रंग उडजानेके प्रमाणसे दिलचप्सीकी बात मालूम होती है कि इस क्रियाको मेथिल अलकोहलसे रोक सकते है। अन्य घटकोंसे तुलना करनेसे मालूम होता है कि इसमें ग्लायकोलायसिस की क्रिया दिखाई देती है। मेंढक और खरगोशके दृष्टिपटलमें ग्लायकोजेन पदार्थ दिखाई देता है लेकिन कुत्ता, बिलाडी और मानव जातीमें नहीं पाया जाता। चरबीदार पदार्थका प्रमाण ही इसमें दिखाई देता है।

चाक्षुष नीललोहित पिंगकी रासायनिक रचना और प्रतिक्रियाका विचार अन्य-जगह में (प. ४५३) किया है।

अध्याय २६

नेत्राभ्यन्तरस्नायुतंत्र और कनीनिका की प्रतिक्रिया

नेत्राभ्यन्तर स्नायुओंका ऐन्द्रियविज्ञान

नेत्राभ्यन्तर स्नायु तीन होते है—१ तारकातीत पिंडीय स्नायु २ कनीनिका संकुचक स्नायु और ३ कनीनिका प्रसरणकारक स्नायु। पहले दो स्नायुओंको नेत्रचालक मज्जारज्जुकी उपस्नेहिक शाखा मिलती है और तीसरे स्नायुको स्नेहिक मज्जारज्जुकी शाखा मिलती है। इन स्नायुओंके तन्तु अनंकित होते है और अन्य अनंकित स्नायु जैसे हमेशाह तनाव के अवस्थामें रहते हैं और इनमें मज्जातन्तुओंका कुछ भी असर नहीं होता। तारकातीत पिंडीय स्नायु नैसर्गिक अवस्थामें भी तनाव की अवस्थामे होता है इसके अलावा कनीनिका के दो स्नायुओंका परस्पर विरोधी तंत्र होता है। यह ख्यालमें रखना कि ये दोनो स्नायु व्युत्क्रम जोरदार मज्जातन्तुकी क्रियासे नाजुक संतुलित अवस्थामे रहते हैं, एक जब संकुचित होता है तब दूसरा स्नायु विश्राम अवस्थामें जाता है।

नेत्राभ्यन्तर स्नायुओंका नियमन

नेत्राभ्यन्तर स्नायुओंके नियमन का मज्जामय संस्थान

(अ) तारकातीत पिंडीय स्नायुका नियमन का मज्जामय संस्थान

तारकातीत पिंडीय स्नायुका नियमन मध्यमतिष्कमे के मज्जाकेन्द्र से होता है और संभव है कि इसका निकट संबंध कनीनिका के संकुचक केन्द्र से रहता है, केन्द्र और केन्द्रत्यागी मज्जापथ तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जू की उपस्नेहिक शाखा चाक्षुपमज्जाकेन्द्र (सिलियरी गैंगलियन) में परिवर्तित होती है और उसकी छोटी तारकातीत पिंडीय मज्जारज्जू शाखा होकर नेत्र को जाती है।

मोराट और **डायर** (१८९१) के समयसे ऐसी कल्पना की गयी थी कि स्नेहिक मज्जारज्जू का संबंध नेत्र के दृक्संधान शक्ति के तंत्र से जुडा हुआ होता है। और भी अन्य कल्पना की गयी थी। **टी. हेन्डरसन** शास्त्रज्ञने (१९२५–२६) बतलाया कि तारकातीत पिंडीय स्नायुका नियमन स्नेहिक मज्जारज्जू और तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जू इन दोनों की व्युत्क्रम अवस्थासे होता है। स्नेहिक मज्जारज्जू से तनाव का उद्दीपन होता है तो तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जूसे निरोधन होता है। और उन्होंने ऐसी कल्पना की थी कि जब नेत्र विश्राम की अवस्थामें होता है, तारकातीत पिंडीय स्नायु अंगस्थिति दर्शक तनाव की (पोस्ट्रल टोनस्) अवस्थामें होता है और दृक्संधान शक्ति का कार्य तनाव के संकुचन का निरोधन होनेसे होता है। हाल के संशोधन का पुरावा स्नेहिक मज्जारज्जू का कार्य दृक्संधान कार्य के विरुद्ध होता है।

(ब) कनीनिकाका संकुचन केन्द्र और मज्जापथ (प. ४७७ चि. २८२)

सार्वत्रिक तौरसे माना गया है कि कनीनिका की प्रतिक्रियाओंका संकुचन केन्द्र, यद्यपि उसका खास स्थाननिर्णय नहीं हुआ है, मध्यमस्तिष्कमे होता है। इससे कनीनिका की

संकुचक स्नायु की तनी हुई अवस्था जो नैसर्गिक से तनी हुई होती है, और ज्यादह जोरदार होती है। इसका केन्द्रत्यागी मज्जापथ तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जूमेंसे होता है; इस मज्जारज्जूमें काट देनेसे कनीनिकाका मध्यम तौरका प्रसरण होता है। इसका केन्द्रगामी पथ दृष्टिरज्जु होता है जिसको काटनेसे कनीनिकाका प्रसरण होता है, और तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जूमे काट देनेसे कुछ फर्क नहीं होता। संकुचक स्नायुकी तनावकी अवस्थामें चाक्षुपमज्जाकंदके कार्यसे बढाव दिखाई पडता है क्योंकि तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जूको काटनेसे कनीनिकामें जो प्रसरण होता है, वह छोटी तारकातीत पिंडीय मज्जारज्जूको काटनेसे या चाक्षुष मज्जाकंदको निकाल लेनेसे और ज्यादा होता है।

कनीनिका का संकुचक केन्द्र तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जूके केन्द्रके पास होता है। बाह्यतया आन्तरित नेत्रस्नायुवात एक साथ दिखाई पडता है या उनकी व्यवच्छिन्नता–विघटन दिखाई देती है। इसपरसे कल्पना कर सकते है कि कनीनिकाका स्नायुसंबंधीका केन्द्र का संबंध नेत्रगोलकके बाह्यचालनी स्नायुओंके केन्द्रसे होता है तो भी वह स्वतंत्र होता है। सब संशोधकोंने माना है कि **एडिंजर–वेस्टफाल** का सहकारी छोटे पेशिदार केन्द्रकमेंही इसका स्थान होता है। इस कल्पनाको जातिजनि और व्यक्तिजनि तथा रुग्णविषयक और प्रयोगोंका पुरावा मिलता है। लेकिन ख्यालमें रखना कि यह बात पूर्णतया स्थापित नहीं हुई है क्योंकि **एडिंजर–वेस्टफाल** का केन्द्र साबित होतेही कनीनिकाका भ्रंश देखा है।

कनीनिका का संकुचन का केन्द्रत्यागी मज्जापथ तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जूके उपस्नेहिक मज्जातन्तु जो चाक्षुपमज्जाकन्दको जाते हैं उसमेंसे होता है। वहा परिवर्तन होकर वह पथ छोटी तारकातीत पिंडीय मज्जारज्जूमेंसे तारका और तारकातीत पिंडको जा पहुचता है। इन तन्तुओंका पथ मुकर्रर हुआ है। परिवर्तन का स्थाननिर्णय **लांगले** और **एन्डरसन** (१८९२) संशोधकोंने निकटीन की पद्धतीसे सिद्ध किया है। तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जूमे काट देनेसे चाक्षुपमज्जाकंद तक गुणऱ्हास दिखाई पडता है उसके पार नहीं दिखाई देता। यह भी ख्यालमें रखना कि तारकाको निकाल लेनेसे चाक्षुपमज्जाकन्दमें गुणऱ्हास दिखाई पडता है।

(क) कनीनिका का प्रसरण केन्द्र और मार्ग

कनीनिकाका प्रसरण केन्द्र अनुकंपिक या स्नेहिक मज्जामंडल का होता है। यह केन्द्र **बज** का दन्तुर पृष्ठवंशीय केन्द्र (सिलीयो स्पायनल केन्द्र) ही होता है; रज्जूमूल केन्द्र नहीं होता ऐसा संभव है; पुष्पाधारके नीचे (हायपोथालामिक) के क्षेत्रमें मध्यमस्तिष्कमें इस केन्द्रका स्थान है और मस्तिष्कमें ऐसे और क्षेत्र होते हैं, जैसे कि कापालिक खंड (फ्रान्टल लोब) जिनका कनीनिकाके कार्यमें संबंध दिखाई देता है। मस्तिष्कमेंके पथोंमे अन्योन्य छेदन नहीं दिखाई देता; अधो पुष्पाधार का केन्द्र और पृष्ठवंशीय केन्द्रमें अंशिक अन्योन्य छेदन होता है; मज्जाकन्दके पूर्वके तन्तू ग्रैवेयक अनुकंपिक स्नेहिक मंडलमेंसे जाकर उपरके ग्रैवेयक मज्जाकन्दमें परिवर्तित होते है, वहांसे मज्जाकन्दके पारके तन्तू मात्रिका मज्जातन्तु जालाके साथ मस्तिष्कमें जाकर **गैसेरियन मज्जाकन्द** पर जाकर पंचमी मस्तिष्क मज्जारज्जूकी चाक्षुष शाखा और उसकी नासिका–तारकातीत पिंडीय शाखाके साथ जा कर लम्बी

तारकातीत पिंडीय मज्जारज्जूको मिलती है, जो लम्बी पिछली तारकातीत पिंडीय रोहिणीके (लांग पोस्टेरियर सिलियरी आरटरी) साथ नेत्रगोलकमें घुसती है; इस तरकीबसे चाक्षुप मज्जाकंद से संबंध नहीं होता। लम्बे तारकातीत पिंडीयरज्जू कृष्णपटलके बाहरके अवका-शमेंसे होकर तारकातीत पिंडको मिलते हैं और वहासे तारकाको जाते हैं (चि. नं.२८६)।

२ नेत्राभ्यन्तर स्नायुओंका नेत्राभ्यन्तरजलसे नियमन

यह बात खास तौरसे स्थापित हुई है कि स्नायु-मज्जा संस्थानमें (मायो न्यूरल सिस्टिम) मज्जातन्तू और स्नायुपेशी इतने ही दो घटक नहीं होते। इसका पुरावा यह होता है कि मज्जातन्तु और स्नायुतन्तु उत्तेजनके काबिल होते ही, ग्लानी पैदा होती है, उत्तेजककी प्रतिक्रियाका समय मज्जातन्तुसे उसके स्नायुको जानेको ज्यादा लगता है,और कई दवाओंकी क्रियामे फर्क दिखाई पडता है:—मसलन **क्युरारेसे** कंकाल या अस्थिपंजर (स्केलेटन) की मज्जारज्जु या स्नायुका भ्रंश नहीं होता, **अट्रोपीनसे** उप-आनुकंपिक-स्नेहिक मज्जातन्तुका भ्रंश नहीं होता लेकिन इन दवाओसे इन मज्जारज्जुका उत्तेजन ना-काबिल होता है; **एडरीनलीनसे** उसी घटकोंका उत्तेजन होता है जिनको आनुकंपिक मज्जा-तन्तु मिलते है और आनुकंपिक मज्जारज्जुका गुणन्हास हुआ हो तो भी उसके क्रियाका कार्य होता रहता है। और इसी वजहसे मज्जारज्जु और स्नायुपेशी इन दोनोंके बीचमें स्नायु-मज्जा संधि या ग्राहक पदार्थकी कल्पना का प्रचार किया गया है (लांगले १९०६) मध्यमस्तिष्कमज्जामंडल और प्रान्तस्थ मज्जाकन्द इन दोनोमे इसी तौरकी तन्तुर संधिकी कल्पना की गयी है।

हालके संशोधनसे इस बात पर नया प्रकाश गिरा है। नयी विचारप्रणाली प्रचलित हुई है। **व्हेगस** मज्जारज्जुके उद्दीपनसे मेंढकके हृदयका कार्य कम किया जाय तो उस मेंढकमें का जल दूसरे मेंढकमें डाला जाय तो इस मेंढककी हृदयकी क्रिया कम हो जायेगी; इसकी वजह यह होती है पहले मेंढकमें प्रसरणशील **व्हेगस द्रव्य** (व्हेगस सबस्टन्स) होता है जिसकी प्रतिक्रिया **असिटिक कोलीन** जैसी होती है। आनुकंपिक मज्जारज्जुके उद्दीपनसे हृदयकी क्रिया, उसके इर्दगिर्दके जलमे एडरीनलीन होनेसे, जल्द होती है। अभी अभीके संशोधनसे मालूम हुआ है कि **अनैच्छिक प्रणालीमें** यह क्रिया आम तौरकी होती है और मज्जा-मंडलकी क्रियाकी शरीररस की कल्पना (ह्युमरल थिअरी आफ नरव्हस एकशन) की नींव इसी पर रची है जिसकी मध्यवर्ती कल्पना यह होती है कि अनैच्छिक प्रणालीका कार्य प्रत्यक्ष तौरसे स्नायुतन्तुपर नहीं होता बल्कि इसमें रासायनिक द्रव्य पैदा होनेसे वह कार्य-क्षम होती है जिससे दुय्यम तौरसे संकुचन होता है।

यह संभवनीय दिखाई देता है कि उपआनुकंपिक मज्जारज्जुकी क्रिया असिटिल कोलीन से जो इसमे पैदा होता है, होती है और आनुकंपिक मज्जारज्जुकी क्रिया **एडरी-नलीन** पैदा होनेसे होती है और संज्ञावाहक मज्जारज्जुकी **एन्टीड्रोमिक** क्रिया हिस्टामाइन जैसे द्रव्य पैदा होनेसे होती है।

सिर्फ नेत्रका विचार करें तो **ईंगलहार्टके** प्रयोग (१९३१) से साबित होता है कि नैसर्गिक बिल्ली और खरगोशके तारका और तारकातीत पिंडमें एसिटिल कोलिन होता है, और.

पिंडीय प्ररोहाओंका अक्ष की ओरका चलन रुग्णविषयक प्रत्यक्ष निरीक्षण से, तारका अभाव या तारका काटनेसे, निरीक्षणसे प्रस्थापित हुआ है।

तारकातीत पिंडीय स्नायुका कार्य ऐन्द्रियविज्ञान के दो शाखाओंमें महत्व का होता है।

(१) उसके संकुचनसे स्फटिकमणिके आन्दोलन बंद परका खींचाव का असर कम होनेसे दृक्संधानके व्यापार में उसके आकारमें फर्क हो सकता है।

(२) उसके संकुचनसे तारकातीत पिंडमें से जानेवाली उसकी रोहिणी शाखाऐं दबी जानेसे नेत्रगोलकके सामनेके भागमें की केशिनीयोंका दबाव कम होता है। इसके सिवा शुक्लपटलके कांटा को खींचनेसे स्क्लेम की नाली खुली होनेसे नेत्राभ्यन्तर जल बाहर जा सकता है, और कृष्णपटल खींचा जानेसे इस घटकमेंकी नीलाऐं भी चौडी होती हैं जिससे रक्त-प्रवाह को मदत होती है। इन कार्योंका असर नेत्राभ्यन्तर दबाव कम करनेमें होता है। इन दोनो बातो का और दृक्संधानमेंकी एककेन्द्राभिमुखता और कनीनिका संकुचन का सहगत्यात्मक संचार (सिन कायनेटिक असोसिएशन) का विचार योग्य स्थानमें किया जायेगा।

कनीनिका ऐन्द्रिक कार्य

कनीनिकाकी प्रतिक्रियाऐं

साधारण अवस्थामें दोनों कनीनिका सतत कारक अवस्थामें रहती है और इसका नियमन प्रसरण संकुचन करनेवाले स्नायुओंकी विरोधी कार्यसे होता है; ख्यालमें रखना कि इन दो स्नायुओंकी नाजुक समतुलित अवस्था जैसी अवस्था शरीर के अन्य किसी भी दो स्नायुओंमें नहीं दिखाई देती। इन दो स्नायुओंमें संकुचक स्नायुका तनाव ज्यादा जोरदार होता है क्योंकि निद्रा जैसी विश्राम अवस्थामें और मृत्यूके बाद कनीनिका अर्ध संकुचित अवस्था कि दिखाई देती है। ख्यालमे रखनेकी महत्व की बात यह होती है कि पिछली तारकातीत पिंडीय मज्जारज्जु की पृथक् शाखाओंके उद्दीपनसे मज्जातन्तु जिस भागको जाता है उसी भाग का संकुचन होता है, सब ऐन्द्रिय अवस्थामें स्नायु एक जैसी कार्य करता है।

ऐन्द्रिय तौरसे कनीनिका, नेत्रकी सबंधीकी प्रणालीमें पृथक्करण पट्ट—झिल्ली—जैसा कार्य करती है और इस क्रियामें उसके तीन महत्वके कार्य होते हैं।

(१) उससे दृष्टिपटलपर गिरनेवाले प्रकाशका नियंत्रण होता है। प्रकाशतीव्रता ज्यादा हो तो उसका संकुचन होता है और तीव्रता कम हो तो उसका प्रसरण होता है।

(२) नजदीकके दृष्टिमें नेत्रके नाभीका अन्तर बढाकर नेत्रका दृक्शास्त्रीय अवजार की दृष्टिसे उसकी कार्यक्षम सीमा उससे बढती है।

(३) उससे दृष्टिपटल परकी प्रतिमा, परिधिकी ओरकी किरणोंको रोक कर गोलापायन और रंग विक्षेप (स्फेरिकल तथा क्रोम्याटिक अवरेशन) को कम करके स्पष्ट होती है, कनीनिकाके संकुचनसे विवर्तनके परिणाम ज्यादा स्पष्ट होते हैं और इन दोनों विरोधी

प्रवृत्तिओंका आम नतीजा यह होता है कि कनीनिकाके सब अवस्थामें प्रतिमाकी स्पष्टता कायम रूपकी रहति है।

कनीनिकाके कार्यका निर्धारण करनेवाली असल बातें निम्न जैसी होती हैं :

(१) **प्रकाशकी प्रतिक्रियाः**—(अ) प्रकाशकी प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया, (ब) अप्रत्यक्ष प्रकाश प्रतिक्रिया; (क) साधर्म्य प्रकाश संवेदना (कानसेनश्युअल लाइट रिफ्लेक्स); (ड) चाक्षुष मस्तिष्कीय प्रतिक्रिया।

(२) **सहचारित प्रतिक्रियाएँः**—(अ) समगत्यात्मक प्रतिक्रिया (नीअर रिफ्लेक्स) (ब) नेत्रच्छद प्रतिक्रिया—नेत्र निमीलिकी स्नायुकी प्रतिक्रिया।

(३) **चाक्षुष संवेदन प्रतिक्रियाः**—(आक्युलो सेनसरी रिफ्लेक्स) जिसमें नेत्र या उसके उप भागोके संज्ञाकारक उत्तेजनसे कनीनिकाका संकुचन होता है।

(४) **मानसिक संवेदन प्रतिक्रियाः**—(सायको सेनसरी रिफ्लेक्स) जिसमे मानसिक या सांवेदनिक उत्तेजनसे कनीनिकाका प्रसरण होता है।

(५) **वक्षसोदर तनाव (व्हेगाटानिक) की प्रतिक्रियाः**—वेणिस्थानके केन्द्रसे सहचारित होती है।

(६) **कर्णसंबंधीकी प्रतिक्रियाः**—(अ) कांकलीया (कानके भीतरका कोटर) संबंधीकी प्रतिक्रिया।

(ब) **कर्णकोटरकी (व्हेस्टीब्युलर) प्रतिक्रियाः**—(क) कर्ण सांवेदनीय प्रतिक्रिया।

(७) **कई दवाओंकी प्रतिक्रियाः**—जिसका कनीनिकापर असर होता है, जिसके कार्यका व्यावहारिक और सैद्धान्तिक तौरसे महत्व होता है।

इससे स्पष्ट होता है कि कनीनिका पर असर करनेवाली बाते विविध तरहकी होती हैं। इनके दो वर्ग हो सकते हैं जिनका निर्धारण बाह्य बातोंसे हो सकता है और जिसमें प्रकाशकी तीव्रता और स्थैर्यबिन्दुकी समीपता जिससे **संकुचन** होता है ऐसी बातोंका समावेश होनेवाला पहिला वर्ग; और जिसमे निर्धारण अन्तरीय परिस्थितीसे होता है और जो पहले वर्गकी बातोंसे विरुद्ध कार्य करनेवाला यानी जिसमे कनीनिका का **प्रसरण** होता है ऐसे संज्ञाकारक उत्तेजक और मानसिक अवस्थाओंका दूसरा वर्ग। इन सब बातोंमें सतत परिवर्तन होनेसे नैसर्गिक कनीनिका सतत–प्राकृतिक अविश्रामकी अवस्थामें रहति है और तारका अचल नहीं होती बल्कि हमेशा संकुचन और प्रसरण के फर्क बतलाती है। यह फर्क जवान और स्त्रीयोंमें दिखाई पडते है, और इसमें का चलनका पूरा लोप निद्रा, अट्रोपिन या सुनबहरीकी अवस्था सिवा, नहीं होता।

नैसर्गिक कनीनिकाके व्यासका प्रमाण २.५ से ४ मि. मि. यानी औसत मान ३.५ मि. मि. समझना। इसका आकार पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रीयोंमे, और दीर्घ दृष्टिवालोंकी अपेक्षा ऱ्हस्व दृष्टिवालोंमें बडा होता है। उसका आकार २ मि. मि. से कम और ५ मि. मि. बडा हो तो अनुक्रमसे उनको कनीनिका संकुचन और कनीनिका प्रसरण कहते है। ये दोनों अवस्था अनैसर्गिक समझनाः इनका प्रमाण १.५ और ८ मि. मि. होता है।

असम कनीनिका : नैसर्गिक अवस्थामें दोनो कनीनिका का आकार समान होता है; लेकिन प्राकृतिक तौरसे भी कनीनिकाका आकार असम होता है। इसकी रुग्णविषयक कसौटी यह होती है कि दोनो कनीनिकाऐं परिवर्तित उत्तेजनों के और कोकेन जैसे दवा ओंको समसमान कार्यक्षम होती है। मध्यमस्तिष्क और प्रान्तस्थ मज्जामंडल की विकृतिमें कनीनिका असम आकार की दिखाई देती है; नेत्ररोग जैसे कि तारकापिधान की अपारदर्शकता और चाक्षुष मार्गोमेंकी अन्य विकृत अवस्थामें, जब प्रकाशन असम होता है, कनीनिका का आकार असम होता है।

प्रकाशकी संवादि प्रतिक्रिया

प्रकाशकी प्रत्यक्ष संवादि प्रतिक्रिया

यद्यपि दृष्टिपटल प्रकाशसे उत्तेजित होकर कनीनिका का मज्जामय परिवर्तन पाया जाता है कयी अवस्थामें तारका प्रकाशसे प्रत्यक्ष तौरसे उत्तेजित होनेसे कनीनिका का संकुचन होना संभव है। संशोधनसे माल्रूम होता है कि पृष्ठवंशी प्राणियोंके नीचेके श्रेणीयोमें तारका का स्वतंत्र तौरसे प्रत्यक्ष प्रकाशके उत्तेजनसे संकुचन होता है। सस्तन प्राणियों के ऊपर के वर्ग मे यह प्रतिक्रिया इतने आसानीसे नहीं पायी जाती । **हेसके** संशोधनसे (१९०७) माल्रूम होता है कि खरगोश, बिलाडी और मनुष्य मे ही कनीनिका का संकुचन मध्यमस्तिष्क प्रणालीसे सब संबंध तोडनेसे ही दिखाई देता है। और यह संकुचन छोटी लहरियोके प्रकाश से ज्यादा साफ नजरमे आता है। **मैजिटाट** ने (१९२१) अकालिक जनन हुअे बालक के छ मास की उम्र में, जब कि संभव है कि कनीनिका के मज्जामयका विकास नहीं होता, प्रकाश प्रतिक्रिया देखी है।

महत्वकी बात ध्यानमे रखना कि कनीनिकाके स्नायुओका विकास कलल बाह्य पटलसे होता है क्योंकि पेशियोकी कलातह का, उससे उनका विकास होता है, और वह मज्जातन्तु कला तह का भाग होता है; इस लिये यह आश्चर्य की बात नहीं होगी कि दृष्टिपटल के अन्य घटको मे जो प्रकाशसंबंधी की क्रिया दिखाई देती है वह कनीनिका के इन स्नायु पेशियोमें दिखाई देगी; व्यावहारिक दृष्टिसे कह सकते है कि कनीनिकाका प्रकाश से संकुचन होना दृष्टिपटलके उत्तेजन से मज्जाकी प्रतिक्रियासे पाया जाता है।

प्रकाश प्रतिक्रिया

प्रत्यक्ष प्रकाश प्रतिक्रिया

जब एक नेत्रके दृष्टिपटल पर प्रकाश डाला जाता है तब उस नेत्र की कनीनिका का संकुचन होता है और इस दृक्प्रत्यक्ष को **प्रत्यक्ष प्रकाश प्रतिक्रिया** कहते है। कनीनिकाके संकुचनमे प्रकाशकी उत्तेजन कार्यक्षमता, उसकी केवल तीव्रतापर नहीं बल्कि, उसके सापेक्ष परिवर्तनपर अवलम्बित होती है। इसी वजहसे संकुचन की क्रिया प्रकाश का प्रमाण और नेत्रकी संयोजनता, प्रकाशसे मिलती जुलती अवस्था, से होती है। मसलन एक मनुष्य अंधियारी कोठरीमे बैठा आहे और दूसरा पूर्ण प्रकाशमे बैठा है, इन दोनों को मध्यम तौरसे प्रकाशित हुए कोठरीमे लाया जाय तो पहलेकी कनीनिका का संकुचन और दूसरे की कनी-

निका का प्रसरण दिखाई देगा। संकुचन होने के बाद दृष्टिपटल का प्रकाशसे संयोजन होनेके बाद धीरे धीरे कनीनिका का प्रसरण होता है। यानी कनीनिका की प्रतिक्रिया **उत्तेजनता** और **प्रकाशसे संयोजनता** इन दो बातोंपर अवलम्बित होती है।

(१) उत्तेजकोंके प्रमाणमें बदल करनेसे होनेवाले परिवर्तन

प्रारंभिक प्रमाणका उत्तेजक : कनीनिकाकी संकुचनकी प्रतिक्रिया दिखाई देनेकेलिये प्रारंभिक प्रमाण उत्तेजक दृष्टिपटलके खास भाग उत्तेजित करनेके अनुसार होता है, यह निरिक्षण पहले पहल **लाम्बर्ट** शास्त्रज्ञने (१७६०) किया था। नेत्रकी अंधियारेसे मिलती जुलती अवस्थामे दृष्टिपटलके मध्यभागमें केवल प्रारंभिक प्रमाण बहुतही कम होता है। यह प्रमाण ०·००५ से ०·०४ मिटर कैन्डल प्रमाण इतना होता है ऐसा शोध लगा है और यही प्रारंभिक केवल प्रकाश **कोन** दृष्टिके लिये जरूरी होता है। **भेदकारक प्रारंभिक प्रमाण** (डिफरेनशियल थ्रेशहोल्ड) ९५ : १०० इतना होता है (भेदकारक प्रारंभिक प्रमाण यानी दो प्रकाश दीप्तिमेका फर्क जो आन्तरित तौरसे लगानेसे कनीनिकाके चलन दिखाई देते हैं) ऐसा शोध (१९२१) **ग्रोथुयुसेनने** लगाया है। दृष्टिस्थानके केन्द्रके बाहर यह प्रमाण कम होता जाता है। दृष्टिपटल का चाक्षुप क्रियाके काबिल क्षेत्रसे यदि उत्तेजक जोरदार हो तो कनीनिकाकी संवादि प्रतिक्रिया पायी जाती है। सब भागोंमे असल बात यह होती है कि दृष्टिपटलपर गिरनेवाले प्रकाशसे बडा क्षेत्र उत्तेजित होनेके लिये उसका प्रमाण ज्यादा होना चाहिये। उसकी तिव्रिता कम प्रमाणकी हो तो चलता है। लेकिन **एबेल डार्फ** और **फिलचेलन फिल्ड** के मतानुसार छोटी दीप्तिमान क्षेत्रसे, बडे कम प्रकाशित क्षेत्रकी अपेक्षा कनीनिकाके चलन ज्यादा जोरदार होता है।

कनीनिकाका उत्तेजकसे संकुचन होनेके पहले कुछ अप्रकटित काल जाता है। **बिअलर** के संशोधनसे (१९१०)यह प्रमाण ०·२ सेकन्द होता है।यह अप्रकटित कालमर्यादाका प्रमाण अन्य प्रत्यावर्तनों के मसलन जान्वस्थि प्रत्यावर्तन (पटेलर रिफ्लेक्स) के कालसे ज्यादा होता है।

कनीनिकाका संकुचन शुरूं होनेके पश्चाद कुछ खास अवस्थाअें दिखाई देती हैं, पहले अप्रकटित कालमर्यादा हो जानेके बाद, संकुचन पहले शीघ्रतासे होकर मंद क्रमावस्था होती है, उसके बाद पहली महत्तम संकुचन की अवस्था आती है, उसके बाद थोडासा दुय्यम कनीनिका प्रसरण होता है : इसके बाद संकुचनकी दूसरी क्रमावस्था होती है फिर दूसरा महत्तम संकुचन, जो पहले महत्तम संकुचनसे बढकर होता है, दिखाई देता है। यह क्रम संकुचन पूरा होनेतक चालू रहता है। इसके कारणमें प्रान्तस्थ मज्जामंडलका कार्य नहीं होता बल्कि मज्जामंडल केन्द्रोंका तालबद्ध कार्य होता है ऐसा मानते है।

संकुचनका क्रम प्रकाशकी तिव्रितापर अवलम्बित होता है। तो भी हर व्यक्तिके अनुसार इसमें फर्क दिखाई देता है; बुढे लोगोमें यह क्रम मंद होता है। साधारण कनीनिकाका छोटेमें छोटा आकार पांच सेकन्दमें होता है। संकुचनका प्रमाण प्रकाशकी दीप्तिपर अवलंबित होता है, उसके घातांक गुणकके अनुसार उसमें फर्क होता है। उत्तेजन निकाल लेनेके बाद प्रसरण ज्यादा समयतक होता रहता है और उत्तेजक अंधियारेमे लगाया जाय तो पूरा संकुचन होनेको जितने सेकन्द लगते है उतने मिनट प्रसरण को लगते है।

जब रंगीन प्रकाशका इस्तेमाल किया जाता है संकुचनका प्रमाण प्रकाशकी दीप्ति से निश्चित होता है। प्रकाशसे मिलती जुलती अवस्थामे पीले प्रकाशसे संकुचन महत्तम होता है। और अंधियारेसे मिलती जुलती अवस्थामे हरे प्रकाशमे होता है। यही अवस्था दिनचर और निशाचर प्राणियोमे दिखाई देता है। पूरी रंगांधताकी अवस्थामे अंधियारेसे मिलती जुलती अवस्थाका दृश्य दिखाई पडता है।

(२) मिलती जुलती या संयोजन अवस्थामें दिखाई देनेवाले परिवर्तन

प्रकाशकी तिव्रता कायम रखकर संयोजन अवस्थामे बदल किया जाय तो संवादि प्रतिक्रिया समसमान जैसी दिखाई पडती है। नेत्रपर **मध्यम बलका प्रकाश** लेकिन सतत स्थिररूपसे लगाया जाय तो (प्रकाशसंयोजनता) कनीनिका प्राथमिक संकुचनके बाद प्राकृतिक आकार होनेतक प्रसरण होता जाता है; **१०० से ११००** मिटर कैन्डल प्रमाणतकके प्रकाशमे संतुलित अवस्था पैदा होनेको १५ मिनट लगते है। **अंधियारी संयोजता अंधियारेसे मिलती जुलती अवस्थामें**, कुछ अप्रकटित–कालमर्यादा के बाद प्रसरण होता है पहले शीघ्र तौरसे और फिर मद गतिसे; यह क्रिया १५ मिनट मे पुरी होती है जब कनीनिकाका व्यास ७ से ७.५ मि. मि. इतना होता है। इस तरहसे संयोजनता की अवस्थामें बदल करनेसे और प्रकाश तीव्रता कायम रखी जाय तो कनीनिकाका महत्तम चलन पीले प्रकाशकी अपेक्षा हरे प्रकाशमे होता है; **कनीनिका का चलन परकंजी दृक्प्रत्यक्ष** की विरोधी अवस्था होती है।

विद्युतप्रवाह दृष्टिपटल का अननुरूप उत्तेजक होता है जिससे प्रकाशसंज्ञा पैदा होती है, इसके साथ कनीनिका चलन की अवस्था दिखाई देती है; चलविद्युत प्रवाहसे (गैल्व्हानिक करंट) कनीनिका का संकुचन, और फैराडिक प्रवाहसे कनीनिका प्रसरण होती है।

अप्रत्यक्ष प्रकाश प्रतिक्रिया–साधर्म्य संवेदना

जिन प्राणियोमें दृष्टिरज्जुसंधिमे दृष्टिरज्जुके तन्तुअे अपूर्णतासे एक ओरसे दूसरी ओरको (अन्योन्य छेदन) जाते है उनमे एक ओरके दृष्टिपटल को प्रकाशसे उत्तेजित करनेसे उस नेत्र की कनीनिका का प्रत्यक्ष संकुचन होता है और दूसरे नेत्रकी कनीनिका का अप्रत्यक्ष संकुचन–साधर्म्य प्रकाश संवेदना दिखाई देती है। ख्यालमें रखना कि जिन प्राणियोंमें एक ओरकी दृष्टिरज्जु पूर्णतया दूसरी ओरको पार जाती है उनमे यह साधर्म्य प्रकाश संवेदना नहीं दिखाई देती। जिस प्रकाशसे प्रत्यक्ष प्रकाश प्रतिक्रिया दिखाई देती है उसीसे साधर्म्य प्रकाश संवेदना प्रतिक्रिया भी पैदा होती है। साधर्म्य कनीनिका संकुचन प्रत्यक्ष संकुचन के साथ शुरूं होता है लेकिन उसकी गति मंद होती है। आखिर जब संतुलित अवस्था प्रस्थापित होती है तब दोनो कनीनिका का आकार साधारणतया समान दिखाई देता है, शायद अनुत्तेजित नेत्रकी कनीनिका का आकार कुछ छोटा होगा।

दोनों नेत्रको उत्तेजित करनेसे दोनों तरहकी–प्रत्यक्ष और साधर्म्य–प्रतिक्रियाओंकी जोड होती है और इसमे कनीनिका संकुचन एक नेत्रके उत्तेजन की अपेक्षा, ज्यादा होता है। एक नेत्रको उत्तेजित करनेके बाद दूसरे नेत्रको उत्तेजित किया जाय तो संकुचन और ज्यादा होता है (द्व्यम प्रकाश प्रतिक्रिया) और इसके विपरीत एक नेत्रको प्रकाशसे उत्तेजित करके उस को ढाका जाय तो दूसरे नेत्रमें थोडा प्रसरण होता है। यद्यपि उत्तपर

समान प्रकाश कार्य करता हो । उत्तेजक के जोड के असर से कनीनिकाके व्यासमें ०.१से०.५ मि. मि. फरक होता है ।

चाक्षुष मस्तिष्कीय प्रतिक्रिया : इसका वर्णन पहले **हाबने** किया (१८८६) ऐसा दावा किया जाता है कि चमकदार पृष्ठको देखनेसे संकुचन और काला पदार्थ देखनेसे कनीनिका का प्रसरण होता है । अंधियारी कोठरीमे नजर सामनेकी ओरको रोखकर बाजुको प्रकाशको रखनेसे कनीनिका का प्रसरण होता है लेकिन नेत्रोंको हिलाये बिगर सिर्फ प्रकाश-पर ध्यान का केन्द्रीकरण किया जाय तो कनीनिकाका संकुचन होना संभव है । यह माना जाता है कि प्रतिक्रियाका मनोवैज्ञानिक समतल प्रतिरूपता और प्रकाश प्रतिक्रियाका संवेदनात्मक पर होता है, और इसका कारण प्रकाशका मानसिक परिणाम यह होता है, लेकिन इसका स्पष्ट बोध नहीं होता यह कह सकते है ।

प्रकाशप्रत्यावर्तनके मज्जापथ (प.४७७चि.२८२) ।

संयोजनता की भिन्न अवस्थामें, भिन्न प्रमाणकी तीव्रता और गुणके प्रकाशकी, जिसका दृष्टिपटलके भिन्न भागोपर भिन्न असर होता है, चाक्षुप और कनीनिकाकी संवादि क्रिया समानान्तर जैसी होनेसे कनीनिकाके उत्तेजकका और चाक्षुप उत्तेजकका **अन्त इन्द्रिय** एकही यानी दृष्टिपटलकी मज्जाकलातह की पेशिया होती है ऐसा कल्पना की गयी है । दोनो संवादि क्रियाओका संबंध इतना निकटका होता है कि कई संशोधकोंको कनीनिकाके मज्जातन्तु स्वतंत्र है इस बारेमें संशय पैदा होता है और वे मानते हैं कि कनीनिका के मज्जा-तन्तु चाक्षुष मज्जातन्तु की उपशाखाअे होती हैं । लेकिन आम कल्पना यह है कि दोनोंकी क्रियाअें भिन्न भिन्न तरहकी तन्तुओंसे होती हैं यद्यपि दोनों मज्जातन्तु एक साथ जाते है ।

शारीरशास्त्रीय पुरावा यह होता है कि दृष्टिरज्जुमें दो किस्मके तन्तु, बडे और छोटे होते हैं; संभव है कि बडे तन्तु कनीनिकाके और छोटे तन्तु चाक्षुष कार्यके होते हैं । **लेन्झके** मतानुसार (१९२४) कनीनिका के तन्तु अलग, मज्जावेष्टनके सिवा होते है । इस बातका पूरा निर्णय अभितक नहीं हुआ है ।

उनकी सूक्ष्म शारीर रचना किसीभी तरहकी हो कनीनिकाके मज्जातन्तु चाक्षुष मज्जा-तन्तुके साथ जाते हैं । इस बातका प्रयोगका पुरावा यह होता है कि (१)दृष्टिरज्जुमें काट देनेसे कनीनिकाकी प्रत्यक्ष प्रकाशकी क्रियाका लोप होता है लेकिन साधर्म्य—अप्रत्यक्ष प्रकाशकी क्रिया दिखाई देती है; (२) दृष्टिरज्जुसंधिमें आगेसे पीछे जानेवाला काट करनेसे दोनों प्रतिक्रियाये दिखाई देती हैं, (३) और चाक्षुषपथमें काट देनेसे दृष्टिपटलके अर्धभागका अंधत्व (हेमिअनापिया) यानी दृष्टिपटलका एक ओरका भाग उत्तेजित करनेसे प्रतिक्रिया दिखाई देती है ।

चाक्षुषपथके पिछले तीसरे भागमें दोनों मज्जातन्तु अलग अलग होते है यानी कनी-निकाके मज्जातन्तु चाक्षुष तन्तुओंकी संगत छोड देते है । इतनी बात निश्चित हैं कि कनी-निकाके मज्जातन्तु मध्यमस्तिष्कमे तीसरी मस्तिष्क मज्जारज्जुके केन्द्रके पासके संकुचन केन्द्रको जा पहुचते है और रुग्णविषयक और प्रयोगके पुरावा परसे मालूम होता है कि उसका मार्ग ऊर्ध्वचतुष्पिंड बाहुसे होकर ऊर्ध्वपिंड (सुपीरियर ब्रेकियम सुपीरियर कालि-

क्युलस) को जा पहुचता है और इस मार्गमेंके मज्जाव्यूहमे वे परिवर्तन होते हैं और अन्योन्य छेद करके आगे जाकर **एडिनजर वेस्टफाल** के केन्द्रको जाते है।

इस मार्गके निश्चितता संबधमें अभीतक पूरा निर्णय नहीं हुआ है। एक पुरावा ऐसा है कि चाक्षुषपथके पिछले तीसरे भागका बाह्य जानु पिंड (लैटरल जेनिक्युलेट बॉडी) का नाश हो तो भी प्रकाश प्रतिक्रिया कायम रहाति है : इससे कह सकते है कि कनीनिकाके मज्जातन्तु चाक्षुषपथके पिछले भागमेसे अलग होते हैं और वे बाह्यजानुपिंडमें नहीं जाते। **बर्नेहेमर** ने मार्कीकी रंग देनेकी पद्धतिसे गुणऱ्हास क्रियाका संशोधन करनेसे उनको मालूम हुआ कि ये तन्तु ऊर्ध्व चतुष्पिंड बाहुमे दिखाई पडते हैं।

मार्ग किसीभी तौरका हो यह बात निश्चित दिखाई देती है कि तन्तुओंका मध्य-मस्तिष्कमें अन्योन्य छेदन हो कर वे केन्द्रो को पहुचते है। **बर्नेहेमर** के मतानुसार चाक्षुष पथके मज्जातन्तु इपसीलाटरल केन्द्रको जाते हैं लेकिन यह बात साबित नहीं हुई है। तन्तुओका अन्योन्य छेदनसे पार जाना अंशिक तौरका होता है और इस संबंधमे दो मत है। **लेव्हिनशन** और **बेहर** के मतानुसार प्रान्तस्थ तन्तुओका अन्योन्य छेदन पूरा होता है लेकिन **बेहर** के मतानुसार **पीतलक्ष्य-मैकुलाके** तन्तुओका अंशिक छेदन होता है, दोनो **पीतलक्ष्यके** मज्जातन्तु दोनों संकुचक केन्द्रको जाते है। दूसरा मत ऐसा है कि **(मारकीझ)** सब तन्तुओका-प्रान्तस्थ और केन्द्रिय अंशिक अन्योन्य छेदन होता है दोनोंसे दोनों केन्द्रोके तन्तु जाते हैं; सिर्फ इसको एक अपवाद यह होता है कि कनपटीके ओरके बिलकुल बाहरके तन्तु विना छेदन परस्पर जाते है।

नजदीकका समगत्यात्मक प्रत्यावर्तन (नीअर रिफ्लेक्स)

नेत्र जब किसी नजदीक पदार्थको देखता है तब तीन समगत्यात्मक (सिनकायनेटिक) प्रत्यावर्तन होते हैं:-दृक्संधान व्यापार, एककेन्द्राभिमुखता और कनीनिका संकुचन। इन तीनोंके साहचर्यसे दृष्टिपटलके समन्वित बिन्दुओपर साफ प्रतिमा बनती है : दृक्संधान व्यापारसे प्रतिमा केन्द्रस्थ होती है। एककेन्द्राभिमुखतासे चाक्षुप अक्षरेषा स्थैर्य बिन्दुपर मिलती है, और कनीनिकाके संकुचनसे दो कार्य होते हैं केन्द्रकी गहराई बढती है और स्फटिकमणिकी वक्रता बढनेसे गोलीयकिरणविचलन-गोलापायन (स्फेरिकल अॅबरे-शन) होना संभव है। वह परिधिकी किरणोको रोकनेसे, निकल जाता है। और पदार्थ नजदीक लानेसे पदार्थोंके ज्यादा किरणोको प्रतिबंध होता है। ये तीनों क्रियाओंका कार्य तीसरी मस्तिष्क मज्जु द्वारा होता है और तीनों क्रियाऐं सहचरितसी होती है। और यह सिद्ध हुआ है कि कनीनिकाकी प्रतिक्रिया दूसरे दो मे से किसी भी एकके साथ जरूर होती है (दृक्संधान व्यापारका शिर्षोसे और केन्द्राभिमुखताका व्यापार त्रिपार्श्वसे निर्विकार कर सकते है) लेकिन ये दो में से केन्द्राभिमुखताके साथ ज्यादा सहचर्य होनेसे इसीको नजदीक का प्रत्यावर्तन केन्द्राभिमुखता की प्रतिक्रिया (कनव्हरजन्य रिफ्लेक्स) कहते है।

कनीनिका संकुचन दोनो नेत्रोमे सम प्रमाण में होता है। एक नेत्रको ढांकनेसे या वह हीन दृष्टिका (ऐम्बलोपिया) हो तो भी दूसरे नेत्रमें साधर्म्य प्रकाश प्रतिक्रिया दिखाई देती है और असम अनसैर्गिक दृष्टि(ऐनआयसोमेट्रोपिया) जैसी अवस्थामें कुछ परिणाम नहीं दिखाई

देता। एक नेत्रवाले लोगोमें एककेन्द्राभिमुखता के उत्तेजक का अभाव होनेसे उनमे स्थैर्यबिन्दु नजदीक होने की जरूरत होती है। कनीनिकाके संकुचन का प्रमाण दृक्संधान व्यापार और एककेन्द्राभिमुखता के प्रमाणानुसार होता है, और कनीनिकाके संकुचनके साथ नेत्रका चलन थोडा नासिकाकी ओरको होता है जिससे एककेन्द्राभिमुखताके चलन को मदत होती है। एककेन्द्राभिमुखता और दृक्संधान व्यापारमेंके कनीनिकाका संकुचन प्रकाश प्रतिक्रिया के संकुचन से मंद गतिसे होता है लेकिन दोनो उत्तेजकोका प्रमाण महत्तम हो तो दोनोमे महत्तम संकुचन होता है। प्रकाश संकुचन की प्रतिक्रिया जवानोंमें बुढे की अपेक्षा ज्यादह जोरदार होती है। इस दोनो क्रियाओंका समाहार कर सकते हैं। प्रकाशसे कनीनिका का संकुचन महत्तम हुआ हो तो भी उसी समय नजदीक देखनेसे उसमें और ज्यादा संकुचन दिखाई होता है, या नजदीकसे सकुचन महत्तम हुआ हो तो उसपर ज्यादा तीव्र प्रकाश डालनेसे उसमे और संकुचन होता है।

कनीनिका की क्रिया का नियंत्रण करनेवाला तंत्र मध्यमस्तिष्क मे होता है और यह प्राधान्यसे मस्तिष्कीय परस्परानुकूल व्यापार के तौरका होता है। यह परस्परानुकूल व्यापार तंत्र केन्द्र के ऊपर की ओरको होता है और इसके कार्य के लिये अन्य इस तरह के तंत्र के जैसा यह अन्य किसीभी मार्ग का उपयोग कर सकता है मसलन अन्तर्चालनी सरल स्नायुको काटके उसमे उर्ध्ववक्र चालनी स्नायुके कंडरा को जोडनेसे केन्द्राभिमुखता होगी और उसके साथ कनीनिका संकुचन भी होगा

नेत्रच्छदो की प्रतिक्रिया–प्रत्यावर्तन

नेत्रच्छद को बंद करनेसे उस ओरकी कनीनिका का संकुचक होता है, यह नेत्र निमीलन ऐच्छिक या अनैच्छिक हो। कनीनिका संकुचन स्नायु और नेत्र निमिलिका स्नायुका सहचर्य का पहले पहल **व्हान ग्राफने** (१८५४) मे शोध किया और इसी वजहसे यह क्रिया **व्हानग्राफ की कनीनिका प्रतिक्रिया** इस नापसे मालूम है। लेकिन यह इनका रुग्णविषयक संशोधन था। इसका प्राकृतिक तौरका संशोधन **बमके** ने (१९०२) किया, उन्होने शोध लगाया कि यहि स्वेच्छिक और प्रत्यावर्तिन तौरकी होती है :

यह प्रतिक्रिया एक ओरकी ही (युनिलाटरल) होती है। दूसरे नेत्रमें साधर्म्य प्रकाश प्रतिक्रिया नहीं पायी जाती है, यह दृश्य मध्यमस्तिष्क तंत्र से होता है और नेत्रनिमिलिकी स्नायुको मज्जातन्तु तीसरी **मस्तिष्कमज्जा** रज्जूसे होता है।

चाक्षुष सांवेदनिक प्रतिक्रिया त्रिमुखी प्रतिक्रिया

जब सांवेदनिक उत्तेजक की क्रिया जैसे कि स्पर्श,ताप आदि नेत्रपर या उसके तारकापिधान, शुक्लास्तर कोष या नेत्रच्छद पर, होती है तब कनीनिका की प्रतिक्रिया पहले कुछ प्रसरणसे और फिर बादमें संकुचन से दिखाई देती है। उत्तेजक ज्यादह समयतक हो तो थोडा प्रसरण और फिर दुय्यम संकुचन होता है। यह क्रिया दोनों नेत्रोमें दिखाई देती है यदि एक नेत्रकी क्रिया अट्रोपीनसे रोके जाय तोभी दूसरे नेत्रमें यह क्रिया दिखाई देती है।

प्राणियोमे पंचमी मस्तिष्क मज्जारज्जुकी या उसके वेणीस्थानमेंके केन्द्रको उत्तेजित करनेसे कनीनिकाका संकुचन होता है ऐसा देखा है और **गैसेरियन मज्जाकंद** को निकाल

लेनेसे कनीनिकापर कुछ असर नहीं होता;मान सकते है कि यह चालक मज्जातन्तुओं का नहीं बल्कि केन्द्रगामी मज्जातन्तुओंका कार्य होता है। इस परसे कल्पना कर सकते है कि यह प्रतिक्रिया त्रिमुखी मज्जारज्जुमेंसे—पंचमी मस्तिष्क मज्जारज्जुमेंसे—प्रकाश प्रतिक्रिया जैसी होती है और इसका परिवर्तन, गैसेरियन मज्जाकंद्रमें और पंचमी मस्तिष्क मज्जारज्जुके केन्द्रमेंसे पिछले लम्बे बन्डलमेंसे संकुचन केन्द्रको जाता है। इसी समय सांवेदनिक प्रसरण प्रतिक्रिया उत्तेजित होती है और कनीनिकाकी परिणामी क्रिया दोनों विरोधी क्रियाका फल होता है।

मानसिक संवेदन प्रतिक्रिया

नेत्र और अनुषंगिक घटक (जैसे कि तारकापिधान, शुक्लास्तरकोष, नेत्रच्छद आदिको जानेवाले के सिवा) अन्य सावेदनिक मज्जातन्तुओंको उत्तेजित करनेसे कनीनिका प्रसरित होती है। यह प्रसरण भौतिक उत्तेजकोंके तीव्रतापर अवलम्बित नहीं होता, बल्कि यह ऊपरी मस्तिष्क केन्द्रोंकी ग्राहक अवस्थापर अवलम्बित रहता है क्योंकि मस्तिष्कको निकाल लेनेसे यह नहीं पाया जाता। जोरदार मानसिक उत्तेजकोंकी क्रिया सावेदनिक उत्तेजकोंकी जैसी होती है। और आस्था, मनोविकार, या भीति की अत्यन्त क्षोभन शीलताके असरसे कनीनिकाका प्रसरण होता है। यानी कनीनिका चित्तज्ञानका एक नाजूक मानसिक नापन यंत्र जैसा होता है; क्योंकि हर सावेदनिक या मानसिक उत्तेजकसे जो चैतन्य अवस्थाको जा पहुंचता है कनीनिकाका प्रसरण होता है। और इसी वजहसे सुनबहिरीकी प्राथमिक क्षोभक अवस्थामें कनीनिका प्रसरित होती है। निद्रा और गुंगी की अवस्थामें, जब इन प्रेरणाओंका अभाव होता है, कनीनिका संकुचित होती है और निद्रा तथा गुंगीके अवस्थामेंसे जाग आनेसे कनीनिकाका प्रसरण नैसर्गिक प्रमाणांकित आकारका होता है। यह प्रतिक्रिया नव-जनित बालकमें नहीं दिखाई देती और इसका पूर्ण विकास छ मासके उम्रमे पूरा होता है।

कनीनिकाका प्रसरण ०·३ से ०·४ सेकन्दके अप्रकटित कालके पश्चाद शुरू होता है। यह दोनों नेत्रोंमे और समकेन्द्रित तौरका होता है, प्राथमिक प्रसरणके पश्चाद संकुचन होता हैं और उत्तेजक ज्यादा समयतक रहनेसे इनका तालबद्ध दोलन जैसा दिखाई पडता है। इस प्रतिक्रियाका स्थान मस्तिष्कके बाह्यभागमें होता है। यह मस्तिष्कका असर आनुकंपिक प्रसरणकारक तंत्रके उद्दीपनसे या अनैच्छिक संकुचक तंत्रको रुकावट होनेसे होता होगा यह साफ मालूम होता है। और सावेदानिक तथा मानसिक प्रत्यावर्तन प्रसरणकारक तंत्र तथा संकुचक तंत्रका समकालिक उद्दीपन होनेसे पाया जाता है और यह परस्परानुकूल कार्यकी प्रतिक्रिया होती है।

संभव है कि ये ऐच्छिक तौरके कनीनिकाके चलन मध्यमस्तिष्कके मानसिक प्रत्यावर्तनके रूपके होते होंगे और इनके साथ आनुकंपिक मज्जामंडलके कार्यक्षमताके लक्षण दिखाई देते है।

(१) व्हेगोटोनिक कनीनिका प्रतिक्रिया : जोरदार श्वास ग्रहण की क्रियामें कनीनिका प्रसरण और निःश्वसन के साथ कनीनिका संकुचन होता है; यह क्रिया प्रत्यावर्तन तौरकी होती है इससे नेत्रगोलक के नेत्राभ्यन्तर दबाव मे तात्विक रूपके जो बदल होते है उससे कुछ संबंध नही है।

(२) कानके शंख मार्ग (कानके भीतर के कोटर) की (काकलियर व्युपिलरी रिफ़्लेक्स) **कनीनिका प्रतिक्रिया :** कानके भीतर के कोटर पर जोरदार सांवेदनिक उत्तेजन होनेसे पहले, क्षणिक संकुचन होकर कनीनिका का प्रसरण की प्रतिक्रिया होती है। इसका प्राकृतिक संश्लेषण पूरा मालूम नही हुआ है । **हेजेनरके** (१९२६) मतानुसार यह क्रिया सावेदनिक मानसिक तौरकी होती है ।

(३) कानके व्हेस्टिब्यूलर कोटरकी कनीनिका प्रतिक्रिया : मनुष्य के कानमेंकी हवा को जोरसे दबानेसे कनीनिकाके चलन मे बिघाड होता है, कनीनिका संकुचनके पश्चाद प्रसरण होता है यह क्रिया तालबद्ध जैसी सतत होती रहती है जिसको **हिप्पस** कहते हैं।

(४) कानकी सांवेदनिक कनीनिका प्रतिक्रिया : कानके मध्यभागको स्पर्शज या तापज तौरसे उत्तेजित करनेकेसे, या कंठकर्ण (श्रुतिसुरंगा—यूस्टेपियन ट्यूब) में शलाका डालनेसे, या हवाके दबावमें बदल करनेसे कनीनिका का प्रसरण होता है; यह क्रिया खास प्रत्यावर्तन तंत्र से होती है इसका पुरावा मिला है ।

कनीनिकाकी अनैसर्गिक प्रतिक्रियाऐं

(१) स्नायुविकृतिज अवस्था

(अ) भ्रंशज कनीनिका प्रसरण : नेत्रगोलक को मोटे हथियारका मार लगनेसे आघातजन्य तारका स्तंभ (आयरिडोप्लेजिया ट्राम्याटिका) की अवस्थामे दिखाई देता है : यह क्रिया अंशतः भयंकर धक्का के असर से और अंशतः स्नायुके तन्तुओंका फट जाना और उनमें रक्तस्राव होनेसे पायी जाता है । नेत्राभ्यन्तर दबाव का बढाव की अवस्थामें भ्रंशज प्रसरण होना संभव होता है । इसकी शुरुआत कृष्णपटल के बाहरके अवकाश में की लम्बी तारकातीत पिंडीय मज्जारज्जु के दब जानेसे होती है लेकिन आखिरको दबाव से स्नायु तन्तुओका क्षय होनेसे कायम रहति है ।

(ब) संकोचमूलक कनीनिका संकुचन : संकोचन स्नायूके जोरदार संकुचनसे पैदा होता है, कभी कभी नेत्राभ्यन्तर दबाव कम होनेकी अवस्थामें, नेत्राभ्यन्तर को इजा होनेसे या नेत्रगोलकमेंसे जलविमोचन करनेसे नेत्राभ्यन्तर दबाव यकायक कमति होनेकी अवस्थामें कनीनिका का संकुचन होता है ।यानी नेत्राभ्यन्तर की शस्त्रक्रियामें चाक्षुषजल बाहर गिर जाता है तब पायी जाती है ।

(क) अचल कनीनिका की अवस्था तारकाका क्षय या दाहज सूजन या कनीनिका स्फटिकमणि को विपक जानेकी अवस्थामें दिखाई देती है ।

(२) केन्द्रत्यागी पथ की इजा

(अ) संयोगजनक तंत्र

(i) कनानिका का केवल स्तंभ (अबसोल्यूट प्युपिलरी परालिसिस) यह अवस्था कनीनिकाके मध्यमस्तिष्कमें के केन्द्र और उसके पारके केन्द्रत्यागी पथ (तीसरी मस्तिष्क

मज्जारज्जु, चाक्षुप मज्जाकंद या छोटी तारकातीत पिंडीय मज्जारज्जु) को इजा होनेसे पायी जाती है; इसमे प्रकाश की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष साधर्म्य प्रकाश प्रतिक्रिया, नंजदीक की प्रतिक्रिया, नेत्रच्छद की प्रतिक्रिया और मानसिक—सावेदनिक प्रतिक्रिया का लोप हो जाता है। इसके साथ तारकातीत पिंडीय स्नायुकी मज्जारज्जुको इजा होती है तब कनीनिका की संकुचक स्नायुका पूर्ण भ्रंश होकर दृक्संधान शक्ति का भी लोप हो जातो है; इस अवस्थाको हचिनसनने (१८७८) **आंतरिज नेत्रस्नायुभ्रंश** (आपयालमो प्लेजिया इंटरना) नाम दिया है। जब प्रसरण पूर्ण तौरका होता है इजा का स्थान चाक्षुपमज्जाकन्द की शाखा का अन्तिम मज्जामंडलमें होता है (चित्र नं. २८६ पन्हा ४९० देखिये।)

यह अवस्था उपदंश, मस्तिष्क प्रदाह विशेष (पोलियो एनकिफलायटिन) मस्तिष्क अर्बुद, नेत्राभ्यन्तर दबाव की वढाव की अवस्था, मस्तिष्कशूल वार्धक्यजन्य बुद्धिहीनता (सिनाईल डिमेनशिया) और भयंकर जहरी अवस्था (बोटयुलिजम) में दिखाई देती है। कनीनिकाका महत्तम प्रसरण मध्यमस्तिष्क प्रणाली की थकावटमे जो वेसुध स्थिति या स्पर्शशून्यत्वकी अवस्थासे पायी जाती है, दिखाई पडती है।

(ii) **संकोचमूलक कनीनिका संकुचनः**—कनीनिका के संकुचन तंत्रके जोरदार कार्य, जो मस्तिष्कावरण दाहमे होता है,मे दिखाई देता है।यह स्पर्शशून्यत्व की अवस्था को पैदा करनेमे और वेदना और मज्जातन्तु संक्षोभ—गुल्म वायु(हिस्टेरिया) में दिखाई होती है।

(ब) प्रसरणकारक तंत्र

(i) **भ्रंशज कनीनिका संकुचन** आनुकंपिक मज्जामंडलके भ्रंश में दिखाई देता है। इस अवस्थामें कनीनिका के संकुचनके साथ नेत्रच्छदान्तराल, ऊपरका नेत्रच्छद नीचे गिरनेसे, संकुचित दिखाई देता है। और नेत्रगोलक अन्दर घुसा हुआ मालूम होता है। इस विकृत अवस्थामें नेत्रमे कोकेन डालनेसे कनीनिका का प्रसरण नहीं होता। भ्रंशज कनीनिका संकुचन आनुकंपिक मज्जामंडल की विकृति में चुल्लिका का या ग्रैवेयक ग्रंथीका अस्वाभाविक वर्धन, ग्रैवेयक रोहिणी अर्बुद, और फफुस के कोण की ओर फुफ्फुसावरण की विकृतिमें दिखाई देता है।

(ii) **संकोचमूलक प्रसरण** आनुकंपिक मज्जामंडल के क्षोभन से पैदा होता है और उसके लक्षण ऊपरकी अवस्थाके विपरीत होते है।

कनीनिकाकी विरोधाभासात्मक प्रतिक्रियाः—कनीनिका पर का आनुकंपिक मज्जामंडल का असर निकाल लेनेसे कनीनिकाका संकुचन होता है। लेकिन कयी अवस्थाओंमे जैसे कि क्षोभ, अडरिनलीनका अन्तःक्षेपण,सुनबहिरी श्वासावरोध ऊपरका ग्रैवेयक आनुकंपिक मज्जाकंद को निकाल लेनेसे कनीनिका का प्रसरण होता है।इस अवस्थाको **बजने**(१८५५) **विरोधाभासात्मक कनीनिका प्रसरण** नाम दिया। यानी यह अवस्था आनुकंपिक मज्जामंडलका गुणऱ्हास हुआ हो या न हुआ तो भी दिखाई पडना संभव है। इस अवस्थाके संबंधमे अनेक कल्पना की गयी थी, (१) संकुचन की शक्ति कमजोर होनेसे प्रसरण होता है; (२) रक्त भरतीमे फर्क (३) प्रसरणकारक स्नायु की क्षोभनशीलता का उसके मज्जातन्तुओंको निकाल लेनेसे बढ जाना; (४) रासायनिक क्रियाका असर वापिस आजाना।

(३) परावर्तन पथ की इजा

(१) प्रकाश प्रतिक्रियाको अडथळा

(i) **अंधत्वजन्य कनीनिका भ्रंश** (अमारोटिक प्युपिलरी पराालिसिस):—जिस समतलमे कनीनिकाके मज्जातन्तु चाक्षुषपथमेंसे अलग होते है उसके नीचेके चाक्षुषपथके भागको (यानी चाक्षुपपथ, दृष्टिरज्जुसंधि, दृष्टिरज्जु और दृष्टिपटल) इजा होनेसे प्रकाश प्रतिक्रियाका लोप होता है और कनीनिका साधारणतया प्रसरित होती हैं। इस इजाके स्थानके अनुसार विकृत अवस्थामे बदल दिखाई पडते है (पन्हा ४७७ चि. नं. २८२ देखिये)।

(अ) **दृष्टिपटल और दृष्टिरज्जु की इजासे** एक नेत्रीय अंधत्वजन्य कनीनिका भ्रंश होता है जिसमें उस नेत्रके उसी बाजूमे प्रत्यक्ष प्रकाश प्रतिक्रियाका लोप और विरुद्ध बाजूमे अप्रत्यक्ष प्रकाश प्रतिक्रियाका लोप होता है। लेकिन उसी बाजूमे अप्रत्यक्ष प्रकाश प्रतिक्रिया और विरुद्ध बाजूमे प्रत्यक्ष प्रकाश प्रतिक्रिया कायम रहति है (चि. नं. २८२) । इन एक ओरकी अवस्थामें नजदीकका प्रत्यावर्तन कायम रहता है और नेत्रच्छदोंका प्रत्यावर्तन शायद जोरदार होता है।

(ब) **दृष्टिरज्जुसंधिकी इजासे** जिसमे दोनो नेत्रगोलकोके दृष्टिपटलके नासिकाके ओरके मज्जातन्तु अन्योन्य छेदन करके पार जाते है, दोनो नेत्रोके कनपुटीके ओरमें भ्रंशज अर्धभागका अंधत्व दिखाई पडता है, लेकिन दृष्टिपटलके कनपुटीके भागके उत्तेजनसे प्रकाश प्रातिक्रिया पायी जाती है नासिकाके भागके उत्तेजनसे नहीं पायी जाती (चि. नं. २८२)।

(क) चाक्षुषपथमें बाह्य जान्विका पिंड तकके भागमें इजा होनेसे विरुद्ध बाजुके अर्धभागका अंधत्वजन्य भ्रंश दिखाई पडता है (**बरनिक १८८३**) (चि. नं. २८२ iii)।

ख्यालमें रखना कि प्रकाशकी प्रतीतिका लोप होते ही कनीनिकाकी प्रातिक्रियाओ नैसर्गिक तौरकी दिखाई पडति है। इस अवस्थामे ईजाका स्थान, जिस जगह कनीनिकाके मज्जातन्तु चाक्षुप पथको छोडकर अलग होते है उसके ऊपरके चाक्षुषपथके भागमे होता है; इस अवस्थामे दोनों ओरके भागोंमें इजा होना जरूरी है नहीं तो पूर्ण अंधत्वके बदले नेत्रार्ध भागका अंधत्व दिखाई पडेगा। यह अवस्था मूत्रजमूर्च्छाजन्य अंधत्वमें (युरीमिक अमोरोसिस जिसमे संपूर्ण मस्तिष्क असंवादि होता है, दिखाई पडति है; लक्षण स्पष्ट न हो तो वातोन्मादज) अंधत्व—गुल्मवायुजन्य अंधत्व—का निदान करना होगा। कुछ मिसालोकी नोंद हुई है जिसमे चाक्षुपपथके नीचेके भागमें ईजा होते ही प्रकाश प्रतिक्रिया कायम थी इस संबंधमे ऐसी कल्पना की है कि कनीनिकाके मज्जातन्तु चाक्षुप मज्जातन्तुकी अपेक्षा ज्यादा प्रातिकार कर सकते है।

(ii) **प्रत्यावार्तत कनीनिकाका भ्रंश** (रिफ्लेक्स प्युपिलरी परालिसिस):—इस अवस्थामें इजाका स्थान कनीनिका चालक मज्जातन्तु जहा चाक्षुपपथसे बाहर जाते हैं और संकुचक केन्द्र इन दोनोंके दरमियानमेंके चाक्षुषपथके भागमे होता है इस अवस्थामें दृष्टि कायम रहति है लेकिन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रकाश प्रतिक्रियाका लोप होता है। नजदीक की प्रतिक्रिया; नेत्रच्छदोंकी प्रतिक्रिया, मानासिक सावेदनिक प्रतिक्रिया, आरगाईल राबर्टसन प्रतिक्रिया दिखाई देती है। **कनीनिका** संकुचन साधारणत्वया असम कनीनिका,

और तारकाके नमूनेमें और रंगमें फर्क होना यह लक्षण दिखाई पडते है। यह अवस्था दोनों नेत्रोंमें दिखाई पडना संभव है जब इजाका स्थान जहां केन्द्रगामी मज्जातन्तुओंका अन्योन्य छेदन होता है वहां होगा। एक नेत्रकी अवस्थामे इपसोलैटरल (एकी बाजूका) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रतिक्रियाका लोप होता है और विपरीत बाजूका (कानट्रालैटरल) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रतिक्रिया दिखाई देती है।

इस अवस्थाके कारण उपदंश असलमें कीरी या, कलायखंज (टैबीज), बहुपेशिकठनता (मलटिपलस्क्लेरोसिस) मस्तिष्कप्रदाह-(एनकिफलायटिज), सिरिंगोमायलिया सुषुम्नादाह-विशेष,(पोलियोएनकिफलायटिज), मस्तिष्कप्रदाह विशेष-जिसमे मस्तिष्कमे स्थित श्वेत मज्जा रोगाक्रांत होता है, मधुमेह, चिरकारी अतिमद्यपान, मध्यमस्तिष्कमेंके अर्बुद, मस्तिष्ककी इजा, वार्धक्यजन्य बुद्धिहीनता और हायड्रोजेन सलफाईड की विषबाधा ये होते हैं। कई मिसाले जन्मजातकी होती हैं।

(२) नजदीकके प्रत्यावर्तनका भ्रंश : इसमे प्रकाश प्रतिक्रिया कायम रहति है। इजाका स्थान एककेन्द्राभिमुखताका केन्द्र और संकुचन केन्द्र इनके दरमियानके चाक्षुपपथ के भागमें होता है (विपर्यस्त आरगाईल राबर्टसन प्रतिक्रिया)। यह अवस्था कीरी, खुनाक (डिफथेरिया), सुषुम्नाप्रदाह (मायेलायटिज), द्वियुग्मी पिंडके नजदीकके अर्बुद इनमें दिखाई देती है।

(३) प्रकाश प्रतिक्रियाका और नजदीकके प्रत्यावर्तनका भ्रंश : संपूर्ण कनीनिका भ्रंश जिसमें नेत्रच्छदों की प्रतिक्रिया कायम रहति है ऐसी अवस्था का वर्णन केन्द्रगामी मज्जापथके ऊपरके केन्द्रोकी इजा होनेसे हो सकती है, ऐसा कर सकते है; इसमें संकुचक केन्द्रको जानेवाली,नेत्र निमीलनकी के नियमन करनेवाले केन्द्रके सिवा, सब केन्द्रगामी प्रेरणाओंको रुकावट होती है।

(४) मानसिक-सांवेदनिक प्रत्यावर्तन का बिघाड-अनियमितता की प्रतिक्रियाः पूर्ण कनीनिका के भ्रंश मे यह नहीं पायी जाती इतनाही नहीं बल्कि यह मानसिक सांवेदनिक प्रतिक्रिया में, मस्तिष्क के जोरदार ऐन्द्रिय बिघाड की अवस्थामेः-जैसे कि बुद्धिहीनता, बौद्धिक और शारीरिक दौर्बल्य (इमबेसिलिटी) मद्य प्राशनजन्य बुद्धिहीनता व्यापक पक्षाघात, इनमें कमजोर या लुप्त होती है।

(४) विपर्यस्त कनीनिका प्रतिक्रिया

(अ) विपर्यस्त प्रकाश प्रतिक्रिया : इसमे प्रकाशसे कनीनिकाका प्रसरण होता है। यह बिलकूल कम नजरमें आती है। यह प्रतिक्रिया मस्तिष्क उपदंश, कीरीके कुछ मिसालोमें पायी है।

(क) विपर्यस्त नजदीककी कनीनिका प्रतिक्रिया की नोंद हुइ है।

(५) सहचारित विकृत स्नायुचलन

(अ) ऐच्छिक स्नायुचलन (i) कभी कभी हाथोंसे जोरदार दबाव लगानेसे कनीनिका प्रसरित होती है। यह गुल्मवायु, अपस्मार जैसी विकृतीमें दिखाई देती है।

(ii) **नेत्रोंका ऐच्छिक बहिर्च्यवन** में कनीनिका प्रसरित होती है(iii) नेत्रको बाहर घुमानेके जोरदार चलनके साथ कनीनिका संकुचक स्नायुका कार्य दिखाई पडता है। (च) **तीसरी मास्तिष्क मज्जारज्जुके भ्रंशके** साथ का चलन बहुत कम दिखाई पडता है।

(६) कनीनिकाका अनैसर्गिक कार्य

(अ) **हिपस :** इसमे कनीनिकाका तालबद्ध संकुचन और प्रसरण हर मिनिटमें नियामित प्रमाणमें–प्रकाशन, केन्द्राभिमुखता और मानसिक सांवेदनिक उत्तेजकके सिवा–होता रहता है। तिसरी मस्तिष्क मज्जारज्जुमें काट करके सांवेदनिक उत्तेजनसे यह पैदा होता है लेकिन साथ साथ आनुकंपिक मज्जारज्जुमें काट देनेसे यह दृश्य बंद होता है। इससे अनुमान कर सकते है कि यह दृश्य मस्तिष्कीय तौरका होता है। यह दोनों नेत्रोंमें दिखाई पडता हैं, और आन्तर और बहिर्चालिनी स्नायुओंके भ्रंशके साथ भी होना संभव है। प्राकृतिक अवस्थामें अनियमित और किंचित् कनीनिका चलन कभी कभी दिखाई पडता है यह ख्यालमे रखना।

(क) **अनैच्छिक नेत्र विभ्रमके साथका कनीनिका कंप :** अनैच्छिक नेत्र-विभ्रमके साथ कनीनिका कंप दिखाई पडना संभव है यह स्पर्श संचारी मस्तिष्क प्रदाहमें दिखाई पडता है।

(च) **चक्री चाक्षुष स्नायुचलन भ्रंश (सायक्लिक आक्युलो मोटार परालिसिस) (एक्झेन फेल्ड और स्कुरेनबर्ग १९०१)**:--यह अवस्था हमजातसे दिखाई देती है जो जीवनके पहले के कुछ उंम्रमें दिखाई पडती है, इसमें एक एक मिनिटके अन्तरसे दो क्रमा-वस्था होती हैं। एक **क्रमावस्थामें** ऊपरका नेत्रच्छद उपर उठाया होता है, कनीनिका संकु-चित होती है, नेत्र केन्द्राभिमुख होते हैं और दृक्संधानशक्ति कई डियापटरसे बढती हैं। इसके बाद **दूसरी अवस्था** शुरू होती है इसमें नेत्रच्छदपात, कनीनिका प्रसरण, केन्द्राभिमुखता स्थगित होती है जिसमें कनीनिका प्रसरित रहति है प्रकाशकी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष क्रिया और नजदीककी क्रिया नहीं पायी जाती है। यह अवस्था दुष्प्राप्य होती है।

(ट) **उडती कनीनिका (स्प्रिंगिंग प्युपिल) :** इस अवस्थामें एक कनीनिका यकायक क्षणिक प्रसरित होती है और कुछ समयके पश्चाद दूसरीमें ही यह अवस्था दिखाई पडती है। इस अवस्थाका वर्णन **ओपेनहैम** और **सीमरलिंगने** कियां (१८८७), और यह अवस्था कीरी, आम लकवा, मज्जातन्तु दौर्बल्यमें और व्हेरीनालकी जहरी अवस्थामें दिखाइ पडती है। **क्रेमरके** मतानुसार नैसर्गिक अवस्थामें भी दिखाई देती है।

(त) **स्नायुतनावजनित कनीनिका प्रतिक्रिया (मायोटानिक प्युपिलरी रीए-कशन)** यह अवस्था भी दुष्प्राप्य होती है; इसमे कनीनिकाकी प्रतिक्रियाओका लोप नहीं होता, वे सिर्फ मंद होती हैं। प्रकाश प्रतिक्रिया बहुत समयतक उजेलामें या अंधियारेमें रहनेसे दिखाई पडति है; यानी रुग्णविषयक अवस्था जैसी दिखाई पडना संभव नहीं होता। नजदीक की प्रतिक्रिया मंद जैसी होती है, केन्द्राभिमुखता और दृक्संधानशक्ति नैसर्गिक जैसी रहती है। यह अवस्था साधारणतया एक नेत्रमें पायी जाती है। इसमें भ्रंश नहीं होता। रुग्णविषयक और विकृत शास्त्र दृष्टिसे यह रुची भ्रंशिक अवस्थासे भिन्न होती है।

(प) मज्जातन्तु तनाव जनित कनीनिका प्रतिक्रिया (न्यूरोटानिक प्युपिलरी रीएक्शन) प्रकाशके उत्तेजनसे मंद तनी हुई संकुचित कनीनिका होती है और यह अवस्था कुछ समयतक रहति है ।

नेत्राभ्यन्तरीय स्नायुओंपर दवाओंका कार्य

नेत्राभ्यन्तरीय स्नायुओंपर दवाओंका होनेवाले कार्यका व्यावहारिक और सैद्धान्तिक तौरसे महत्व है । इस प्रकरणमे औषधीय गुणधर्म और उनकी क्रिया संबंधीके महत्वके सिद्धान्तोका उनके कार्यक्षेत्रके अनुसार वर्गीकरण करेंगे (चित्र नं. ३४५)

चित्र नं. ३४५
असर करनेवाली दवाओंका चित्रलेखन

(अ) **मस्तिष्कपर असर करनेवाली दवाऐं:—** कई दवाओंकी क्रिया पहले मस्तिष्कमें होकर उसका असर कनीनिका पर होता है। मारफिया दवासे मस्तिष्कमेंके ऊपरके केन्द्रोका नियमनका लोप हो जानेसे कनीनिका संकुचित होती है। ऐसा माना गया है कि इस दवासे संकुचन कारक केन्द्रका उत्तेजन होता है और इसके साथ स्नायुका प्रान्तस्थ भागसे उत्तेजन होता है। क्लोरोफार्म, ईथर, अलकोहोल जैसे मादक पदार्थोंसे पहले उत्तेजित कनीनिका का प्रसरण फिर संकुचन और बादमें फिरसे कनीनिका का प्रसरण होता है।

(क) **इसके नीचेके केन्द्रोंपर असर करनेवाली दवाऐं :** कुछ जहरी दवाओंका (जैसे कि पायक्रोटाक्झिन या रक्तमें कारबान डायआक्झाईड का प्रमाण बढनेसे) उप-आनुकंपिक मज्जाकेन्द्रोपर उत्तेजक असर होता है जिससे संकुचकमूलक कनीनिका संकुचित होती है। बोट्युलिझम, डिफथेरिया का जहर आदि और रक्तमें कारबानडायाक्झाईड का प्रमाण कम होनेसे उप आनुकंपिक मज्जाकेन्द्रोका भ्रंश होनेसे भ्रंशज कनीनिका प्रसरण होता है।

(च) **अनैच्छिक मज्जाकंद (अटानामिक गैंगलिया) पर असर करनेवाली दवाऐं :** निकटीन की अनैच्छिक मज्जाकन्द पर क्रिया होनेसे अनियमित परिणाम होते हैं; यह क्रिया ऊर्ध्व ग्रैवयक मज्जाकन्द (आनुकंपिक) या चाक्षुप मज्जाकन्द (उप आनुकंपिक) पर होती है। इसमें प्राथमिक उत्तेजनके पश्चाद भ्रंश पैदा होता है। मनुष्य प्राणिमें निकटीनके आशुकारी जहरी अमलमें पहले संकुचन होकर बादमें कनीनिकाका प्रसरण होता है। बिलाडी और कुत्तेमें इससे कनीनिका का प्राथमिक प्रसरण होता है। खरगोशमें कनीनिका संकुचन दिखाई देता है।

(ट) **प्रांतस्थ मज्जातन्तुओंपर असर करनेवाली दवाऐं (ऐक्टिंग पेरिफिरली):—**

१ कनीनिका प्रसरण

अट्रोपीनः—इस दवासे उप आनुकंपिक मज्जातन्तु के सिरोंके कार्यकी मंदी होनेपर क्रिया अवलम्बित होती है; कनीनिकाके संकुचक स्नायुका भ्रंश हो कर उसका प्रसरण और तारका तीत पिंडीय स्नायुका भ्रंश होकर दृक्संधान व्यापारका लोप होता है; इसी तौरकी क्रिया होम्याट्रापिन, हायोसिन (या स्कोपाल अमीन) यूथायड्रीन (या मेथील अट्रोपीन) में दिखाई देती है : यूफथालमिन की क्रिया सिर्फ तारकाके स्नायुपर होती है।इन दवाओंका असर पक्षीवर्ग और सर्पवर्गके प्राणियोमें, जिनकी तारका और तारकातीत पिंडीय स्नायु अंकित तौरकी होती है, नहीं होता : इन प्राणियोमे कुरारेसे भ्रंश होता है।

अट्रोपीन (१%) शुक्लास्तर कोषमें डालनेसे १५ मिनिटमें उसका असर शुरू होकर कनीनिकाका प्रसरण होता है जो १० से १२ दिन तक रहता है। तारकातीत पिंडीय स्नायुपरका असर २५ मिनिटमें दिखाई पडता है; यह जोरदार नहीं होता और तीन से पांच दिनके बाद नष्ट हो जाता है।

अट्रोपीन का उपयोग करनेके पश्चाद चाक्षुप स्नायुचालक मज्जारज्जुका या छोटी तारकातीत पिंडीय मज्जारज्जुको उत्तेजित करनेसे कुछ परिणाम नहीं दिखाई पडता,लेकिन संकुचक स्नायु और तारकातीत पिंडीय स्नायुको,प्रत्यक्ष तौरसे उत्तेजित करनेसे क्रिया दिखाई पडति है

इससे ऐसा माना गया है कि तीसरी मास्तिष्क मज्जारज्जु और संकुन्चक स्नायुके बीचमेंके स्नायु–मज्जा संयोजनका भ्रंश होता है (श्कुल्टझ १८९८); लोबी और नवरातिलने (१९२४–२६) ऐसा पुरावा लाया है कि इस मज्जारज्जुसे पैदा होनेवाले व्हेगस द्रव्यकी रुकावट होनेसे यह क्रिया होती है। इसके असरसे प्रत्यक्ष प्रकाशका कर्नानिकापर परिणाम नहीं होता।

साधारणतया कहा जाता है कि अट्रोपिनसे कनीनिक का प्रसरणकारक स्नायु उत्तेजित होनेसे कनीनिका और ज्यादह प्रसरित होती है;लेकिन अट्रोपिन की पूर्ण क्रिया होने के बाद मस्तिष्कीय या प्रान्तिक आनुकंपिक मज्जातन्तुओंका विद्युत या औषधीयोंके उत्तेजनसे कनीनिका और ज्यादह प्रसरित होती है; इससे कह सकते है कि प्रसरणकारक स्नायुकी प्रत्यक्ष क्रिया होती हो तो बहुत कम होती होगी। लेकिन मानसिक या सावेदनिक कार्यका लोप हो जानेसे, जैसे कि निद्रामें या औषधीय निद्राजननमें, अट्रोपिनसे प्रसृत हुई कनीनिका का संकुचन दिखाई पडता है। कभी कभी अट्रोपिनसे प्रसरण हुई कनीनिका और दृक्संघात व्यापारका लोप अमर्याद कालतक रह जाता है लेकिन यह प्रसंग क्वचित दिखाई पडता है।

होम्याट्रापिन : ट्रापिन और मैनडेलिक अम्लका बनावटी–संस्लिष्ट–एस्टर–जैब– (सिनथेटिक एस्टर–रासायनिक यौगिकोंका एक वर्ग चर्वी, तेल, घी, मोम इत्यादि एस्टर है) होता है। इसके गुणधर्म अट्रोपिन जैसे होते है लेकिन यह कम बलि होता है और इसका असर असलमें तारकातीत पिंडीय स्नायुपर अल्पकालिक रहता है। इसके १% द्रावणका असर १५ मिनिटमें दिखाई पडता है और इसका महत्तम परिणाम एकसे दो घंटे में होता है और यह २४ घंटोतक रहता है।

हायोसीन या **स्कोपालअमीन,** स्कोपालिनका एस्टर या जैब, १% द्रावण अट्रोपीनसे दसगुणा कार्यक्षम होता है : कनीनिका प्रसरण जल्द होता है और यह असर दो दिन रहता है।

युमिड्रिन (या मेथिल अट्रोपिन नायट्रेट) यह अट्रोपिनसे ५ गुणा कम बलका होता है इसके गुण धर्म अट्रोपिन और होम्याट्रापिन के बीचके प्रमाणके होते है। **यूफथालमिन** यह बनावटी मैनडेलिक एस्टर जैब होता है। यह बहुत कमजोर दवा है, और इसका तारकातीत पिंडीय स्नायुपर असर नहीं होता। १०% द्रावणसे १५।२० मिनिटमे कनीनिका प्रसृत होती है और महत्तम प्रसरण ५ से १० घंटे रहता है।

(२) कनीनिका का प्रसरण जो उसकी प्रसरणकारक स्नायुके उत्तेजनसे होता है। इसमें आनुकंपिक मज्जातन्तु उत्तेजित होते है। यह क्रिया एडरिनलीन और उसके सहधर्मी और कोकेन और उसके सहधर्मी दवाओंसे पैदा होती है।

एडरीनलीन इस दवाका नीलामें या शुक्लास्तर कोषके नीचे अन्तःक्षेपण बिलकूल कम प्रमाणमे करनेसे कनीनिका प्रसृत होती है। शुक्लास्तर कोषमें बूंद छोडनेसे नैसर्गीक नेत्रमें यह प्रसरण नहीं होता, लेकिन आनुकंपिक मज्जातन्तुकी क्षोभनकी अवस्थामें, जैसे कि ग्रेव्हजकी विकृति या क्लोम ग्रंथीकी कमी की अवस्था (पानक्रियाटिक इनसफीशन्सी) । यह

प्रसरण दिखाई देता है। नैसर्गिक खरगोश या मेंढक में कनीनिकाका प्रसरण होता है लेकिन बिलाडी या कुत्तेमे यह नहीं दिखाई देता। लेकिन मज्जाकन्दके पूर्व की आनुकंपिक मज्जातन्तुओंको काटनेसे या ऊर्ध्व ग्रैवेयक आनुकंपिक मज्जाकन्दको निकाल लेनेसे आनुकंपिक मज्जाके प्रान्तस्थ इन्द्रियकी क्षोभन शीलता बढ जाती है और दवाका असर दिखाई पडता है। यह क्रिया **कनीनिकाका विरोधाभासात्मक संकुचन** जैसी होती है। इसी तौरसे कोकेन के इस्तेमालसे आनुकंपिक मज्जामंडलकी कार्यक्षमता बढानेसे एडरीनलीनसे ज्यादह प्रसरण होता है।

जब आनुकंपिक मज्जातंत्र निकटीन या अरगोटाक्झिनसे बेकाम किया जाता है तब उप आनुकंपिक मज्जामंडलकी क्षोभन शीलता बढ जाती है और एडरीनलीनसे कनीनिका के संकुचक स्नायुका संकुचन होता है (म्हेगो ट्रापिक इफेक्ट) यानी एडरीनलीन की क्रियासे विपर्य्यस्त क्रिया होती है। ख्यालमें रखना कि एडरीनलीनके प्रसरण का असर एसरीनसे नहीं उडा दे सकते लेकिन एसरीनका संकुचनका असर एडरीनलीनसे उडा दे सकते हैं।

कोकेन : कोकेन के इस्तेमालसे होनेवाला **कनीनिका प्रसरण** महत्तम तौरका नहीं होता, और उसका असर प्रकाशसे या उपआनुकंपिक मज्जामंडलके उत्तेजनसे उड जाता है। कोकेनके २% द्रावणसे ५ से २० मिनिटमें प्रसरण शुरू होकर वह ६ से २० घंटे तक रहता है। यह प्रतिक्रिया, संभव है कि, आनुकंपिक मज्जारज्जुके सीरोमेंसे होती होगी। यद्यपि मज्जाकन्दके पारके तन्तुओंमें काट देनेसे यह क्रिया तुरन्त दिखाई देती है उनका गुणऱ्हास होनेसे इस क्रियाका लोप हो जाता है। इसकी कार्यक्षम क्रिया अट्रोपिन की या एडरीनलीन की मदतगार जैसी होती है।

कोकेनके कार्यतंत्र संबंधीकी कल्पनाऐं:—पहले मानते थे कि उसकी क्रिया प्रत्यक्ष स्नायुतन्तुपर होनेसे अनंकित स्नायु शिथिल होते है, यह क्रिया फकत नेत्रके आनुकंपिक मज्जातन्तुओंपर होती है। कुरोडा के (१९१५) मतानुसार उसकी क्रिया तारकापर होनेसे उसकी संकुचक स्नायु कमजोर होती है। मिलर (१९२६) के मतानुसार कमजोर प्रमाणके द्रावणकी (१:१००००) क्रिया जिन स्नायुमे आनुकंपिक की क्रिया चालक जैसी होती है, उनमे उत्तेजक जैसी, और जिनमें उपशामक जैसी होती है उनमें अवरोधात्मक कार्य होता है। कोकेनसे शुक्लास्तर कोषकी रक्तवाहिनियां संकुचित होती है और नेत्रगोलक किंचित पुरस्कृत होनेसे कल्पना कर सकते है कि यह दवा आनुकंपिक मज्जातंत्रको उत्तेजित करती है।

(३) कनीनिका संकुचन : उप आनुकंपिक मज्जामंडल कार्य जोरदार होनेसे कनीनिका संकुचक स्नायु उत्तेजित होकर कनीनिका संकुचित होती है। यह क्रिया फायसोस्टिगमिन (या एसरीन), पायलोकारपिन, मसकरिन और कोलिनसे पायी जाती है।

फायसोस्टिगलिन (एसरीन) शुक्लास्तर कोषमें डालनेसे कुछ थोडे मिनिटमें कनीनिका का संकुचन और दृक्संधान शक्ति का ऐंटन होता है। तारकासीत पिंडीय स्नायुपरका अमल दो घंटेमें कम हो जाता है लेकिन वह अति उत्तेजित अवस्थामें रहाती है। क्षुद्र ऐच्छिक प्रयत्नसे दृक्संधानका ऐंटन होता है। ये द्रव्य उप आनुकंपिक मज्जातन्तु की

सीरेकी अति क्षोभनशील अवस्थासे पैदा होती है। वह प्रत्यक्ष उत्तेजक नहीं बल्कि चाक्षुषचलनतंत्रके अन्तिम इन्द्रियको चालक मदतगार होता है।

यदि चाक्षुष चालक मज्जातन्तुमें काट दे तो इसकी क्रिया नहीं दिखाई देती। यानी अट्रोपिनसे चाक्षुषचालक प्रेरणाओंको नाकाबिल करनेसे एसरीन की संकुचक क्रिया नहीं पायी जाति।

पायलोकारपिन की कनीनिका संकुचक क्रिया एसरीनसे कमजोर होती है और वह कम समय तक रहती है। इसका औषधीय परिणाम भी एसरीनसे भिन्न होता है। एसरीनसे उप आनुकंपिक मज्जा तन्तुओंके अन्तिम इन्द्रिय की क्षोभनशीलता उत्तेजित होती है तो पायलोकारपिनसे प्रत्यक्ष उत्तेजन होता है। उसका असर उड जानेके बाद संकुचक स्नायुमें उप आनुकंपिक मज्जा अंशिक भ्रंशित दिखाई देता है।

मसकरिनसे उप आनुकंपिक मज्जामंडल उत्तेजित होता है जिससे कनीनिका संकुचित होती है और यह असर अट्रोपिनसे उडा दे सकते है। **कोलीन** यह जोरदार असिटिल एस्टर जैब-होता है और इससे उप अनुकंपिक मज्जामंडल का जोरदार उत्तेजन होता है।

(४) कनीनिका संकुजन जो संकुचक स्नायुके प्रत्यक्ष उत्तेजनसे पैदा होता है: **अरगट** के बने हुओ द्रव्य जैसे कि हिस्टामाईन अरगोटाक्सिन, और मारफिया व्हिराप्ट्रीन और कुछ इआन्ससे पैदा होता है। अफीमके उपक्षारोंसे, पापेव्हरिन और नारकाटिन तथा कुछ आयनसे अनंकित स्नायुशिथिल होनेसे कनीनिकाका प्रसरण होता है।

हिस्टामाईन इस संबंधमे अति दिलचस्पीका होता है। यह कनीनिकाका अति जोरदार संकुचक होता है, और इसकी क्रिया प्रत्यक्ष स्नायुतन्तुओपर होनेसे, अट्रोपिनका असर होते ही इससे संकुचन महत्तम तौरका होता है। अरगटोमाईनकी जो अरगटाक्सिन जैसा ही होता है क्रिया जोरदार होती है।

मारफियासे, शुक्रास्तर कोषमे डालनेसे, खरगोशमें कनीनिका संकुचित होती है।

व्हिराट्रिनसे सादे स्नायुकी तनाव की अवस्था बढ जाती है और कनीनिकाकी संकुचक स्नायु जोरदार होनेसे कनीनिका संकुचन होता है। आफिमके उपक्षार पापेव्हरिन और नारकाटिनसे विपरीत क्रियासे महत्तम कनीनिका प्रसरण होता है।

आयनो कि क्रिया महत्वकी होती है। (ये विद्युत आविष्ट परमाणु या परमाणु समूह द्रवों तथा गैसोंमें होते हैं।) **बेरियम आयनसे** स्नायुतन्तुओंका प्रत्यक्ष उद्दीपन होता है। इससे कनीनिका संकुचन जोरदार होता है, यहि क्रिया **स्ट्रानशियम** और **पोट्याशियमसे** ही होती है। **कैलशियमको** निकाल लेनेसे प्रसरण कारक स्नायु सुचेतन होता है। और नीलाओंमें उसका अन्तःक्षेपण करनेसे जब उसका प्रमाण बढ जाता है यह स्नायु कम क्षोभनशील होता है जिससे कनीनिका संकुचित होती है।

अध्याय २७

नेत्रका बाह्य स्नायुतंत्र और नेत्रके चलन

नेत्रके बाह्य स्नायुओंका ऐन्द्रिय (शास्त्र) विज्ञान

शरीर के कुल स्नायुओंमें नेत्रके बाह्य स्नायुओंकी असल बात यह होती है कि उनके चलन कायम स्वरूप के और नाजुक होते है, उनका अंगस्थिति दर्शन व्यूह अचूक होता है, और चाक्षुष प्रतीति में जिसमें उनका संबंध होता है उनकी स्थानवाचक संज्ञा बराबर होती है।

मज्जातन्तुओका पारस्परिक स्नायविक विभाजन

स्नायुओं की अचुक संवादि क्रिया और उनके सूक्ष्म और आसानीके तौरके क्रमिक चलन, नेत्रके हर स्नायुका उसके विरोधी स्नायुके साथ का सहकार्य **मज्जातन्तुओके पारस्परिक** स्नायनिक विभाजनसे निश्चित किया जाता है। यह क्रिया मध्य मस्तिष्क मज्जामंडलसे नियंत्रित होती है। इससे एक स्नायुका संकुचन उसके विरोधी स्नायुकी समकालिक और प्रमाणांकित शिथिलतासे निश्चित होता है। शरीरके सब विरोधी स्नायुओंमें पारस्परिक से अनुकूल सहकार्य होना यह सावारण असली बात होती है ऐसा **शेरिंगटन** पंडितने सप्रयोग बतलाया है। यह सहकार्य तारका के स्नायुओं में और नेत्रका चलन नियंत्रण करनेवाले स्नायुओंमें दिखाई देता है। **शेरिंगटनने** प्रयोगसे सिद्ध किया कि दाहिने ललाट मस्तिष्क खंड को उत्तेजित करनेसे दोनों नेत्रोंका बायी ओरको च्यवन होता है और इस हालतमें दाहिने नेत्र के, बाह्य सरल चालनी स्नायुके सिवा सब स्नायुओंमें काट लगानेसे ही यह नेत्र बांयी ओरको मध्य रेषातक घुम सकता है; यह चलन मध्य मस्तिष्क की क्रियासे शिथिलता प्रस्थापित होनेसे संभवनीय होता है।

स्नायुओंका तनाव

नेत्रके बाह्यचालक स्नायुओंको उत्तेजित करनेसे उनकी तात्कालिक होनेवाली संवादि क्रिया उनकी हमेशा पूर्ण विकसित अंगस्थितिदर्शक तनाव की अवस्था कायम रहनेकी वजहसे निश्चित होती है। इस तनाव की अवस्थामें स्नायुओंके जो सूक्ष्म आवाज होते है उनको **मायक्रोफेन** से सुन सकते हैं या स्ट्रिंग गैल्व्हानामिटरसे उनके कार्यके प्रवाहमेंके फर्क भी दर्ज कर सकते हैं। इस पर असर करनेवाली बाते निम्नलिखित जैसी होती हैः—

(१) दृष्टिपटल प्रकाशसे उत्तेजित होनेसे नेत्रके बाह्य स्नायुओंकी तनाव की अवस्था जोरदार होती है।

(२) श्रवणसंपुट का ही स्नायुओंका तनाव बढानेमें असर होता है ये फर्क अंगस्थितिदर्शक प्रतिक्रियामें ज्यादह स्पष्ट दिखाई पडते हैं।

(३) गर्दनके स्नायुओंके आद्यसमग्राहक प्रतिक्रियाओंका भी असर होता है।

(४) मस्तिष्क से भी नेत्रके बाह्य स्नायुका, शरीरके अन्य स्नायुओं जैसा नियंत्रण होता है।

इन स्नायुओका कार्य खास तौरका होनेसे उनके तन्तु दो तरहके मोटे और बारिक होते हैं और उनके इर्दगिर्द स्थितिस्थापक घटकोंकी भरती ज्यादह होनेसे उनके मज्जातन्तु भी खास दो तौरके आनुकंपिक या संज्ञावाहक होने चाहिये ऐसी इनकी उत्पत्ति संबंधमें दो कल्पनाओे प्रचलित थी।

लेकिन आनुकंपिक मज्जातन्तुओंको उत्तेजित करनेसे स्नायुओकी तनावकी अवस्था जोरदार नहीं होती यह प्रयोगसे सिद्ध हुआ है। ये मज्जातन्तु आनुकंपिक स्वरूपके नहीं होते यह बात माननेसे ये मज्जातन्तु संज्ञावाहक स्वरूप के होते हैं यह कल्पना कर सकते है। और चाक्षुष प्रतीतेमें इन स्नायुओंका कार्य विशेष सांवेदानिक तौरका होनेसे इस कल्पनाकी महत्व है। ये मज्जातन्तु नेत्रको चालक तीसरी, चौथी और छटी मस्तिष्क मज्जारज्जुके द्वारा जाते हैं ऐसा संभव है और इसी वजहसे इन मज्जारज्जुओंमें स्नायुचालक तथा सांवेदनिक (केन्द्रत्यागी और केन्द्रगामी मज्जातन्तु होते है।

इन मज्जातन्तुओंके उगमस्थानसंबंधी ही निर्णय नहीं हुआ है: एक कल्पना ऐसी थी कि ये मज्जातन्तु त्रिमुखी मस्तिष्क मज्जारज्जुसे पाये जाते हैं और दूसरी कल्पना ऐसी है कि ये मज्जातन्तु ३ री ४ थी और ६ ठी मस्तिष्क मज्जारज्जुपरके मज्जा कन्दोंसे उगम लेते है। इन मज्जाकन्दोका कार्य सुषुम्ना मज्जारज्जुओंके पिछले मूलोपरके मज्जाकन्दो के समान जैसा होता होगा। इस तरहकी प्रणालीका जिसमें परिवर्तन होते हैं, संबंध नेत्र-स्नायुओंके कार्यसे जिसमें आद्यसमग्राहक संज्ञाका विकास होता है, संबंध जोडना संशयास्पद होगा, लेकिन असली महत्वकी बात यह होती है कि यह मज्जा–स्नायनिक संकीर्णसे जो आकार विज्ञानक इकाई जैसा होता है जो उसके असाधारण और भिन्न गुणधर्मोंकी वजहसे शरीर के अन्य अंकित स्नायुओंसे पहचान सकते हैं।

नेत्रगोलकके बाह्य स्नायुओंको असाधारण मज्जातन्तुकी भरती होनेसे उनका ऐन्द्रिय कार्य भी खास तौरका होता है; नैसर्गिक अवस्थामें कोलिन और निकटिनसे इन स्नायुओंका संकुचन होता है। किसी प्राणिके नीलामें असिटिल–कोलिनका अन्तःक्षेपण करनेसे नेत्रगो-लकके सब सरल और वक्र चालनी स्नायुओका छोटे प्रमाणका लेकिन जोरदार संकुचन होता है; कोलीन और निकटिनसे मंद तनाव की संवादि क्रिया दिखाई पडती है। इस कार्यशक्तिपर अट्रोपिनका कुछ असर नहीं होता, एडरिनलीनसे वह बढ जाती है और क्युरारे या निकटिनसे रुक जाती है। दिलचस्पीकी बात यह होती है कि सस्तन प्राणियोंमें नीचेके वर्गके प्राणियोंके अंकित स्नायुओमें भी इसी तरहकी प्रतिक्रिया दिखाई पडती है; इनके स्नायुओंके मज्जातन्तु नेत्रके बाह्य स्नायुओंके जैसे ही होते है यह ख्यालमें रखना (**लांगले १९०६ रीसट १९२१**)। ये मज्जातन्तु अन्य कयी स्नायुओंमें भी होते हैं। यह प्रतिक्रिया, शरीरके स्नायुओके चालक मज्जातन्तुओंका गुणऱ्हास होनेके पश्चाद उनके सांवेदनिक मज्जातन्तुको उत्तेजित करनेसे पैदा होनेवाली मिथ्या चालक संकुचन जैसी होती है। यह प्रतिक्रिया आनुकंपिक मज्जातन्तुके सिवा होती है लेकिन छोटे मज्जातन्तुपर जिनका संबंध सुषुम्ना मज्जारज्जुके पिछले मूलपरके मज्जाकन्द के पेशियोंसे होता है, उनपर अवलम्बित होता है। इससे मालूम होता है कि नेत्रके ये स्नायु आर्ष पुरातन (आरक्रियाक)

और प्राथमिक व्यूह–तंत्रका, जिसका अल्प स्वेच्छिक स्नायुओंमें अभाव होता है, फायदा उठा सकते है; इसका संबंध इन स्नायुओंका विशिष्ट तौरका कार्य और उनके खास तौरके मज्जातन्तुओंसे होता है इसमे संदेशा नहीं है।

नेत्रोंके चलन

नेत्रोका चलन किसीभी दिशामें शीघ्रतासे और अचूक होनेके लिये उसका यंत्र अति नाजूक होना जरूरी है इतना ही नहीं बल्कि दोनों नेत्रोंके चलन में पारस्परिक सहकार्य इस तौरसे होना चाहिये कि द्विनेत्रीय एक दर्शन होगा द्विधादर्शन नहीं पैदा होगा। इस लिये दोनों दृष्टिपटल के सहचरित भागोंका प्रक्षेपण बाह्य अवकाश में एक ही बिन्दु पर होगा इस तौरसे नेत्रोंके चलन का दङ् निर्णय होना जरूरी है, और यह बात कुछ खास नियमोंके अनुसार होती है। यह ख्यालमें रखना कि यह सह चरण स्थिर रूपका होता है और यह रचनासे निश्चित होता है, क्यों कि एक नेत्रके सामने एक कमजोर त्रि-पार्श्व रखकर उसके स्थिरीकरणके नैसर्गिक रचना के दिङ् निर्णय मे फर्क करनेसे चलन की सहचरित श्रेणी, द्विधादर्शन होये विना दिखाई पडेगी; इससे दोनों नेत्रोंमे यद्यापि एक नेत्रकी नैसर्गिक रचना में त्रिपार्श्व से बदल किया जाय तो भी सापेक्ष समायोजनता दिखाई पडेगी। और जब एक नेत्रमें थकावट पैदा होती है या मज्जास्नायविक सहचरण मद्य प्राशन जैसे अव-स्थासे मंद हुआ हो तो द्विधा दर्शन होना संभव है जिससे कल्पना कर सकते है कि दोनों नेत्रोंमेंका संबंध अचूक तौरका नहीं है। यानी **दोनों नेत्रको सहचरित करनेवालातंत्र अनावश्यक और ऐन्द्रिय तौरसे अकठन जैसा होता है।**

जोहान्समूलर की (१८२६) ऐसी कल्पना थी कि नेत्रगोलक उसके पिछले पृष्ठ के केन्द्र के पासके स्थिर बिन्दुकी ओर में घुमता है और वह उसके सामनेसे पीछे की ओरको जानेवाले अक्षरेषा की चारो ओरको नहीं डुलता। **व्होकमनने** (१८३६) बतलाया कि नेत्र जब स्थैर्यबिन्दुके अनुसार अपनी दिशा बदलता है तब वह उसके केन्द्र की चारों ओर को घुमता है। लेकिन **जान हन्टर** ने बतलाया कि जब सर झुकाया जाता है तब नेत्र-गोलक उसकी सामनेसे पीछे जानेवाली अक्षरेषा के इर्द गिर्द डुलता है। और **झुकने** शुक्ला-स्तर रक्तवाहिनीयों के चलन को इसमें देखकर पुष्टी दीई। **फिक** ने अंधतिलक के संशोधनसे और **बुन्ट** ने पश्चात प्रतिमाओंके निरीक्षणसे कल्पना रची कि डुलने का चलन इस तौरसे होता है कि नेत्रमेके स्थानमें कमसेकम प्रयत्न से बदल हो जावे। **डान्डर्स** ने(१८४७–५२) स्थापित किया कि नेत्रकी खडी और आडी अक्षरेषा के इर्द गिर्द के चलन में डुलने का चलन नहीं दिखाई पडता लेकिन वक्र चलनमें पश्चात प्रतिमाओंमें मुरोड़ दिखाई पडता है। इन के संशोधनसे कल्पना कर सकते है कि इस मिश्र तंत्र का उद्देश द्विनेत्रीय एकदर्श-नमें ज्यादह से ज्यादह सहचरण हो जावे।

नेत्रचलन के संशोधनकी पद्धतियां

(अ) आत्मगत पद्धति

(१) पश्चाद् प्रतिमाकी पद्धति : इस पद्धतिसे जो साधारण तया अचूक होती है नेत्र के चलन का संशोधन हो सकता है। दृष्टिपटलके किसी क्षेत्रसे पश्चाद प्रतिमाओ का बनना

उत्तेजित कियां जाय तो उनका प्रक्षेपण बाह्य अवकाशमें होता हैं, क्यूं कि प्रतिमा दृष्टिपटल के उत्तेजित क्षेत्रके चलन के अनुसार चलति है और यह मार्ग नेत्रके चलन का जिसको ठीक ठीक अनुसरते है, हुबे हुब नमूना होता है। बिलकुल साधि पद्धति यह होती है कि भूरे रंग की दीवालपर एक लालपट्टेको रखकर उस पट्टे की ओर कुछ समय तक नजर लगाकर फिर नेत्रको भूरे दीवाल की ओर घुमानेसे नेत्रके चलन के साथ दीवाल पर हरे रंग का पट्टा दिखाई पडता है।

(२) **अंधतिलक की पद्धति :** नेत्रोंके चलनका अभ्यास अंधतिलक का प्रक्षेपण को देखनेसे कर सकते है। इसकी मध्यवर्ती कल्पना यह होती है सुपेद कागज परके, जिसके चलन का नियंत्रण कर सकते है, काले बिन्दुकी ओर नजरको स्थिर करना और सिरको कायम स्थानमें रखकर उस कागजको हिलानेसे कुछ समयके बाद कालाबिन्दु दिखाई नहीं पडता।

(३) **दोनों नेत्रोंकी सहचरित प्रतिमाओंकी तुलनाकी पद्धति :** इस पद्धतिसे नेत्रोंका पारस्परिकसे सापेक्ष स्थान की तुलना कर सकते हैं। स्थैर्यबिन्दुके पृष्ठको लंब जैसी तारको रखकर उसके उस पारके या इस पारके बिन्दुपर नजर रोकनेसे दोनों नेत्रोंसे देखी हुई तारकी प्रतिमाऐं समानान्तर जैसी दिखाई देनेके बदले पारस्परिक की ओरको झुकी हुई जैसी मालूम होती है। दोनों प्रतिमाओके बीचके कोण परसे दृष्टिपटल की खडी अक्ष रेषाओंका सापेक्ष स्थान का निर्णय कर सकते है।

(क) वस्तुगत पद्धतियां

ये पद्धतियां भी अनेक होती है। जैसे कि (अ) प्रत्यक्ष निरीक्षक की पद्धति; (क) यान्त्रिक तौरसे अनुलेखन (दर्ज) करनेकी पद्धतियां (१) विद्युत पद्धतिया, (२) तरफोंसे अनुलेखनकी पद्धति;(३) वायवीय न्यूमाटिक कैपसूलसे अनुलेखन करनेकी पद्धति-पहलीमें विद्युत गैल्व्हानामिटरके इस्तेमालसे नेत्रके दोनों ओरको उसके शुक्लास्तर कोषमें विद्युत द्वार–विद्युत चालक धातुका टुकडा (इलेकट्रोड) रखकर अनुलेखन किया जाता है।

(च) फोटो उतारनेकी पद्धति

स्ट्रेटन ने पहले पहल इस पद्धतिका उपयोग किया था (१९०२–०६)। उन्होंने

चित्र नं. ३४६
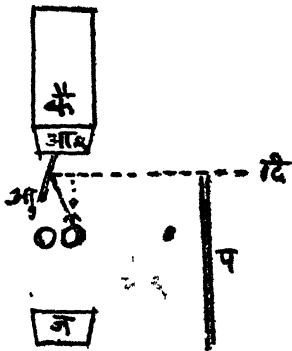
नेत्रके चलनका अनुलेखन करनेका स्ट्रेटनका उपकरण।

(दि) प्रकाशको (उगमस्थान) जिससे नेत्रोंका बचाव (प) परदेसे किया जाता है, नेत्रोंपर (आ १) आयनेसे परिवर्तित किया जाता है। फिर वहांसे (कै) कैमेरेमें परिवर्तित होता है निरीक्षण (ज) जगहसे किया जाता है।

नेत्रके चलनके जब वह एक स्थैर्यबिन्दुसे दूसरे बिन्दुको घुमता था प्रत्यक्ष फोटों उतारे थे; इसमे आर्क दीपकका प्रकाश कैमेरेको लगाये हुए परिवर्तित करके कैमेरे मेंकी प्लेटको नेत्रका चलन खतम होनेतक खुली रखकर नेत्रके चलनका अनुलेखन किया । इस तरहकी कोशिष अन्य संशोधकोंने भी कीयी थी ।

नेत्रोंकी विश्राम की अवस्था और नेत्रोंके चलन स्थिरीकरण की अवस्थामेंका स्थान

नेत्रोका चलन नैसर्गिक अवस्थामें निश्चल स्थिति से नहीं होता । पूर्ण निश्चल स्थिति (या शारीर शास्त्रीय निश्चल स्थिति) यानी नेत्रोंका, जब वे मज्जा-स्नायनिक नियंत्रण से अलग होकर जिस अवस्थामें रहना चाहिये, निर्धारण साधारण अवस्थामें करना संभवनीय नहीं होता क्योंकि नेत्रके बाह्य चालक स्नायु हमेशा तनाव की अवस्थामें होते हैं । नेत्रोंकी पूर्ण भ्रंश की अवस्थामे वे सामने समानान्तर अवस्थामें नही दिखाई देते बल्कि उनका बाह्य च्यवन होता है, कभी कभी केन्द्राभिमुख होते है । मृत्यूके पश्चाद नेत्र इसी अवस्थामें दिखाई देते है । नेत्रोके बाह्यचालक स्नायुकी तनाव की अवस्था को जिसमे वे रहते हैं जब उनपरका उत्तेजकोंका असर (जैसे कि दकूसंधान व्यापार एकत्रिकरण आदि) अलग किया जाता है, तब उस अवस्थाको प्राकृतिक निश्चल स्थिति कहते हैं । इसी को निश्चलता की सापेक्ष अवस्था, एकत्रिकृत रहित अवस्था या अंध अवस्था भी कहते है । यह अवस्था सब स्नायु कमसे कम और संतुलित तनाव से एक समय कार्य करनेसे पायी जाती हैं, स्नायुओंका तनाव का अभावसे नहीं पायी जाती । जिस अवस्थामें दोनों नेत्र मस्तिष्क के सामने और आनन्त्य मेंके अवकाशमेंके स्थैर्यबिन्दुकी ओर को देखते हैं और इसी तौरसे दोनों दृष्टिपटलके सहचरित क्षेत्रोंकी दकूस्थिति होती है और जो यह अवस्था स्नायुके कार्य सातत्य से कायम रहती हैं उस कार्यका विचार करेंगे ।

नेत्रोका स्थिरीकरण, स्नायुओके सतत कार्य होनेसे, जिसमें सब स्नायु समतुलित अवस्थामें रहते हैं, दिखाई पडता है । इन स्नायुओके सतत कार्य से जो निश्चल जैसे दिखाई हुए भी कभी पूर्ण तया अचल नहीं होते नेत्रोंका सूक्ष्म परिभ्रमण होता है । नेत्रके स्थिरीकरण में तीन तरहके चलन दिखाई पडते हैः—(१) सापेक्षतासे स्नायुओके अनैच्छिक बडे गचके होते हैं जिनके हर १ से २.५ सेकन्द में ४° कोणके प्रमाणमे फेरे होते रहते है । (२) इन फेरोंके दरमियान के समयमें जब नेत्र अचल दिखाई देता है (प्राथमिक स्थिरीकरण का समय) १° कोणके फेरोका सतत अनुक्रम होता रहता है । ये चलन १ से २.५ सेकन्द तक होते है। (३) इन नेत्रोंके चलन के ऊपर सिरके चलन के सूक्ष्म फर्क अधिस्थित होते हैं ।

इस चलन की वजहसे दृष्टिपटल का क्षेत्र जिसका स्थिरीकरण में उपयोग किया जाता है बडा होता है । ख्यालमे रखनेकी बात यह होती है कि चलन हर नेत्रमें, चाहे वे दूरीके या नजदीक दृष्टिमें लगाये हो, या स्थिरीकरण में एक या दोनों नेत्रो का इस्तेमाल किया हो एक समान होता है । इस पर रक्तवाहिनीयोंका स्पन्दन या श्वासोश्वास की समगतिका असर नहीं होता और इसमें हर व्यक्तिके अनुसार, प्रकाशनका प्रमाण या नेत्रकी मिलति जुलति अवस्था (समायोजन), फर्क दिखाई पडता है । दृष्टिकार्यमें इस चलन सातत्य का महत्व होता है यह पहले ही कहा है ।

नेत्रके चलन का व्यूह

नेत्रगोलक टेननके आवरण से लपेटा होता है और वह नेत्रगुहामेंके चरबीदार घटकोंमें रहता है और जहां स्नायुओंके तनाव की वजहसे उसका स्थान स्थिर रहता है। सरल चालनी स्नायुका नेत्रको पीछे खींचनेके असरका वक्र चालनी स्नायुका उसको आगे खींचनेके असरसे निराकरण होता है, और सब स्नायुके संतुलित कार्यसे चरबीदार घटकोंकी रुकावट का भी निराकरण होता है। यह चरबीदार घटक सापेक्षतासे दबा नहीं जानेसे नैसर्गिक अवस्थामें नेत्रगोलककी सामने या पीछे की ओर सरकनेकी क्रिया रुक जाती है। इस स्थानान्तरित चलनों (ट्रान्सलेटरी मुव्हमेन्ट) का विशेष महत्व नहीं है; व्यावहारिक तौरसे नेत्रगोलक का चलन चक्रगति या परिभ्रमणात्मक जैसी, जो बाल और साकेट संधिमें दिखाई पडती है होती है, और नेत्रगोलक उसके आवरणसह इस चरबीदार घटकमे आसानीसे उसमें बिघाड किये विना घुमता है।

स्थानान्तरित चलन

नेत्रके शुद्ध स्थानान्तरित चलन (सामनेकी ओरका, पीछेकी ओरका और बाजुकी ओरका) नैसर्गिक अवस्थामें बहुत कम प्रमाण का होता है। नेत्रच्छदान्तरालको जोरसे चौडा किया जाय तो उसका दबाव कम होकर तारकाधिान थोडा सामने, नीचेकी और भीतरकी ओरको सरक जाता है और इसके विपरीत नेत्रच्छदोंके संकुचनसे वह पीछे जाता है। ये चलन निष्क्रिय स्वरूपके होते हैं और ये चरबीदार घटकका जो थोडा चलन होता है और नेत्रच्छदोत्थापिका स्नायूका नेत्रगौहिक पटलपर जो कुछ खींचाव होता है उसकी वजहसे होते है।

नेत्रगुहान्तस्थ घटकोंके प्रमाणमे बदल होनेसे नेत्रगोलकमे कुछ स्थानान्तरिन चलन होता है। नैसर्गिक अवस्थामें रक्तके प्रमाणमें रोहिणीयोंका स्पन्दन और श्वासोश्वासकी तालबद्ध क्रियासे फर्क होनेसे नेत्रगोलकमें कुछ सूक्ष्मचलन (१ मि. मि. का शतांश भाग) होता है। विकृत अवस्थामें जब रक्तके प्रमाणमें ज्यादह बदल होता है, तब चलन ज्यादह होता है जैसे कि स्पन्दनदार पुरस्सृत नेत्रगोलक की अवस्था; नेत्रगुहान्तस्थ घटकोंका प्रमाण दाहज या अर्बुदकी अवस्थामें बढनेसे कायम की पुरःसृत नेत्रगोलककी अवस्था, या घटकोंका प्रमाण नेत्रक्षय की अवस्थामें कम होनेसे पार्श्वस्थित नेत्रगोलककी अवस्था पायी जाती है। इसी तौरसे स्नायुओंकी तनावकी अवस्था बढनेसे नेत्रगोलक कुछ पीछे की ओरको ढकेला जाता है : नेत्रकी चक्रगति पेच की गति जैसी होती हे जो उसके अक्षकी इर्दगिर्द होती है इतनाही नहीं बल्कि उसके एक बाजूसे दूसरें बाजूमेंही होती है। स्नायुओंकी तनाव की अवस्था कम होनेसे नेत्रगोलक सामने ढकेला जाता है, जैसा की पुरःसृत नेत्र।

चक्रगति या परिभ्रमणात्मक चलन

नियमाकाक्ष प्रणाली

नेत्रगोलकके स्नायुओंका सक्रिय चलन उसके विवर्तन केन्द्रकी चारों ओरको परिभ्रमण रूपका होता है,और यह चलन पेच गति जैसा होता है। इस विवर्तन केन्द्रका स्थान

शुक्लपटलके पिछले पृष्ठके सामनेकी ओरको १० मि. मि. और तारकापिधानके पीछे १४ मि. मि. होता है।

नेत्रके स्नायुओंका इस काल्पनिक बिन्दुके चारों ओरके चलनका भुजयुग्मोंमे विश्लेषण कर सकते है, जिनका इस केन्द्रमेंसे पारस्परिकसे काटकोन करके जानेवाली तीन अक्षरेषाओंसे संबंध लगा सकते है। इन अक्षरेषाओंका संबंध ललाटीय समतलसे जिसका मस्तिष्कसे संबंध कायम अचल रूपका होता है, लगा सकते है और यह समतल, जब नेत्र बिलकुल सामनेकी ओरको देखते है नेत्रगोलकके विषुववृत्तके समतलसे मिलता होता है : (इसीको **लिस्टिंग** का समतल या हेरिंगका प्राथमिक अक्षिक समतल कहते हैं)(चित्र नं. ३४७)। खडी अक्षरेषा और आडी अक्षरेषा इस सम तलमें खडी और आडी दिशामें जाती है,और मध्य **सीमान्त** पीछेसे सामने जानेवाली) अक्षरेषा जो स्थैर्यरेषा जैसी होती है, इस समतलको लम्ब जैसी जाती है : इनको ऊ (z) आ (X) और सी (y) अक्षरेषा ऐसी संज्ञा दीई है।
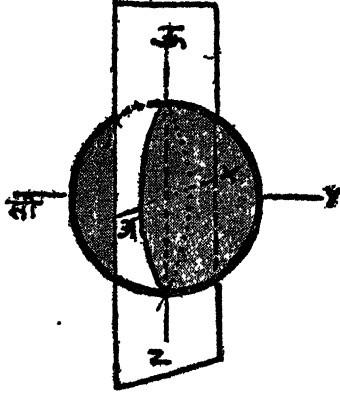
चित्र नं. ३४७

लिस्टिंग का समतल और फिक के निदर्शक अक्ष।

१ नेत्रोंके प्राथमिक स्थानकी अवस्थासे चलन

सिर खडी रेषामें रहकर जब दोनों नेत्र सामनेकी ओरको देखते है और उनकी अक्षरेषाऐं समानान्तर होती है और दोनों तारकापिधानकी खडी अक्षरेषाऐं खडी और समानान्तर रहति है तब यह नेत्रकी **प्राथमिक स्थानकी अवस्था** होती है। इस स्थानसे जब नेत्र ऊपरकी ओरको देखते हैं तब वे आडी रेषामें घुमते हैं, और इस चलनसे **ऊँचाई का कोण** होता है (ऐंगल आफ आलटिटयुड)। जब नेत्र एक ओरसे दूसरी ओरको देखते है तब वे खडी अक्षरेषामें घुमते है और इसमें जो कोण होता है उसको **अग्निमथका** कोण कहते हैं। **लिस्टिंग** के समतलके खडी और आडी अक्षरेषाके इर्दगिर्द के चलन स्वेच्छिक तौरके होते हैं और उनको **असली चलन** (कारडिनल मूव्हमेन्टस) कहते है और इसीमेंसे नेत्र **दुय्यम स्थानकी** अवस्थामें जाते हैं। पीछेसे सामनेकी ओरको जानेवाली अक्षरेषाके इर्दगिर्द स्नायुओंका स्वेच्छिक चलन नहीं होता। इस तिसरी अक्षरेषा कि इर्दगिर्दके चलनको गरगर चलन (वेलन जैसे घुमना) कहते है : यह चलन मनुष्य स्वेच्छिक तौरसे नहीं कर सकता। सिर्फ दो चलन जो **लिस्टिंग** के समतल मेंके अक्षरेषामे मर्यादित तौरके होते है कर सकता है।

लेकिन नेत्रको प्राथमिक स्थानसे तिरछी दिशामें घुमाना संभव होता है। इस तीरछे स्थानको तिसरा स्थान कहते है। यह चलन खडी और आडी अक्षरेषाके इर्दगिर्द एकसमय होनेसे होता है; यह चलन **लिस्टिंग** के समतलमें खडी और आडी अक्षरेषाओंकी दरमियानके अक्षके इर्दगिर्द होता है। जब नेत्र उसके स्थैर्यक अक्षरेषाकी इर्दगिर्दको घुमता है तब उस

चलनको चक्रगति (टारशन) कहते हैं। प्राथमिक स्थानमेंके असली चलन (खडे और आडे अक्षरेषामेंके) मे चक्रगति नहीं दिखाई देती बल्कि कोई भी तिरछे स्थानमेंके चलनके साथ चक्रगति होती है। इससे प्राथमिक स्थानकी प्राकृतिक व्याख्या ऐसी हो सकति है कि जिसमे नेत्रके **खडे और आडे चलनमें चक्रगतिका अभाव होता है वह नेत्रका प्राथमिक स्थान होता है।**

नेत्रगोलकके तिरछे स्थानके साथ खास और सतत प्रमाण की चक्रगति होती है वह स्थान किसी भी तौरसे पैदा हुआ हो। **डान्डर्स** का इस संबंध का नियम ऐसा था : सिरके स्थानके संबंधसे स्थैर्य रेषाकी दिशा कोनसी भी हो उसके साथ चक्रगतिका खास और अपरिवर्तक—स्थिर—कोण होता है जिसपर निरीक्षक की स्वेच्छाका असर नहीं होता और स्थैर्यरेषाका वह स्थान किसी भी तौरसे लाया हो। यही बातकी व्याख्या **हेल्महोल्टझने** इस तरहसे दीयी है:—जब स्थैर्य रेषा समानान्तर होती है हरनेत्रकी चक्रगति यह **ऊँचाईके कोणका** और **आझिमथके कोण** का कार्य होता है।

इसका विश्लेषण **स्टिर्लिंगके** नियमानुसार इस तरहसे होता है कि, जब स्थैर्य रेषा उसकी प्राथमिक स्थानकी अवस्थासे दूसरे स्थानकी अवस्थामें जाती है,तब नेत्रकी चक्रगतिका दूसरे स्थानका कोण,नेत्र जैसा पहलेसे इस स्थानकी अवस्थामें अक्षरेषाको लंब जैसी खडी रेषाके इर्दगिर्द घुमकर आनेसे जो कोण होता है, उस कोणके बराबर होता है। इस कोणका नापन भी कर सकते हैं : नेत्रके नये स्थानके प्राथमिक खडे व्याम्योत्तर वृत्तका, जो विवर्तन केन्द्रमेंसे और विवर्तन की अक्षरेषामेंसे जानेवाले समतलपरकी नेत्रकी खडी और आडी अक्षरेषाको लंब जैसा होता है, और खडी अक्षरेषासे जो च्यवन होता है उसपरसे नापन कर सकते हैं।

(२) नेत्रके प्राथमिक स्थानके सिवा अन्य स्थानोंमेंका नेत्रोंका समानान्तर चलन

नेत्रके प्राथमिक स्थानमें विवर्तन की अक्षरेषा **लिस्टिंग** के समतलमें स्थैर्यरेषाको लम्ब जैसी होती है। प्राथमिक स्थानसे शुरु होनेसे विवर्तक चलनके साथ स्थैर्यक अक्षरेषाकी इर्दगिर्द गरगर घुमना नहीं होता यह पहले कहा है, यह चलन असंभवनीय होता है क्योंकि अक्षरेषा जिसके इर्दगिर्द यह गति होती है, विवर्तनकी अक्षरेषा को लम्ब जैसी होती है। लेकिन प्राथमिक स्थानके सिवा अन्य स्थानोमेंके नेत्रोंके समानान्तर चलनमें स्थैर्यक अक्षरेषा दुय्यम अक्षरेषाके समतलको लम्ब जैसी नहीं होती और इसी वजहसे **दुय्यम समतलमेंकी अक्षरेषाके इर्दगिर्द गरगर चलनका भाग होता है।**

इससे यह अनुमान होता है कि, अप्राथमिक स्थानसे दूसरे किसीभी अन्यस्थानमेंके विवर्तनमे स्थैर्यबिन्दु वर्तुल निकालेगा और अन्य संभवनीय सब वर्तुल उस एक बिन्दुमें मिलेंगे जिसका स्थान, अक्षरेषाको, विवर्तन केन्द्रके सामने स्थैर्यबिन्दु जिस फासलेपर हो उतनी बढानेसे, इस भागपर होगा। इन वर्तुलोको **दिशाके वर्तुल** (डायरेक्शन सर्कल्स) कहते है, और जिस बिन्दुमें वर्तुल मिलते है उसको आक्सिपिटल बिन्दु कहते है : इस बिन्दुका दिग्निर्णयमें महत्व होता है।

(३) स्थैर्यरेषा जब समानान्तर नहीं होती उस अवस्थामेंके नेत्रोंका चलन

अब अक्षरेषाओकी असमानान्तर अवस्थामें के चलनका विचार करेंगे। यह बात

साफ है कि अक्षरेषा समानान्तर न होनेसे वे प्राथमिक अक्षके समतलको लम्ब जैसे नहीं होते और इससे इन चलनमें गरगर घुमनेका भाग होता है। इन चलनोंकी तीन प्रणालियां होती हैं : (१) नेत्रोंकी एककेन्द्राभिमुखता की प्रणाली जिसमें खडे व्याम्योत्तर वृत्तका ऊपरके भागमें च्यवन होता है; (२) नेत्रके ऊपरकी और नीचेकी औरके चलनमें तारका-पिधानके खडे व्याम्योत्तर वृत्तकी ऊपरकी सीरा बाहरकी ओरकी गरगर घुमती है और नीचेके चलनमें वह भीतर झुकती है। (३) द्विनेत्रीय एकदर्शकमेंके एकत्रीकरण के चलन।

(४) सिरके चलनके साथ नेत्रोंका प्रतिकारक (कांपेनसेटरी) चलन

जब सिर एक ओरको झुकता है तब नेत्रका प्रतिकारक चलन दूसरी ओरको दृक्क्षेत्रका दिग्निर्णय ठीक रहनेके लिये होता है।

नेत्रके बाह्य स्नायुओंकी क्रिया

नेत्रके हर स्नायुकी क्रिया

(१) नेत्रके वैयक्तिक स्नायुका विचार करनेके पहले उनकी क्रिया के तंत्रका विचार करना मुनासिब होगा। ये स्नायु नेत्रगोलकको जाकर कुछ अन्तर तक उसपर रह कर फिर उनके कन्डरा शुक्लपटलको कायम चिपक जाते हैं। स्नायुकी क्रिया विवर्तनके किसी ही चलनमे स्पर्शीय शक्ति (टैनजेन्शिअल फोर्स) जैसी होती है और यह क्रिया स्नायु नेत्रगोलकको जिस स्थानपर पहले मिलता है उस बिन्दुपर होती है, इस बिन्दुको **स्पर्शीय बिन्दु** कहते है और यह उस स्नायुका प्राकृतिक बद्धस्थान होता है। नेत्रगोलकसे प्रत्यक्ष संबंध हुअे स्नायुके भागको **संबंध कंस** कहते हैं और नेत्रके हर विवर्तनमें इसके लम्बाईमे फर्क होनेसे स्नायुके प्राकृतिक बद्धस्थानमें हमेशा बदल होता है। सब स्थानोंमें स्नायु अपनेही एक दिशामें खींचता है और विवर्तन केन्द्र का स्थान जब कायम रहता है तब चलन स्नायुके समतलमें ही होता है जिसमे विवर्तन केन्द्र और शक्तिकी स्पर्शीय रेषा रहति है। हर स्नायुका सहचरित अचल स्नायु समतल होता हैं और ये सब विवर्तन केन्द्रमेंसे जाते है और ये स्नायुके बद्धस्थानसे उगमस्थान की दिशा की ओर जाते है सिर्फ उर्ध्व वक्र चालनी स्नायुमें उसकी गडगडी तक जाता है। ख्यालमें रखना कि यह तंत्र नेत्रोंके प्राथमिक स्थानकी अवस्थामें अचूक होता है, लेकिन संभव है कि जब तेत्र इस स्थानमेंसे कुछ बाहर घुम जाते है तब उनकी कार्य-शक्ति की दिशामें, स्नायुओंके प्रतिरोधक बंधनी और टेननकी आवरण की वजहसे पार्श्विक कर्षण होकर, बदल होता है (**मैडाक्स** का मत १९०७) च्यूं कि हर स्नायुका समतल विवर्तन केन्द्रमें से जानेसे उससे नेत्रगोलकके दो समभाग होते है : यह काट बडे वर्तुल के आकार का होता है, और हर स्नायुके वैयक्तिक कार्य में नेत्र इस वर्तुलमें विवर्तन की अक्ष रेषा की दिशामें इर्दगिर्द घुमेगा, और यह दिशा स्नायुसमतल को लम्ब होगी।

बाह्य और आन्तर सरल, ऊर्ध्व और अधो सरल और उर्ध्व तथा अधो वक्र स्नायु-ओंके कार्यकी अक्षरेषाअे पारस्परिकसे थोडी झुकी होती है लेकिन यह प्रमाण इतना कम होता है कि उसको छोड दे सकते है और ये स्नायु जोडीजोडीसे कार्य करते हैं और इनके कार्यका समतल समवर्ती और अक्ष भी समवर्ती होता है ऐसा मान सकते हैं।

जब दोनों नेत्र प्राथमिक स्थानके अवस्थामें होते हैं तब बाह्य और आन्तर स्नायुके स्नायुसमतल आडे और अभिन्न होते है। ऐसा माननेसे व्यावहारिक तौरसे इन स्नायुओसे हर नेत्र लिस्टिंगके समतलमेंके खडे अक्ष के इर्दगिर्द दोनोमेंकी किसीभी एक ओरको विवर्तित हो सकता है। इसी तौरसे ऊर्ध्व तथा अधो सरल स्नायुओका स्नायुसमतल खडा और मध्य समतलसे कोण करता है जिसका औसद प्रमाण २३° (२०° से २७°) मान सकते है। इन स्नायुओंके कार्यसे नेत्र ऊपर और नीचे आडे अक्ष के इर्दगिर्द जो अक्ष **लिस्टिंग** के समतलसे यही कोण करता है, घुमते है। वक्र स्नायुओंके स्नायुसमतल भी अभिन्न और खडे मान सकते है और ये स्नायुसमतल मध्यसमतलसे ५१° अंश प्रमाण का औसद कोण करते है : इन स्नायुओसे नेत्रोंका चलन आडे अक्षमें जो **लिस्टिंग** के समतलसे यही कोण करता है।

च्यूं कि पार्श्विक सरल चालक स्नायुओंके अक्ष **लिस्टिंग** के समतल में रहनेसे उनकी क्रिया साधी विवर्तन रूप की होती है, जिनसे उपवर्तन यानी शरीर की मध्य खडी रेषा की ओर (एडकशन) और प्रत्यावर्तन यानी खडी मध्यरेषाकी बाहर की ओर (एब्डकशन)होता है। लेकिन अन्य स्नायुओंके अक्ष इस समतल में न होनेसे उनके कार्यका विश्लेषण इन अक्षोके भागोंमें करना चाहिये, जिससे नेत्रगोलक इस समतलमें के अक्ष की इर्द गिर्द या उनको लम्ब जैसा घुमता है। इस तौरसे ऊर्ध्व या अधो सरल चालनी स्नायुओंके कार्यका विश्लेषण करनेसे मालूम हुआ है कि उनकी असली क्रिया आडे अक्षके इर्दगिर्द विवर्तन रूप का होती है लेकिन उनके छोटे भाग में की क्रिया खडे और सामनेसे पीछे जानेवाले अक्षके इर्दगिर्द विवर्तन रूप की होती रहति है। यानी इन स्नायुओंका असली कार्य ऊर्ध्व वाहन (एलिव्हेशन) और अवनमन (डिप्रेशन) करना यह होता है लेकिन इस कार्य को दुय्यम कार्य उपवर्तन और प्रत्यावर्तन की जोड करना चाहिये। वक्र स्नायुओंमें सबसे बडे भागसे सामनेसे पीछे की ओरको जानेवाली अक्षरेषा की इर्दगिर्द विवर्तन होता है, यानी इनकी असली क्रिया विवर्तन रूपकी होती है और ऊर्ध्ववाहन अवनमन और प्रत्यावर्तन की क्रिया दुय्यम तौरकी होती है।

इन चार स्नायुओंकी, बाह्य और आन्तर सरल चालनी स्नायुके सिवा, मिश्र क्रिया नीचेके सारिणी नं. २५ से मालूम होगी।

सारिणी २५

स्नायु	असली कार्य	मदत कार्य
सरलोर्ध्व चालनी स्नायु ...	ऊपर घुमाना......	उपवर्तन और आन्तर गरगर चलन
सरलाधो चालनी स्नायु ...	नीचे घुमाना......	उपवर्तन और बाह्य गरगर चलन
वक्रोर्ध्व चालनी स्नायु ...	आन्तर गरगरना....	नीचे घुमाना और प्रत्यावर्तन
वक्राधो चालनी स्नायु ...	बाह्य गरगराना....	ऊपर घुमाना और प्रत्यावर्तन

नेत्रके प्राथमिक स्थानकी अवस्थाके सिवा अन्य स्थानोंमें स्नायुके समतलकी दिशामें नेत्रके स्थानके अनुसार बदल होता है, और इसी वजहसे स्थैर्यक अक्षरेषाकी ओर उनके चलनकी दिशामें बदल दिखाई देता है। पहले ऊर्ध्व सरल चालनी स्नायुका विचार करेंगे

दाहिने नेत्रके प्राथमिक स्थानके अवस्थामें उसके दिग् निर्णय चि. नं. ३४८ दिखाई पडेगा,
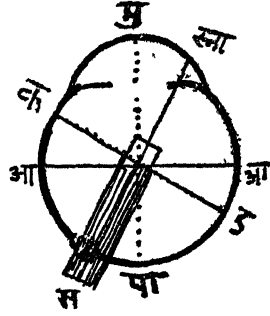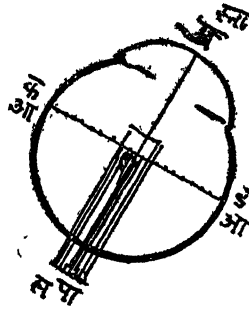
चि. नं.३४८ चि. नं.३४९ चि. नं.३५०
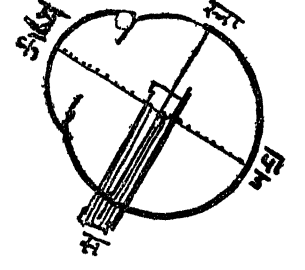
और वह नेत्रगोलकको क ड अक्षरेषाके इर्दगिर्द घुमाता है जिससे तारकापिधानका पुरोभाग वर्तुल निकालेगा जिसकी त्रिज्ज्या क ड अक्षको लम्ब जैसी होगी। इस तौरसे तारका-पिधान का पुरोभाग ऊपर उठाया जायेगा उसका उपवर्तन होगा और अन्दरकी ओर गिर-गिर घुमेगा। यदि नेत्रको बाहरकी ओर को इस तरहसे घुमाया कि उसका पाछल जानेवाला अक्ष स्नायुके समतलसे सहचरित होगा, और सामनेसे पाछल जानेवाला अक्ष **पु पा, क ड** को लम्ब जैसा होनेसे उसकी क्रिया स्नायुको सिर्फ ऊपर उठानेकी होगी (चि. नं. ३४९)। इसके अलावा नेत्रको अन्दरकी ओरको घुमाया जाय तो ऊपर उठानेकी क्रिया कमति होती जायेगी और गरगरनेका तथा उपवर्तनका भाग बढकर **पु पा** और क ड पारस्पारिकसे मिल जायेंगे और नेत्र ऊपर नहीं उठाया जायेगा (चि. नं. ३५०)। अन्य स्नायुओंको यही विचार लागू होंगे उनका सारांश निचेके सारिणिमे दिये है।

सारिणी २६

स्नायु			
ऊर्ध्व सरल उपर..उठाना.	प्रत्यावर्तनसे बढता है	उपवर्तन तथा आन्तर गरगरनी	उपवर्तनसे बढता है
अधो सरल... नीचे पतन...	उपवर्तनसे कम होता है	उपवर्तन तथा बहिर्गरगराना	प्रत्यावर्तनसे कम होता है
ऊर्ध्व वक्र ... नीचे पतन	उपवर्तनसे बढता है	प्रत्यावर्तन तथा आन्तर गरगराना	प्रत्यावर्तनसे बढता है
अधो वक्र.. ऊपर उठाना	प्रत्यावर्तनसे कम होता है	प्रत्यावर्तन तथा बहिर्गरगराना	प्रत्यावर्तनसे कम होता है

२ नेत्रके बाह्यस्नायुओंका सहचलन

नेत्रके किसी भी चलन अकेला एक स्नायु कार्य करता है ऐसा नहीं होता, उनके सब कार्योंमें स्नायुओंके एक संघ का जब संकुचन होता है तब उसी समय उन स्नायुओंके विरोधी सघके स्नायुओंका तनाव पारस्परिक मज्जातन्तुओंका स्नायविक विभाजनसे शिथिल होता है। इस तौरसे अति नाजुक चलनके ढलाव पाये जाते है जिसमें संकुचक स्नायुओंके कार्यकी दिशामें पारस्परिक मिलाप दिखाई पडता है इतनाही नही बल्कि उनके विरोधी

स्नायुओंकी स्थैर्यक और प्रतिकारक असरसे चलन समान होता है उनकी ज्यादह जोरदार क्रिया रुक जाती है और इससे शीघ्र तथा तात्कालिक स्थिरीकरण हो सकता है।

लिस्टिंग के नियमानुसार नेत्रोंका चलन प्राथमिक स्थानसे शुरू होकर लिस्टिंगके समतलमेंके अक्षके इर्दगिर्द होता है। पार्श्विक सरल स्नायुओंकी अक्षरेषा इस समतलमें खडी जैसी होनेसे इन स्नायुओंसे आन्तर और बहिर चलन उपवर्तन और प्रत्यावर्तन होना काल्पनिक तौरसे संभवनीय होगा। यह मालूम है कि ऊर्ध्व और अधो सरल चालनी स्नायुओंसे आन्तर चलन और वक्रस्नायुओंसे बहिरचलन होता है, और कोनसे ही पार्श्विक चलनमें इन स्नायुओंका कार्य इस तरहसे होता है कि उनकी विरोधी क्रियाओं चलन ऊपर, और नीचेकी ओरका, तथा आन्तर और बहिर विवर्तन, पारस्परिकसे बेनासिर होती है।

अन्य स्नायुओंके संबंधमे कार्योंकी जोड होना महत्वकी बात होती है। इन स्नायुओंके विवर्तन के अक्ष **लिस्टिंग** के समतल के बाहर होनेसे उनकी सब क्रियाओमें उनकी ठीक ठीक जोड करना जरूरी होता हैं जिससे लब्धिफल की क्रिया—परिणामी फल—एक ही समतल में होगी। यानी सब मिसालोमे, च्यूं कि विवर्तन की क्रिया नहीं होती, एक स्नायुका विवर्तक भाग दूसरे स्नायुके विवर्तक भागसे बेनासिर हो ज़ाता है। ऊपर उठानेकी क्रिया एक ही अक्षमें होना जरूरी है, और यह चलन होनेके लिये ऊर्ध्व और अधो सरल चालक स्नायु तथा दोनों वक्र स्नायुओं के कार्यका जोड इस तरहसे होना चाहिये कि खडी और सामनेसे पीछे जानेवाली अक्ष के भाग संबंधीके कार्य पारस्परिकसे बेनासिर हो कर आडी अक्षके इर्दगिर्दके भागों की जोड होवें।

सारिणी २७ मे नेत्रके असली स्थानके प्रत्यक्ष सहकारी और विरोधी स्नायुओंका सारांश दिया है।

सारिणी २७

	सहकारी स्नायु	विरोधी स्नायु
आन्तर सरल चालनी	ऊर्ध्व सरल चालनी	बाह्य सरल चालनी
	अधो सरल चालनी	ऊर्ध्व वक्र चालनी
		अधो वक्र चालनी
बाह्य सरल चालनी	ऊर्ध्व वक्र चालनी	आन्तर सरल चालनी
	अधो वक्र चालनी	ऊर्ध्व सरल चालनी
		अधो सरल चालनी
ऊर्ध्व सरल चालनी	अधो वक्र चालनी	अधो सरल चालनी
	आन्तर सरल चालनी	ऊर्ध्व वक्र चालनी
अधो सरल चालनी	ऊर्ध्व वक्र चालनी	ऊर्ध्व सरल चालनी
	आन्तर सरल चालनी	अधो वक्र चालनी
ऊर्ध्व वक्र चालनी	अधो सरल चालनी	अधो वक्र चालनी
	बाह्य सरल चालनी	ऊर्ध्व सरल चालनी
अधो वक्र चालनी	ऊर्ध्व सरल चालनी	ऊर्ध्व वक्र चालनी
	बाह्य सरल चालनी	अधो सरल चालनी

· वक्र विवर्तनमें प्रत्यक्ष सहकारी कार्यके सिवा अन्य बहुत मिलाफ और विरोधी तौरके कार्य होते हैं। और नेत्रोंके स्थानमें इस तरहसे फर्क होता है कि नेत्रगोलक के संबंधमें स्नायुओंका समतल बदल जाता है, मसलन जब एक स्नायुका चलन उसकी असली कार्य जैसा शुरू होकर उसकी महत्तम कार्यके बिन्दुतक पहुंच जाता है तब उस बिन्दुके पार उस स्नायुका कार्य सहकारी स्नायु जैसा होता है।

भिन्न भिन्न स्नायुओंका पूर्ण सहकार होनेके लिये जो उनका भाग होता है उसके प्रमाणमें फर्क होता है। ऐसा समझो की अधो सरल चालनी स्नायु अकेला अपना कार्य करता है। उसके महत्तम संकुचनमें उसकी अक्षरेषाके इर्दगिर्द उसका जो विवर्तन होता है उसके दो भाग होते हैं: एक भागसे उसके अक्षके इर्दगिर्द नेत्रका नीचेकी ओरको विवर्तन होता है, और दूसरे भागसे सामनेसे पीछेकी ओरको जानेवाले अक्षके इर्दगिर्द बाह्य विवर्तन होता है। इस बाह्य विवर्तन की प्रतिपूरति करनेके लिये उसके सम और व्युत्क्रम प्रमाणमें आन्तर विवर्तन होना जरूरी है, और यह पूरति ऊर्ध्व वक्र स्नायुके संकुचनसे हो सकति है। इससे नीचके चलनको परिपूरक भाग मिलता है। नेत्रके इस नीचेके कुल चलनमे दोनों स्नायुओंका कार्य होता है और इसमें बहुतसा हिस्सा ऊर्ध्व वक्र स्नायुका होता है। ख्यालमें रखना कि इससे अनुमान कर सकते है कि आन्तर चलनमें ऊर्ध्व सरल और अधो वक्र स्नायु साथ कार्य करनेसे नेत्र साफ ऊपर की ओरको नहीं बल्कि ऊपर और भीतर की ओरको जायेगा; इसमें सरल स्नायुके आन्तर चलनको वक्र स्नायुके बाह्य चलन की क्रियासे विरोध नहीं होता।

द्विनेत्रीय चलन

(अ) स्वेच्छिक चलन

अभितक एक नेत्रके चलन का विचार किया, लेकिन नैसर्गिक अवस्थामें सब चलनों का दोनों नेत्रोंमें सम समान बटाव होनेसे दोनों ऐकिक जैसे कार्य करते हैं। द्विनेत्रीय चलनोंका उनकी स्थैर्य रेषाऐं समानान्तर है या नहीं इसके अनुसार, दो वर्ग कर सकते हैं। पहले वर्गमें जब स्थैर्य रेषाऐं समानान्तर होती है, दोनों नेत्रोंके चलन सब अवस्थामें समसमान होते हैं और इनको **सहचरित चलन** कहते हैं: जब स्थैर्य रेषाऐं समानान्तर की अवस्थामें नहीं होती जैसे की नेत्रोंकी एककेन्द्राभिमुखता या अपसरण तब उस अवस्था को **विभिन्न चलन** कहते हैं।

(१) स्वेच्छिक चलनोंका नियंत्रण

(अ) सहचरित चलन

हर नेत्रकी सहकारी काम करनेवाली स्नायुओंकी जोडी होती है इतना ही नहीं बल्कि दोनों नेत्रोंका समानान्तर चलन का चालक तंत्र इस ऐकिकी तौरसे करता है जैसा कि दोनो का मध्यवर्ती एक ही इन्द्रिय होता है; बाये नेत्र के आन्तर चलनके स्नायु दाहिने नेत्र के बाह्य चालक स्नायुओंके साथ इस तरहसे कार्य करते है कि दोनों का दाहिने बाजुका एक ही तंत्र होता है और इसी तौरसे दाहिने और बाये नेत्रके ये स्नायुकार्य करते हैं। ऊपर

की और नीचेकी ओर को घुमने की क्रिया एक साथ होती है। स्वेच्छिक चलन का नियंत्रण करनेके लिये सहचरित स्नायविक विभाजन होता है जिससे असलमें नीचे की स्नायुओंकी जोडीओका और उनके साथ उनकी उपजोडी का भी नियंत्रण होता है।

१. बाजूकी तरफ का— पार्श्विक चलन	(अ) दक्षिणावर्तक (दाहिने ओर चलन)	• दाहिना बाह्य सरल, बाया आन्तर सरल
	(ब) वामा वर्तक (बाया चलन)	• दाहिना आन्तर सरल, बाया बाह्य सरल
२. ऊर्ध्व चलन	(अ) उर्ध्व वाहक	दा. बा. ऊर्ध्व सरल और अधो वक्र
	(ब) अवनमनकारी	दा. बा. अधो सरल और ऊर्ध्ववक्र
३. वक्र चलन	(अ) ऊपर और दाहिने ओर	बा. ऊर्ध्व सरल; दाहिना अधोवक्र
	(ब) ऊपर और बाये ओर	दा. ऊर्ध्व सरल बाया अधोवक्र
	(क) अधो और दाहिने ओर	बा. अधो सरल दाहिना ऊर्ध्व वक्र
	(ड) अधो और बाये ओर	दा. अधो सरल, बा. ऊर्ध्व वक्र

इन चलनों के परस्परानुकूल कार्य का नियंत्रण करनेवाला मस्तिष्कीय केन्द्र का स्थान ललाटीय खंडके दूसरे ललाटीय चक्रांग के पिछले भागमें होता है। इस को उत्तेजित करने से दूसरे ओरको सहचरित च्यवन होता है, और इसका नाश होनेसे सहचरित चलन का भ्रंश होता है लेकिन वैयक्तिक स्नायुका खास कार्य कायम रहता है और द्विधा दर्शन नहीं होता। शरीरके चालक स्नायविक विभाजन के नियंत्रण जैसा मस्तिष्क का एक भाग दूसरे ओरके इन विरुद्ध पार्श्विक स्नायुओंके कार्यका नियंत्रण करता है।

(ब) विभिन्न चलन

एककेन्द्राभिमुखताके सब चलनमें, जो नेत्रोंके आन्तर सरल स्नायुओंके संकुचनसे होता है, दोनों नेत्रोकी चाक्षुष अक्षरेषाओंको अन्दरकी ओरके चलनका प्रमाण बराबर होता है जब स्थैर्यक बिन्दु मध्यरेषापर होता है और इस चलनके साथ नेत्रोंका कुछ थोडे प्रमाणमें बाह्य गरगरना दिखाई देता है। दोनोंके खडे अक्ष बाहरकी ओरको झुकते है। जब निकट बिन्दु एक नेत्रके स्थैर्यक रेषापर होता है तब यह नेत्र स्थिर भासमान होता है और दूसरा नेत्र इस बिन्दुके ओरको कुछ कोण करके घुमा है ऐसा मालूम होगा। लेकिन भासमान स्थिर नेत्रमें लंबककी गति जैसी इधर उधर चलन बाजे वक्त होता रहता है और दृक्संधान व्यापार और कनीनिका संकुचनमें की सहचरित कार्योंमें दोनो नेत्रोमें समान बाह्य गरगरना दिखाई पडनेसे कल्पना करते हैं कि दोनों नेत्रोंमें समान प्रतिक्रिया होती है।

२ स्नायुओंके स्वेच्छिक चलनकी मर्यादा

(अ) सहचरित चलन

नेत्रमेंके कमसे कम कोनका प्रमाण ५′ से १०′ होता है ऐसा मालूम हुआ है। भिन्न भिन्न दिशामे स्थैर्यक रेषाकी ज्यादहसे ज्यादा घुमने की मर्यादासे स्थैर्यक क्षेत्रका विस्तार तयार होता है। इसके नापनेकी अनेक पद्धतीया होती है जिसके दो वर्ग, वस्तुगत और आत्मगत पद्धति, होते हैं।

(१) **वस्तुगत पद्धति** पेरिमिटर यंत्रसे करते हैं (पन्हा ११७ देखिये)।

(२) **आत्मगत पद्धतिमें** भी पेरिमिटरका इस्तेमाल हो सकता है। इसमे बारिक हरुफोकी कसौटीका इस्तेमाल करते है; केन्द्रस्थ दृष्टिकी मर्यादाके बाह्य हरूफ अस्पष्ट दिखाई पडनेके स्थानसे स्थैर्यक रेषाके चलनकी मर्यादा का नाप होता है।

मालूम हुआ है कि नैसर्गीक मनुष्यमे भी स्थैर्य क्षेत्रकी मर्यादामे फर्क दिखाई पडते हैं; न्हस्व दृष्टिवाले मनुष्यमें साधारणतया यह क्षेत्र छोटा होता है मुख्यतः उसके आडे अक्षमें। पेरिमिटरके कंसके नापनसे क्षेत्रके आकारकी मर्यादा साधारणतया वर्तुलाकार दिखाई देती है इसका विस्तार प्रायमिक स्थानमें स्थैर्यबिन्दुसे ४५° से ५०° इतना होता है, तो भी ऊपरकी ओर थोडा कम और अन्दरकी ओर ज्यादा विस्तार दिखाई पडता है; नीचेकी ओरका विस्तार सबसे ज्यादा (५५° से ६०°) दिखाई पडता है। द्विनेत्रीय क्षेत्रविस्तार बहुत छोटा होता है।

साधारण स्वेच्छिक चलनमें स्थैर्यक रेषाकी दिशामें नेत्रोंके चलनसे फर्क होता है इतनाही नहीं बल्कि सिरके चलनका भी इसपर असर होता है। सिरको हिलानेसे चलनका विस्तार बढ जाता है, इसीको राथ पंडितने **व्यावहारिक स्थैर्यक क्षेत्र मर्यादा** कहा है।

(ब) विभिन्न चलन

जब दूरीके पदार्थकी ओर देखते है तब दोनों दृष्टिस्थान केन्द्रोपर प्रकाश गिरे इसलिये दोनों नेत्र सामनेकी ओर सरलसे साधारणतया रोखे जाते हैं; लेकिन जब नजदीकका पदार्थ देखना होता है तब दोनों नेत्रोंकी अक्षरेषाअें पदार्थपर गिरनेके लिये दोनों नेत्र अन्दरकी ओरको घूमाना जरूरी होती है। अर्थात यह क्रिया कुछ मर्यादा तक संभव होती है: ऐसा एक बिन्दु आखिरमें नेत्रमें होता है जिस पर दोनों नेत्र केन्द्रित नहीं होते और द्विधादर्शन पैदा होता है और स्थिर रखनेकी कोशिश कायम न रहनेसे नेत्रोंका बाहरकी ओरको च्यवन होता है। नैसर्गिक अवस्थामें एककेन्द्राभिमुखताका ज्यादहसे ज्यादह नजदीकका स्थान—विकट बिन्दुका स्थान ८ से. मि. मानते है; इन शब्दप्रयोगोंका ज्यादह वर्णन अध्याय १३ पन्हा ४१९ में देखिये।

(३) नेत्रस्नायुओंके स्वेच्छिक चलनोंका विश्लेषण

इन चलनोंका विश्लेषण तीन तरहका होता है: (अ) स्वेच्छिक स्थैर्यक क्रियामें शीघ्रचलन ; (ब) स्वेच्छिक मंदचलन; (क) पढना या लिखनेकी क्रियामें के भिन्न स्वेच्छिक चलन।

(अ) स्वेच्छिक स्थैर्यक क्रियामेंके शीघ्रचलन

एक स्थैर्यबिन्दुओसे दूसरे स्थैर्य बिन्दुओकी ओर होनेवाले नेत्रोंका चलन सादे तौरका

नहीं होता । अिसका विश्लेषण बहुतसे संशोधकोनें किया है जैसे कि नेत्रोंके नापन की अनेक पद्धतिसे दूरदर्शनयंत्र–दूरबीन, फोटो उतारनेकी पद्धति और नेत्रके चलनके लेख-चित्रण पद्धतिसे किया गया है। स्थैर्यक के दो बिन्दुओंमे चलन सरल रेखामें नहीं बल्कि अनियमित वर्तुलकी रेषा जैसा होता है। (कहें तो कह सकते है कि यह चलन लेखन चित्रण हिंदुस्थानके नकशाके आकार जैसा दिखाई पडेगा; स्थैर्यक क्रिया आसाममें शुरू होकर कन्याकुमारीतक होकर कराचीसे काश्मीर और हिमालयसे आसाममें जा पहुचेंगी ।) आडे समतलमें की रेषाओंको आसानसे और प्रत्यक्ष तौरसे अनुसरते है और इसमे कोनीक दिशाके फर्क कम दिखाई पडते है। अर्थात नेत्रके सब चलनोंको सरके चलनोंकी मदत काफी तौरकी होती है यह ख्यालमें रखना ।

(ब) मंद चलन

नेत्रके मंद और सरकनेवाले चलनका दृश्य जब नेत्र वर्तुलाकार सिडी परसे धीरे धीरे चलनेवाले मनुष्यपर या सरकनेवाले वस्तुपर स्थिर किये जाते है तब दिखाई पडता है **(अनुसरित चलन)** । इसमें नेत्रका चलन साधारणतया नियमित होता है उसके मार्गमें बीचमें अनेक तरंगोसे रुकावट होती है। लेकिन जब नेत्र मंद और समान गतिसे चलते स्थैर्य ब्रिन्दुपर स्थिर किये विना घुमानेकी कोशिष की जाती है इन अनियामित तरंगोका झटकेदार विघटित गतिमे रूपान्तर होकर वक्र सिडीके आकारका चलन (साक्याडिक मूव्ह-मेन्ट) होता है जिसमें छोटेसे विरामके पश्चाद झटकेसे आगे चलन होता है। बच्चोंमें सरक-नेका चलन नहीं होता उनमे अनुसरित साक्यडिक चलन होता है।

(क) पढनेका मिश्र चलन

ऐसी कल्पना करना संभव है कि लिखने पढनेमें नेत्र मंदगतिसे और सतत रेषाओंपर पीछे और सामने चलते है लेकिन ख्यालमे रखना कि ऐसा चलन नहीं होता यह बात **जव्हाल** पंडितने सिद्ध की थी है (१८७८–७९) । नेत्र सामने शीघ्र और छोटे झटकेसे (.साक्याडिक चलनसे) सामने बढते जाते हैं, हर बढनेके बाद **स्थैर्यक विराम** (फिक्सेशन

चि.नं.३५१ **पढनेमें नत्रो का चलन**

नागमोडी रेषा नीचेसे ऊपर का और बांयी ओरसे दाहनी ओरको पढना; टूटी हुई रेषामेंकी, जो ऊपरकी और दाहिने ओरको झुकी होती है, बीचमें की खडी रेषा स्थैर्यक क्रियाके विराम स्थान होते हैं। सरल आडी रेषा नेत्र जब एक रेषा को पढकर दूसरी पढनेको पीछे जाता है वह क्रिया बतलाया हैं।

पाज) होता है जिसमे वे सापेक्षतासे स्थिर रहते हैं जब सिर्फ सूक्ष्म स्थैर्यक कंपगति होती है; एक रेषाके अन्तसे दूसरी रेषाके उगमको जब वे पीछे घुमते है तब चलन नियमित और

अखंडित होता है (चित्र नं. ३५१)। इसमें दृगाक्ष हमेशाह समानान्तर नहीं रहते क्योंकि स्थिरीकरणमें केन्द्रभूत होकर उसके बाद उनका च्यवन होता है। सामने और पीछेका चलन आडे समतलमे होता है; यह चलन नेत्रका स्वाभाविक होता है।

४ ऐच्छिक चलनका वेग

नेत्रस्नायुओंकी गतिका प्रमाण की नोंद पहले (१८६९) **लामानस्किने,** पश्चाद प्रतिमाओंकी सहायतासे कियी थीं। इससे मालूम हुआ कि गतिका वेग बहुत तेजीका होता है, आडे चलन बहुत शीघ्रतासे और खडे चलन अति मंद होते है। एककेन्द्राभिमुखताके चलन, आडे अक्षमेके चलनसे जिनमें अक्ष समानान्तर होते हैं मंद होते है एककेन्द्राभिमुखताका चलन च्यवन के चलनसे शीघ्र होता है। गति ज्यादह शीघ्र होती है यदि स्थैर्य बिन्दुपर ध्यान लगाया हो।

(ब) प्रत्यावर्तित चलन

नेत्रके अनैच्छिक प्रत्यावर्तित चलन इसका विस्तृत अर्थमें उपयोग करे तो दो वर्ग होते है : (१) जो चलन अनैच्छिक तौरसे होते है लेकिन जिसमें सावधानीका भी भाग होता है; (२) सच्चे परिवर्तित चलन जिसपर अधो मस्तिष्कके तलका हिस्सा होता है। पहले वर्गमें, नेत्रके स्थिरीकरणके प्रत्यावर्तित चलनोका, तथा (प्रतिमाओंका) एकत्रिकरणके लिये सुधार करनेके चलनोंका विचार करेंगे : इन चलनोंका **मनो (मानसिक) चाक्षुष प्रत्यावर्तन** कह सकते है। दूसरे वर्गमें **आसन संबंधीके प्रत्यावर्तनका** तालुक कर्णसंपुष्ट और ग्रैवेयक स्नायुओंसे होता है।

(१) मानस–मनो–चाक्षुष प्रत्यावर्तन

(अ) नेत्रके स्थिरीकरणके प्रत्यावर्तन

जब प्रकाश उत्तेजक दृष्टिपटलके परिधि भागपर गिरता है और जिसका ज्ञान होता है तब नेत्रोंका प्रत्यावर्तन चलन इस तरहसे होता है कि प्रतिमा दृष्टिस्थानपर ही गिरती है। यह चलन अतिशीघ्रतासे होता है और इसका गुण नेत्रोंके स्थिरीकरणके समान होता है; और यही दृश्य लक्ष्योल्लंघन होकर जब छोटेसे सुधारके चलन होते है उसमे दिखाई देता है इस प्रतिक्रियाका विकास बिलकुल बाल दशामें यानी बालक जब थोडे दिनका होता है तब दिखाई पडता है। इस प्रत्यावर्तनका केन्द्रगामी मार्ग दृष्टिपटलमें शुरूं होकर चाक्षुषपथके मार्गद्वारा मस्तिष्कके कैलकेरियन भागको जाता है; वहांसे केन्द्रत्यागी मार्ग नीचेके चाक्षुष-चालक केन्द्रोंका जाता है। इनमेसे चाक्षुष सुधारके प्रत्यावर्तनमे मस्तिष्कीय कार्यका हिस्सा होता है इसका विवेचन आगे करेंगे। चाक्षुष प्रतीति संबंधीके इसके महत्वका विचार पहले ही किया है (पन्हा ६०९ देखिये)

इस प्रत्यावर्तित चलनका निदर्शन **चाक्षुष गत्यात्मक नेत्रकंपसे विभ्रमसे (चलते गाडीमेंका नेत्रकंप)** हो सकता है। यदि दृक्क्षेत्रमें नेत्रोके सामनेसे चलते पदार्थोंकी श्रेणी चलती जाय तो नेत्र पहले एक पदार्थपर स्थिर होकर उसके पीछे पीछे, दूसरा पदार्थ उनके सामने दृक्क्षेत्रमें सरकने तक, जायेंगे और इस दूसरे पदार्थका बोध होते ही पहले पदार्थसे

दूसरे पदार्थपर स्थिर होंगे; इस तरहसे उत्तरोत्तर सामने आनेवाले पदार्थोंपर नेत्र स्थिर होते जायेंगे। इसमें पहले नेत्रोंका पदार्थके पीछे धीरे धीरे सरकनेका चलन होता है, दृक्क्षेत्रमें सामने दूसरा पदार्थ आते ही फौरन उसपर झटकेसे नेत्र पलट खाकर स्थिर होता है। यह अनुभव चलते गाडीमेंसे बाहरके पदार्थ देखनेमे पाया जाता है।

(ब) चाक्षुष प्रतिमाओंका एकत्रीकरणके सुधारके चलन

चाक्षुष प्रतिमाओंका एकत्रीकरणके संबंधमें जो चलन होते हैं वे मनोचाक्षुष प्रत्यावर्तन रूपके होते हैं क्योंकि इस एकत्रीकरण का बोध होना जरूरी है। इसमें यह उद्देश होता है कि दोनों नेत्रोंका दृङ्निर्णय इस तरहसे हो कि दोनों दृष्टिपटलके सहचरित बिन्दुओंका बाह्य क्षेत्रमें प्रक्षेपण एक समान जगहपर होकर द्विनेत्रीय एक दर्शनकी प्रतीति संभवनीय हो। ये चलन नेत्रोंका अप्रकटित कैंचापन विषम चलन-(स्क्विन्ट हीटरोफोरिया) अवस्थामें नैसर्गिक व्यवस्थापन रूपके होते हैं; जब नेत्रोंकी रचनात्मक या कार्यकी असममितिकी वजहसे स्थैर्यक अक्षरेषाओंका उनके वास्तविक स्थानसे च्यवन होता है या आगन्तुक उपकरणोंसे उनका स्थानान्तर किया जाता है तब यह अवस्था दिखाई पडती है।

(१) नेत्रोंका अप्रकटित कैंचापन—विषम चलन

जब प्राकृतिक विश्रामकी अवस्थामें दोनो नेत्रोंकी स्थैर्यक अक्षरेषाऐं सममिति के प्रमाणमें पारस्परिकसे समानान्तर रह सकति हैं और जिससे दृष्टिपटलोंका इसी तौर दृङ्निर्णय होता है तब उस अवस्थाको नेत्रोकी वास्तविक सरल **चलन** की अवस्थाको नेत्रस्नायुओंकी संतुलित (आरथोफोरिया) कहते है। यह अति दुर्मिळ अवस्था होती है। नेत्रकी स्नायुओंकी असंतुलित अवस्था नित्य स्वरूपकी होती है। ये अवस्थाऐं अनेक रूपकी होती हैं:—

नेत्रान्तर्गमन (ईसोफोरिया) नेत्रकी स्थैर्यक रेषाकी आन्तर च्यवनकी प्रवृत्ति।

नेत्रका बहिर्गमन (एक्सोफोरिया)—नेत्रकी स्थैर्यक रेषाकी बाह्यच्यवनकी प्रवृत्ति।

नेत्रोर्ध्वगमन (हायपरफोरिया)—एक नेत्रकी अक्षरेषाकी दूसरेकी अक्षरेषाकी ऊपरकी ओर च्यवन होनेकी प्रवृत्ति।

दोनों नेत्रोंका ऊर्ध्व गमन (डबल हायपरफोरिया—अनाफोरिया—**स्टीव्हन्स**)—दोनों अक्षरेषाकी ऊपरकी ओर च्यवन होनेकी प्रवृत्ति।

नेत्राधोगमन (हायपोफोरिया) एक नेत्रकी अक्षरेषाकी दूसरेकी अक्षरेषाकी नीचेकी ओर च्यवन होनेकी प्रवृत्ति।

दोनों **नेत्रोंका अधोगमन** (डबल हायपोफोरिया—कैटाफोरिया—**स्टीव्हन्स**) दोनों अक्षरेषाकी नीचेकी ओर च्यवन होनेकी प्रवृत्ति।

वर्तुलिक गमन (सायक्लोफोरिया—**प्राईस** डेक्लिनेशन-दिक्च्युति—**स्टीव्हन्स**) नेत्रकी स्थैर्यक रेषाकी इर्दगिर्द विवर्तन की प्रवृत्ति।

जब नेत्रमें इसमें से कोई भी एक तरहका च्यवन होता है तब द्विधादर्शनके लक्षणसे उनके एकत्रिकरणकी इच्छाको प्रत्यावर्तनसे चेतना मिलती है और इन स्नायुकी असंतुलित अवस्थाका सुधारा हो कर उस अवस्थामें नेत्र स्थिर रहते हैं; और एक नेत्रको ढाक कर या

एकके सामने मैडाक्सका राड रखकर प्रतिमाको इस तरहसे बेडौल किया जाय कि एकत्रिकरण संभवनी न होवे तो नेत्रका विपरीत चलन होकर वह पहलेकी विश्रामकी अवस्थामें घुम जाता है। इस अवस्थाका कारण, लक्षण, चिकित्सा आदि विषयोंका विचार अन्य जगह होगा।

(२) कृत्रिमतासे किये हुअे एकत्रिकरण के चलन

नेत्रोंकी स्थैर्य रेषा को कृत्रिमतासे, जैसे कि एक नेत्रके सामने कमजोर त्रिपार्श्वको रखकर उनको नैसर्गिक रेषाके बाहर किया जाय तो सुधारकातंत्र उपस्थित होकर नेत्र अपने नैसर्गिक स्थानसे इस तरहसे बाहर हो जायेंगे कि एकत्रिकरणके लिये स्थैर्यक रेषाअे योग्य दिशामेंसे जायेंगी। नेत्रके सामने त्रिपार्श्वको रखनेके समय द्विधादर्शन पैदा होता है लेकिन इसी समय प्रत्यावर्तित सुधारका चलन होकर फिरसे द्विनेत्रीय एकदर्शन होगा और उसके बाद इस अनैसर्गिक अवस्थामे नेत्रके चलनोंका विस्तार पूर्ण सहकारसे जारी रहेगा; और जब त्रिपार्श्व को निकाल लेअेंगे तो क्षणिक द्विधादर्शन होगा लेकिन दृष्टिपटलके समन्वित क्षेत्रोंका व्यवस्थापन होकर इस द्विधादर्शनका लोप हो जायेगा। इस तरहसे च्यवनका निराकरण भिन्न भिन्न दिशामें भिन्न भिन्न दिखाई देता है। इस संबंधमें अनेक शास्त्रज्ञोंने प्रयोग किये है और उनके फल भी भिन्नसे मालूम होते है। आडे समतलमें इस विषमताका प्रमाण ४°से८° तक संभवनीय होता है, यदि नेत्रोंको उपरकी ओरको घुमाया जाय तो यह फल१०° तक बढ जायेगा, ऊर्ध्व रेषामेंके ६° के च्यवनका निराकरण करना संभव होता है; अन्दरकी ओरका १२° से १३° तक च्यवनका और बाहरकी ओरके १२° से १४° तकके च्यवन का निराकरण हो सकता है, इस सुधारका बटवडा दोनों नेत्रोंमें समसमान होता है। चलन का प्रमाण साधारणतया मंद तौरका होता है और प्रत्यावर्तन क्रियाका विकासके पहले अप्रकटित कालमर्यादाका प्रमाणमे जब द्विधादर्शनका अनुभव होता है एकत्रिकरणके चलन की दिशाके अनुसार और सुधारके प्रमाणके जरूरीके अनुसार फर्क होता है। और व्यक्तिव्यक्ति में भी फर्क मालूम होता है। त्रिपार्श्वके च्यवनोंके सुधारोके कालका औसद प्रमाण बाहरकी ओरको ०·३ सेकन्द, अन्दरकी ओरको ०·८ सेकन्द, उपरकी ओरको १·१ सेकन्द, और नीचेकी ओरको २·३ सेकन्द इतना होता है (स्लेलेन १९२६)।

२ अंगस्थितिदर्शक प्रत्यावर्तन

अंगस्थिति और दिशासंबंधीके शारीरशास्त्रीय मिश्र प्रणालीका वर्णन पहले संक्षितमें किया है (पन्हा ४८५), और आद्य समग्राहक प्रणाली, जो हाथ पाव जैसे अवयव, मध्य शरीर, गर्दन की प्रेरणाओंकी बनी होती है इतनाही नहीं बल्कि श्रवणान्तर्पुट की प्रेरणाभी जिनमें जाती है जो मध्यमस्तिष्कमे केन्द्रित होती है; और इसका संकलन तथा परस्परानुकूल व्यापार लघु मस्तिष्कमें होता है।

इस प्रणाली के कार्यसिद्धिमे नेत्रके स्नायुओंके चलनमें और अंगस्थितिके बदलमें सहचर्य दिखाई पडता है और नेत्रके ब्राह्यस्नायु और श्रवणान्तर्पुटेके नैसर्गिक व्यापार संबंधीके कार्य के प्रत्यावर्तित सहसंबध जिससे अवकाशमेंके सरके चलनोंकी और ग्रैवेयक स्नायु जिनसे सरल शरीर संबंधकि चलनोंकी नोंद होती है।

अंगस्थितिदर्शक प्रत्यावर्तन जिससे प्राणि स्थाननिर्णय कर सकता है उसके **मैगनस** पंडितने (अ) **अंगस्थितिका प्रत्यावर्तन** (स्टेटिक रिफ्लेक्सेस) जो अंगस्थितिके फर्कोंसे जान सकते है और (ब) **स्थितिगत्यात्मक–प्रत्यावर्तन** (स्टेटो कायनेटिक रिफ्लेक्सेस) जो चलनके बदलमे कार्य करते हैं ऐसे दो वर्ग किये है।

(अ) अंगस्थित्यात्मक प्रत्यावर्तन

स्थित्यात्मक प्रत्यावर्तन जो अनैसर्गिक अंगस्थितिके फर्कोंसे पैदा होते हैं उनके दो वर्ग कर सकते हैं, जिसका संशोधन **मैगनस** पंडितने (१९२४ में) मस्तिष्करहित प्राणियोंपर किया था।

(i) **श्रवणान्तर्पुटके बलवर्धक प्रत्यावर्तन** (टानिक लैब्रिनथिन रिफ्लेक्सेस) जो श्रवणान्तर्पुटके कर्णसंपुट अश्मकणसे आटोलिथ इन्द्रिय उत्तेजित होनेसे पैदा होते है और जो सरके स्थानपर अवलम्बित होते है।

(२) **ग्रैवेयक बलवर्धक प्रत्यावर्तन** (टानिक नेक रिफ्लेकसेस) जो ग्रैवेयक स्नायुओंके आद्यसमग्राहक मज्जातन्तुओंके सीरेसे पाये जाते है और जो सर और धड़ संबंधीके पारस्परिक स्थानपर अवलम्बित होते हैं।

पहलेका परिशीलन गर्दनको अचल करके कोई खतरे पैदा हो वे विना कर सकते हैं; दूसरेका परिशीलन दोनों श्रवणान्तर्पुट का नाश करके (बेकाम) हो सकता है। दोनों प्रत्यावर्तनसे होनेवाले चलन पूरक तौरके होते है और नेत्रोंका ही विचार करे तो जहांतक संभव हो, चाक्षुष क्षेत्रको उसके नैसर्गिक दिक्स्थितिमें रखनेकी उनसे कोशिश होती है, और जब दोनों प्रत्यावर्तन कार्यक्षम होते है तब कुल फल दोनोंके प्रभावका बीजगणितीय जोड जैसा होता है और आखिरी नतीजा सरके सब दिशाओंमेंके चलनोंका नेत्रोंसे पूर्णतया प्रतिकारक रूपका होता है।

जिन प्राणियोंके नेत्र पार्श्वकी ओरको होते है जैसे कि खरगोश, उनमें सरके हर स्थानके साथ नेत्रोंका खास स्थान होता है। उनकी दाहिनी पार्श्व नीचेकी ओरको घुमावे तो दाहिने सरलोर्ध्व स्नायुके आकुंचनसे दाहिना नेत्र ऊपरकी ओर को घुम जाता है और बाये सरलाधोस्नायुके आकुंचनसे बाया नेत्र नीचेकी ओरको घुमता है जिससे दृष्टिपटलपरकी प्रतिमाका अवकाशमेंका स्थान वही रहता है। इसी तौरसे प्राणिको आडे अक्षपर इस तौरसे घुमावे कि उसका सर नीचे हो तो नेत्र पीछेकी और ऊपरकी ओरको घुम जाते है और उसकी सर ऊपरकी ओरको घुमावे तो नेत्र सामनेकी और नीचेकी ओर को, वक्रचालक स्नायुओंके कार्यसे, घुम जाते है। इस प्राणिको खडे अक्षके इर्दगिर्द आडे समतलमे घुमानेसे नेत्रोके स्थानमें कुछ बदल नहीं होता। यानी इन प्राणियोंमें श्रवणान्तर्पुट का ऊर्ध्व और अधो सरल तथा ऊर्ध्व और अधो वक्र स्नायुओंसे संबंध जुडा होता है लेकिन आन्तर तथा बाह्य सरल चालनी स्नायुओंसे नहीं होता। जब श्रवणान्तर्पुटका नाश करके सरको धड़पर घुमावे या सरको अचल रखकर धड़को सरके इर्दगिर्द घुमावे तो ग्रैवेयक प्रत्यावर्तनका परिशीलन हो सकता है, और मालूम हुआ है कि इसी तौरके पूरक चलन गरगरा-

नेके या पेचके सब दिशाओंमे होते हैं। इससे मालूम होगा कि ग्रैवेयक स्नायुओंके संज्ञाके आद्यसमग्राहक मज्जातन्तुओंके अन्तिम सीरेका संबंध नेत्रके सब बाह्य स्नायुओंसे होता है।

वानर जैसे श्रेष्ठ प्राणिवर्गमे, जिनके नेत्र सामनेकी ओरको स्थित होते है, यही अवस्थाएं पैदा होती है यद्यपि दिक्स्थिति के अन्तरसे स्नायुओंके संबधमें फर्क होते हैं। इनमें आन्तर और बाह्य सरल चालनी स्नायु व्हेस्टिक्युलर अन्तःकर्ण कोटरके नियमनसे स्वतंत्र होते हैं, लेकिन नेत्रके सब स्नायुपर पार्श्विक विवर्तक स्नायुओंके सहित गर्दनके आद्यसमग्राहक प्रेरणाओंका असर होता है।

मैगनस पंडितने स्थित्यात्मक प्रत्यावर्तनका ऋजुकर प्रत्यावर्तन (राइटिंग रिफ्लेक्स) ऐसा और एक वर्ग किया है जिससे प्राणि विश्रामकी—आरामकी अवस्थामें भी अपना योग्य दिङ् निर्णय करता है और उसमे कुछ खतरा पैदा हुआ हो तो उसका सुधारा करता है। इनमें ऋजुकर प्रत्यावर्तनोंका मध्यमस्तिष्क और सेतु (पान्स) मेंके केन्द्रोंसे नियमन होता है। मस्तिष्क गोलार्धोंको निकाल लेनेसे यानी जब स्वेच्छिक चलनोका लोप हो जाता है तब ये अच्छी तरहसे दिखाई पडते है। नैसर्गिक अवस्थामें इन सब प्रत्यावर्तनोकी जोड होती है एक दूसरेको पूरक होता है; इसका फल ऐसा होता है कि **चाक्षुष, श्रवणान्तर्पुट और ग्रैवेयक प्रत्यावर्तनमेंका सहसंबंधका पूर्णविकास होता है। जिसकी वजहसे चलन या आरामकी दोनों अवस्थामें और अनेक संभवनीय प्राकृतिक तौरकी सर की घड की संबंधीकी अवस्थामें बेचूक चाक्षुष दिशा और दोनों नेत्रोंका योग्य पारस्पारिक सहसंबंध निश्चित होता है।**

(ब) स्थितिगत्यात्मक प्रत्यावर्तन

तत्वतः स्थित्यात्मक प्रत्यावर्तन अनियमित दिक्स्थितिसे पाये जाते है तो स्थितिगत्यात्मक प्रत्यावर्तन चलनमें प्रारंभ, गतिवृद्धि, या रुकावट जैसे फर्कोंसे होते है : नियमित चलनसे कुछ परिणाम नहीं दिखाई देता, उसके कार्यक्षम उत्तेजकसे स्पष्ट या अस्पष्ट फर्क होते है। श्रवणान्तर्पुटकाही विचार करनेसे कह सकते है कि अंगस्थित्यात्मक प्रत्यावर्तन (ज्यादह प्रमाणमें) अश्मक—कणिका (आटोलियस) से पैदा होते हैं; स्थितिगत्यात्मक प्रत्यावर्तन अर्धवृत्तनाली (सेमिसरक्युलर कनाल) का कार्य होता है यह ज्यादा प्रमाणमें संभवनीय है, उसका उत्तेजक वलयविस्तारकट (क्रिस्टा अंपूला) पर कर्णकी लासिकाके दबावके फर्क, जो सरके चलनसे पाये जाते है, होता है। इसकी संवादि क्रिया नेत्रका अनैच्छिक **नेत्रविभ्रम निस्टागमस** जिसमें दिशामें एक गतिकी क्रमावस्था जल्द होती है और उसकी विपरीत दिशामें गतिकी क्रमावस्था मंद होती है। अंगस्थित्यात्मक प्रत्यावर्तन जैसा स्थितिगत्यात्मक प्रत्यावर्तन की चलनोंका उद्देश चाक्षुष क्षेत्रमें नेत्रोंका स्थान जितना संभव हो उतने ज्यादह समयतक कायम रखना यह होता है; यह कार्य जो गति मंद होती है उससे होता है, और इसके बाद पीछेकी शीघ्र झटकेकी गति संशोधन रूपकी होती है जिसका नेत्रोंसे आकलन नहीं होता। इसको ख्यालमें रखना कि बाहरकी दिशाको होनेवाला मंद चलन पूरक तौरका होता है और कार्यकी दृष्टिसे विचार करे तो यह महत्त्वकी बात होती है।

अन्तःकर्णकोटरजनित अनैच्छिक नेत्रविभ्रम (व्हेस्टिक्युलर निस्टागमस)

अनैच्छिक नेत्रविभ्रम यह निश्चित तौरसे समतुलित चलन जैसा होता है जिसमें दोनों नेत्रोंका चलन समकालिक और समविस्तारमें होता है। इसमें कुछ स्नायुओंका आकुंचन होता है इतनाही नहीं बल्कि उनके विरोधी स्नायुओंकी व्यवस्थित शिथिलता जिनको पारस्परिक स्नायविक विभाजन होता है, होती है। पारस्परिक स्नायविक विभाजनका सबूत यह होता है कि नेत्रके बाह्य स्नायुओंका भ्रंश होते ही नेत्रविभ्रम कायम रहता है। इसके तंत्र का बराबर पता नहीं लगा है; लेकिन संभव है कि आडी अर्धवृत्त नालीसे आडा नेत्रविभ्रम, पिछली खडीवृत्त नालीसे खडा नेत्रविभ्रम और ऊर्ध्व खडीवृत्त नालीसे विवर्तनदार—गरगरानादार—नेत्रविभ्रम होता है।

सही या यथार्थ व्यूह तंत्र कुछ भी हो इतना मालूम हुआ है कि हर श्रवणसंपुटसे हर नेत्रके सब स्नायुओंका संबंध होता है। शारीरशास्त्रीय नापनसे मालूम होता है कि नेत्रोंके प्राथमिक स्थानमे ऊर्ध्व और अधो सरल स्नायुओंका स्नायुसमतल दूसरी ओरके पिछली खडी अर्धवृत्त नालीसे समानान्तर होता है और वक्र स्नायुओंका समतल दूसरी ओरके सामनेकी खडी अर्धवृत्त नालीसे समानान्तर होता है,और बाह्य और आन्तर सरल स्नायुओंके समतलसे बाह्य वृत्तीसे १४५° से १५०° का कोण होता है। अंगास्थित्यात्मक प्रत्यावर्तनसे सरके हर स्थानके अनुसार नेत्रोंका विवक्षित स्थान होता है लेकिन श्रवणान्तर्पुटका सरकेसंबंधीका स्थान कायम रहता है; इससे अनुमान कर सकते है कि हर नाली और हर स्नायुके सापेक्ष स्थानमें फर्क होता है। यदि हर नालीका संबंध खास स्नायुसे हो तो नालीके भिन्न भिन्न स्थानोंके उत्तेजनसे अनैच्छिक नेत्रविभ्रम पैदा होगा जिसके दिशामें फर्क होगा; लेकिन यह मालूम हुआ है कि यदि एक आडी नालीके जैसी नालीको उत्तेजित किया जाय तो नेत्रोंके भिन्न भिन्न स्थानोंमेंका पैदा होनेवाला **नेत्रविभ्रम,** वह किसी भी स्नायुके उत्तेजनसे पैदा हुआ हो, हमेशा आडा जैसा दिखाई पडता है। इससे अनुमान होता है कि कोनसेही स्नायुसे कार्य हो उनका मध्यमस्तिष्कसे परस्परानुकूल कार्य होता है।

इस उत्तेजकका आखिरी नतीजा यह होता है कि नेत्रोंका, जिस दिशामे सर घुमाया हो उसके विपरीत दिशामे, मंद एक सरीखा चलन होता है। अन्तरकर्णकोटर जनित इस प्राथमिक चलनके बाद दूसरी झटकेदार यकायक चलन पीछेकी ओरको होता है जो अनैच्छिक तोरका और स्थैर्यक अवस्था कायम रखनेके लिये होता है। दोनों नेत्रोंका चलन समकालिक और एक सरीखा होता है यह साधारण नियम है, लेकिन कभी कभी एक नेत्रके एक ओरको कृत्रिम उत्तेजन लगानेसे उसी ओरका चलन दूसरे नेत्रकी अपेक्षा ज्यादह होता है। दोनों नेत्रोंके इस चलनके फर्कोंसे द्विधादर्शन या घुमरी (व्हरटायगो)आनेका संभव होता है। बाहरकी ओरका यह मंद चलन, पीछेकी ओरका शीघ्रगतिका चलन नहीं,महत्वकी और निर्धारक बात होती है और यह असली श्रवणान्तरपुटसे पैदा होती है।

नेत्रविभ्रमके कामयाब मध्यमस्तिष्कीय नियामक व्यूह संबंधमें अनेक कल्पनायें की गयी है लेकिन कुछ निश्चित नहीं हुआ है। लेकिन यह निश्चित हुआ है कि नेत्रविभ्रममेंकी बाहरके ओरका मंद चलन प्रान्तिक स्थान जनित यानी श्रवणान्तर्पुटसे होता है, पीछेकी

ओरके झटकेदार चलन संबंधीके व्यूहका कुछ निर्णय नहीं हुआ है। एक कल्पना ऐसी है कि **सेतुमेंके गेझिग सेंटरसे** इसका संबंध होता है; दूसरी कल्पना ऐसी की यी है कि इसका संबंध मस्तिष्क बाह्य पृष्ठसे होता है कि क्योंकि सून बहरीकी अवस्थामे इसका लोप दिखाई देता है; और एक कल्पना ऐसी है कि लघुमास्तिष्कके एक ओरके भागको निकाल लेनेसे उस दिशामे नेत्रविभ्रम की गति ज्यादह होनेसे इसका कुछ संबंध होता होगा। और भी अनेक कल्पनाऐं है। इससे कह सकते हैं कि नेत्रविभ्रम यह शुद्ध प्रत्यावर्तन क्रिया होती है; इसका व्यूह श्रवगान्तर्पुटसे केन्द्रगामी मज्जापथ विवक्षित स्नायुके मज्जाकेन्द्रको जाता है और वहांसे केन्द्रत्यागी चालक मज्जापथ निकलता है इस तरहका होता है; इसपर प्रेरणाओंका कुल असर नहीं होता।

आन्तरकर्णकोटर जनित नेत्रविभ्रम प्राकृतिक, विकृतिजन्य और प्रयोग की अवस्था जैसी अनेक अवस्थाओंसे पैदा होता है जिसमे श्रवणान्तर्पुट उत्तेजित होता होगा या उसका नाश होता होगा।

(अ) श्रवणान्तार्पुटोंके उत्तेजनसे पैदा होनेवाले नेत्रविभ्रम के प्रकार निम्न जैसे हैं:

(१) **विवर्तक नेत्रविभ्रम** जिसमें सरके चलनसे अर्धवृत्त नालीयां उत्तेजित होती है।

(२) **तापग्राही**—तापजनक (थरमल—कलोरिक) **नेत्रविभ्रम** जो ताप या ठंडी से उत्तेजित होता है।

(३) **दबावजन्य नेत्रविभ्रम** जो श्रवणान्तार्पुटमेंके जलके दबावका या मध्यकर्ण में की हवा का बढानेसे या कम करनेसे उत्तेजित होता है। (४) **विद्युतप्रवाह संबंधीका नेत्रविभ्रम** जो चल विद्युत से उत्तेजित होता है।

(क) श्रवणान्तर्पुट या उसके सहचरित मार्गोंके नाश से पैदा होनेवाला नेत्रविभ्रम

(अ) श्रवणान्तर्पुटोंके उत्तेजनसे पैदा होनेवाला नेत्रविभ्रम

(१) विवर्तक नेत्रविभ्रम

कोनसे ही अक्ष की ओरको सर को घुमानेसे नेत्रविभ्रम पैदा होता है। लेकीन ख्यालमें रखना कि इसका असली कारण गति नहीं होता बल्कि गतिमेंका बदल होता है। यह विवर्तन मनुष्य खुद करनेसे होगा या उसको घुमति खुर्सीपर बिठानेसे निष्क्रिय तौरका होगा।नेत्रके चलन हमेशा विवर्तन के समतलमें होते है: खडी अक्षरेषाके इर्द गिर्द परिभ्रमण करनेसे आडी अक्षरेषामें नेत्रविभ्रम पैदा होता है जब सरको सामने की ओरको ३०° डिग्रीके कोणमेसे झुकाया होता है जिसकी वजहसे बाह्य अर्धवृत्त नाली जो सरके खडी अवस्थामें पीछे और नीचे की ओर को ढली रहति है अब आडे समतल में होती है। यदि सर को खंदेसे ९०° डिग्री कोण करे इतना झुकावे कि (सामनेसे पीछे जानेवाली) मध्य सीमन्त समतल झुक जावे जिससे खडी अर्धवृत्त नालीपर असर होकर खडी अक्ष रेषामें खडा नेत्र विभ्रम होगा: बीचके सब स्थानमें नेत्रविभ्रम की दिशा तिरछी होती है। आखिरमें यदि सर को सामनेकी ओरको इतना घुमानेकी ललाटीय समतल घुम जाता है और सामनेकी पार्श्वीय अर्धवृत्त नाली पर असर होकर विवर्तक नेत्रच्छद पैदा देता है। विवर्तन का दृक्प्रत्यक्ष दृष्टि के असर बिना देखना हो तो नेत्रोंके नेत्रच्छदोंको बंद रखकर उनके ऊपरसे नेत्रविभ्रम का

चलन उंगली नेत्रच्छदोंपर रखकर स्पर्शनद्वारा परीक्षा कर सकते है। नेत्रविभ्रम के चलनोंका प्रमाण विवर्तन के प्रमाण पर अवलम्बित रहता है, ज्यादहसे ज्यादह प्रमाण २ सेकन्दोंमें १० परिभ्रमण ऐसा होता है। नेत्रविभ्रम के साथसाथ कभी कभी सरका भी विभ्रम दिखाई देता है। **पश्चाद् नेत्रविभ्रम–दुय्यम नेत्रविभ्रम** का हक् प्रत्यक्ष विवर्तन को यकायक रोकनेसे पैदा होता है; इसकी वजह यह होती है कि सर अचल हुआ हो तोभी श्रवणान्तर्पुट के जल की निश्चलतामेंका भ्रमण चालू रहता है।

(२) **तापजनक नेत्रविभ्रमः** कानमे ठन्डा पानि (२२° से २७° सेन्टी) या गरम पानि (४०°से ४५° सेन्टी) डालनेसे जोरदार नेत्रविभ्रम के चलन पाये जाते हैं। जब ठन्डा पानि डाला जाता है तब मंदगतिकी क्रमावस्था पानि डाले हुए कान की ओरको और गरम पानिसे उसके विपरीत ओरको होती है। इस संबंधमें भी अनेक कल्पनाअें कीयी गयी है; इनमेंकी तीन ज्यादह प्रचलित है। (अ) तापमें फर्क करनेसे श्रवणान्तर्पुटके जलमें तापद प्रवाह शुरूं होता है (ब) यह कल्पना ऐसी है कि तापसे श्रवणान्तर्पुट प्रत्यक्ष उत्तेजित होता है और ठन्डकसे उसका अवरोध होता है। (क) ताप और ठन्डक से रक्तवाहिनीयों के चालक तंत्र की संवादि प्रतिक्रिया काबिल होती हैः पहलेसे अन्तर्लसीकाका दबाव बढ जाता होगा और दूसरेसे कम होता होगा।

(३) **दबावजन्य नेत्रविभ्रम :** यह नेत्रविभ्रम अर्धवृत्तनालीओमेंके एक ओरके दबावमें फर्क होनेसे पाया जाता है यह दबावमेंका फर्क नालीमें पिपैट मैनामिटरको घुसाकर प्रत्यक्ष बढाया हो, या कर्णमें का चक्र अस्थि (स्टेपीज) गतिमान हो तो, मध्य कर्ण में हवा डालकर उसमें अप्रत्यक्ष तौरसे दबावमें फर्क किया हो। नेत्रविभ्रम दबाव बढाये हुअे ओरको होता है और दबावको घटानेसे दूसरी ओरको होता है।

(४) **विद्युत प्रवाहजन्य नेत्रविभ्रम :** श्रवणान्तर्पुटको विद्युतसे उत्तेजित करनेसे यह नेत्रविभ्रम पाया जाता है।

(ब) श्रवणान्तर्पुटकी विकृति या उसके नाशसे होनेवाला नेत्रविभ्रम

यह मालूम हुआ है कि आन्तर कर्णकोटरका पूरा या आंशिक नाश होनेसे नेत्रविभ्रम पैदा होता है। इस विषयपर पहले प्रयोग कबूतरपर (**फ्लुरेन्सने १८२४–३०**) किये थे। उनके बाद अनेक शास्त्रज्ञोंने खरगोश, कुत्ता, बिलाडी और वानर जैसे प्राणियोपर प्रयोग किये है। दोनों श्रवणान्तर्पुटपर शस्त्रक्रिया करनेके बाद सरका लंबक जैसा दोलन और नेत्रविभ्रम पैदा होता है जिसका कुछ दिनके बाद लोप होता है। एक ओरके श्रवणान्तर्पुटकी शस्त्र क्रियासे सर और नेत्रोंका उसी ओरको च्यवन होता है और नेत्रविभ्रम होता है जिसकी मंद क्रमावस्था उसी ओरको दिखाई देती है, कुछ दिनके बाद यह अवस्था आहिस्ते आहिस्तेसे कम होकर नेत्रविभ्रम ही अदृश्य होता है। एक श्रवणान्तर्पुटका नाश करनेके बाद थोडे समयसे दूसरेको ही निकाले डालनेसे दूसरी शस्त्रक्रियासे सरका विवर्तन, नेत्रोंका च्यवन और नेत्रविभ्रम उसी तौरका और उसी दिशामें होता है जैसे कि पहलेकी शस्त्रक्रिया नहीं की गयी थी।

श्रवणान्तर्पुट का यांत्रिक तौरसे नाश करनेसे नेत्रविभ्रम पैदा होता है इतनाही नहीं लेकिन कोकेनके (मध्यकर्णमें) अन्तःक्षेपणसे भ्रंश पैदा करनेसे यही दृश्य दिखाई देता है।

दिलचस्पीकी बात यह होती है कि श्रवणान्तर्पुटके उत्तेजनसे पैदा हुअे नेत्रविभ्रमकी दिशा सरके स्थानको बदलनेसे व्युत्क्रम होती है; यह दृश्य अंशिक नेत्रविभ्रममें नहीं दिखाई देती।

नेत्रविभ्रम

नेत्राविभ्रममें नेत्रोंके अनैच्छिक चलन दोलित रूपके होते हैं। इन चलनोंका प्राकृतिक प्रत्यावर्तन रूपका विवेचन पहले किया है (पन्हा ७२२) जब बताया गया था कि इनमे पूर्णतया सहचरित कार्य दिखाई पडता है और जिसमें विरोधी स्नायुओंकी पारस्परिकमे कार्य होता है। इन स्नायुओंके कार्यके अनुसार निम्नालिखित वर्ग जैसे होते है।

(१) **सहचरित नेत्रविभ्रम :** यह ज्यादह दिखाई पडता है, नेत्रविभ्रमके चलनकी विशेष बात यह होती है कि उनमें तालबद्ध नियमितता और दोनों नेत्रोंमें उनका समविभाजन दिखाई देता है। सच्चे नेत्रविभ्रमके चलन विवर्तक रूपके होते है और उसके आन्दोलन दो रूपके होते है (अ) **लम्बके तरंगरूप आन्दोलनशील नेत्रविभ्रम** (स्मूथ अनन्डयुलेटरी पेन्डयुलर निस्टागमस) जिसमें दोनों दिशाकी गतिका प्रमाण समान होता है; (ब) **झटकेदार नेत्रविभ्रम** (जर्की निस्टागमस) जिसमे बाहरकी ओरको मंदगतिका चलन होकर पहले स्थानको वापिस शीघ्र गति होती है। यह दूसरा रूप आन्तर कर्णकोटर नेत्रविभ्रमका नमूना होता है जिसका विचार पहले ही किया है; चलनकी दिशा आडी,खडी वक्र या विवर्तक (गरगरानेकी) होती है।

नेत्रविभ्रमके उसके कोणिक विस्तारके अनुसार **स्थूल (कोर्स) नेत्रविभ्रम १५°** डीग्रीके ऊपरका, **कोमल (फाइन) नेत्राविभ्रम ५°** डीग्रीके नीचेका, और ये दोनोंके बीचका ऐसे तीन रूप दिखाई देते हैं।

नेत्रोंके तालबद्ध स्थलान्तरके चलन होते है जिनको सच्चे नेत्रविभ्रम नहीं कह सकते। श्वासोश्वास की क्रियाके साथ नेत्रगोलक सामने सरकता है या पीछे जाता है; इस अवस्थाको **प्रसरणशील नेत्रविभ्रम** (**निस्टागमस प्रोट्राकटोरियस**) नाम दिया हैं, और **प्रातिकर्षणीक नेत्राविभ्रम** (निस्टागमस रिट्राकटोरियस) की अवस्था भी होती है यह अवस्था किसी खास दिशामे नेत्रका चलन करनेकी कोशिश करनेसे चाक्षुषस्नायुचालक केन्द्रके शोभनशील उत्तेजकसे सब सरल स्नायु आकुंचित होनेसे पैदा होती है।

(२) **विभिन्न नेत्राविभ्रम** (डिसजंकटिव्ह निस्टागमस) यह दुर्मिळ होता है; इसमें नेत्रके तालबद्ध समान लेकिन विपरीत चलन होते है। ये चलन केन्द्राभिमुखताको अपसृत यानी फाकनेवाले, ऊर्ध्व या अधो गमन रूपके होते है (इसीको मैडाक्सने सी. सा. निस्टागमस कहा है)।

(३) **विघटित नेत्राविभ्रम** (डिसोसिएटेड निस्टागमस) इसमें दोनों नेत्रोंके चलनका पारस्परिक संबंध नहीं दिखाई होता।

(४) **एकनेत्रीय नेत्राविभ्रम**—एकनेत्रको ढाकनेसे दूसरेमें यह नेमविभ्रम पाया जाता है (अप्रकटित नेत्रविभ्रम)।

नेत्रविभ्रमके प्राकृतिक रूपका इस जगह वर्णन करेंगे : उसका रुग्णविषयक विचार अन्य जगह होगा। इसके असली वजह निम्न लिखित जैसी होगी।

(१) **चाक्षुष नेत्रविभ्रम** इसके रूप ये होते हैं:—(अ) मिथ्या (सूडो·), नेत्रविभ्रम (ब) केन्द्रच्युत स्थैर्यक नेत्रविभ्रम : (क) चाक्षुष गत्यात्मक (आपटिको काय-नेटिक) नेत्रविभ्रम : (ड) प्रकाशका अभावजन्य नेत्रविभ्रम : (ट) अंधत्वजन्य (अमारेटिक नेत्रविभ्रम; (त) दृष्टिदौर्बल्यजन्य नेत्रविभ्रम; (प) अप्रकटित (लेटन्ट) नेत्राविभ्रम।

(२) **आन्तर कर्णकोटरजन्य नेत्रविभ्रमः**—यह श्रवणान्तर्पुट उत्तेजित होनेसे पैदा होता है; यह उत्तेजक (अ) विवर्तक, (ब) तापग्राही, (क) दबावजन्य, (ड) विद्युत, (ट) श्रवणान्तर्पुट की विकृति या इजाके रूपका होता है। इनका वर्णन पूर्व हो गया है।

(३) **व्यवसायजनित** (आक्युपेशनल) नेत्रविभ्रम

(४) **कर्णसंवेदन उत्तेजकजन्य नेत्रविभ्रम**

(५) **श्रावणी मज्जारज्जु उत्तेजकजन्य नेत्रविभ्रम**

(६) **मस्तिष्कीय नेत्रविभ्रम**—(अ) आन्तर कर्णकोटरजन्य तथा लघु मस्तिष्कीय
(ब) मस्तिष्कीय (मेन्दुका बाह्य भाग जनित)

(७) **अपतंत्रक**—गुल्मवायुजन्य तथा इच्छाशक्तिज (**हिस्टेरिकल व्हालिशनल**) नेत्रविभ्रम।

(८) **स्वयंसिद्ध तथा जन्मजात** (इडीयोपैथिक हेरिडिटरी) नेत्राविभ्रम।

चाक्षुष नेत्रविभ्रम बहुतसी अवस्थामें दिखाई पडता है जब नेत्रोका स्थिरीकरण करना मुष्किल की या अशक्य बात होती है, और वहें तो कह सकते हैं, कि नैसर्गिक स्थिरीकरणमें जिसमें नेत्रका पूरा स्थिरीकरण नहीं होता, और इसमें कुछ भी अंशका (डिग्रीका) फर्क होता है, यह पाया जाता है। नेत्रोंका स्थिरीकरण होनेके लिये खतरेको न मानकर मर्यादाके बाहरके प्रयत्नोंकी जो कोशिश की जाती है उसकी यह सहेतुक संयोजनता (मिलति जुलति करनेकी अवस्था) होती है, और ख्यालमें रखनेकी बात यह होती है कि यदि कोशिश काबिल न हुई हो तो यह आदत जैसी होती है।

(अ) **मिथ्या नेत्रविभ्रम** : यह जब नेत्र एक स्थैर्यबिन्दुसे दूसरे स्थैर्यबिन्दुकी ओर घुमता है तब दोलन जैसा जो चलन होता है उसमें अतिक्रम होनेसे पाया जाता है। जो लोक निरोगी होते है लेकिन जिनके स्नायुमे अशक्ततासे या उसकी अंशिक अवस्थासे थकावट पैदा होती है उनमें दिखाई पडता है।

(ब) **केन्द्रच्युत स्थैर्यक नेत्राविभ्रम** ५०से ६० प्रति सेंकडा नैसर्गिक लोगोंमें दिखाई पडता है; जब द्विनेत्रीय दृक्क्षेत्रकी ज्यादहतर मर्यादेके बाहर दोनो ओरको स्थैर्यक अक्ष जाते हैं तब यह दिखाई पडता है। यह नेत्रविभ्रम आडी दिशामें झटके के रूपका होता है और थकावट की अवस्थामें पाया जाता है; इसमें विकृत अवस्थाका महत्व नहीं है।

(क) **चाक्षुषगत्यात्मक नेत्रविभ्रम** : जब दृक्क्षेत्रमें एक के पीछे दूसरा तीसरा ऐसे गतिमान पदार्थ जाते हैं तब यह अवस्था दिखाई पडती है इस संबंध का विचार पहले ही किया है।

(ड) **प्रकाश अभावजन्य नेत्राविभ्रमः**—अंधियारेमें जन्मे हुअे और बढाये हुअे

बालकोंमें दोलन गतिदार नेत्रविभ्रम पैदा होता है; इसमें सर का इधर उधर हलना दिखाई पडता है। स्थिरीकरण का विकास न होनेसे यह अवस्था पैदा होती है।

(ट) **अंधत्वजन्य नेत्रविभ्रम** : यह अवस्था जन्मजात से अंधे लोगोंमें या जिनकी दृष्टि का बहुत समयसे लोप हुआ है उनमें दिखाई देती है; यह नेत्रविभ्रम झटकेदार होता है और वह दोलन गति जैसा होता है।

(त) **दृष्टिदौर्बल्यजन्य नेत्रविभ्रम** : जिनमें तारकापिधानकी केन्द्रस्थ अपारदर्शकता होती है और जिसकी वजहसे नेत्रोंका स्थिरीकरण ठीक नहीं होता उनमें दिखाई देता है। यह नेत्रविभ्रम आडी रेषामें होता है कभी कभी खडी दिशामें भी दिखाई पडता है।

(प) **अप्रकटित नेत्रविभ्रम** : एक नेत्रको ढाकनेसे ढाके हुअे नेत्रमें यह दिखाई पडता है और यह चलन न ढाके हुअे नेत्र की ओरको होता है : यह झटकेदार होता है । इस संबंधकी अनेक कल्पनाअे की गयी है लेकिन वे सब आनुमानिक तौरकी है।

व्यवसायिक नेत्रविभ्रम : खदानमें काम करनेवाले लोगोंमें यह पाया जाता है। मंदप्रकाश के साथ आसन और मानसिक बातोंका इसके पैदाईशमें भाग होता होगा। ये चलन विवर्तक रूपक होते हैं और सर के स्थानमें बदल करनेसे ये रुक जाते हैं, इसके साथ सर का कंपन, नेत्र मिचमिचालना, घुमरी, सर चरकना ये लक्षण होते हैं।

कर्णसंवेदनाजन्य नेत्रविभ्रम : कान के नजदीक की जैसे कि कर्णास्थिशृंग (ट्रेगस) की चमडीको उत्तेजित करनेसे पैदा होता है। नेत्रविभ्रम उत्तेजित किये हुअे भाग की दिशाको होता है; इसका थकावट से जल्द लोप होता है।

श्रावणी मज्जारज्जु उत्तेजितजन्य नेत्रविभ्रम मोठे ध्वनिसे पैदा होता है।

मस्तिष्कीय नेत्रविभ्रम : आन्तर कर्णकोटर की मज्जारज्जु को मस्तिष्क भागमें या प्राथमिक आन्तरकर्णकोटर मज्जारज्जु के केन्द्रका या उसके दुय्यम संबंधको इजा होनेसे पैदा होता है। सुषुम्नाकंद, सेतु, मध्यमस्तिष्क या लघुमस्तिष्क की विकृति में दिखाई देता है। साधारणतया यह झटकेदार होता है और ये झटके कोनसे ही अक्षरेषामें होंगे। उत्तेजक इजामें चलन मंद तौरका और इजा की दिशामें होता है। नाशकारक इजामें विपरीत दिशामें होता है।

अपतंत्रक–गुल्मवायुजन्य तथा **इच्छाशक्तिज नेत्रविभ्रम** : यह आन्दोलन रूपका होता है, वे स्थिरीकरणके कार्यमें असलमें केन्द्राभिमुखताकी क्रियामें और नेत्रच्छदान्तरालको बढानेसे बढता है, नेत्रके सामने जोरदार उन्नतोदर शीशा रखकर दृष्टिमंद करनेसे ध्यानको अन्य जगह लगानेसे जो थकावट पैदा होती है उससे इसका जोर कम होता है या यह अदृश्य होता है।

जन्मजात या स्वयंसिद्ध नेत्रविभ्रम : इसमें आडे अक्षमें नियमित दोलनके चलन होते है। इसमें लैंगिकान्वितकी अवस्था दिखाई देती है; यह पुरुषवर्गमें ही दिखाई पडता है, इसके साथ आंशिक किलास दिखाई पडता है।

अध्याय २८

नेत्रका संरक्षक तंत्र

मनुष्य और अन्य प्राणियोंके नेत्रके संरक्षक तंत्रकी तीन तरतीबें होती हैं : तारका-पिधानकी संज्ञाग्राहकता, नेत्रच्छद या पलकोका तात्रिक चलन (कई प्राणियोंमें तृतीय नेत्रच्छद होता है), और शुक्लास्तरकी ग्रंथीया और अश्रुग्रंथीके आस्रावसे नेत्रको ओंगन लगाना।

तारकापिधानकी संज्ञाग्राहकता—सचेतनता

नेत्रकी संरक्षक प्रणालीमें तारकापिधानकी तीव्र संज्ञाग्राहकता महत्वकी बात होती है क्योंकि किसी क्षोभजनक अवस्थाकी सूचना होते ही फौरन परावर्तन क्रियासे आंखोका मिचकाना, सर पीछे झुकाना ये बातें होती हैं। इस परावर्तन क्रियाके स्वरूपका महत्वका सबूत यह होता है कि सुनवहरीकी अवस्थामे इस प्रतिक्रियाका लोप सबसे आखिरको होता है। बरौनी-अक्षिलोम-की संज्ञाग्राहताका प्रमाण ज्यादा जोरदार होनेसे यह अवस्था तात्का-लिक सूचित होती है; इस जोरदार संज्ञाग्राहताका एक कारण यह होता है कि बरौनीके कन्दोमें संज्ञाग्राहक मज्जातन्तुओंका प्रमाण ज्यादा होता है; ख्यालमे रखनेलायक बात यह है कि कई प्राणियोके नेत्रके चारोओर स्पर्शग्राहक मज्जातन्तु, असलमें जो प्राणि रातके समय घूमते हैं,ज्यादह होते हैं। जब उत्तेजक अति जोरदार होना है, परावर्तन क्रियासे नेत्रच्छदोका कंपवायू होता है (ब्लेफरोस्पाझम) जिसमें नेत्रनिमीलिकी स्नायुका जोरदार संकुचन होता है जिसको रोक नहीं सकते और यदि नेत्रच्छदोको खोलनेका प्रयत्न किया जाय तो नेत्र और घुम जाते हैं। संज्ञालोप करनेसे ही नेत्रकी यह परावर्तन क्रिया पायी जाती है क्योंकि इसको दृष्टिपटलसे परावर्तित क्रियाकी जोड मिलती है और इस अवस्थाको **प्रकाश असहिष्णुता** (फोटोफोबिया) प्रकाशातङ्क कहते हैं।

सब संशोधकोंका ऐसा मत है कि तारकापिधानके सब मज्जातन्तु दुःखसंज्ञाके मज्जातन्तु होते है और इनका कार्यविस्तार मर्यादित क्षेत्रमे होता है; यह नैसर्गिक अव-स्थाका लक्षण होता है। खडी अक्षरेषा विलकूल कम संज्ञाग्राहक और आडी अक्षरेषा सबसे ज्यादह संज्ञाग्राहक होती है और इन दोनोंके बिचमें संज्ञाग्राहताका ढलाव दिखाई देता है, तारकापिधानका बाहरी भाग भीतरी भागकी अपेक्षा और नीचेका भाग ऊपरी भागकी अपेक्षा ज्यादह संज्ञाग्राहक होता है। सबसे ज्यादह संज्ञाग्राहताका क्षेत्र तारकापिधानके केन्द्रमे ५ मि. मि. का वर्तुल क्षेत्र होता है जिसके बाहर यह संज्ञाग्राहकता कमती होती जाती है। इस परिवर्तन की वजह यह होती है कि मध्यभागमें मज्जातन्तु पृष्ठपर ज्यादह आते हैं। शुक्ल-कृष्ण संधिके पास इन मज्जातन्तुओंको काटनेसे उनकी संज्ञाग्राहकता तीन हफ्तेके बाद वापिस आना शुरू होता है और सात हफ्तेके बाद संज्ञाग्राहकता दिखाई देती है।

तारकापिधानपर स्पर्शशून्य करनेवाले दवाओंकी क्रिया

दिलचस्पी की बात है कि **व्हियेनावासी कार्ल कोलर** शास्त्रज्ञने नेत्रमें स्पर्शशून्यता के लिये कोकेन का इस्तेमाल १८८४ में किया। इसका जहरी असर संज्ञाग्राहक मज्जा-

तन्तुओंपर होता है, इनका अल्पकाल पक्षघात होता है। स्पर्शशून्यताका प्रमाण शोषण किये हुओ प्रमाणपर अवलंबित होता है। जलमे बनाये हुए कोकिन के २% द्रावणसे स्पर्शशून्यता आधे मिनिटमें पैदा होती है। दस मिनिट में सापेक्षतासे पूर्ण होती है और ३० मिनिट के बाद भी रहती है।

सब सुनबहरीवाले दवाओकी क्रिया कोकेन की जैसी जहरी तौरकी होती है। कोकेन का यह असर संज्ञाग्राहक मज्जातन्तुओंके सीरे के सिवा तारकापिधान के बाह्यत्वक् और अन्तःत्वक् पेशिओंपर होता है।

कोकेनका जहरी असर होनेसे और रोगाणुरहित करनेकी क्रियामें (स्टरलायझेशन) वह अस्थिर होनेसे, और इससे कर्नानिका का प्रसरण होनेसे संशोधकोने संश्लिष्ट प्राकृतिक पदार्थ बनानेकी कोशिश करके **नोव्हेकेन, यूकेन, टयूटोकेन, इप्सिकेन, ब्यूटिन, डायोकेन, आयसोकेन, होलोकेन, स्टोव्हेन, यूक्रूपिन, यूक्रूपिनोटाक्सीन, कारबेन** आदि पदार्थ बनाये है; लेकिन नेत्रमे इन दवाओंका कोकेन जैसा काफी उपयोग नहीं होता। इनका ज्यादह विचार शालाक्य तंत्रमे करेंगे।

रक्तके निस्सारक दबाव से कम दबावके घोल (हायपोटानिक सोल्युशन्स) और स्रवितजल (डिसटिल्ड वाटर) से तारकापिधान पर स्पर्शशून्यता पैदा होती है इसकी वजह शायद यह होती है कि फूले हुए घटकोसे मज्जातन्तू दबे जाते हैं।

नेत्रच्छदोंका चलन

नेत्रच्छदों के संरक्षक चलन का वर्गीकरण निम्न जैसा कर सकते हैं:—

(१) **अनैच्छिक चलन** : जिसमें नेत्रनिमीलक स्नायूके नेत्रच्छद के भागका कार्य होता है।

(अ) **नेत्र मिचमिचाना** (ब्लिंक) : इसमे दोनों नेत्र अल्पकाल बन्द किये जाते है और दोनो नेत्रच्छदोंका ऊपरका और नीचेका—चलन होता है। यदि एकही नेत्र बंद किया जाय तो उसको आंख झपकाना कहते हैं। ख्यालमें रखना की ये चलन स्वेच्छिक भी होते हैं।

(ब) **तिलमिलाना** या **फटफटाना** (फ्लिकर) इसमे एक या दोनो नेत्रोंके ऊपरके नेत्रच्छदका जल्द और समकालिक चलन होता है। इसी तरहका चलन भ्रू में भी असल मे घोडे जैसे जानवरमे दिखाई पडता है।

(२) **स्वेच्छिक चलन**: दोनों नेत्रच्छद बन्द किये जाते है " स्क्रुइंग अप " चलन नेत्र जोरसे और सकत बंद किये जाते है जिसमें नेत्र निमीलकी स्नायूके नेत्रपरके और नेत्रच्छदके भाग दोनों का चलन होता है और इसके साथ कापालिक और भ्रोविक स्नायुओका भाग होता है।

इन ऐच्छिक चलन के सिवा नेत्रच्छदोंका चलन अन्य दो हालतोंमे होता है:—

(१) **नैसर्गिक आवर्त मिचमिचाना** : जब तक नेत्र खुले रहते है तब होता है: (२) **संरक्षक परिवर्तक चलन** उत्तेजक की तीव्रतापर अवलम्बित रहता है। मिचमिचानेके स्वरूपका होता है, या नेत्रच्छद पूर्णतया बंद हो जाते हैं।

नेत्रच्छदोंके हर मिचमिचानेके साथ नेत्रगोलकका ऊपरी और भीतरी ओरको चलन होता है, स्थैर्यबिन्दु नैसर्गिक आवर्त मिचमिचानेमें १५° हट जाता है और संरक्षक परिवर्तनमे ज्यादह दूर जाता है। इसी वजहसे नेत्रको बचानेके लिये परिवर्तन शीघ्रतासे न हो और नेत्रच्छदोंको बंद होनेको मोका न मिले तो तारकापिधानके नीचेके भागको और शुक्लास्तरको इजासे, मसलन जब क्षयकारी द्रावण नेत्रमे फेका जाता हैं, धोका होना संभव है; निद्राकी अवस्थामे नेत्रका यही चलन ऊपर और भीतरी ओरको होना है और नेत्रच्छद भ्रंशकी अवस्थामे, जब नेत्रच्छद बराबर बंद नहीं होते तब, तारकापिधानके नीचेके भागकोही इजा होती है।

नैसर्गिक नेत्र मिचमिचाना

हवामे रहनेवाले और जिनको नेत्रच्छद होते है ऐसे सब पृष्ठवंशी प्राणियोंमें नेत्र मिचमिचानेकी क्रिया दिखाई देती है। नेत्र मिचमिचाने की क्रिया जनमके छ महिनेके बाद दिखाई देती है, उसके बाद वह नेत्रके क्षोभनसे पैदा होती है ऐसा नहीं लेकिन सरके हर चलनमें दिखाई देती है या किसी कार्यके ऐच्छिक चलन के साथ होती है। इसके छायाचित्रके पृथक्करणसे मालूम हुआ है कि यह मिचमिचाना ·३ से ·४ सेकन्दतक रहता है। ०·४ सेकन्दमे होनेवाली बातोंका प्रमाण इस तरहका होता है:—०·०५ सेकन्दमें नेत्रच्छद नीचे घुमते है, ०·१५ सेकन्द तक वे बन्द रहते है और ·२ सेकन्द उनको ऊपर जानेको लगते है।

मिचमिचानेकी चलनकी क्रिया हर २ से १० सेकन्दके बाद होती रहती है। यदि ऐच्छिक तौरसे मिचमिचानेके चलनको रोकनेकी कोशिश की जाय तो थोडे समयमें ही अनिवार्य प्रेरणासे मिचमिचाना शुरू होकर वह शायद नेत्रको पानि लगाया जाय तो,५मिनिट रहता है। मिचमिचानेके प्रमाणसे सुस्त और मानसिक तनी हुई अवस्थावाले मनुष्यमें फर्क कर सकते है। दवाओंका असर भी इसी तरहका होता है, शराबसे मिचमिचानेका प्रमाण पहले बढकर फिर कमती होता है, तापसेही यह प्रमाण थोडा बढता है; हवामें द्रवांशका प्रमाण ज्यादा होनेसे उनका प्रमाण थोडा कम होता है।

मिचमिचाने के कारण संबंधी ही दिलचस्पीका बहस हो रहा है। एकमत प्रणाली ऐसी थी कि पाचवी मस्तिष्क मज्जारज्जूकी यह परिवर्तक क्रिया होती है और इसका कार्य तारकापिधान को आर्द्र रखना और नेत्रमे घुसे हुअे कणोंको निकाल डालना यह होता है। एक कल्पना ऐसी भी की गयी थी कि प्रकाशकी एक सहा होनेवाली क्रियासे बचाव करनेके लिये यह क्रिया दृष्टिपटलके वजहसे होती है और स्नायुओंके हर चलनोंसे होना संभव है, लेकिन ये कल्पना बराबर नहीं क्योंकि अंधेरेमें या दृष्टिरज्जुके क्षयमें भी यह नेत्र मिचमिचाना दिखाई देता है। नेत्रको मिचमिचानाकी प्रेरणा २, ३, ४, ५, ६ मस्तिष्क मज्जारज्जूओंसे नहीं मिलती, या दृष्टिपटल, तारकापिधान, शुक्लास्तर या नेत्रकी बाह्य स्नायुओंसे नहीं मिलती। पान्डर और केनेडी शास्त्रज्ञोंने इसपरसे ऐसी कल्पना की थी (१९२८) कि इस प्रेरणाका उगम मस्तिष्कमें होकर उसका वहन सातवीं मस्तिष्क मज्जारज्जूके द्वारा आवर्त प्रेरणा जैसा होता है। और रुग्णविषयक निरीक्षणसे इन्होंने ऐसी कल्पना की थी कि इस केन्द्रका स्थान मस्तिष्क तलके भागमें होता होगा।

नेत्र मिचमिचानाका नैसर्गिक व्यापार चार तरहका होता है:-(१) तारकापिधानको आर्द्र और सफा रखना यह महत्वका कार्य है:-(२) इसके चलनसे नेत्राभ्यन्तर दबावका प्रमाण ३ से ५ मि. मि. (Hg) इतना बढता है और उसका असर नेत्राभ्यन्तरजलके दबावका प्रसरण होनेमे होता है :(३) इसके चलनसे नेत्राश्रुका श्रावण होता है : (४) संभव है कि इसके चलनसे प्रतिमाओंका अस्पष्ट होना कम होता है या निकल जाता है। नये वस्तुपर दृष्टि लगानेमे नेत्रच्छद आपीआप मिटकर नेत्र नये वस्तुपर स्थिर होते हैं।

परिवर्तित मिचमिचाना

अनेक तरहके उत्तेजकोमें नेत्र मिचमिचाने की क्रिया परविर्तित स्वरूप की होती है। इनमें केन्द्रगामी मज्जातन्तुओमेंसे वहनेवाली प्रेरणाऐं होती हैं जैसे कि सब तौरकी संवेदना और श्रावणी मज्जारज्जु,और जाभाई या अंगडाई देना, छिंकना, वमन करना और खाना ये मुखके चलन के साथ नेत्रच्छदोंका सहकारी चलन जैसा होता हैं लेकिन उसका असली कार्य नेत्र का संरक्षक तंत्र जैसा होता है, जब पंचमी मस्तिष्क मज्जारज्जू की चाक्षुपशाखाका, या दृष्टिरज्जुका उत्तेजन होता है। ये अखिरी दो भिन्न ओरके परिवर्तन होते हैं।

सांवेदनात्मक परिवर्तित मिचमिचाना (सेनसरी ब्लिकिंग रिफ्लेक्स) यह क्रिया पंचमी मस्तिष्क मज्जारज्जूकी पहली शाखाका क्षोभजनक उत्तेजन होनेसे जैसेकी:-बाह्य कणो का नेत्रच्छदोंके बालोको, तारकापिधान, शुक्लास्तर को स्पर्श होनेसे या इन भागोका क्षोभ होनेसे ईजा होकर परिवर्नन रूपकी होती है। इस परिवर्तन क्रिया का पंचमी मस्तिष्क रज्जूसे सप्तमी मस्तिष्क मज्जारज्जू मे परिवर्तन होता है, और संशोधनसे मालूम होता है कि इस परिवर्तन क्रियाका नियमन सुषुम्नाकंदमेके एलीसायनेरिया में के स्थित केन्द्रसे होता है। मस्तिष्कीय पथोका पूर्ण अन्योन्य छेदन होता है।

चाक्षुष परिवर्तित मिचमिचाना(आपटिकल ब्लिकिंग रिफ्लेक्स) कुलोत्पत्ति और व्यक्ती जनी विकासकी तौरसे विचार करनेसे यह क्रिया सांवेदनात्मक मिचमिचानेसे भिन्न तंत्रकी होती है। यह प्रखर प्रकाशसे पायी जाती है और जब कोई पदार्थ, नेत्र को स्पर्श किये बिगर यकायक उसके नजदीक लाया जाता है तब भी दिखाई देती है। रुग्णविषयक संशोधनसे मालूम हुआ है कि यह मस्तिष्कीय स्वरूप की होती है और दिलचस्पी की बात होती है कि यह क्रिया अर्धांग में ज्यादह तौरसे नहीं दिखाई देती, नौ माससे कम उम्रके बालकोमें नहीं दिखाई देती; हलके श्रेणी के प्राणियोमें भी नही पायी जाती, उपरके श्रेणीके सस्तन प्राणियोमें दिखाई देती है।

श्रावणीय परिवर्तित मिचमिचाना: श्रवणेन्द्रियका तांत्रिक या ताप के उत्तेजनसे परिवर्तित मिचमिचाना पैदा होता है, इसके साथ एक नेत्रमेंसे अश्रुप्रवाह वहता है। यह क्रिया बडे जोरके आवाजसे भी पायी जाती है।

नेत्रका रौंगण

तारकापिधान और शुक्लास्तर, श्लेष्मिक ग्रंथी और अश्रुग्रंथी के आश्रावसे जिसमें श्लेष्मा और अश्रु मिले हुए होते हैं, सतत रौंगन से लपेटे जैसे होते है और मिचमिचानेके

आवर्तचलन से नेत्रगोलक सतत इस श्रावसे धोया जाता है। आम तौरसे श्लेष्मिक ग्रंथीया और पूरक अश्रुग्रंथीयोका आश्राव कायम के रोंगण के लिये काफी होता है, किसी आफत के समयमें असली अश्रु ग्रंथी के आश्राव की जरूरी भासमान होती है, आम तौरमें इसकी जरुरी नहीं होती क्यों कि इस ग्रंथीका हमजातसे अभाव हो या शस्त्रक्रियासे अश्रुग्रंथी को निकाला जाता है तब कुछ तकलीफ नहीं होती। इसके अलावा शुक्रास्तर विकृत हुआ हो तो क्षोभन और अनार्द्रता के लक्षण होकर अनार्द्र तारकापिधान दाहके लक्षण होते है।

अश्रुके भौतिक रासायनिक गुणधर्म

अश्रु–आसू अश्रुग्रंथीका आश्राव होता है, यह सफा नमकीन रुचीका कुछ क्षारीय जल होता है इसके शकल और घटनामें, वह अश्रुग्रंथी के नलिकामेसे या शुक्रास्तरकोषमेसे जमा किया हो उसके अनुसार उसमे, फर्क दिखाई देते हैं; शुक्रास्तरकोषमेंसे जमा किये हुअे अश्रु उसमे शुक्रास्तर श्राव के घटक श्लेष्मा और पेशियोका चूरा होनेसे, किंचित अपारदर्शक दिखाई देते है।

इसका विशिष्ट वजन २०° सेंटिग्रेडके तापमे१·००१ से१·००५, **अभिसारक दबाव** हिमांक पद्धतीसे ३८° से $\triangle$=०·६०० से०·९५६६से; जब रक्तदाब $\triangle$=०५४८°से अभिसारक दबाव रक्तके दाबसे थोडा कम या नेत्राभ्यन्तरजलके दबावके बराबर होता है;**वाहकता** (ΔX१०⁻³) १,९५० से २,२७२ होती है; **गाढापन** (n) १·०५३ से १·४०५; **पृष्ठीय खींचाव** (y) ०·६९४ से ०·७४९; प्रतिक्रिया (pH) ७·४ से ८·४; वक्रीभवन गुणक १·३३६९ होता है। अश्रुकी रासायनिक रचना सारिणेमें २९ दीयी है। मक क संशोधनसे मालूम होता है कि थायो सायनेटस मिलते है।

अश्रूकी रासायनिक रचना (ग्राम्स%) **सारिणी २९**

	आर्ल्ट–लर्चे (१८६५)	रिडले–ब्राऊन (१९३०)
जल	९८·२२३	----
कुल घनद्रव्य	-----	१·८
कुल नैट्रोजन		०·१५८
अ प्रोतीन नैटोजन	-----	०·०५१
यूरीया	-----	०·०३
प्रोतीन	-----	०·६६९
अलब्यूमिन	०·५०४	०·३९४
ग्लाब्यूलिन	-----	०·२७५
शक्कर	-----	०·६५
श्लेष्मा और चरबी	अंशिक	----
सोडियम क्लोराईड	१·२५७	०·६५८
सोडियम	-----	०·६०
पोट्याशियम	०·०१६	०·१४
अमोनिया		०·००५
फासफेटस		

प्रोतीन्स में अलब्यूमिन और ग्लाब्युलिन होते हैं लेकिन इनका विशेष यह होता है कि रक्त या शारीरके अन्यघटकोंके आश्रावमेंके इन द्रव्योंसे ये रोग संरक्षक गुणमें भिन्न भिन्न होते है। आश्चर्यकी बात यह होती है कि इन प्रोतीनके गुण वीर्यके प्रोतीनके गुणधर्म जैसे ही होते हैं; इससे यह बात सिद्ध होती है कि अश्रु सच्चा आश्राव होता है।

अश्रुके जन्तु-जीवाणु नाशक गुणधर्मः—अश्रूंपर जीवाणू की पैदाईश अच्छी नहीं होती यह बात बहुत दिनसे ज्ञात है; उसका जीवाणू नाशक धर्म बहुत कम दर्जेका है और अश्रुको उबालनेसे इस धर्मका उसमें खमीरके वर्गका लायसोझाईम होनेसे,लोप हो जाता है। लायसोझाईम प्राणियोंके सब घटकोमें और आश्रावोंमे अल्प प्रमाणमें मिलता है,लेकिन श्वेत रक्त कण, नासिकामेंका श्लेष्मा, बलगम और नेत्राश्रूमें यह प्रमाण जीवाणू नाशकबलका होता है।

अश्रूत्पादन या रुदनका ऐन्द्रिय कार्य

मनुष्यकी जागकी अवस्थामें अश्रु सतत पैदा होते रहते हैं;इनका सोला घंटेका औसद प्रमाण $\frac{१}{२}$ से $\frac{३}{४}$ ग्राम इतना होता है। इस आश्रावकी ज्यादा पैदाईश दो किस्मके उत्तेजकोंसे हो सकती हैः-(१) त्रिमुखी मज्जारज्जुका क्षोभन असलमें तारकापिधान और शुक्लास्तर-मेंके अन्तीय सीरोंका उत्तेजन, तथा दृष्टिरज्जूका जोरदार उत्तेजन। (२) मानसिक उत्ते-जक। इसके सिवा अश्रु आश्रावपर दबाओंका भी असर होता है : पायलोकारपिनसे आश्राव ज्यादा होता है; अट्रोपीनसे वह रुक जाता है।

परिवर्तित अश्रुवहन रुदन अश्रूत्पादन

रुदन की परावर्तित क्रिया के मज्जा तंत्र का अभितक पूरा शोध नहीं लगा है। अश्रुग्रंथी को तीन मज्जा रज्जूएँ जाती हैंः—(अ) **संज्ञावाहक मज्जातन्तू** त्रिमुखी मज्जा-रज्जूकी अश्रुपिंडगा शाखासे पाये जाते हैं; ये तन्तु श्रावक पेशिया और ग्रंथीके नलिकामे मज्जामय वेष्टनरहित होते है। (ब) **आनुकंपिक या स्नेहिक मज्जातन्तू** ये ग्रैवेयक शृंखला से पाये जाते है और इनके दो मार्ग होते हैः—१ मात्रिका जाला और अश्रुपिंड रोहिणी : २ **स्फिनो पैलेटाईन मीकल्स** मज्जाकंद-गंड और झायगोमैटिक मज्जारज्जू (**क**) **उपअनुकंपिक-स्नेहिक** (पारासिंफथेटिक) मज्जातन्तु मौखिकी मस्तिष्क मज्जारजू से पाये जाते है। सप्तमी या मौखिकी मस्तिष्क मज्जारजूकी बडी बाह्य अक्षकूट मज्जारज्जू शाखा का (सुपरफिशिअल ग्रेट पिट्रोसल नर्व) भीतरी अक्षकूट मज्जारजू से मिलाप होकर व्हिडीयन मज्जारज्जू बनता है जो द्विपत्र मार्गमेंसे (पीट्रोसल कनाल) जाकर **जतूक-तालू** मज्जाकन्द (स्फिनो पैलेटाईन गैंगलियन) को मिलती है। फिर पंचमी मस्तिष्क मज्जारज्जू की कपोल शाखा (झायगो मैटिक ब्रैंच) के साथ जाकर कपोल-शंख शाखासे संयोग होकर अश्रुपिंड को जा पहुचती है।

सप्तमी मस्तिष्क मज्जारज्जू की इन शाखाका चालक मज्जाकेन्द्र का अभितक शोध नहीं लगा है लेकिन वह इस रज्जुके केन्द्र के नजदीक होगा ऐसी कल्पना की गयी है;लेकिन ख्यालमें रखना की इस मौखिकी मज्जारज्जूके लकवामे अश्रुप्रवाह नहीं रूक जाता। और इससे ऐसी कल्पना की गयी है कि यह केन्द्र नवमी मज्जारज्जु या जिव्हाकंठ ग्लासो फैरिनजियल के केन्द्र के पास होगा। **मूलर** की कल्पना के अनुसार जतूक तालू मज्जाकंद प्रान्तस्थ प्रारो-

हक केन्द्र (पैरिफिरल व्हेजिटेटिव्ह) जैसा कार्य करिता है। इसका सबूत यह होता है कि इस केन्द्रको रोकनेसे अश्रुका श्राव कम होता है।

अश्रुवहन के तंत्र में इन मज्जारज्जू ओंके कार्यसंबंधीं पूरा निर्णय नहीं हुआ है। इन तीनों मज्जारज्जुओंके—अश्रुपिंडगा सप्तमी और ग्रैवेयक स्नेहिक—उद्दीपनसे अश्रुवहन होता है। और कल्पना की गयी है कि श्रावक प्रेरणा इन तीनोमेंसे बहती है। अश्रुपिंडगा मज्जारज्जुको काटनेसे और स्नेहिक मज्जारज्जु के उद्दीपन से अश्रुवहन होता है लेकिन इसमें क्लोरिन का प्रमाण कम रहता है। रिकरपर ने शोध लगाया है कि वहन का प्रमाण भी कम होता है। सप्तमी मज्जारज्जु के उद्दीपनसे अश्रुवहन कम होता है ऐसा कई संशोधकोंका मत है।

इन बातो परसे साधारण तया अनुमान कर सकते हैं कि, यद्यपि इससे कुछ विपरीत घटना भी होती है। त्रिमुखी मज्जारज्जु प्रत्यावर्तन मंडल व्यूह का केन्द्रगामी संज्ञावाहक (सेन्सरी एफरन्ट) पथ होता है; और इसका नाश होनेसे अश्रुवहन न होनेका कारण उत्तेजक नहीं जा सकते। केन्द्र त्यागी पथ (ईफरन्ट) स्नेहिक या मौखिकी या सप्तमी के साथके उपस्नेहिक मज्जारज्जुओंसे होता हैं। स्नेहिक मज्जारज्जु की क्रिया रक्तवाहिनीयोपर होनेसे होती होगी; सप्तमी रज्जूही असल श्रावोत्पादक मज्जारज्जू हैं ऐसा कई संशोधकोंका मत है। हर्टमन के मतानुसार परिवर्तित अश्रुवहन सप्तमी रज्जूसे और मनोविकार का अश्रुवहन पंचमी या त्रिमुखी मज्जारज्जूसे होता है।

मानसिक अश्रुवहन यह मनुष्य प्राणिमें ही दिखाई देता है; अन्य नीचेके श्रेणीके प्राणिओंमें या नवजात बालक में नही दिखाई देता। यह जोरदार मनोविकारसे पाया जाता है और भिन्न भिन्न व्यक्तिओंमें इस वहन का प्रमाण भिन्न होता है। इसके स्वतंत्र मज्जा-केन्द्र की कल्पना की यी गयी है। लेकिन इसका शारीरशास्त्रीय और ऐन्द्रिय विज्ञान का पूरा पता नहीं लगा है।

अश्रूका वहन

अश्रुपिंड ग्रंथी से पैदा होकर और नेत्राच्छदोके चलन से नेत्रगोलक के पृष्ठभागपर फैले हुओ इस आश्राव का बहुतसा मोठा प्रमाण बाष्पीकरण से उड जाता है। इसमेंसे बचा हुआ भाग नेत्रच्छदान्तरालके भीतरी कोन को बह जाता है,यह वहन नेत्र निमीलकी स्नायू के संकुचनसे उसके बाहरी शिथिल भागसे भीतरी अचल भागकी ओरको अश्रु बहा जाते है। नेत्रच्छदपट की किनारके पासकी ग्रंथीयोंका त्वक् स्नेह दार आश्राव से यह जल शुक्लास्तर-कोषमें रहने की मदत होती है और आश्राव ज्यादह प्रमाण में होता है तब नासिकामें बह जानेकी नालीया असमर्थ होनेसे अश्रू गालोंपर बहते है (अश्रुपात)

अश्रुमार्गोमेंसे अश्रु किस तंत्र से बह जाते है इस संबंधमे अनेक कल्पनाओं प्रचलित है।

(१) साईफन कल्पना—द्रवपरिवर्तक नलिकी कल्पनाः—इस कल्पनाके अनुसार अश्रु नेत्रमेंसे नासिकामें निष्क्रिय तौरसे वह जाते है। (पोटि १७३३-४४; गैड १८८३)

(२) नासिका की शोषक क्रियाकी कल्पनाः (हौ मोल १७३५) इस कल्पनाके अनुसार श्वासोश्वास के क्रियामे नासिकाके कोटरके दबाव में जो फर्क होता है उससे अश्रुका शोषण होता है।

(३) **रक्तवहा केशिनियोंका आकर्षण की कल्पना (मोलेनेली ·१७७३· वेबर १८६३)** इससे स्नायुओंके कार्य होता है। इस कल्पनासे अश्रूपात अभावका किस तरहसे होता है यह नहीं कह सकते।

(४) **नेत्रच्छदोंका बंद होनेकी कियाकी कल्पना (पेटि १७३४)** इसमें सिर्फ दबावकी वजहसे अश्रु ढकेल जाते है।

(५) **नेत्राश्रु कोषको दबानेकी कल्पना :** इस कल्पनाका प्रचार पहले **आर्ल्टने** (१८५५–६३) में किया। नेत्रच्छद बंद करनेसे नेत्रनिमीलिकी स्नायुके आकुंचनसे नेत्राश्रु कोष दबाजानेसे उसमेंके जलादि घटक, बाष्पनालीके छिद्र बंद हो जानेसे, नासिका नाली-मेसे नीचे ढकेले जाते हैं; जब नेत्रच्छद खुलते है और नेत्रनिमीलिका स्नायु शिथिल होता है तब बाष्पकोषका प्रसरण होता है और अश्रुका बाष्पनालीके छिद्रोंमेंसे शोषण होता है।

(६) **बाष्पकोषके प्रसरणकी कल्पना :** यह कल्पना ऊपरकी कल्पनासे विपरीत है। इसमे नेत्रनिमीलिकी स्नायुके आकुंचनसे बाष्पकोषका प्रसरण होता है उससे नेत्राश्रुका शोषण होता है, स्नायु शिथिल होनेसे कोषकी स्थितिस्थापकतासे अश्रु नासिकामें ढकले जाते हैं।

(७) **बाष्पनालीकी कल्पना :** नेत्रनिमीलिकी स्नायुके आकुंचनमे नेत्रच्छद बंद होते हैं तब बाष्पनालीया दब जाती है और बाष्पकोषमे ढकेले जाते हैं और नेत्रच्छद जब खुलते है तब ये नालीया शुक्लास्तर कोषमेंके अश्रुका शोषण करती है।

इन विभिन्न कल्पानाओंसे सिद्ध होता है की नेत्राश्रुके वहन की क्रिया कारककी तौरकी होती है और नेत्रनिमीलि की स्नायुके चलनसे यह कार्य होता है और उसके स्थाना-न्तरमे बाष्पनालीयोंका और बाष्पकोषका हिस्सा होता है। **बाष्पनालियोंके कार्य** संबंधीका विचार करनेसे कह सकते हैं कि ऊपरकी अकेली नलीका कार्य उपयोगिताका नहीं होता और अश्रुपात न होनेके लिये नीचेका अश्रुग्राही मुख अश्रुकासारमे डुबना जरूरी है। नेत्राश्रुके प्रवाहको केशवाहिनीयों की क्रियासे और स्नायुओंके कार्यसे महत्वकी मदत होती है। बाष्पनलीका खडा भाग दृढ होनेसे नेत्रच्छदोका हलके तौरके बंद होनेकी क्रियासे दबा नहीं जाता और प्राकृतिक अवस्थामें खुला रहता है यद्यपि नेत्रच्छदोको जोरसे बंद करनेसे वह दबा जाकर अश्रु अश्रुकासारमें इकट्ठा होते हैं। लेकिन आडा भाग स्नायुओंके कार्यसे चवडा होकर उसकी लम्बाई कम होती है और केशवाहिनियोंकी क्रियाको शोषणसे मदत होकर अश्रु उनमें जाते हैं।

बाष्पकोष संबंधीकी संचापनीयता और विस्तारण ऐसी भिन्न मत प्रणालीयां हैं और शायद इन दोनोंका भी इसमें हिस्सा होता होगा। नेत्रच्छदोंको बंद करनेसे बाष्पकोषके ऊपरके चौडे भागमें अश्रुके वहनको शोषणसे मदत होती है और उसके नालीके नीचेके भागमेंके अश्रु संचापनीयतासे नीचे ढकेले जाते हैं। नेत्रच्छदोंको खोलनसे बाष्पकोषका ऊपरका भाग दब जानेसे और नीचेके भागका प्रसरण होनेसे अश्रु नीचे ढकेले जाते हैं, और चौडा भाग फिरसे शोषणको तयार होता है यह कुल व्यूह दो कारक शक्तियोंका समतुलित अन्योन्य चलनका द्योतक होता है।

अध्याय २९

नेत्राभ्यन्तर दबाव

नैसर्गिक नेत्र गोलाकार होता है। उसका बाहरीका पटल या वेष्टन यानी शुक्लपटल स्थितिस्थापक घटकोंका बना हुआ होता है। नेत्रगोलक मे की रक्त वाहिनीयोंमें का रक्त-लसिकावकाशमें की लसिका और पूर्व या सामनेकी तथा पार्श्व या पिछली वेश्मनिमें का चाक्षुषजल, तथा स्फटिक द्रवपिंडमेका जलाश जो दोनो आन्तरोत्सर्ग जैसे घटक होते है,ये सब तीनो मिलके नेत्राभ्यन्तर का द्रवभाग होता है। नेत्रगोलक के बाहरी के शुक्ल पटलपर इन तीनो द्रवरूप घटकोंका जलस्थित्यात्मक (हायड्रोस्टेटिक) दबाव, चारों ओरसे नैसर्गिक अवस्थामें सम जैसा होता है और यही नेत्राभ्यन्तर का दबाव होता है। यानी तारका-पिधान के पिछली पृष्ठ के एक चौरस मि. मि. के भागपर और शुक्ल पटल के किसी भी एक चौरस मि. मि. के भागपर इन द्रवरुप घटकोंका एक समान जैसा दबाव होता है। नेत्र गोलक का बाहरीका स्थितिस्थापक शुक्लपटल हमेशाह तनी हुई अवस्थामे रहता है। और नेत्रगोलक के इस शुक्लपटल पर वातावरण का बाहरी से जो दबाव होता है उसकी अपेक्षा नेत्राभ्यन्तर के नैसर्गिक दबाव का प्रमाण ज्यादह होता है।

नेत्रका आकार हमेशाह के लिये गोल जैसा रहता यह बात उसके भीतरी के द्रव पदार्थोंका दबाव बाहरी के शुक्लपटल पर चारो ओरसे एकसरीखा रहनेपर अवलम्बित होता है। द्रव पदार्थ का प्रमाण कम होनेसे या कम करनेसे या बढानेसे उसी प्रमाणमें दबावमें फर्क होकर नेत्रके आकारमें फर्क होगा। और यह बात नेत्रमेंके द्रव भागका प्रमाण उनकी क्षिरपन की क्रिया, और बाह्य पटल की तनी हुई अवस्था इन मे कम या ज्यादह फर्क होने पर अवलम्बित होती है।

नेत्राभ्यन्तर का दबाव, बाह्य पटल की तनी हुई अवस्था और नेत्रगोलक की त्रिज्या इनका पारस्परिक से निकट संबंध होता है इस बातको ख्यालमे रखना। नेत्राभ्यन्तर का दबाव और बाह्य पटल की तनी हुई अवस्था ये दोनो बातें अलग अलग होती है यह भी ख्याल में रखना।

नेत्रगोलक के भीतरी का दबाव उसके त्रिज्याके अनुसार कुलपटल पर एकसरीखा होता है। दाब का प्रमाण कायम रखकर त्रिज्याकी लम्बाई को बढानेसे गोल का आकार बढ जायेगा और उसी प्रमाणमे दबाव कम होगा,नेत्राभ्यन्तर के दबाव को बढानेसे नेत्रगोलक की त्रिज्या लम्बी करनेसे तारकापिधानकी वक्रताके आकारमें फर्क होता है। हेल्महोल्ट्झने स्फटिक द्रव पिंडमें पिंचकारीसे पानी डालकर नेत्राभ्यन्तर दबाव बढाया जब तारकापिधान की त्रिज्या बढ गयी और उसकी वक्रता कम होकर वह सपाट हुआ ऐसा मालूम हुआ।

रुग्णविषयक परीक्षासें मालूम हुआ है कि कांचता की प्राथमिक अवस्थामें नेत्राभ्यन्तर-का दबाव बढनेसे तारकापिधानकी त्रिज्या लम्बी होती है और वह चपटी होती है। इसी वजहसे इन लोगोंमें दीर्घदृष्टिकी अवस्था पैदा होती है। इस बढे हुअे दबावकी वजहसे बाह्यपटलकी स्थितिस्थापकता चारों ओरको समान न होनेसे तारकापिधानकी कुल त्रिज्याओं

समान जैसी नहीं होती और इसी वजहसे अनुलोम निर्बिन्दुसाका प्रतिलोम निर्बिन्दुतामे रूपान्तर होना संभवनीय है ।

नेत्रमेंका स्फटिकद्रवपिंड और चाक्षुप जल, तथा रक्तवाहिनीयोंमका रक्तसंचय जिस प्रमाणमें कम या ज्यादह हो जायेगा उसी प्रमाणमें उन द्रव्यघटकोंमे फर्क होकर नेत्राभ्यन्तरके दबावमे फर्क हो जायेगा । नेत्राभ्यन्तरका दबाव, हमेशाह कायम रहनेके लिये उसके द्रवपदार्थका यानी चाक्षुपजलका काफी तौरसे अलट पालट होनेकी क्रियापर, अवलम्बित रहता है । **पारसन** के मतानुसार नेत्राभ्यन्तरके दबावका नियमन करना यह नेत्रके घन-घटकोका असली कार्य होता है । नेत्रके घनघटक कायम ही होते हैं उनमें फर्क नहीं होता । यानी नेत्राभ्यन्तरके दबावमें फर्क होना यह बात घनघटकोंमें फर्क होनेपर अवलम्बित होती है । नेत्रमेंके घनघटकोमेंके द्रवघटक रक्त और लसिका ये होते हे और इन दोनोंका प्रमाणमें फर्क होता रहता है ।

नेत्राभ्यन्तर दबावका नापन

नेत्राभ्यन्तरके दबावका नापन करनेकी दो तरह होती हैं : **एक मैनामिटर यंत्र की** (वैरल्य नापन यंत्र) सहायतासे करनेकी तरह **इसीको आफथालमो मैनामिटरी** चाक्षुष वैरल्य नापन कहते है । इस तरहका इस्तेमाल सिर्फ रसायन प्रयोगशालाओंमें ही हो सकता है । रुग्णविषयक परीक्षामें इस्तेमाल करनेमें इससे धोका होता है और मुनासिब भी नहीं होगा क्योंकि प्रयोगके समय सूचीको नेत्रमे घुसाना जरूरी होती है । **दूसरी नापनकी तरहको टोनामेटरी** या **आफथालमो टोनामेटरी** कहते हैं । दोनोमें पहलीमे ही कुछ शास्त्रीय तौरकी अचूकता पायी जाती है । टोनोमेटरीकी भी दो तरह होती है । **एकमें** नेत्रको उंगलीयोसे दबाकर नेत्राभ्यन्तरके दबावका नापन करते है, और **दूसरीमें** भिन्न भिन्न यंत्रोकी सहायतासे नेत्राभ्यन्तरके दबावका प्रमाण जान सकते है ।

(१) मैनोमिटरी

इस पद्धतिमें नेत्राभ्यन्तर के घटकोका प्रत्यक्ष संबंध जलनिष्कासक नलिको पूर्व वेश्मनी में घुसाकर वैकल्यनापन यंत्रसे मैनोमिटर से जोडते है।इस यंत्र की असली बातें:—(१)इस यंत्रसे निकाली हुई वक्र रेषाका विस्तार इतना बडा होना चाहिये कि जिससे दबाव में के चढ उतार के सूक्ष्म फर्कोका ठीक तौरका लेखन दिखाई पडे; (२) इसके संवादि क्रियामें कुछ भी ढील न हो : (३)इससे दबावके फर्कोंका विस्तार और क्रमावस्थाके संबंधो का लेखन बराबर होवें । ख्यालमें रखना कि इस यंत्र का नेत्रमें इस्तेमाल करनेके समय ऐसी दक्षता लेनी चाहिये कि नलिको नेत्रमे घुसानेके समय नेत्रमे के दबावमें बाहरसे जलका प्रवेश होनेसे या नेत्रमेंसे जल बाहर गिरनेसे फर्क न होगा । यह बात सूक्ष्म वैकल्य नापन यंत्र मैक्रो मैनोमिटर से, या खास समतोलकारक यंत्र से (कापनसेटरी मैनौमिटर से) कर सकते हैं ।

(अ) सूक्ष्म मैनोमिटर का प्रचार **हेअरिंग** ने (१८६९) किया था । इस यंत्रमे एक कैशिक नली होती है जो ऊपरसे बंद होती है उसके नीचे हवा और उसके नीचे क्षार द्रावण रखा होता है और इस नली का संबंध सूचीदार जलनिष्कासक नली से होता

है। नेत्राभ्यन्तर जलके दबावसे नलीमेंकी हवा दब जाती है; ये विस्तारके फर्क इतने सूक्ष्म होते है कि सूक्ष्म दर्शक यंत्रसे भी ठीक तौरसे नहीं जान सकते। यही तत्व चाक्षुप मैनोमिटर को लगानेसे नतीजे ठीक मालूम होते है।

(ब) **समतोलकारक मैनोमिटर** (कापेनसेटरी मैनोमिटर) में तीन भाग होते है: एक निष्कासक नली (कैनुला) जो नेत्रमें घुसाई जाती है, नेत्राभ्यन्तर दबाव का नापन करनेकी लिये मैनोमिटर की बाकी हुई (अंग्रेजी यू के आकारकी) नली, इन दोनों के बीचमे रखा होता है एक यंत्र जिससे नेत्रमेंसे बाहर गिरनेवाले या नेत्रमे घुसनेवाले जल को निरोधक किया होती है।

होल्ट सेक रिन्डफ्लिअस्क लेबर का समतोलकारक मैनोमिटरमें (चित्र नं. ३५१) दूसरा एक मैनोमिटर बिचमे रखा होता है जिसका कार्य दर्शक कांटा जैसा होता

चित्र नं. ३५१
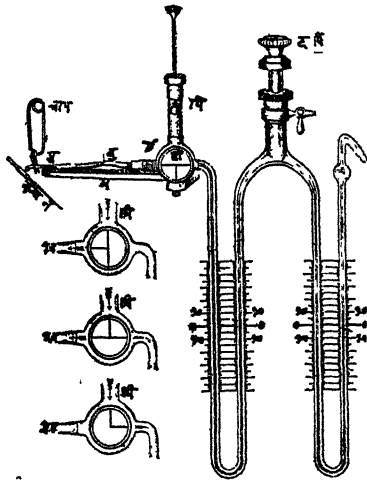
क्या-क्यानुला नली; चाप; टो पहले मैनोमिटर से संबंध रखनेवाली त्रिमार्गी टोटी; १, २, ३ ४ टोटीकी भिन्न भिन्न दिशा; पहले मैनोमिटरका जिससे दूसरे मैनोमिटर्स संबंध जुडा होता है; द. पि. दबाव का पिस्टन : पि पिचकारी

होल्टझेक रिन्डफ्लिअस्क का समतोलकारक मैनोमिटर

है; जिसमें के पारद का समतल पिचकारीसे (पि) उसको नीचे दबाके या उपर खींचकर कायम किया जाता है। और एक तीसरा दर्शक कांटा हवाका बुलबुला (बु) कैन्युला और मैनामिटरके बीचमे रखा हुआ होता है जो उपयोगी और अति सही होता है। मैनोमिटर की कांच की नली का व्यास १·१३ मि. मि. से ज्यादह नहीं होना चाहिये जिसमें १ क्यु. मि. मि. इतना ही द्रवांश रहे।

(क) **दृक्शास्त्रीय मैनोमिटर** (आपटिकल मैनोमिटर) **यंत्रसेही** अन्तरीय दबावकी नोद अचूक होती है। इस यंत्रमें एक छोटासा कोटर होता है जिसकी एक बाजूके नलीसे नेत्रसे संबंध जुडा जाता है, इस कोटरकी दूसरी बाजू परदेसे बंद की यी जाती है; इस परदेपर एक आरसा या ऐना होता है। नेत्रमेंके दबावके फर्क इस परदेको रुजु किये जाते है और उसके कंपनका परिवर्तन प्रकाशकिरण गुच्छसे होकर वह रुजु किया जाता है। इस यंत्रका इस्तेमाल पहले **सामोजलाफने** (१९२५) किया। **ड्यूक एल्डरके** दृक्-

शास्त्रीय मैनोमिटरका (१९३१) चित्र यहां दिया है। इस यंत्रमें दृक्शास्त्रीय मैनोमिटरका और समतोलकारक मैनोमिटरका मिलाप है। पारद मैनोमिटरसे परम दबावका निर्धारण होता है या उसमेंके मंद फर्क दर्ज किये जाते है और परदेके मैनोमिटरसे दबावमें जल्द होनेवाले फर्क रुजु होते है।

चित्र नं ३५२

ड्यूक एल्डर का दृकशास्त्रीय और समतोलकारक मैनोमिटर
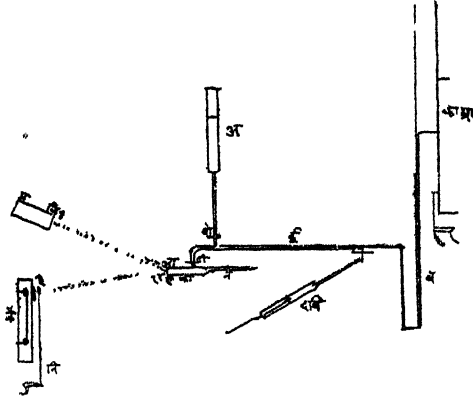
कैनुला न बेलनकी आकारकी कोटर (का) में जाती है, इस की दूसरी बाजू रबरके (र) परदेसे बंद की जाती है। इस परदेके सीरे पर एक सूक्ष्म आयना (आ), होता है जो प्रकाश उगम (प्र) के किरणोंको (प्र १, २, ३)जो चिरमें (चि) जाकर कैमेरा (कै) के घुमते सूक्ष्मपट पर परावर्तित होते हैं। दूसरा ऐना (ऐ) जो इस कोटरके बाजूको लगा होता है जो भूमिरेखा (बेसलाईन) जैसा होता है जिससे निकाले हुए ट्रेसिंगमे विद्युत नियंत्रित निशानी (नि) से अवरोधन होता है। कांचके कोटरका पारद मैनोमिटरने (ब) ट्रेसिंग कायमोग्राफ (का. ग्रा.) से संबंध होता है जिसके बीचमें हवाका बुलबुला होता है ऐसी आडी चिन्हित कैशिक नली (ई) होती है। इसके एक ओरको आगार (अ) होता है और दूसरी ओरको दबावकी पिचकारी (द. पि.) होती है।

यह यंत्र रिंगरके द्रावणसे भरा हुआ होता है जिसमेंसे हवा पूर्णतया निकाली जाती है। और आगार (अ) मेंका दबावका प्रमाण कल्पना किये हुअे लगभग नेत्राभ्यन्तर दबाव (२५ मि. मि. Hg) इतना रखा जाता है। टो, टी टोटीयोका खोलकर खुले नलीमेंसे जल वहने लगतेही उसको शुक्लकृष्णसंधिके पास तारकापिधानमेंसे पूर्व वेश्मनमि तारकाको समानान्तर जैसी घुसाते है। नली नेत्रमें घुस जाते ही टो टोटीको बंद करके दबाव की पिचकारीसे इस तौरसे समतुलित अवस्था की जाती है कि हवाका बुलबुला स्थिर रहता है; इस बिन्दुपर नेत्राभ्यन्तरका दबाव ब में दर्ज किया जाता है। इस तरहसे दबाव १० मिनिट तक स्थिर रहनेके पश्चाद टी टोटीको बंद किया जाता है जब सिर्फ कोटर (को) का नेत्रसे संबंध रहता है। उसके पश्चाद दबावको दृक्शास्त्रीय पद्धतिसे कैमेराके सूक्ष्मपटपर रुजु किया जाता है।

टोनामेटरी

नेत्राभ्यन्तर के कुल दबाव का नापन टोनोमिटर से बिलकूल अचूक तौरका होता है ऐसा साफ साफ नहीं कह सकते। नेत्राभ्यन्तर के घटकोंसे शुक्लपटल और तारकापिधान हमेशा तनाव की अवस्थामें रहते है। तनाव दबाव की वजहसे होता है यह बात सत्य है लेकिन ख्यालमें रखना कि तनाव दबाव से सर्वथा समभी नहीं है या उसके फर्कोंके साथ तनाव में फर्क नहीं होते। इस यंत्र से जो कुछ होता है वह नेत्रगोलक की

मुद्रणीयता (इमप्रेसीबिलिटी) का नापन होता है। मुद्रणीयतासे तनाव का अनुमान निकाल सकते है और तनाव के अनुमान से नेत्राभ्यन्तर के घटकोंके दबाव से सिद्धान्त निकाल सकते है। ये अनुमान और सिद्धान्त ऐसी बातोंपर अवलम्बित होते हैं जिनका ठींक प्रमाण ठहराना मुष्किल होता है, और इन संबंधके प्रयोगोंके निर्धारण की नीव कितनीही हो, और च्यूं कि व्यक्तिगत फर्कोंसे निर्दिष्ट विषय परके निकाले हुए नतीजे औसद प्रमाणोंपर रचे होनेसे वे सिर्फ लगभग जैसे होते है और उनमें अनिश्चितता होना संभवनीय है। ख्यालमें रखना कि नेत्रगोलक के बाह्य पृष्ठको लगाये हुअे दबावसे जैसे कि टोनामिटर यंत्र नेत्रपर रखनेसे, जो असर होगा उससे निकाले हुअे प्रमाण में गलती रहना संभवनीय है।

तनाव और नेत्राभ्यन्तर के दबाव के संबंधमें नेत्रकी वक्रता की त्रिज्याके अनुसार फर्क होता है यानी नेत्रगोलक का विस्तार और नापे हुअे रेखांश रेषा की वक्रता के अनुसार इसमे फर्क होता है।

नेत्रकी दीवालों को बेडोल करनेमें जो प्रतिरोध होता है उसका प्रमाण निश्चित करनेमे टोनामेटरी उनकी तनाव की अवस्था बतलाने का मार्ग होता है। उंगलीयों से दबाव नापन की पद्धतिके सिवा, यह दो मेंकी कोनसे ही एक तत्वका इस्तेमाल करने से हो सकता है।

(अ) असमतल मापक टोनामिटर्स (अप्लानेशन टोनामिटर्स)

असमतल मापक टोनामिटर्स का कार्य नेत्रगोलक की पृष्ठ को सपाट करने में जरूरी दबाव का नापन करना यह होता है, इसमे नेत्राभ्यन्तर के दबाव का प्रमाण, इस्तेमाल किये हुअे दबाव के प्रत्यक्ष प्रमाण मे और सपाट किये क्षेत्रके व्युत्क्रम प्रमाण में होता है। लेकिन इसके अवजारो का इस्तेमाल करने में शुक्लपटल और तारकापिधान की मोटाई और लचक से इसमें बहुतसी गलतिया होनेसे इस पद्धतिका इस्तेमाल नहीं होता।

(ब) छापा या संस्करण कारक टोनामिटर्स

इनका इस्तेमाल ज्यादह प्रमाणमें होता है। इसमे नेत्रके दीवाल पर खास प्रमाणके दबाव से किये हुअे छापा की गहराई का प्रमाण नापते हैं। ऊंगलीसे दबाव नापन की तरह इसी सदरमें आती है।

उंगलीयोसे दबावका नापन करनेकी तरहः—शीघ्र और साधारणतया बिनचुक होती है। प्रयोगः—जिस रोगीका नेत्राभ्यन्तरका दबाव नापनेका है उसको अपने सामने कुर्सीकर बिठाकर उसको नेत्रच्छदोंको आहिस्तेसे बंद करनेको कहना। फिर दोनों हातोंकी तर्जनीयोंकी बंद किये हुए नेत्रच्छदपर रखना। पहले एक तर्जनीसे नेत्रच्छदमेंसे नेत्रगोलकको दबाना; फिर दूसरे तर्जनीसे ही इसी तरहसे नेत्रगोलकको दो या तीन दफे तर्जनीसे दबानेसे तर्जनीके नीचे नेत्रगोलकपर कुछ ठसा छापा होता है या नहीं इसको देखना। इस छापाको ठसाको गिरानेके लिये जितना जोर लगता है उसपरसे नेत्राभ्यन्तरके दबावका प्रमाण आसानीसे और बेचूक जाच सकते है। तर्जनीको नेत्रच्छदपर रखनेके समय बीचकी और बाजूकी उंगलीया अनुक्रमसे भ्रू और कनपुटीपर रखना चाहिये इसको भूलना नहीं। दबावके प्रमाणका बोध होनेके लिये निम्न लिखित चिन्होंका इस्तेमाल किया है। द यानै नैसर्गिक दाबः द+1 दबाव थोडा बढ गया

है: द+२ दबाव खूप बढ गया है, और द+३ यानी दबाव इतना ज्यादह बढ गया है कि नेत्रगोलक फत्तर जैसा कठण हुआ है ऐसा समझना। इसके विपरीत द्–१ दाब नैसर्गिकसे कम है;द्–२ दबाव बहुतही कम हुआ है और द्–३दाब बिलकूल ही नहीं ऐसा समझना।

इस तरहसे नेत्राभ्यन्तरका दबाव जाचनेमें हरएक व्यक्तिके जाचनेमें थोडा कम या ज्यादह फर्क व्यक्तिके अनुसार रहेगा। दोनोंकी निरीक्षण पारस्परिकसे ठीक मिलेगा ऐसा होना संभव नहीं। इसी लिये अनेक तरहके दाब नापनेके यंत्र पैदा हुए है। उनमेंसे किसीभी एक यंत्र का इस्तेमाल करना चाहिये। लेकिन इस्तेमाल करनेके वक्त जिस यंत्रकी रचना सादी और आसानीकी होगी ऐसे यंत्रको पसंद करना मुनासिब है।

नेत्राभ्यन्तर का दबाव नापनेका यंत्र पहले पहल **फानग्राफ** साहबने प्रचारमें लाया (१८६२)। इनके पश्चाद **होमर, डान्डर्स, स्नेलन** इन्होंने दबाव नापन के यंत्र निकाले थे। इनके पश्चाद **वेबर प्रीस्टलेस्मिथ, कास्टर, म्याकलीन** (चि. नं. ३५५) **साउटर** आदि लोगोंने उसमें बहुत सुधार किये। लेकिन हालमें **स्किओटझ** ने (१९०५) तयार किया हुआ यंत्र (चि: नं. ३५३) और उसमें **गैडल** ने सुधार किया हुआ यंत्र (चित्र नं. ३५४) ज्यादह प्रचारमें है।

चि. नं. ३५३ चि. नं. ३५४

चि. नं. ३५५
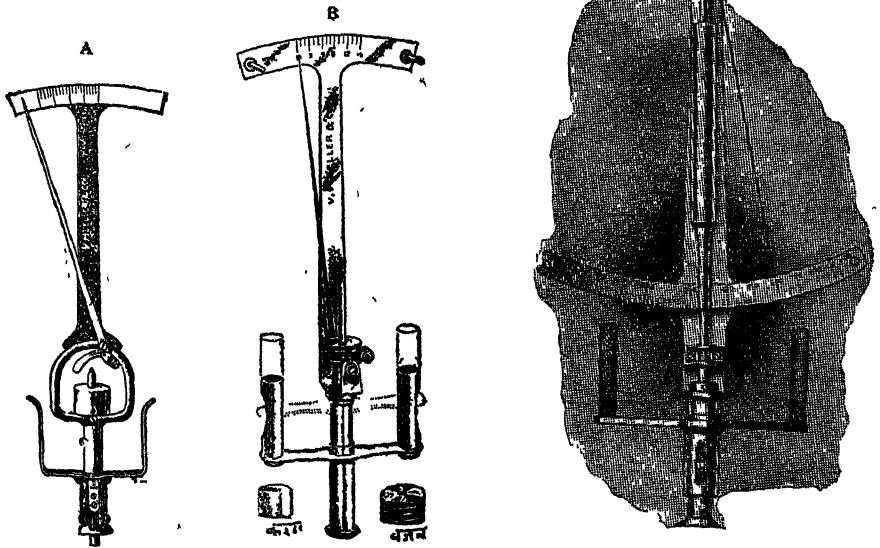
स्किओटझ के और ग्रेडल के यंत्र खडी स्थितिमें होते हैं, और उसके नीचे की सीरेको लगी हुई वक्र पट्टी का नतोदर पृष्ठ तारकापिधान के उन्नतोदर पृष्ठ को ठीक तौरसे मिलती जुलती होती है। इस पट्टीके बीचमें छिद्रसे ऊपर तथा नीचे सरकनेवाला एक डन्डा होता है। इस डन्डे के नीचेकी सीरेसे तारकापिधान का उन्नतोदर पृष्ठ दबा जानेसे उसपर खड्डा या छाप होता है। इस खड्डे की गहराई का प्रमाण, बीचके डन्डे की ऊपरकी सीरेसे ऊपर

रखी हुई तख़्ते को स्पर्श हो कर उसमेंके दर्शक काटे में जो चलन होता है, उससे जान सकते है और इस दर्शक काटेके चलन के प्रमाण से नेत्राभ्यन्तर दबाव का नापन हो सकता है। इनके साथ ५.५; ७.५; १० और १५ मिलिग्रामके वजन होते है। इन दोनों टोनोमिटर के इस्तेमाल में यह आफत होती है कि वजनोंको बारबार बदलना और हर वक्त यंत्र के साथ के नकशेपर के वक्र रेषासे तुलना करना जरूरी होती है। ये यंत्र (१) बिनचूक होते है; (२) उमर या वक्रीभवन दोषका नेत्राभ्यन्तर दबाव पर असर नहीं होता; (३) नैसर्गिक नेत्रमें अट्रोपीन, एसरीन या कोकेन जैसी दवाओंसे कुछ फर्क नहीं होता; (४) नैसर्गिक दबाव का प्रमाण हमारे संशोधनमे १९ से २५ मि. मि. इतना था (अन्य संशोधकों का प्रमाण १५ से २५ या १७ से २५ था)। २५ से उपर और १५ के नीचेका प्रमाण संशयास्पद मानना चाहिये; (५) इन यंत्रोंसे नेत्राभ्यन्तर का कमतर और ज्यादहतर प्रमाण जान सकते है। इस **यंत्र का इस्तेमाल करनेके** पहले ख्यालमें रखनेकी बातेः—इस यंत्रके साथ जो धातूका उन्नतोदर पृष्ठ का टुकडा होता है उसपर यंत्र को रखकर नीचे दबाके देखना कि दर्शक कांटा शून्य स्थानपर रहता है या नहीं; फिर नेत्रमें कोकेन आदि दवाऐं डालकर तारकापिधानको सून करना; रोगीको मेजपर सुलाकर उसको दोनों नेत्रोंसे ऊपरकी छत की ओरको देखनेको कहना; नेत्रच्छदोंको ऊंगलीसे दबा कर नेत्रको स्थिर करना; यंत्रकी नीचेकी फुटपट्टीको तारकापिधानके ठीक मध्यभागको लगाना; यंत्रको बारबार लगाके निरीक्षण का ठीक फायदा लेना। पहले यंत्रमें ५.५ मि. ग्रामका वजन रखकर यंत्रको तारकापिधानपर रखना। नैसर्गिक दबावके नेत्रगोलकमें दर्शक कांटा ५।६ मि. मि. पर स्थिर होता है। दबाव बढा हो तो दर्शककाटा बीचके शून्यके स्थानसे उसकी दूसरी ओरको जाकर स्थिर होता है। फिर योग्य वजनोंको रखकर दर्शककाटा योग्य स्थानपर कब लौट आता है इसको देखना। कोनसे वजनसे दर्शककाटा योग्य स्थानपर स्थिर होता है उस वजनके मि. मि. बराबर चित्रमेंके पारदका दाब कितना है इसको देखकर उसपरसे नेत्राभ्यन्तरका दबावका प्रमाण जान सकते हैं।

मैकलीन का प्रत्यक्ष पढनेका टोनोमिटरसे दबाव का प्रमाण प्रत्यक्ष तौरसे उसकी वक्र परसे जान सकते हैं। इस यंत्रसे पहले के दो खतरे निकल जाते है इसका बाह्य स्वरूप **शिकओटझ** के यंत्र जैसा होता है, इसका आसानीसे इस्तेमाल कर सकते है और इसमें वजनोका या साकेतिक वक्ररेषाके चित्र की जरूरी नहीं होती।

मार्टिन कोहेन का पारद टोनोमिटर—यह **कोहेन का यंत्र** इस नामसे जाना जाता है। इस यंत्र की रचना भौतिक शास्त्रके अनुसार की गयी है। इस यंत्रसे तारकापिधान की प्रतिरोधकी शक्ति (रेझिसटन्स आफ कार्नियां) पारद की खास मिं. मि. में की ऊंचाई के मर्यादा से जान सकते है। पारद की यह ऊंचाई नेत्राभ्यन्तर के दबाव के प्रमाणमे कम या ज्यादह होती है। इस यंत्रसे किया हुआ नापन अचूक और ठीक होता है। कांचकी नलीमें के पारद का दर्शक–निर्देशक–ऐसा उपयोग करनेसे अन्य दर्शक के कंपन के परिणाम इसमें नहीं दिखाई पडते, वजनो को बारबार बदलने की जरूरी नहीं होती, और साकेतिक चित्र की जरूरी नहीं होती। इस यंत्रमें पारदके मैनामिटर के तत्वपर पारद के

एक वजन का इस्तेमाल करनेसे इससे किये हुअे संशोधनमें मैनामिटरकी अचूकता पायी जाती है। यह यंत्र धातुके नलीका बनाया है, जिसके नीचेकी सीरेको एक फुटपट्टी और ऊपरी सीरेके भीतर पारदसे भरा हुआ एक छोटासा हौद होता है। हौदके नीचेका तलका संबध दट्टेसे (पिस्टनसे) होता है और हौदके ऊपरके सीरेका संबंध वायुरुद्ध (इस प्रकार बंद कियी हुई कि उसमें वायुका प्रवेश न हो सके) काचकी कैशिक नलीसे होता है। इस कांचके नलीके इर्दगिर्द प्रमाणपट्टी होती है जिसपर पारदकी ऊंचाईका प्रमाण शून्यसे ९० मि. मि. तक लिखा होता है। यंत्रको पकडनेके लिये धातूके नलीके इर्दगिर्द तरकीब होती है जिससे यंत्रको योग्य स्थानपर स्थिर कर सकते है। यंत्रका वजन ४४ ग्राम होता है।

बालिस्टिक टोनोमेटरीः—नेत्राभ्यन्तर दबावके नापनकी यह एक तरह होती है। इसमे प्रमाणांकित अवस्थाओंमें तारकापिधानको ठकरानेवाले सूक्ष्म हातौडीके जो प्रतिक्षेप होता है उनका छायाचित्रण करनेपर यह पद्धति अवलम्बित होती है। इसकी प्रतिक्रियाकी भौतिक बातोंका जो असर होता है वह जटिल होता है और उसकी व्याख्या करना मुष्किल होता है क्योंकि नेत्रगोलककी स्थितिस्थापकता और अन्य प्रश्नोंका अभि पूरा संशोधन होना जरूरी है और फिर इस पद्धतिका प्रमाण निश्चित करना संभव होगा।

अच्छेसे अच्छे टोनोमिटरके नापनमे गलतियां बहुत होती हैं इसको ख्यालमें रखना। गलतिया होनेके कारणोंमें यंत्रका वजन, उसके इस्तेमालकी पद्धति, नापन करनेका वक्त, नापनयंत्र द्वारा बतलाये हुअे परिमाणों की संख्या, और नेत्रकी छन्ना होनेकी प्रणाली की उपयुक्तता क्यो की यंत्र लगानेके समय यंत्र के वजन से नेत्राभ्यन्तर दबाव बढ जाता है लेकिन उसके बाद उससे नेत्राभ्यन्तर जल का कुछ प्रमाण बाहर निकल जानेसे दबाव कम होता है, ऐसी बाते होती हैं।

नैसर्गिक नेत्राभ्यन्तर दबाव की मर्यादाः—बम्बई में हमारे **भूमया पोशट्टी अशवाल म्युनिसिपल धर्मादा नेत्रके रुग्णालयमें** सन १४९० में १२०२ सौं दर्दीओंके नेत्रोमेंका नेत्राभ्यन्तर दबाव नापा तब हमको यह उसका औसद प्रमाण १९ से २५ मि. मि. इतना होता है ऐसा मालूम हुआ। यह प्रमाण १९ मि. मि. से कम हो तो नेत्राभ्यन्तर का दबाव नैसर्गिकसे कम है ऐसा समझना और २५ मि.मि. के पारद के ऊंचाई पर हो तो वह अवस्था संशयास्पद है ऐसा समझना। इसमें जाती, उम्र, ऊंचाई के स्थानमें रहना आदि बाह्य बातोसे—नेत्रमें किसी तरहकी विकृति न होते ही—नेत्राभ्यन्तर के दबावमें उतार चढाव हो सकता है ऐसा कई लोक मानते हैं। लेकिन दिनमान के भिन्न भिन्न प्रहरोंमे, नैसर्गिक नेत्रों का दबाव देखा जाय तो उसमें कुछ फर्क नहीं दिखाई पडता। ऊमर और नेत्राभ्यन्तर का दबाव इन दोनोंमे कुछ कार्यकारण संबंध नहीं है ऐसा भी कोई मानते है। एक ही आदमी के दोनों नेत्रोंमें का दबाव समसमान होता है ऐसी भी कुछ ठीक बात नहीं है।

देखे हुअे नेत्रोंकी खास संख्या २३९४ थी : क्योंकि दस आदमीमें सिर्फ एक ही नेत्र था।

इस २३९४-नेत्रोंमेंसे सिर्फ ४ लोगोंमे ३५ मि. मि. इतना नेत्रमेका दबाव था। और सिर्फ तीन नेत्रोंमें १३ मि. मि. इतना दबाव था और एकही नेत्रमें १० मि. मि. इतना दबाव था। इन २३९४ नेत्रोंसे २२७५ नेत्रोमें याने ९५ % मे नेत्राभ्यन्तर का दबाव **पारदके १९ से २५ मि. मि. के ऊंचाई इतना था।** सिर्फ ३ % लोगोमें (७३ लोग) दबाव का प्रमाण ३० मि. मि. इतना था। और सिर्फ १ % १७ मि. मि. इतना था। दस लोगोंमें (६ पु. ४ स्त्री) नेत्राभ्यन्तरका दबाव ३० मि. मि. से ज्यादह था। याने हरएक १३० लोगोमे १ में नेत्रभ्यन्तर का दबावका प्रमाण ज्यादह होता है। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रीयोंमें नेत्राभ्यन्तर का प्रमाण ज्यादह बढ़ा गया था ऐसा मालूम हुआ। ८४५ पुरुषोंमें तीन लोगोमे ३ % ३० मि. मि. से ज्यादह दबाव था : और ३७५ स्त्रीयोंमें ७ स्त्रीयोमे (२.० %) दबाव ३० मि. मि. से ज्यादह था। दाहिने नेत्रकी अपेक्षा बाँये नेत्रमें दबाव का प्रमाण ज्यादह था (१०४०–१०८९)

पाश्चात्य आठ संशोधोको के निरीक्षण का **क्रिडलन्ड** ने औसद प्रमाण निकाला तो वह १९. १ से २६. १ मि. मि. इतना था। यह प्रमाण नीचे के सारिणें से होगा।

सारिणी ३०

संशोधन का नांव	साल	नेत्रोंकी संख्या	कमसे कम दबाव	ज्यादहसे ज्यादह
स्क्रिमोटस	१९०९	——	१९	३०.
लँगान छेद	१९१०	६४	२२	३२.
स्टूक	१९१०	१००	१५.५	३३.
पारपल	१९१०	९४	१९.	२९
वागनर	१९११	१००	१७	३५
रौटा	१९११	——	१९	२५
हैलब्रू	१९११	६४	१५.५	३२
बायोटी	१९११	——	१७.	३२
ओइडलिग	१९११	——	१७.	३४
डिझिस्की	१९१२	७०	१५.५	३०
टयूनूस	१९१२	——	१७.५	३०.५
पिसारेले	१९१५	३०	१३	३५
हाईम	१९१६	२६	२४	३५
एलमिग	१९१७	——	१९	२५
क्रिडलन्ड	१९१७	१००१	१६	२८
वेडर	१९१८	१६०	१६	२८
सीजैस्गिं	१९२१	२१८०	१३	३५
आन्द्रेसन	१९२८	४४७	१२	३५
डी. डी. साठये बम्बई	१९४०	२३९४	१०	३५

नेत्राभ्यन्तर दबाव हमेशाह कायम रखनेके व्यूहका व्यापार

शरीरके रक्तका दबाव बढ गया, या आनुकंपिक मज्जामंडलके असरसे नीलाअें फुल गयी हो तो तारकातीत पिंडकी रक्तवहा केशिनीयोंकी शाखाअें फुल जाकर उसमे रक्तप्रवाह ज्यादह होनेसे नेत्राभ्यन्तरमेके चाक्षुपजलका आश्राव ज्यादह होता है। और फिर नेत्राभ्यन्तर दबाव केशिनीयोमेंके दबावसे हद्दसे ज्यादह बढ जाता है। और वे दबी जाती है जिसकी वजहसे नेत्रमें जानेवाले रक्तका प्रमाण कम होता है, जब उसके साथ आन्तरोत्सर्ग श्राव कम होता है या बिलकुल नहीं होता, और फिर नेत्राभ्यन्तर दबाव कम होता है। आन्तरोत्सर्ग श्राव होना नेत्राभ्यन्तरके दबावपर अवलम्बित होता है। नेत्राभ्यन्तरके आन्त-रोत्सर्गका नियमन आनुकंपिक मज्जामंडलसे होता है जिनके तन्तु रक्तवाहिनीयोंको चारो ओरसे लपेटे रहते हैं और इनकी क्रिया भी जोरदार होती है। ग्रीवामेंके इस मज्जामंडलके उद्दीपनसे रक्तका दबाव बढ जाता है, कनीनिका विस्तृत होती है, तारकातीत पिंडका आन्तरोत्सर्ग ज्यादह होता है और **मूलर्स** का स्नायु संकुचित होता है। इस प्रयोगमें **मूलर्सके** स्नायुके आकुंचनसे नेत्राभ्यन्तर दबाव बढता है ऐसा माना गया है। ग्रीवामेंके ऊपरके भागमेके आनुकंपिक मज्जामंडलको निकाल लेनेसे ये सब लक्षण विपरीत जैसे होते हैं:—यानी रक्तका दबाव कम होता है, कनीनिकाका संकुचन, तारकातीत पिंडके श्रावको रुकावट और **मूलर्स** का स्नायु शिथिल होना ऐसे लक्षण होते हैं।

नेत्रके **ऐच्छिक चालक स्नायुओंके कार्यसे** नेत्राभ्यन्तरके दबावपर असर होता है। उनमें काट देनेसे या उनका भ्रश होनेसे, रक्तका दबाव कायम रखनेसे ही, नेत्राभ्यन्तर दबाव का प्रमाण आधेसे कम होता है; इसके अलावा इन स्नायुओंके आकुंचनसे दबाव बढ जाता है।

पंचमी मस्तिष्क मज्जारज्जुको या उसके गैसेरियन मज्जामंडलका उद्दीपन कर-नेसे नेत्राभ्यन्तर दबाव बढ जाता है। गैसेरियन मज्जामंडलके पारके इस मज्जारज्जुको काटकर कटे हुअे पारके सीरेका उद्दीपन करनेसे नेत्राभ्यन्तर दबाव बढ जाता है। लेकिन रक्तका दबाव नहीं बढता।

आवर्तनीला को दबानेसे या उनको धागेसे बांधनेसे नेत्राभ्यन्तर दबाव बढता है।

नेत्रगोलमेंकी रक्तवाहिनीयोंमें के रक्तसंचयमें हमेशा फर्क होनेसे नेत्राभ्यन्तरके द्रव घटकोंमें फर्क होता रहता है। लेकिन यह फर्क नेत्राभ्यन्तरकी लसिका और चाक्षुष जलसे पूरा भर जाता है। रक्तवाहिनीयोंमेंके रक्तका दबाव और पूर्ववेश्मनीमेंका दबाव इन दोनोंमेंके फर्कोंपर चाक्षुष जलकी पैदाईशका प्रमाण अवलम्बित होता है। पश्चिमी यानी स्फटिकद्रव-पिंडकी वेश्मनी और चाक्षुषजलकी यानी पूर्व वेश्मनी इन दोनोंमेंका दबाव एकसरीखा होता है। दोनों वेश्मनीके दबावमें थोडा भी फर्क हो तो पीछेकी भागकी लसिका झिरपन कोनकी ओरको बहती है।

रोहिणीमेंके दबाव का परिणाम नेत्राभ्यन्तर दबावपर होता है। "केशिनीयोंमेंके रक्त का प्रसरण निष्क्रिय तौरका रहनेसे रोहिणीयोमेंके दबावके असर प्रत्यक्ष तौरसे नेत्राभ्यन्तर दबावपर होते हैं। मातृका रोहिणीको बांधनेसे या उंगलीसे दबानेसे दूसरे ओरके नेत्रमेंका

चि. नं. ३५६.

कुत्ते में का नैसर्गिक नेत्राभ्यन्तर दबाव। :उपरकी वक्ररेषा रक्तदबाव की (पारद मैनामिटर से) नीचेकी वक्ररेषा नेत्राभ्यन्तर दबाव की (चाक्षुष मैनामिटर) बडी लहरीयां श्वासोश्वास के चलन की और छोटी लहरिया रोहिणी स्पन्दन की है। (ड्यूक एल्डर

दबाव का यह प्रमाण ३·५ मि. मि. पारद इतना कम होता है, या औदर्यामहा रोहिणिके (एबडामिनल एओटा) दबावसे नेत्राभ्यन्तर दबाव बढता है; व्हेगस मज्जारज्जुके प्रान्तस्थ सीरके उत्तेजनसे दोनोंका, रक्तका दबाव और नेत्राभ्यन्तर दबाव कम होता है। सुषुम्नाकंदमेंके रक्तवाहिनीयोके चालक केन्द्र का,या शरीरके आन्तरिक यंत्रके मज्जातन्तुओंका और संज्ञावाहक मज्जारज्जुके मस्तिष्कीय सीरेका उत्तेजनसे दोनोमेंके दबाव बढते है।

लसिका वाहिनियोंमें से बाहर जानेके लसिकाके प्रमाणसे नेत्राभ्यन्तरका दबाव कम हो जायेगा इतना बडा कभी नहीं होता। लसिका वाहिनियोंमेंसे लसिका जितनी असानीसे बह सकती है उतनी आसानीसे चाक्षुषजल पूर्ववेश्मनीके झिरपन कोनमेंसे बाहर बह जाय तो नेत्राभ्यन्तर का दबाव बिलकूल कमति होकर नेत्रगोलक बिलकूल बिलबिला हो जायगा लेकिन पूर्व वेश्मनीमें के चाक्षुषजल का दबाव बाहरीके दबावसे नीलाओमेंके बढ़कर हो तो वह झिरपन कोनमेंके कांकताकार रंध्रमेंसे झिरपन होकर रक्तवाहिनियोंमें घुस सकता है। इसी कारणसे नेत्राभ्यन्तरका दबाव कमति हो जानेसे, नीलाओंमें के रक्त का दबाव बढ जानेसे, या फानटानाके अवकाशोमे खतरा पैदा होनेसे नेत्राभ्यन्तर का जल बाहर नहीं जायेगा और इस तरहसे फिर नेत्राभ्यन्तर के दबाव का और रक्तवाहिनियोंमें के रक्त का प्रमाण नैसर्गिक रह सकता है।

झिरपनेवाले कोनके बंद हो जानेके कारण

(अ) नेत्रगोलकके पिछले भागमेंका दबाव बढ जाना—

नेत्रगोलकमेंका स्फटिकमणि और उसका आदोलन बंद इन दोनोंसे मिलके एक पड़दा बनता हैं और उसकी वजहसे नेत्रगोलकके पिछला और सामनेका ऐसे दो भाग या खंड होते है। नैसर्गिक अवस्थामें दोनों भागोंमेंका दबाव समसमान होता है। लेकिन जब पिछले खंडमेंका दबाव सामनेकी भागकी अपेक्षा बढ जाता है, तब उसके जरियसे तारका और स्फटिकमणि सामने ढकेले जाते हैं और फिर तारकाका मूल झिरपन कोनको चिपक जाता है, जिससे झिरपनेका कोन बंद हो जाता है। और नेत्राभ्यन्तर दबाव बढ जाता है।

पिछले खंडमेंके स्फटिकद्रवपिंडमेंका दबाव बढ जानेके कारण:(१)—स्फटिक द्रवपिंडके पारदर्शक आवरणकी जलाभिसारकतामें फर्क होनेसे चाक्षुषजलके प्रसरणको रुकावट होकर स्फटिकद्रवपिंडमेंका दबाव बढ़ जायेगा; या (२) स्फटिकद्रवपिंडमें घुसे हुए द्रवोत्सर्गीक द्रव्योंमें ओजका अंश ज्यादह होनेसे उसकी जलशोषक शक्ति बढ जाकर, उसमें ज्यादह पानी सोख जानेसे उसका दबाव बढ़ जायेगा; या (३) तारकातीत पिंडकी प्ररोहाओं एकत्रित होनेसे स्फटिकमणिकी इर्दगिर्दकी खुली जगा कमति हो जानेसे पिछले भागमेंका जल-

पूर्ववेश्मनीमें जानेके बदले वहीं जम जाता है और फिर स्फटिकद्रवपिंडमेंका दबाव बढ़ जाता है। (४) नेत्राभ्यन्तरमेंका अर्बुद, श्राव या द्रवोत्सर्गसे दुय्यम काचताकी अवस्था पैदा होनेसे स्फटिकमणिके पिछले भागके अन्तस्थ घटकोंका प्रमाण बढ जाता है और स्फटिकमणि सामने ढकेला जाता है जिसकी वजहसे झिरपनका कोन बंद हो जाता है और फिर नेत्राभ्यन्तर दबाव बढ जाता है। (५) दृष्टिपटलकी मध्यनीलामेंका रक्त जमा हुआ हो तो स्फटिकद्रवपिंडमेंके द्रवभागमे ओजदार द्रवोत्सर्ग ज्यादह होता है। जिसकी वजहसे उसमें जल ज्यादह सोख जाता है। और फिर स्फटिकद्रवपिंडमेंका दबाव बढकर तारका तथा स्फटिकमणि सामने ढकेले जानेसे तारकाका मूल पूर्ववेश्मनीके झिरपन कोनको चिपक जाता है और वह कोन बंद हो जानेसे नेत्राभ्यन्तर दबाव बढ जाता है। (६) कनीनिकाका आच्छादन होनेसे, या कनीनिकाकी कडा स्फटिकमणिको चिपक जानेसे तारकातीत पिंडका श्राव तारकाकी पिछली ओरको जम जाता है। इस कारणसे **तारका तंबू** जैसी उंची होती हैं और तारकापिधानके पिछले पृष्ठको चिपक जाती है जिसकी वजहसे पूर्ववेश्मनीका झिरपन कोन बंद हो जाता है और फिर नेत्राभ्यन्तरका दबाव बढ जाता हैं। (७) तारकापिधानको छिद्र होकर उसमेंसे तारका बाहरीको आगई हो या तारका उसको चिपक गयी हो, या स्फटिकमणि उसके आवरणके साथ लगा हुआ ऐसा हो या स्फटिकद्रवपिंड तारकापिधानको चिपक जाय तो पूर्ववेश्मनीका झिरपन बंद हो जायगा और फिर नेत्राभ्यन्तरका दबाव बढ़ जायेगा। (८) हमजातसे तारका तारकापिधानसे छुटी नहीं होवें तो यह झिरपन कोन बंद होकर नेत्राभ्यन्तरका दबाब बढ जायेगा।

(ब) झिरपन कोनके रचनामें फर्क हो जाना

(१) स्क्लेमकी नलि हमजातसे ही न बननेसे चाक्षुषजलका बाहर जानेका रस्ता बंद हो जाता है जिस वजहसे नेत्राभ्यन्तरका दबाव बढ़ जाता है।

(२) संपादित अवस्थामें कांकताकार बंद कठण हो जाता है जिसकी वजहसे उसमेंसे चाक्षुष जलको झिरपनेको खतरा पैदा होता है और फिर नेत्राभ्यन्तरका दबाव बढ़ जाता है।

(क) चाक्षुषजलमें ओजस द्रव्योका प्रमाण बढ़ जाने से या पेशीदार घटकोंका प्रमाण ज्यादह होनेसे वह पूर्ववेश्मनीके झिरपन कोनमेंसे बरावर बाहर नहीं जा सकता; और फिर नेत्राभ्यन्तरका दबाव बढ जाता है। नेत्राभ्यन्तर दाह या नेत्राभ्यन्तरमेंका रक्तश्राव होनेसे चाक्षुषजलमें ओजस द्रव्योंका प्रमाण ज्यादह बढ जाता है, चाक्षुषजलमें ओजस द्रव्योंका प्रमाण बढ़ जानेसे झिरपनकी क्रिया होनेको देर लगती है।

नेत्रमें कोनसीही विकृति न होते ही सिर्फ बाह्य बातोंसे भी नेत्राभ्यन्तरके दबाव में कम या ज्यादह फर्क हो सकता है। रक्तके दबाव में फर्क होनेसे उसी प्रमाणमें नेत्राभ्यन्तर के दबावमें फर्क होता है।

आयतन के दबाव के फर्क

स्फटिकद्रवपिंड के आयतनमें फर्क होनेसे नेत्राभ्यन्तर दबाव पर असर होता है। उसकी क्षारीयता बढानेसे उसका आयतन बढ जाता है और उसकी आम्लीयता बढानेसे

वह कम होता है। इस संबंधमें संशोधकों मे एकवाक्यता नहीं दिखाई देती। नेत्रमें कमति समाभिसारक घोल (आयसोटानिक) के अन्तःक्षेपण से नेत्राभ्यन्तर दबाव कम हुआ और बढती क्षारीयता के घोलसे दबाव बढ गया ऐसा मेजमाप ने १९२४ में शोध लगाया। इसके अलावा ओगुची ने (१९२४) नेत्रमें क्षारीय तथा अम्ल द्रावण का अन्तःक्षेपण किया तो नेत्राभ्यन्तर दबाव बढा ऐसा मालूम हुआ।

नेत्राभ्यन्तर जलके आयतन के फर्कों से नेत्राभ्यन्तर दबावमें अभिसारक क्रिया या तात्विक क्रियाओंसे फर्क होता है। नैसर्गिक अवस्थामें शरीरमें के द्रव भाग के व्यवहारका नियमन, रुधिराभिसरणमेंसे घटकोंमें फेंके हुओ द्रवांशका प्रमाण और अभिसारणसे घटकोंमेंसे वापीस आये हुओ द्रवांशके प्रमाण इन दोनोंमेंके समतुलित अवस्थासे, होता है। नीलाओंमें अतिबलवर्धक नमकिन द्रावणका अन्तःक्षेपण करनेसे, पहले रक्तके दबावमें फर्क होकर पश्चाद नेत्राभ्यन्तर दबाव जल्द कम होता है और कुछ समयतक वह वैसा रह जाता है। इसके विपरीत रक्तके निस्सारक दबावसे कम दबावका घोलका रक्तप्रवाहमें अन्तःक्षेपण करनेसे नेत्राभ्यन्तर दबाव बढ जाता है। तात्विक तौरसे चाक्षुष जलको बाहर निकाल लेनेसे जैसेकि जलविमोचन (पारासेनटेसिस) से नेत्राभ्यन्तर दबाव कम होता है।

जटिल प्रतिक्रियाअें

केशिनीयोंके प्रसरण की संवादि प्रतिक्रिया

जब किसी कारणसे केशिनीयोंका प्रसरण होता है तब उनकी दीवालोंकी प्रवेशक्षमता बढती है और नेत्राभ्यन्तर दबावके फर्क, जो अंशतः प्रसरित रक्तवाहिनीया ज्यादह बडा क्षेत्र व्यापनेपर, और अंशतः केशिनीयोमेंका बढा हुआ जलस्थित्यात्मक दबावपर, अवलम्बित होते हैं इनके सिवा जीवनरसदार चाक्षुष जलमें प्रतिस्फाटिक घटकोंका प्रमाण बढ जाता है।

दवाओंकी क्रियाः—

· **एडरीनलीनके** अन्तःक्षेपणसे नेत्राभ्यन्तर दबाव बढता है लेकिन बडे मात्रासे दबाव कम होता है। **पिटयुइटरीन** से नेत्राभ्यन्तर दबाव कम होता है। **हिस्टामाईनसे** नेत्राभ्यन्तर दबाव बढता है। **अट्रोपीन** से सूक्ष्म रक्त वाहिनियोंका प्रसरण होनेसे नैसर्गिक नेत्रोंमें नेत्राभ्यन्तर दबाव बढता है। **फायसोस्टिगमीन एसरीनसे** नैसर्गिक नेत्रमें नेत्राभ्यन्तर दबाव बढता है। **कोलीन** कमबलकी मात्रासे नेत्रा भ्यन्तर दबाव कम होता है लेकिन बलवान मात्रासे दबाव बढता है। **निकटीन** से नेत्राभ्यन्तर दबाव बढता है।

अमील नायट्राईट, निकटीन, पायलोकारपिन, किनाईन और **एडरीनलीन** जैसी दवाओंके अन्तःक्षेपणसे नेत्राभ्यतर के दबाव मे फर्क होता है, क्यों कि इन दवाओंका असर रक्त के दबाव पर होता है। **एट्रोपीन** से (१%) और **कोकेन** से (२%) नेत्राभ्यन्तरके दबाव पर कुछ भी असरनहीं होता; लेकिन (५%) **कोकेन** से या **पायलोकारपिन** या (½%) **एसरीन सालिसिलेट,** या **डायोनिन** अगर ओकोलीन नेत्रमें डालनेसे दबाव कम होता है। गर्दनमेंके नीचेके आनुकंपित मज्जामंडल का उद्दीपन करनेसे नेत्राभ्यन्तर दबाव बढता है लेकिन उसीको निकाल डालनेसे दबाव कमति होता है। इसी तत्वपर कांचताके

लिये इस मज्जामंडल को निकाल डालने को कहा है; लेकिन इसका असर ५।६ मास तक रहता है और उसके बाद दबाव बढ जाता है।

प्रकाशकी क्रिया:—अंधियारेकी संयोजनतामें नेत्रकी केशिनीयोंका प्रसरण होता है जिससे नेत्राभ्यन्तरके दबानमें फर्क होता है।

जीवघटकतन्तु (एकज्ञान) की प्रतिक्रिया:—त्रिमुखी मज्जारज्जुके जीवघटक तन्तुओंके उद्दीपनका असर नेत्राभ्यन्तर दबावपर जोरदार होता है जो हिस्टामाईनके असर जैसा होता है। तारकाविधानकी या तारकाकी इजासे नेत्राभ्यन्तर दबाव बढ जाता है। पंचमी रज्जुको काटनेसे यह असर निकल जाता है।

दृक्संधान व्यापार और तारका के चलन:—दृक्संधानकी क्रियाका नेत्राभ्यन्तर दबावपर कुछ असर नहीं होता। इसी तौरसे नैसर्गिक नेत्रके नेत्राभ्यन्तर दबावपर कनीनिकाके प्रसरण या संकुचनका असर नहीं होता। लेकिन यह बात भी सत्य है कि चाक्षुपजलके बाहर जानेके मार्गोंमें अडचण होती है; जैसे कि कांचताकी अवस्था या काचताकी पूर्वकी अवस्था, या जीवनरसद्वार चाक्षुपजलकी अवस्था। पूर्ववेश्मनीके कोणकी तारकाके मूलसे रुकावट और तारकाका शोपक पृष्ठकी कमी इनसे नेत्राभ्यन्तर दबाव बढ जाता है यह पहले ही कहा है।

नेत्राभ्यन्तर और मस्तिष्कमें के दबाव का संबंध:— नेत्राभ्यन्तर दबाव और मस्तिष्क सौषुम्नीय तरल के (सेरिब्रो स्पायनल फ्लुईड) दबाव में, आम रक्त का दबाव के बदलोपर या शरीर की अभिसारक अवस्था से, समसमान फर्क होते है तो भी दोनो स्वतंत्र होते है और दोनो का कुछ पारस्परिक असर नहीं होता यह ख्यालमें रखना। एक के स्थानिक अवस्थाका असर दूसरे में प्रत्यावर्तित नहीं होता. नेत्रमेंसे जलविमोचन करनेसे मस्तिष्क दबाव पर कुछ असर नहीं होता या कटिप्रदेशमें के सूराख से (लम्बर पंकचर) नेत्राभ्यन्तर दबाव पर कुछ असर नहीं होता।

नेत्राभ्यन्तर का दबाव बढानेवाली नेत्र की विकृतिः— कांचता, नेत्राभ्यन्तर के अर्बुद, तारका और तारकातीत पिंडकी प्राथमिक दाहज अवस्था, और नेत्राभ्यन्तर का रक्तश्राव ये होती है।

नेत्राभ्यन्तर दबाव कम करनेवाली नेत्र की विकृतिः— नेत्रगोलक को छेद गिराने वाली जखम दृष्टिपटल की स्थानभ्रष्टता, तारका और तारकातीत पिंड के दाहकी अन्तिम अवस्था, नेत्रगोलक का अपोषणक्षय, स्फटिकद्रवपिंड की ज्यादह तरलावस्था, नेत्रगोलक को कुंद हथियारका मार लगना, मधुमेहज मूर्छा, शुक्लपटल का भीतरी ओरसे फटजाना, तारकातीत पिंड की पुरो रोहिणीयों का फटजाना. काकताकार बंद का विदारण, तारकातीत पिंडके स्नायुका विदारण ये होती है।

नेत्राभ्यन्तर दबाव और रक्तदबाव का संबंध

नेत्रकी वेश्मनीयोंके जलका दबाव रक्तदबावसे पाया जाता है। नेत्राभ्यन्तर के केशिनियोंमेंके दबावमें रक्तदबाव के बढाव और ढलाव से फर्क होते है। और इसी वजहसे साधारणतया रोहिणीयोंमेंके दबावका उनपर असर होता है। नेत्राभ्यन्तरमें का रक्त का दबाव

वेश्मनीमेंके दबावसे ज्यादह होता है। यदि यह अवस्था विपरीत तौरकी हो तो रक्तवाहिनियोंकी पतनावस्था (कोल्याप्स) पैदा होती है। वेश्मनीमेंका दबाव साधारणतया जब पारदके २६ मि. मि इतना होता है तब तारकातीतपिंडीय केशिनियोंमेंका दबाव पारदके ५० मि. मि. या थोडा ज्यादह होता है, और रोहिणीयोंमें इससे बढकर यानी पारदके ९० से १०० मि.मि.इतना होता है। नेत्रके नैसर्गिक और सब अनैसर्गिक अवस्थामें भी वेश्मनीमेंके दबाव पर रक्त के दबाव का असर, जबतक उसका प्रसरण होता है, होता रहता है, और इसी वजहसे साधारणतया रोहिणीयोंमे के दबाव का उनपर असर होता है यह ख्यालमें रखना।

सन १९४० मे हमारे बम्बई कामाठीपूराके नेत्ररुग्णालय में नेत्राभ्यन्तर दबाव के नापन के बाद हमने १४७ लोगोंमें (पुरुष ९१ और स्त्री ५६) उनका रक्तदबाव नापा था तब मालुम हुआ कि उनके रक्तदबाव का औसद प्रमाण हृदय आंकुचन (सिस्टालिक) और हृदय प्रसरण (डायस्टलिक) १३५.२ मि. मि./१०३.२ मि. मि. था; लेकिन यही प्रमाण ९१ पुरुष वर्गमें १३४.७/१०१.८ मि. मि और ५६ स्त्री वर्गमें १३६.५/१०५.३ मि. मि./था।

वयमान के अनुसार (१६–७८) ९१ पुरुषोमें सिर्फ ३५ लोगोंमे हृदय आकुंचन/प्रसरण में के रक्त के दबाव का प्रमाण नैसर्गिक रक्तदबाव के प्रमाण इतना या थोडा कम यानी १३४.७/ १०१.८ मि. मि के लगबग था; और ५६ लोगोंके रक्तदबाव में आकुंचन/ प्रसरण में फर्क था, इन ५६ लोगोंमे से ४७ लोगोंमें हृदय आंकुंचन प्रमाण १३४.७ मि.मि से ज्यादह था, और ४१ लोगोंमें हृदयप्रमाण का दबाव १०१.८ मि. मि. से ज्यादह था, इन ५६ पुरुषोंमें तीन लोगोमें ही नेत्राभ्यन्तर दबाव नैसर्गिक २५. मि. मि. ज्यादह था, और इनमेंके दो लोगोंमें हृदय प्रसरण में का दबाव ११५, १३० मि मि. था।

५६ स्त्रीयोंमेंसे २८ स्त्रीयोंमें हृदय आकुंचन / प्रसरण के रक्त दबाव का प्रमाण नैसर्गिक दबाके प्रमाण इतना लगबग १३६.५/१०५.३ इतना या कम था,और २८ स्त्रीयोंमे नैसर्गिक से ज्यादह था, १८ स्त्रीयोंमें आकुंचन मेंका रक्तदबाव का प्रमाण १३६.५ मि. मि. से ज्यादह था, और २३ स्त्रीयोंमें हृदयप्रसरणमेंके दबाव का प्रमाण १०५.३ मि. मि. से ज्यादह था। ६ स्त्रीयोंमें रक्तदबाव के बढाव के साथ नेत्राभ्यन्तर नैसर्गिक दबाव २५ मि. मि. ज्यादह था और६स्त्रीयोंमें हृदय प्रसरण१०५.३ से ज्यादह यानी ११० मि.मि.से१४० मि. मि इतना था। १४७ संख्या मे १५ से ३०उम्रके ६५ (पु.४५और स्त्री२०), ३१ से४५ उम्रके ५४(२९ पु. २५ स्त्री), और ४६ से ६० और उपरके उम्रके २८ (पु. १७ स्त्री ११ थे)। रक्तदबाव का ज्यादहसे ज्यादह प्रमाण दो लोगोंमें, एक पुरुष १८०/मि. मि. /१४७ मि. मि और एक स्त्री में १८० मि. मि/१४० मि. मि ऐसा था; उनमें नेत्राभ्यन्तर दबाव पुरुषमें २२ मि. मि/२२ मि. मि.और स्त्रीमे नेत्राभ्यन्तर दबाव ३० मि. मि दाहिने और३५ मि. मि. बाये नेत्र का था। कमसे कम रक्तदबाव का प्रमाण पुरुष मे १०० मि. मि/७० मि. मि. और स्त्रीमे ११५ मि. मि. ९०।/ मि. मि. था जिनमे नेत्राभ्यन्तर दबाव दोनों मे २२ मि. मि. था।

सारिणी ३१

वयोमान और रक्त दबाव बढावके अनुसार नेत्राभ्यन्तर दबावमेंका बढाव

पुरुष					स्त्री				
उम्र	हृदय आकुंचन मि.	हृदय प्रसरण मि.	दाहिना नेत्र मि.	बाया नेत्र मि.	उम्र	हृदय आकुंचन मि.	हृदय प्रसरण मि.	दा. नेत्र दबाव मि.	बाया नेत्र दबाव मि.
२०	१३५	९५	३५	२२	२५	१५५	१३०	३५	३५
३०	१३५	११५	३०	३०	३०	१४५	१२०	३०	३०
३५	१५०	१३०	३०	३०	४०	१३०	११०	२२	४०
					४४	१४५	१३०	२५	३०
					४५	१६४	११४	३०	३५
					५५	१८०	१४०	३०	३५

पुरुपवर्ग की अपेक्षा स्त्रीवर्गमें रक्तदवाव बढने के साथ नेत्राभ्यन्तर दबाव बढना ज्यादह प्रमाण में दिखाई पडा। ९१ पुरुषोंमें सिर्फ तीन लोगोंमें यानी ३.२९% में नेत्राभ्यन्तर दबाव नैसर्गिक दबावसे बढकर था, इसके अलावा५६ स्त्रियोंमें ६ स्त्रियोंमें यानी १०.७% मे नेत्राभ्यन्तर दबाव नैसर्गिक दबाव से बढकर था। नेत्राभ्यन्तर दबाव बढने की वयोमर्यादामें फर्क दिखाई पडेः पुरुष वर्ग में वयोमान २० से ३५ था यही मर्यादा स्त्रीवर्गमें २५ से ४५ और उपर थी। १४ यानी कुलस्त्रियोंकी संख्या का चौथा हिस्सा स्त्रियों में जिनकी वयोमर्यादा ३२ से ७५ थी रक्तदबाव नैसर्गिकसे बढकर होते ही उनमें नेत्राभ्यन्तर दबाव नैसर्गिक था। पुरुषवर्गमें २८ लोगोंमें रक्तदबाव नैसर्गिकसे बढकर होते ही उनमें नेत्राभ्यन्तर दबाव नैसर्गिक था। स्त्रीयोंमे बाये नेत्रमेंका दबाव दाहिनेमे ज्यादह था।

शब्दोंकी सूची

ध

न

प

फ

शुद्धिपत्र

पन्हा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३७४	२७	सकते	सकते हैं
३७५	५	उसमें	उनमें
३८५	२१	लहरीका	लहरीयोंका
३८९	२	ठैराया	ठहराया
"	२७	२	२ रे
३९०	१८	२८८	२२८
३९१	५	आवर्तन	आवर्तनांक
३९२	३	३२०	२३०
३९३	१४	पार्श्वमें	माध्यममें
३९४	२२	सरल माध्यमोंके	सरल पार्श्वसे मर्यादित
४००	२७	कानव्हेक्स	बाय कानव्हेक्स
४००	२८	कांकेव्ह	बाय कांकेव्ह
४१३	५	दृष्टिकोन	दृष्टिकोण
४१६	१८	लचलचा	लचलचे
४१९	४	खिंच	खींचा
४१९	३१	लोगोंके	लोगोंको
४२३	१०	नेत्रसे	नेत्रोंसे
४३३	२२	निक्षेप	विक्षेप
४३४	२९	आमेट्रोपिला	आमेट्रोपिया
४४६	३	समारहणीय	समाहरणीय
४४८	१९	पान	प्रमाण
४५२	८	पोशिरक्ष	पेशीरस
४५२	२	दृष्टिपर	दृष्टिपटलपर
४५३	५	(३)	(क)
४६२	१०	द्रिध्रव	द्विध्रुव
४६६	१४	पिनिजल	पिनिअल
४६७	२२	शैलापिक	शैलामिक
४७२	६	हेपि अनापिया	हेमि अनापिया.
४७५	८	पर	असर.
४८०	१	कार्डट	काडेट
४९८	१४	स्टानर्ड	स्टानडर्ड
५००	२८	स्रिपार्श्व	त्रिपार्श्व
५०२	२	माध्यम	मध्यम
५०२	६	जाते	जाती
५०५	२५	घनदर्शनता	घनतादर्शन
५११	२९	जिसका	जिसकी
५४७	२६	होगा है	होता है
५५३	२१	सकसेसिव्ह	स्पेटियल
५६६	२१	चमकाका	चमक का
५६९	१०	मौरसी	मौरुसी
५६९	१७	लिकड	लिंक्ड
५७३	१	प्रोटानोप	ड्युटरानोप
५७३	१	ड्युटरानोप	प्रोटानोप
५७३	२५	ड्युटरानोप	प्रोटानोप
५७३	२६	प्रोटानोप	ड्युटरानोप
५८४	१४	कमयाद	कामयाद
५८६	१८	उत्तेजकोका	उत्तेजकों के
५८७	१	बदलानेवाली	बतलानेवाली
५९७	२९	कामस्टन्सी	कानस्टन्सी
६०५	३३	आमकेन्द्र यानी चालक	यानी आम चालक केंद्र
६०५	३४	जिसको दोनोंसे उसका	जिससे दोनोंका
६०६	३२	प्रस्तुत	प्रस्रत
६०६	२८	की	यह
६०७	७	संज्ञामें	संज्ञाएँ
६०७	११	अस्तव्यस्तता	अस्ताव्यस्तता
६०९	१०	था	या
६१०	२३	निश्चित है	निश्चित करना
६१२	१४	नब	तब
६१३	१५	आ आ	आ अ
६१३	१६	आअ	अअ
६१३	१५	अ आ	आ अ
६१३	१७	के	कं
६१४	२८	पदार्थोंको	पदार्थोंके
६१५	११	पन्हा– देखिये	पन्हा५२० देखिये
६१६	९	यदि—	यदि अ और ब
६१६	९	अ ब से	ब से अ
६१६	१६	नजदीक	दूर +

पन्हा	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६२४	६	पन्हा–	पन्हा ६१८
६२४	२२	भासमान	भास
६३४	५	ऐसें	ऐसे
६३८	१४	रसनकीं	रक्तकी
६३८	९	फिहरिश्न	फिहरिश्त
३३८	२०	क्यानुल	क्यानुला
६३८	३०	बडा	बढा
६४०	१२	११०	११९
६४०	२६	तौरका	तौरसे
६४२	२	दिवाले में	दीवालों में
६४४	१	परिधिके	परिधिको
६४५	२८	नीरे	सीरे
६४९	३३	विजार	विचार
६५१	२५	समहार	समाहार
६५४	११	नलोंमेंके	जलोंमेंके
६५६	१८	आयती-करण.	आयनीकरण
६५७	५	आखिरमें	आखिर
६६०	१४	होता	होना
६६०	१९	पूराति	पूर्ती
६६१	२०	पुरागे	पुरावे
६६३	३५	निष्फल	निकाल
६६४	३५	कालेकित	कालतक
६६५	२०	अनक्षेप	अवक्षेप
६६६	७	ग्लुकुरोनिग	ग्लुकुरोनिक
६६८	५	और	ये
६६९	५	प्रोतीनेन्टस.	प्रोतीनेटस
६६९	६	आयनिज	आयनो जैसी
६९९	१०	स्थायी	खास
६६९	२३	क्लैम्पपर	क्लेम्पपर
६६९	२६	द्रवगोल	स्फटिकद्रवपिंड
६७०	१२	को आकार का	के आकारका
६७०	२७	कानडायटिन	कानड्रायटिन
६७१	७	बाना	बना
६७१	२४	याले	वाले
६७२	८	हिसटिडायून	हिस्टीडीन
६७२	९	लायसाईन	लायसीन
६७२	११	तारका पिधान	तारकापिधान का
६७३	७	हिमोग्लोमिन	हीमोग्लोबिन
६७३	९	सुबाहिरी	सुनबाहिरी
६७३	२३	वह	उसको
६७५	१	कैलासियम	कैलशीयम
६७७	१७	जिसम	जिसमेंका
६८०	१०	बाह्यतया	बाह्य और
६८५	१८	मज्जामय	मज्जापथ
६८७	९	कनीनिका	कनीनिका का
६८८	८,९	प्रतिक्रिया पर होता है	यह प्रतिक्रिया मनोवैज्ञानिक समतल-पर प्रकाश प्रतिक्रिया के संवेदनात्मक समतलसे संगत प्रतिरूप होती है,
६८९	३४	ऐम्बलोपिया	ऐम्बलीयोपिक
६९०	७	जबानोंमे	जवानोंमें
६९०	२२	नापसे	नामसे
६९१	९	तारका पिधान	नेत्रस्नायु
६९२	१	व्युपिलरी	प्युपिलरी
६९२	१०	युस्टेपियन	युस्टेचियन
६९२	२८	विपक	चिपक
६९४	३	ट्युपिरली	प्युपिलरी
६९६	२२	प्रसरित	प्रसरित
६९८	२२	दबासे	दवासे
७००	४	दबाका	दवाका
७०२	१८	ध्रुम	ध्रुम
७०४	१	अल्प	अन्ध
७०६	२	हुअे परिवर्तित	हुए (आ १) आयनेसे
७०८	१६	इनका	इनको अनुक्रमसे
७०९	११	रेषा	रेषाअें
७११	१८	का	की
७११	२०	का	मे
७१६	२९	बिकट	निकट

मन्हा	पांक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७१७	२५	का	की
७१८	१७	कर्णसंपुष्ट	कर्णसंपुट
७१८	२८	केन्द्रोका	केन्द्रोको
७२०	२५	स्लेलेन	स्नेलेन
७२४	१३	श्रवणान्तार्पुट	श्रवणान्तर्पुट
७२४	१८	बढानेसे	बढावसे
७२४	३३	घुमाने की	घुमावे की
७२४	३४	दोता	होता
८२५	१४	अन्तलसिका	अन्तर्लसिका
७२७	२०	हो ता	हो तो
७२८	१४	रूपक	रूपके

पन्हा	पांक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७३४	३३	रखला	रखना
७३५	७	श्किरपर	श्किरमर
७३७	१३	रहता	रहना
७३८	४	द्रव्य	द्रव
७३९	११	३५१	३५२
७४०	५	३५२	३५३
७४२	१५	चि. ३५३-५५	३५४-५-५६
७४३	५	करता	करना
७४७	१	चि. नं ३५६	चि. ३५७
७४७	१४	नीलाओंमेके	नीलाओंमेंकेसे
७४७	२६	बड	बढ